प्रथम संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक की रचना दोहरे उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गई है। आशा है यह मुख्यतया स्नातकपूर्व स्तर के लिए कीमत सिद्धात पर एक पाठ्य पुस्तक का काम देगी। इस सम्बन्ध म अध्यापको को यह पुस्तक कुछ मूलभूत सिद्धाता के पाठ्यक्रमो मे कीमत सिद्धात वाले खण्ड के लिए एव नीचे व ऊँचे दर्जे म कीमत सिद्धात सम्बन्धी प्रचलित पाठ्यक्रमो के लिए लाभप्रद प्रतीत होगी। इसके अतिरिक्त मुझे आशा है कि यह अर्थशास्त्र म स्नातक स्तर के विद्यार्थियो के लिए कीमत सिद्धात व साधन आवटन के प्रमुख सिद्धातो की सतोषप्रद समीक्षा प्रस्तुत कर सकेगी।

पुस्तक का सदर्भ-ढाँचा एक स्थिर व स्वतन्त्र उद्यम वाली अर्थव्यवस्था है। साधनो को अधिक कार्यकुशल उपयोग की तरफ निर्देशित व सचालित करने के सबध म कीमत प्रणाली की क्रिया आर्थिक उतार चढ़ावो वाली अर्थव्यवस्था की बजाय एक स्थिर अर्थव्यवस्था म अधिक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। साथ म यह भी तर्क-सगत होगा कि एक स्थिर अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित कीमत सिद्धात के नियमो की स्पष्ट जानकारी एव गत्यात्मक अर्थव्यवस्था म कीमत सिद्धात सम्बन्धी नियमो के अध्ययन से पूर्व ही होनी चाहिए।

पुस्तक मे विषयो को व्यापक रूप से शामिल करने के बजाय चुने हुए रूप मे शामिल किया गया है। इसम कीमत सिद्धात के मूलभूत नियमो पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। बारीकियो विस्तृत चर्चाओ व अत्यधिक जटिल विषयो को इस आशा म छोड दिया गया है कि वास्तव मे इनका सम्बन्ध कीमत सिद्धात के उच्चतर पाठ्य-क्रमो से है। यहाँ मौलिकता के लिए कोई दावा नही किया गया है। जो विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है वह सामान्य रूप से सभी अर्थशास्त्रियो के अधिकार की वस्तु मानी जाती है। हमारा उद्देश्य विवेचन की स्पष्टता को ऐसे स्तर पर ले जाने का रहा है जिसे उच्च-स्तर के स्नातकपूर्व विद्यार्थी सुगमतापूर्वक प्राप्त करने की आशा कर सकें।

हमने सर्वत्र आर्थिक कार्यकुशलता पर बल दिया है, क्योकि मितव्ययिता की धारणा व्यापक रूप मे कार्यकुशलता की ही धारणा होती है। इस सम्बन्ध मे साधनों की कीमत, उपयोग की मात्रा एव आवटन के निर्धारण पर आमतौर से जितना ध्यान दिया जाता है उससे अधिक ध्यान दिया गया है। हमारे समक्ष केन्द्रीय समस्या उपलब्ध साधनो व तकनीको के साथ–वर्तमान व भविष्य दोनो म–आवश्यकताओ की तुष्टि का सर्वोच्च सभव स्तर प्राप्त करने की होती है।

विवेचन की विधि मे हमने रेखाचित्रीय विश्लेषण का उदारतापूर्वक उपयोग किया है। बीजगणित व समतल ज्यामिति से अधिक गणित के ज्ञान की आवश्यकता नहीं होगी, लेकिन उच्चतर गणित का कुछ ज्ञान अवश्य लाभप्रद सिद्ध होगा। कीमत-सिद्धात को समझने के लिए जो मूलभूत गणितीय सम्बन्ध आवश्यक होते हैं उनका समावेश किया गया है क्योकि ये पुस्तक मे आगे बढने के लिए आवश्यक हैं। प्रत्येक अध्याय के अन्त मे सीमित मात्रा मे ही चुने हुए अध्ययन-ग्रन्थ दिए गए हैं। उनका चुनाव इस प्रकार से किया गया है कि वे विद्यार्थियो के समक्ष विशिष्ट विषयो पर सर्वश्रेष्ठ सस्थापित (class c) व समकालीन (contemporary) सामग्री प्रस्तुत कर सकें।

मैं उन अनेक व्यक्तियो का आभारी हूँ जिन्होने पाण्डुलिपि को तैयार करने मे अपना योगदान दिया है। मैं विशेष रूप से ओक्लाहामा स्टेट विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रूडोल्फ डब्ल्यू. ट्रेन्टन एव विलियम्स कॉलेज के प्रोफेसर होवार्ड आर बोवेन के प्रति आभारी हूँ जिन्होन सम्पूर्ण पाण्डुलिपि के कई प्रारूप देखे और निरन्तर प्रोत्साहन के साथ-साथ अनेक उपयोगी सुझाव भी दिये। मैं कॉलेज ऑफ दि सिटी ऑफ न्यूयार्क के प्रोफेसर इलियट ज्यूकनिक के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होने बाद के चरण मे सम्पूर्ण पाण्डुलिपि की समीक्षा की और अनेक मूल्यवान् आलोचनाएँ प्रस्तुत कीं। ओक्लाहामा स्टेट विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जोसेफ जे क्लोस व प्रोफेसर यूजीन एल. स्वीयरीनजेन ने पाण्डुलिपि के अधिकाश भाग पढे और मैंने उनके सुझावो से काफी लाभ उठाया है। मैंने सदैव उचित सलाह पर ध्यान नही दिया, परिणामस्वरूप पुस्तक की कमियो के लिए सम्पूर्ण जिम्मेदारी मेरे ऊपर ही है। पुस्तक की टाइप का भार श्री केन्टेन रोम की कुछ सहायता से श्रीमती क्लाटेट वोयल्स ने काफी धैर्य व प्रसन्नता से वहन किया है।

स्टिलवाटर, ओक्लाहामा
अप्रैल 14, 1955

आर० एच० एल०

विषय-सूची

विषय-प्रवेश

हम जिस युग मे रह रहे हैं उसमे व्यापक रूप से सामाजिक अशान्ति फैली हुई है। सामाजिक मूल्यो व सामाजिक सस्थाओ की इतनी कडी छानबीन की जाती है जितनी महान मदी के समय से अब तक पहले कभी नही देखी गई। पूंजीवादी या निजी उद्यमवाली व्यवस्था के सचालन की तीक्ष्ण आलोचना की गई है—कुछ मे तो इसकी कमियां बतलाई गई हैं और कुछ आलोचना से इस प्रणाली की प्रकृति व कार्य-सिद्धि के सम्बन्ध मे काफी अज्ञान झलकता है।

प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य इसी विवाद मे योगदान देना है। इसके दो उद्देश्य हैं (1) उन दशाओ को स्पष्ट करना जो किसी भी अर्थव्यवस्था को कार्यकुशल होने के लिए पूरी करनी होती हैं, और (2) कीमत-प्रणाली के सचालन को इसकी शक्तियो व कमजोरियो सहित बतलाना जो अर्थव्यवस्था को इन दशाओ की तरफ ले जाती हैं। हमे प्रारम्भ मे ही यह स्वीकार कर लेना है कि आर्थिक क्रिया को सगठित करने के वैकल्पिक तरीके होते हैं। लेकिन इस पुस्तक का सम्बन्ध प्रमुखतया कीमत-तन्त्र से है।

इस विषय-प्रवेश में हम आर्थिक क्रिया की प्रकृति, अर्थशास्त्र की विधि एव कीमत-प्रणाली के सामान्य आर्थिक सिद्धान्त से सम्बन्ध का सर्वेक्षण करेंगे। आगामी दो अध्यायो मे कीमत सिद्धान्त के विस्तृत विवेचन की तैयारी की जाएगी और उसे अध्याय 4 से प्रारम्भ किया जाएगा।

आर्थिक क्रिया (Economic Activity)

अर्थशास्त्र को अन्य विषयो या ज्ञान के क्षेत्रो से पृथक् करने वाली सीमाएँ निर्धारित करना तो कठिन है, फिर भी मुख्य बातो पर सामान्य सहमति पायी जाती है। अर्थशास्त्र का सम्बन्ध मानवीय हित या कल्याण से होता है। इसके अन्तर्गत वे सामाजिक सम्बन्ध या सामाजिक सगठन आ जाते हैं जिनका सम्बन्ध सीमित साधनो को वैकल्पिक मानवीय आवश्यकताओ के बीच वितरित करने व इन साधनो का इस दृष्टि से उपयोग करने से होता है जिससे आवश्यकताओ की अधिकतम सन्तुष्टि की जा सके। आर्थिक क्रिया के मुख्य तत्त्व इस प्रकार है . (1) मानवीय आवश्यकताएँ,

(2) साधन, और (3) उत्पादन की तकनीकें। इन पर क्रमश विचार किया जायगा।

मानवीय आवश्यकताएँ

आर्थिक क्रिया का लक्ष्य मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना होता है। ये एक प्रकार की चालक व प्रेरक शक्ति प्रदान करती है और उनकी पूर्ति को आर्थिक क्रिया का अन्त या लक्ष्य माना जा सकता है। एक अर्थव्यवस्था मे जिन आवश्यकताओं का महत्त्व होता है वे सर्वसाधारण की हो सकती हैं, शक्तिशाली विशिष्ट हितों वाले समूहों की हो सकती हैं, सरकारी नेताओं की हो सकती हैं और अन्य किसी की हो सकती हैं। जिनकी आवश्यकताएँ सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं—इस सम्बन्ध मे विभिन्न समाज भिन्न-भिन्न सापेक्ष भार दिया करते है।

आवश्यकताओं के दो लक्षण होते हैं—वे विविध प्रकार की होती हैं, और किसी भी अवधि मे समग्र रूप से अतृप्य (insatiable) होती है। अतृप्यता का अनिवार्यत यह आशय नही है कि एक व्यक्ति की एक विशिष्ट वस्तु के प्रति इच्छा असीमित हो। हो सकता है कि प्रति सप्ताह उपभोग की जाने वाली वस्तु की मात्रा, जो एक व्यक्ति के कल्याण म योगदान देती है वह सीमित हो। जब हम वस्तुओं पर समग्र रूप से विचार करते है तब यह कहते हैं कि आवश्यकताएँ असीमित होती हैं और ऐसा अंशत इसलिए होता है कि व्यक्ति अनेक किस्म की आवश्यकताएँ उत्पन्न कर सकते हैं।

आवश्यकताओं के स्रोत—समग्र रूप से आवश्यकताओं की अतृप्यता की स्थिति उस समय और भी स्पष्ट हो जाती है जबकि हम उनके उत्पन्न होने के कुछ तरीकों पर विचार करते हैं। सर्वप्रथम, आवश्यकताएँ इसलिए उत्पन्न होती हैं कि मानव शरीर को काम करते रहने के लिए कुछ चाहिए। इस सम्बन्ध मे भोजन की आवश्यकता सबसे अधिक स्पष्ट है। जिन प्रदेशों का जलवायु समशीतोष्ण नही होता उनमे परिस्थितिवश प्राय दो प्रकार की इच्छाएँ और उत्पन्न हो जाती हैं। ये इच्छाएँ आश्रय और वस्त्र के लिए होती हैं। यदि मानव को निम्न तापक्रम अथवा उष्ण प्रदेशों की भीषण गर्मी की कठोरताओं से बचाना है तो इनमे से पहली या दूसरी अथवा दोनों इच्छाओं की कुछ अश तक पूर्ति अवश्य की जानी चाहिए।

जिस सस्कृति मे हम रहते हैं उसमे भी आवश्यकताएँ उत्पन्न होती हैं क्योंकि प्रत्येक समाज 'उत्तम जीवन" के लिए कुछ वस्तुओं को आवश्यक मानता है जैसे, भवन निर्माण व भोजन के उपभोग के कुछ निश्चित स्तर, कलाओं को सरक्षण देना एव गाडियों, लकडी के कोयले की अँगीठियों, टेलिविजन सैट एव पुराने रिकार्ड-प्लेयरों का स्वामित्व व उपभोग। परिणामस्वरूप बहुत सी आवश्यकताएँ उस समय उत्पन्न होती हैं जब हम समाज मे अपनी स्थिति सुधारने का प्रयास करते हैं।

हमे जैविक व सास्कृतिक आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के लिए अनेक किस्म की वस्तुओ की जरूरत होती है। व्यक्तियो की रुचियो म अन्तर पाया जाता है। कुछ व्यक्ति भुना हुआ गोमास (roast beef) पसन्द करते हैं, तो कुछ सूअर की जाघ का मास (ham) एव कुछ भेड-बकरी का मास। एक निश्चित अवधि मे एक ही व्यक्ति अपनी भूख विभिन्न खाद्य पदार्थों से मिटाना चाहता है। वस्त्रो की रुचियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं और अलग-अलग सामाजिक अवसरा पर अलग-अलग किस्म की पोशाक की आवश्यकता होती है। उम्र के अन्तर, जलवायु के अन्तर, सामाजिक अन्तर, शैक्षणिक अन्तर व अन्य कई तत्व समस्त समाज के द्वारा चाही जाने वाली वस्तुओ मे विविधता उत्पन्न करते हैं।

अन्त मे, आवश्यकताएँ उस क्रिया से भी उत्पन्न होती हैं जो अन्य आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के लिए आवश्यक होती है, अथवा आवश्यकता को सन्तुष्ट करने वाली क्रिया नई *आवश्यकताओ को उत्पन्न करती है। पुरानी आवश्यकता की सन्तुष्टि के* लिए की जाने वाली क्रिया से उत्पन्न होने वाली नई आवश्यकताओ का सबसे अच्छा उदाहरण उस विद्यार्थी से मिलता है जो विश्वविद्यालय की शिक्षा ग्रहण कर रहा है। विश्वविद्यालय मे उपस्थित होने की प्रक्रिया सम्भावी इच्छाओ के पूर्णतया नये क्षेत्र खोल देती है जिनके अस्तित्व के बारे म वह अब तक अनजान था, जैसे बौद्धिक व सास्कृतिक इच्छाएँ व अन्य कई इच्छाएँ। पुरानी आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करने की प्रक्रिया मे जो नई आवश्यकताएँ उत्पन्न होती हैं उनका मानवीय इच्छाओ के विस्तार मे काफी महत्त्व होता है।

आवश्यकताओ के उत्पन्न होने से सम्बन्धित जिन स्रोतो का ऊपर वर्णन किया गया है वह कोई पूर्ण किस्म का वर्गीकरण नही है। लेकिन यह सूची एक समयावधि मे आवश्यकताओ के असीमित विस्तार की सम्भावना और अर्थव्यवस्था के द्वारा समस्त व्यक्तियो की समस्त आवश्यकताओ को सन्तृप्त कर सकने की असम्भावना को व्यक्त करती है।

आवश्यकताओ की सन्तुष्टि व जीवन-स्तर—किसी भी आर्थिक समाज मे प्राप्त किये गये आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के स्तर को माप सकना कठिन होता है। साधारणतया यह प्रति व्यक्ति आय के रूप म व्यक्त किया जाता है—कभी सकल व कभी शुद्ध आय के रूप मे—जो आँकडो की उपलब्धि पर निर्भर करता है। औसत के इर्द गिर्द काफी फैलाव या छितराव (dispersion) हो सकता है और औसत आय का अक भी भ्रामक हो सकता है। फिर भी, प्रति व्यक्ति आय अर्थव्यवस्था की कार्य सिद्धि के सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध मापो मे से एक माना जाता है।

कभी-कभी लोग एक अर्थव्यवस्था की कार्य सिद्धि का अनुमान इस बात से लगाते हैं कि उसमे प्रति व्यक्ति आय के स्तर 'सन्तोषजनक" है अथवा नही। इसके पीछे

यह मान्यता है कि यदि ये स्तर "सन्तोषजनक" स्तर से नीचे हैं तो इस सम्बन्ध में कुछ किया जाना चाहिए क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को "सन्तोषजनक" जीवन-स्तर प्राप्त करने का अधिकार होता है। इस किस्म के निर्णयों का आर्थिक विश्लेषण के दृष्टिकोण से बहुत महत्त्व नहीं होता।

सर्वप्रथम एक समाज के लिए "सन्तोषजनक" जीवन स्तर विचाराधीन ऐतिहासिक अवधि से पूर्णतया सम्बद्ध होता है। पचास पूर्व संयुक्तराज्य अमेरिका में अधिकांश व्यक्ति जिस जीवन-स्तर से पूर्णतया सुखी माने जाते, वह आज सन्तोषजनक नहीं माना जायगा। जो स्तर आज सन्तोषजनक है वह सम्भवतया आज से पचास वर्ष पश्चात् सन्तोषजनक नहीं रह पायगा। ज्यों-ज्यों अर्थव्यवस्था की माल उत्पन्न करने की क्षमता बढ़ती है त्यों त्यों एक "सन्तोषजनक" जीवन स्तर की अवधारणा आगे खिसक जाती है। मानवीय आवश्यकताओं की अतृप्यता एवं समयावधि में उत्पादन-क्षमता में होने वाली वृद्धियाँ से मिलकर एकाधिक "सन्तोषजनक" स्तर की अवधारणा (Concept) को निरन्तर परिवर्तनशील बना देती है।

द्वितीय, "सन्तोषजनक" जीवन-स्तर की अवधारणा विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के अनुसार भी भिन्न भिन्न होती है। अधिकांश एशियाई वर्तमान समय में जिस जीवन-स्तर से सन्तुष्ट हैं वह ज्यादातर योरोप के निवासियों व अमेरिका के नागरिकों के लिए पर्याप्त रूप से ऊँचा नहीं माना जायगा। लोग विशेष जीवन-स्तरों के अभ्यस्त हो जाते हैं और उनके लिए "सन्तोषजनक" जीवन-स्तर उस स्तर से थोड़ा ऊँचा होता है जिस वे वर्तमान में प्राप्त किए हुए हैं।

कुशल संचालन के दृष्टिकोण से एक अर्थव्यवस्था की कार्यसिद्धि के बारे में निर्णय इस आधार पर नहीं किया जाना चाहिए कि वह एक "सन्तोषजनक" जीवन-स्तर प्रदान कर पाती है या नहीं, बल्कि इस आधार पर किया जाना चाहिए कि वह, दिए हुए समय में अपने साधनों व तकनीक को देखते हुए सर्वोच्च जीवन-स्तर प्रदान कर पाती है अथवा नहीं। यद्यपि इस सम्बन्ध में हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि वह अपने चालू उत्पादन का कुछ अंश भावी उत्पादन क्षमता की वृद्धि के लिए अवश्य अलग रख दे। एक अर्थव्यवस्था से इससे अधिक की आशा नहीं की जा सकती। लेकिन साथ में यह भी आवश्यक है कि वह इससे बहुत कम भी न दे। जिस सीमा तक वर्तमान उत्पादन का कुछ भाग भावी उत्पादन-क्षमता को बढ़ाने में प्रयुक्त किया जाता है, उस सीमा तक अर्थव्यवस्था द्वारा प्रदान किए जा सकने वाले जीवन-स्तर में निरन्तर वृद्धि होगी।

साधन

अर्थव्यवस्था आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का जो स्तर प्राप्त कर सकती है वह

अशत इसके ज्ञात साधनो की मात्रा व किस्म से मर्यादित होता है। साधनो के द्वारा वस्तुएँ उत्पन्न की जाती है जो हमारी आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करने के काम आती हैं। अर्थव्यवस्था मे विभिन्न प्रकार के सैकडो साधन पाए जाते है। इनमे सभी किस्म का श्रम, सभी किस्म के कच्चे माल, भूमि, मशीनरी, इमारते, अर्द्धनिर्मित माल, ईंधन, शक्ति, परिवहन आदि आते है।

साधनो का वर्गीकरण—साधनो को सुविधापूर्वक दो श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है (1) श्रम या मानवीय साधन, और (2) पूँजी या गैर-मानवीय (non-human) साधन। श्रम-साधन मे श्रम शक्ति अथवा मानवीय प्रयास की क्षमता—मानसिक व शारीरिक दोनो—आती है जो वस्तुओ के निर्माण मे प्रयुक्त होती है। पूँजी शब्द भ्रामक हो सकता है क्योकि यह न केवल गैर अर्थशास्त्रियो के द्वारा वल्कि स्वय अर्थशास्त्रियो के द्वारा विभिन्न अर्थों मे प्रयुक्त किया जाता है। हम इस शब्द मे वे सब गैर-मानवीय साधन शामिल करते हैं जो अन्तिम उपभोक्ता तक माल पहुँचाने मे योगदान दे सकते हैं। इसके विशिष्ट उदाहरण इस प्रकार हैं इमारतें, मशीनरी, भूमि, उपलब्ध खनिज साधन, कच्चा माल, अर्द्धनिर्मित माल, व्यावसायिक माल या स्टॉक (business inventories) और अन्य गैर-मानवीय भौतिक मदें जो उत्पादन-प्रक्रिया मे काम आती है।[1] हमे पूँजी और मुद्रा शब्दो मे परस्पर भ्रम उत्पन्न होने के प्रति विशेष सावधानी बरतनी होगी। इस पुस्तक मे प्रयुक्त किए गए अर्थ के अनुसार मुद्रा पूँजी नही होती है। मुद्रा तो कुछ भी उत्पन्न नही कर सकती है। यह तो प्रमुखतया एक विनिमय का माध्यम होती है, अर्थात् वस्तुओ और सेवाओ व साधनो के विनिमय को सुविधाजनक बनाने की विधि होती है। इस विधि का आशय यह है कि पूँजीगत वस्तुओ, श्रम, व उपभोक्ता माल व सेवाओ के मूल्य मौद्रिक इकाई मे माप जाते हैं।

हमे साधनों के उपरोक्त वर्गीकरण को आवश्यकता से ज्यादा महत्त्व नही देना चाहिए। यह विश्लेषणात्मक होने की बजाय वर्णनात्मक ज्यादा है। प्रत्येक श्रेणी मे साधनो की अनेक किस्मे हो सकती है और एक-ही वर्गीकरण मे आने वाली दो किस्मो मे अन्तर विश्लेषण की दृष्टि से उन अन्तरो से अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकते है जो अलग-अलग वर्गीकरणो की दो किस्मो मे पाए जाते है। उदाहरण के लिए,

1. अन्तिम उपभोक्ताओ के पास जो वस्तुएँ होती हैं वे भी, मूलभूत अर्थ मे, पूँजी कहला सकती हैं क्योकि उपभोक्ता वस्तुओं को न पाकर उनके द्वारा प्रदान किए जाने वाले सतोष को चाहते हैं। अत ऐसी वस्तुएँ भी उपभोक्ताओ के अतिम उद्देश्यो या इच्छाओ की पूर्ति का साधन ही होती हैं, अर्थात् उन्हे अभी तक आवश्यकता की वह सतुष्टि प्रदान करनी है जिसकी इनसे आशा की जाती है। लेकिन हम यहाँ इतना सूक्ष्म अन्तर नही करेंगे। अतिम उपभोक्ता के हाथो में वस्तुएँ उपभोग्य वस्तुएँ कहलाती हैं न कि पूँजी, और इससे कुछ उलझनें भी टल जायेंगी।

एक खाई खोदने वाले मजदूर व लेखाकार (accountant) को लीजिए। दोनों श्रम के वर्णनात्मक वर्गीकरण में आते हैं। लेकिन विश्लेषण की दृष्टि से खाई खोदने वाला मजदूर एक लेखाकार की अपेक्षा एक खाई खोदने वाले यन्त्र से ज्यादा समीप होने से पूंजी के वर्णनात्मक वर्गीकरण में शामिल होगा।

साधनों के लक्षण—साधनों के तीन महत्वपूर्ण लक्षण होते हैं : (1) अधिकांश साधन सीमित मात्रा में पाए जाते हैं, (2) उनके विविध उपयोग होते हैं; (3) एक दी हुई वस्तु के उत्पादन में वे विभिन्न अनुपात में मिलाए जा सकते हैं। हम इन पर क्रमशः विचार करेंगे।

अधिकांश साधन इस अर्थ में परिमित होते हैं कि उनकी मात्रा उन पदार्थों की इच्छाओं की तुलना में सीमित होती है जिन्हें वे उत्पन्न कर सकते हैं। ये आर्थिक साधन कहलाते हैं। कुछ साधन, जैसे आन्तरिक-दहन इंजन (internal-combustion engine) में प्रयुक्त होने वाली वायु, इतनी बहुतायत से पाए जाते हैं कि उनको चाहे जितनी मात्रा में लिया जा सकता है। ये निःशुल्क साधन (free resources) कहलाते हैं क्योंकि उनकी कोई कीमत नहीं होती है। यदि समस्त साधन निःशुल्क होते तो आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की कोई सीमा नहीं होती और कोई आर्थिक समस्या भी नहीं होती। रहन-सहन के स्तर आसमान को छूने लगते। आर्थिक विश्लेषण में निःशुल्क साधनों का कोई महत्त्व नहीं होता, इसलिए उन पर यहाँ विचार नहीं किया जाएगा।

हमारी रुचि आर्थिक साधनों में होती है। आर्थिक साधनों की सीमितता के कारण किन आवश्यकताओं को किस सीमा तक सन्तुष्टि करनी है इसके लिए चुनाव करना आवश्यक हो जाता है। संक्षेप में इसे ही आर्थिक समस्या कहते हैं।

अर्थव्यवस्था में पाई जाने वाली जनसंख्या उपलब्ध होने वाले श्रम-साधनों की ऊपरी सीमा निर्धारित करती है। अनेक तत्त्व जैसे—शिक्षा, प्रथा, स्वास्थ्य की सामान्य दशा और आयु-वितरण—जनसंख्या के उस वास्तविक अनुपात को निश्चित करते हैं जिसे श्रम-शक्ति कहा जा सकता है। अल्पकाल में तो कुल श्रम-शक्ति में बहुत ज्यादा विस्तार नहीं किया जा सकता, लेकिन अपेक्षाकृत दीर्घकाल में यह अधिक परिवर्तनशील हो सकती है, क्योंकि जनसंख्या को परिवर्तित होने का समय मिल जाता है और वास्तविक श्रम-शक्ति को निर्धारित करने वाले तत्त्वों में भी परिवर्तन हो जाता है।

सामान्यतः अर्थव्यवस्था का कुल पूंजीगत साज-सामान कालान्तर में बढ़ता जाता है, लेकिन यह विस्तार धीरे-धीरे होता है। कोई भी अर्थव्यवस्था एक वर्ष की अवधि में चालू उपभोग को गम्भीर रूप से नियन्त्रित किए बिना पूंजीगत साज-सामान के कुल स्टॉक में जितनी वृद्धि कर सकती है वह उसकी चालू पूंजी का बहुत-कुछ छोटा

अंश ही होता है । अतएव, अल्पकाल मे वस्तुओ को उत्पन्न करने के लिए उपलब्ध होने वाली पूंजी की मात्रा सीमित होती है ।

किसी भी प्रकार का साधन विभिन्न किस्म की वस्तुओ के उत्पादन मे प्रयुक्त हो सकता है । साधनो की बहु-उपयोगिता (versatility of resources) उस क्षमता को सूचित करती है जिसके अनुसार ये विभिन्न उपयोगो मे लगाए जा सकते हैं । साधारण श्रम लगभग प्रत्येक किस्म की वस्तु के उत्पादन मे प्रयुक्त किया जा सकता है । एक साधन जितना अधिक दक्ष अथवा विशिष्ट हो जाता है उसके उपयोग उतने ही अधिक सीमित हो जाते हैं । साधारण श्रमिको की बजाय दक्ष मशीन-चालको के लिए वैकल्पिक काम कम होते हैं । मस्तिष्क के सर्जन, अथवा बैलेट नृत्यकार, अथवा बडी टीमो के बेसबॉल के खिलाडी के लिए तो वैकल्पिक कार्य और भी कम होते हैं । लेकिन साधनो के उच्च श्रेणी के विशिष्टीकरण के बावजूद भी एक विशिष्ट किस्म के साधन की पूर्ति कालान्तर मे अन्य किस्मो की पूर्ति का त्याग करके बढाई जा सकती है । व्यक्तियों को दन्त चिकित्सको के बजाय चिकित्सको (physicians) के रूप मे प्रशिक्षण दिया जा सकता है । बढइयो की सख्या कम रखकर राजो (bricklayers) की सख्या बढाई जा सकती है । ट्रैक्टर अधिक एव कम्बाइन मशीनें कम उत्पन्न की जा सकती हैं । अर्थव्यवस्था के साधन इतने लचीले होते हैं कि वे अनेक रूप धारण कर सकते है और कई तरह की वस्तुएँ उत्पन्न कर सकते हैं । विचाराधीन समयावधि जितनी अधिक होती है साधनो मे लचीलापन (*fluidity*) अथवा बहु-उपयोगिता (versatility) उतनी ही अधिक पाई जाती है ।

प्राय एक दी हुई वस्तु के उत्पादन मे साधनो को विभिन्न अनुपातो मे मिलाने की सम्भावनाएँ होती हैं । शायद कुछ वस्तुओ मे ही साधनो को स्थिर अनुपातो मे मिलाने की आवश्यकता होती है । बहुधा यह देखा जाता है कि पूंजी के लिए श्रम की कुछ किस्मो, अथवा श्रम की अन्य किस्मो के लिए श्रम की कुछ किस्मो के प्रतिस्थापन की सम्भावना रहती है, और इसके विपरीत भी पाया जाता है । साधनो का यह लक्षण इनके बहु-उपयोगिता के लक्षण से गहरा सम्बद्ध होता है । प्रतिस्थापन व बहु-उपयोगिता अर्थव्यवस्था के लिए यह सम्भव बनाते हैं कि वह अपनी उत्पादन-क्षमता उत्पादन की एक दिशा से दूसरी दिशा म ले जा सके और वह मानवीय आवश्यकताओ के बदलते हुए स्वरूप के अनुसार अपने को ढाल सके । जिन उद्योगो के माल को सबसे कम पसन्द किया जाता है उनसे साधनो का अन्तरण (transfer) उन उद्योगो की तरफ हो सकता है जिनके माल को सबसे ज्यादा पसन्द किया जाता है ।

उत्पादन की तकनीकें—उत्पादन की तकनीकें उपलब्ध साधनो की मात्राओ और किस्मो के साथ मिलकर आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के उस स्तर को निर्धारित करती हैं जिसे एक अर्थव्यवस्था प्राप्त कर सकती है । उत्पादन की तकनीकें वह ज्ञान

(know-how) एवं भौतिक साधन प्रदान करती हैं जिनके द्वारा साधनों को आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के रूप में बदला जा सकता है। उद्यमकर्ताओं को उपलब्ध होने वाली तकनीकों का स्वरूप सामान्यतया आर्थिक सिद्धान्त के क्षेत्र से बहुत कुछ बाहर और इंजीनियरिंग के क्षेत्र के अन्दर माना जाता है। लेकिन उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं का चुनाव एवं साथ में उनकी उत्पन्न की जाने वाली मात्राओं एवं प्रयुक्त की जाने वाली तकनीकों का चुनाव अर्थशास्त्र के क्षेत्र में ही आता है। अर्थशास्त्री प्रायः यह मान लेते हैं कि किसी भी वस्तु के उत्पादन के लिए तकनीकों की एक दी हुई परिधि या सीमा (range) होती है और वस्तु की उत्पादित की जाने वाली मात्रा के लिए न्यूनतम लागत वाली तकनीकें ही प्रयुक्त की जाती हैं।

रीति-विधान (Methodology)

आर्थिक क्रिया का एक उपयोगी व व्यवस्थित अध्ययन करने के लिए हमें आर्थिक सिद्धान्त सीखना चाहिए और इसे आर्थिक क्रिया पर लागू करना चाहिए। लेकिन प्रश्न उठता है कि आर्थिक सिद्धान्त क्या है? किसी अन्य विज्ञान के सिद्धान्त की भाँति यह भी सिद्धान्तों का अथवा आर्थिक क्रिया के इर्द गिर्द पाए जाने वाले महत्त्वपूर्ण "तथ्यों" या चल-राशियों (variables) के परस्पर कार्य-कारण सम्बन्धों का समूह होता है। सर्वप्रथम, हम आर्थिक सिद्धान्तों के निर्माण व कार्यों पर दृष्टिपात करेंगे और तत्पश्चात् इस विषय की समग्र योजना में कीमत-सिद्धान्त के महत्त्व पर विचार करेंगे।

आर्थिक सिद्धान्त का निर्माण

सिद्धान्तों के किसी भी समूह (एक सिद्धान्त) के पीछे प्रारम्भ में प्रस्थापनाएँ या दशाएँ होती हैं जिन्हें दिया हुआ माना जाता है अथवा जिन्हें बिना आगे जाँच-पड़ताल के स्वीकार कर लिया जाता है। इन्हें आधार तत्त्व (postulates) अथवा मान्यताएँ (premises) कहा जाता है जिन पर सिद्धान्त की रचना की जाती है। वायुगति विज्ञान में गुरुत्वाकर्षण की शक्तियाँ, केन्द्रापसारी बल (वह बल जिससे किसी केन्द्र पर घूमने वाली वस्तु केन्द्र से दूर होती जाए) का सचालन, और वायु-प्रतिरोध उस सिद्धान्त के आधार तत्त्व माने जा सकते हैं जिसमें उठाने, धकेलने व रोक लगाने को शामिल किया जाता है। अर्थशास्त्र में हम उपभोक्ता की विवेकशीलता के आधार पर उपभोक्ता के व्यवहार का सिद्धान्त बना सकते हैं। उपभोक्ता की विवेकशीलता की परिभाषा में उपभोक्ताओं की वह सामान्य इच्छा आती है जिसके द्वारा वे अपनी आय को व्यय करके यथासम्भव अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। अतः सिद्धान्त के निर्माण में पहला कदम इसके आधारतत्त्वों (Postulates) का विशिष्ट निर्देशन व परिभाषा करना है।

दूसरा कदम जिस क्रिया के सम्बन्ध में हम सिद्धान्त बनाना चाहते है उससे सम्बन्धित "तथ्यो" का अवलोकन (observation of "facts") करना होता है। उदाहरण के लिए, यदि हम सुपरबाजार व उपभोक्ताओ के बीच किराने के सामान के विनिमय पर विचार कर रहे हैं तो इस क्रिया पर पूर्ण गहराई से ध्यान दिया जाना चाहिए। लगातार व बारम्बार अवलोकन करने से जो तथ्य प्रकट होगे उनम से कुछ निरर्थक होगे जिन्हे छोडा जा सकता है, लेकिन कुछ तथ्य स्पष्टतया महत्त्व-पूर्ण होगे। किराने के सामान के विनिमय मे उपभोक्ता के बालो का रग कोई महत्त्व नही रखेगा, लेकिन उपभोक्ताओ द्वारा व्यय की जाने वाली साप्ताहिक मुद्रा-राशियो उनके लिए उपलब्ध सुपरबाजारो की सख्या, एव क्रय के लिए उपलब्ध किराने के सामान की साप्ताहिक मात्राओ का निश्चित रूप से महत्त्व माना जाएगा।

तीसरा कदम, जिसे बहुधा दूसरे के साथ ही लिया जाता है, अवलोकित तथ्यो पर तर्क के नियमो को लागू करके उनमे कार्य-कारण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करना और यथासम्भव अधिक से अधिक निरर्थक व महत्त्वहीन तथ्यो को हटाना माना गया है। तर्क की निगमन श्रृंखला से सम्भवत यह निष्कर्ष निकले कि अमुक कारणो से नियमित रूप से अमुक प्रभाव उत्पन्न हो। हम यह तर्क कर सकते हैं कि ऊँची आमदनी वाले उपभोक्ता विशिष्ट वस्तुओ के लिए ऊँची कीमत देने को उद्यत हो सकते हैं। अतएव, उपभोक्ता की आय म वृद्धि होने से कीमतें ऊँची हो सकती हैं। अथवा, इसके विपरीत, हम **आगमन विधि** से भी तर्क कर सकते है। बारम्बार अवलोकन से यह पता लग सकता है कि उपभोक्ता की आय व कीमतो मे वृद्धियाँ साथ-साथ होती हैं। इस प्रकार बार-बार देखकर हम लगभग इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ऊँची आमदनी के कारण कीमतो मे वृद्धि उत्पन्न हो जाती है। कारण-परिणाम सम्बन्धो के बारे मे ऐसे अस्थायी कथनो को परिकल्पनाएँ (hypotheses) कहते है।

सिद्धान्तो के निर्माण की प्रक्रिया मे चौथा कदम काफी महत्त्वपूर्ण होता है। परिकल्पनाओ के निर्माण के बाद उनकी पूरी तरह जाँच की जानी चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि वे कहाँ तक सही है, अर्थात् वे किस सीमा तक उत्तम परिणाम देती हैं। इस सम्बन्ध मे साख्यिकी के उपकरण विशेष महत्त्व रखते हैं। कुछ परिकल्पनाओ की बारम्बार जांच सम्भव नही होती, इसलिए उन्हे खारिज करना पडता है। जाँच के दौरान कुछ परिकल्पनाओ मे सशोधन करने पडते है। उस समय सशोधित परिकल्पनाओ की जाँच की जानी चाहिए। कुछ परिकल्पनाएँ ऐसी भी होती है जो अधिकाश सम्बन्धित परिस्थितियो मे ज्यादातर लागू होती है। बहुधा इन्हे सिद्धान्त (principles) कहा जाता है।

सिद्धान्तो के किसी भी समूह को निरपेक्ष सत्य मानना मूर्खता होगी। अर्थशास्त्र व अन्य विज्ञानो मे जाँच की प्रक्रिया (testing process) कभी समाप्त नही होती।

किसी भी दिए हुए समय मे हम सिद्धान्तो को कारण-परिणाम सम्बन्धो के बारे मे सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध कथन मानते है। लेकिन अतिरिक्त तथ्यो व ज्यादा अच्छी जांच की तकनीक से कालान्तर मे इनम सुधार किया जा सकता है। आर्थिक सिद्धान्त सिद्धान्तो का कोई सदैव लागू होने वाला समूह नही होता। यह विकासक्षम (viable) अर्थात् विकासशील व निरन्तर बढन वाला होता है।

आर्थिक सिद्धान्त के कार्य

आर्थिक सिद्धान्त के मुख्य कार्य दो श्रेणियो मे आते हैं (1) आर्थिक क्रिया की प्रकृति को स्पष्ट करना, एव (2) यह बतलाना कि अर्थव्यवस्था म क्या होने वाला है। आर्थिक क्रिया की प्रकृति के स्पष्टीकरण से हमे उस आर्थिक परिवेश (economic environment) को समझने मे मदद मिलती है जिसमे हम रहते हैं—हम यह जान सकते हैं कि एक भाग का दूसरे से क्या सम्बन्ध है और किसका कारण क्या है। हम बहुत कुछ सुनिश्चित रूप से इस बात की पूर्व सूचना देने मे भी समर्थ होना चाहते हैं कि हमारे कल्याण को प्रभावित करने वाली प्रमुख चल-राशियो का क्या होने वाला है। ऐसा हम इसलिए चाहते है कि पूर्व सूचित परिणामो को पसन्द न करने पर हम उनके बारे म कुछ कर सके।

अर्थशास्त्री वास्तविक या यथार्थमूलक अर्थशास्त्र (positive economics) व आदर्शमूलक अर्थशास्त्र (normative economics) मे इस आधार पर अन्तर करते है कि सिद्धान्त का प्रयोग करने वाले केवल कारण परिणाम सम्बन्धो पर ध्यान देते हैं, अथवा वे आर्थिक क्रिया मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना चाहते हैं ताकि उसकी दिशा बदल सकें। यथार्थमूलक अर्थशास्त्र पूर्णतया वस्तुनिष्ठ (objective) माना जाता है और यह आर्थिक क्रिया के कारण-परिणाम सम्बन्धो तक सीमित रहता है। यह आर्थिक सम्बन्ध जैसे है उन पर विचार करता है। इसके विपरीत, आदर्शमूलक अर्थशास्त्र 'क्या होना चाहिए' पर विचार करता है। इसके लिए मूल्य-निर्णय (value judgments) करने होते है, अर्थात् प्राप्त किए जाने वाले सम्भावित उद्देश्यो को क्रम से जचाना पडता है और इनके बीच चुनाव भी करना होता है। आर्थिक नीति-निर्धारण, अर्थात् आर्थिक क्रिया के मार्ग को बदलने की दृष्टि से जान बूझकर किया गया हस्तक्षेप वस्तुत आदर्शमूलक ही होता है। लेकिन यदि आर्थिक नीति-निर्धारण को आर्थिक कल्याण मे सुधार करने की दृष्टि से प्रभावशाली सिद्ध होना है तो इसकी जड मे सुदृढ यथार्थमूलक आर्थिक विश्लेषण अवश्य होना चाहिए। नीति-निर्धारको को सुझाई गई नीतियो के परिणामो की पूरी सीमा से अवगत होना चाहिए।

कीमत सिद्धान्त व आर्थिक सिद्धान्त

कीमत सिद्धान्त (व्यष्टिगत आर्थिक सिद्धान्त) (microeconomic theory)

और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त (समष्टिगत आर्थिक सिद्धान्त) (macroeconomic theory) अर्थशास्त्र विषय का आधारभूत विश्लेषणात्मक साज-सामान या उपकरण (tool kit) प्रदान करते हैं। दोनों के सिद्धान्तों का जिन विशेष क्षेत्रों में प्रयोग होता है वे इस प्रकार हैं मौद्रिक अर्थशास्त्र, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व वित्त, सार्वजनिक वित्त, जनसंख्या-अर्थशास्त्र, कृषि-अर्थशास्त्र, प्रादेशिक अर्थशास्त्र आदि। इस ग्रन्थ में व्यष्टि-अर्थशास्त्र पर ध्यान केन्द्रित करने का यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए कि किसी प्रकार से समष्टि-अर्थशास्त्र का महत्त्व कम किया जा रहा है। सच तो यह है कि आर्थिक क्रिया को पूरी तरह समझ सकने के लिए दोनों आवश्यक हैं।

कीमत-सिद्धान्त (व्यष्टि-अर्थशास्त्र) का उपभोक्ता, साधनों के स्वामी एवं व्यावसायिक फर्मों जैसी व्यक्तिगत आर्थिक इकाइयों की आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्ध होता है। इसका सम्बन्ध व्यावसायिक फर्मों से उपभोक्ताओं की तरफ वस्तुओं व सेवाओं के प्रवाह, इस प्रवाह की संरचना या बनावट (composition) और इसके मुख्य अंगों के मूल्यांकन अथवा कीमत-निर्धारण से होता है। इसका सम्बन्ध साधनों के स्वामियों से व्यावसायिक फर्मों की ओर उत्पादन के साधनों (अथवा उनकी सेवाओं) के प्रवाह, उनके मूल्यांकन (evaluation) और वैकल्पिक उपयोगों के बीच उनके आवंटन (allocation) से भी होता है। कीमत-सिद्धान्त में प्रायः स्थिर अर्थव्यवस्था की मान्यता स्वीकार की जाती है—ऐसी अर्थव्यवस्था जो ऊपर या नीचे बड़े उतार-चढ़ावों से मुक्त होती है और जिसमें साधनों का बहुत-कुछ पूर्ण उपयोग होता है। इस ग्रन्थ में हम सर्वत्र इन मान्यताओं का उपयोग करेंगे, वह इसलिए नहीं कि उतार-चढ़ाव और बेरोजगारी का कोई महत्त्व नहीं है, बल्कि इसलिए कि इन दोनों मान्यताओं के स्वीकार करने पर ही कीमत-सिद्धान्त का ढाँचा अधिक स्पष्ट व सरल रूप में तैयार किया जा सकता है।

राष्ट्रीय आय का सिद्धान्त (समष्टि-अर्थशास्त्र) जिन व्यक्तिगत आर्थिक इकाइयों से अर्थव्यवस्था बनी है उन पर विचार करने के बजाय सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर विचार करता है। व्यावसायिक फर्मों की ओर से उपभोक्ताओं की ओर होने वाला विशिष्ट वस्तुओं व सेवाओं का प्रवाह विश्लेषण का आवश्यक अंग नहीं होता। इसी प्रकार साधनों के स्वामियों की ओर से व्यावसायिक फर्मों की ओर होने वाला वैयक्तिक उत्पादक साधनों अथवा सेवाओं का प्रवाह भी विश्लेषण का आवश्यक अंग नहीं होता। वस्तुओं के समग्र प्रवाह के मूल्य (शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद) (net national product) और साधनों के समग्र प्रवाह के मूल्य (राष्ट्रीय आय) पर ध्यान केन्द्रित किया जाएगा।

समष्टि-अर्थशास्त्र की कीमत सूचनाएं अथवा सामान्य कीमत-स्तर की अवधारणाएँ व्यष्टि अर्थशास्त्र की व्यक्तिगत कीमतों का स्थान ले लेती हैं। राष्ट्रीय आय का सिद्धान्त समग्र मुद्रा-प्रवाह, वस्तुओं व सेवाओं के समग्र प्रवाह और साधनों के सामान्य उपयोग या रोजगार के स्तर में होने वाले परिवर्तनों के कारणों पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। *आर्थिक उतार चढ़ाव और साधनों की बेकारी से सम्बन्धित* समस्याओं का समाधान उनके कारणों के निर्धारण से स्वतः तर्कसंगत रूप में निकलता है। समष्टि अर्थशास्त्र में आर्थिक विकास की प्रकृति एवं उत्पादन-क्षमता व राष्ट्रीय आय के स्थायित्व में विस्तार की आवश्यक शर्तों के बारे में काफी चर्चा की जाती है।

कीमत-सिद्धान्त और राष्ट्रीय आय-सिद्धान्त का परस्पर गहरा सम्बन्ध होता है और ये व्यापक रूप में एक दूसरे के पूरक होते हैं। उदाहरणार्थ, ये मान्यताएँ कि अर्थव्यवस्था स्थिर (stable) है और साधनों का कुछ-कुछ पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त है—वस्तुतः ऐसी हैं जिनमें अर्थव्यवस्था का राष्ट्रीय आय-सिद्धान्त के दृष्टिकोण से देखा जाता है। आर्थिक क्रियाओं की एक दी हुई दशा, जिसकी परिभाषा राष्ट्रीय आय-सिद्धान्त से सम्बद्ध करके की जाती है, हमें एक ऐसा ढाँचा प्रदान करती है जिसमें हम कीमत-सिद्धान्त का विकसित करेंगे।

कीमत सिद्धान्त कुछ-कुछ अमूर्त (abstract) होता है। इस बात पर प्रारम्भ में ही विचार करना उचित होगा। इस सम्बन्ध में हमारे समक्ष कठिनाइयाँ आयेंगी, लेकिन इनका स्वरूप समझ लेने पर ये कम जटिल प्रतीत होंगी। प्रमुखतया हम यह देखेंगे कि कीमत-सिद्धान्त वास्तविक जगत का वर्णन नहीं करता है। यह हमें इस बात को नहीं बतलायेगा कि किसी दी हुई तिथि को ओकलाहामा शहर और क्लीवलैंड के बीच गैसोलीन के भाव में प्रति गैलन दो सैंट का अन्तर क्यों पाया जाता है। लेकिन यह हमें वास्तविक जगत को समझने में मदद देता है। सामान्य रूप में हमें यह बतलाता है कि गैसोलीन की कीमत या कीमतें कैसे निर्धारित होती हैं और ये कीमतें अर्थव्यवस्था के समग्र संचालन में क्या स्थान रखती हैं।

कीमत-सिद्धान्त के अमूर्त या भावप्रधान माने जाने का कारण यह है कि यह वास्तविक जगत के समस्त आर्थिक तथ्यों को अपने में न तो शामिल करता है और न कर ही सकता है। उपभोक्ताओं, साधनों के स्वामियों और व्यावसायिक फर्मों के आर्थिक निर्णयों को प्रभावित करने वाले समस्त तथ्यों व तत्त्वों पर विचार करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यमान आर्थिक इकाई का सूक्ष्म विवेचन व विश्लेषण किया जाए, लेकिन यह एक असम्भव कार्य होगा। परिणामस्वरूप सिद्धान्त का कार्य ऐसे तथ्य छाँटना होता है जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं और इनसे कार्यरत कीमत प्रणाली का समग्र अवधारणामूलक ढाँचा (conceptual framework) तैयार करना होता है। हम ऐसे तथ्यों एवं सिद्धान्तों पर अपना ध्यान

केन्द्रित करते हैं जो अधिकांश आर्थिक इकाइयों को प्रेरित करने की दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। कम महत्त्व वाले तथ्यों को छोड़ने और एक तर्क-संगत सैद्धान्तिक ढांचे का निर्माण करने की प्रक्रिया में हमें वास्तविकता से कुछ सम्पर्क खोना पड़ता है। लेकिन अर्थव्यवस्था के समग्र सचालन के बारे में हमारी जानकारी बढ़ती है क्योंकि हम विचाराधीन तत्त्वों को इतना कम कर लेते हैं कि उन पर ठीक से ध्यान दिया जा सके। अलग-अलग वृक्ष तो चाहे हमारी दृष्टि से ओझल हो जाएँ लेकिन हम सम्पूर्ण वन को ज्यादा अच्छी तरह से देख सकेंगे और उसके बारे में हमारी जानकारी भी अधिक होगी।

जिस सैद्धान्तिक ढांचे का निर्माण किया जाना है उसे यह बतलाना होगा कि आर्थिक इकाइयों के किन दिशाओं में जाने की प्रवृत्ति होगी और इसे उन अधिक महत्त्वपूर्ण कारणों पर भी प्रकाश डालना होगा जिनके कारण ये इकाइयाँ उन दिशाओं में प्रवृत्त होती हैं। यह आवश्यक है कि इस ढांचे में अर्थव्यवस्था के सचालन के सम्बन्ध में लगभग तर्कसगत बातों का समूह ही हो। सिद्धान्त का अमूर्त्तीकरण (abstraction) व सुनिश्चितता स्पष्ट विचार एवं वास्तविक जगत में नीति-निर्धारण के लिए आवश्यक हैं, लेकिन हम वास्तविक जगत में इसके अमर्यादित प्रयोग (unqualified application) के प्रति भी सावधान रहना होगा। हम सिद्धान्त को हमारा अस्त्र बनाना है, न कि स्वामी।

कल्याण

इस ग्रन्थ का केन्द्रीय विषय आर्थिक कल्याण है जिसे अर्थव्यवस्था में रहने व काम करने वाले व्यक्तियों के आर्थिक हित के रूप में परिभाषित किया जाता है। एक व्यक्ति के कल्याण या हित को लेकर कोई बड़ी अवधारणामूलक (conceptual) कठिनाइयाँ उपस्थित नहीं होती है। सरलतम स्थिति वह है जिसमें व्यक्ति (अथवा पारिवारिक इकाई) को इस बात का सर्वश्रेष्ठ निर्णायक माना जाता है कि किस वस्तु से उसके (इसके) कल्याण में योगदान मिलेगा अथवा नहीं। व्यक्ति का कल्याण उसको प्रभावित करने वाली घटनाओं के प्रभाव के बारे में उसके मूल्यांकन के अनुसार बढ़ता या घटता है। बाहरी पर्यवेक्षक के रूप में हम केवल यह पूछ सकते हैं कि एक घटना उसे किस तरह प्रभावित करती है और उसका उत्तर उसके कथनानुसार स्वीकार कर लेते हैं।

समूह के कल्याण की चर्चा ज्यादा जटिल होती है। प्रारम्भ में हम कह सकते हैं कि जो घटनाएँ समूह में प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण को बढ़ाती हैं वे सम्पूर्ण समूह के कल्याण में वृद्धि करती है। लेकिन बहुधा एक घटना एक व्यक्ति के कल्याण को तो बढ़ाती है, लेकिन वह दूसरे के कल्याण को घटाती है। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण

समूह के कल्याण के बारे में कोई भी निष्कर्ष निकालने से पूर्व प्रथम व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि की तुलना द्वितीय व्यक्ति के कल्याण में होने वाली कमी से की जानी चाहिए। ऐसी तुलनाओं से गम्भीर समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। प्रश्न उठता है कि विभिन्न व्यक्तियों के कल्याण में होने वाले परिवर्तनों की तुलना कैसे की जाए ? कुछ विशिष्ट मामलों में व्यक्तिपरक या भावनिष्ठ निर्णय (subjective judgments) लिए जा सकते हैं। एक कला के पारखी से कला की वस्तु रैम्ब्राट (Rembrandt) लेकर ऐसे व्यक्ति को देने से जो न तो कला को समझता है और न उसको कोई महत्त्व देता है, निश्चय ही समूह के कल्याण को घटा देगा। सामान्यतया हमारे पास एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह के लाभ को मापने एवं उसकी दूसरे व्यक्ति या समूह के द्वारा उठाई जाने वाली हानि से तुलना करने का कोई वस्तुनिष्ठ साधन (objective means) नहीं होता, जब कि एक ही घटना से दोनों परिणाम उत्पन्न हो रहे है।

हमारे पास समूह कल्याण की एक अवधारणा बच रहती है जिसे पैरेटो इष्टतम (Pareto Optimum)[2] कहा गया है। पैरेटो इष्टतम उस समय माना जाता है जब कि कोई घटना किसी दूसरे व्यक्ति के कल्याण में कमी किए बिना एक व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि नहीं कर सकती। इसी को दूसरे रूप में हम यों भी कह सकते हैं कि पैरेटो इष्टतम उस समय नहीं पाया जाता जब कि किसी दूसरे व्यक्ति की स्थिति में बिगाड़ लाए बिना एक या अधिक व्यक्तियों की स्थिति में सुधार करना सम्भव हो। यदि पैरेटो इष्टतम की दशा नहीं है तो इसकी तरफ होने वाली गति–अर्थात् किसी की दशा में बिगाड़ लाए बिना कम से कम एक व्यक्ति की दशा में सुधार करने की स्थिति—समूह-कल्याण में वृद्धि करती है।

अर्थव्यवस्था में कोई विशिष्ट पैरेटो इष्टतम स्थिति नहीं होती। कल्पना कीजिए कि ऐसे समस्त उत्पादन व विनिमय के कार्य सम्पन्न किए जा चुके हैं जो किसी को तो लाभ पहुँचाते है लेकिन किसी अन्य को हानि नहीं पहुँचाते। अब यदि क्रय-शक्ति का कोई पुनर्वितरण होता है—उदाहरण के लिए, धनिकों पर कर लगाकर निर्धनों को आर्थिक सहायता दी जाती है—तो प्रारम्भिक पैरेटो इष्टतम की दशाओं का उल्लंघन हो जाएगा। लेकिन आय के नये वितरण के साथ एक नया पैरेटो इष्टतम उत्पन्न हो जायगा। वस्तुतः क्रय-शक्ति के वितरण के प्रत्येक भिन्न रूप के साथ पैरेटो इष्टतम दशाओं का एक भिन्न समूह पाया जाएगा। यदि अर्थव्यवस्था इस प्रकार से एक पैरेटो इष्टतम से दूसरे इष्टतम तक जाती है, तब क्या समूह-कल्याण में वृद्धि होगी अथवा कमी ? इसके उत्तर के बारे में कोई वस्तुनिष्ट माप नहीं हैं। आय के वितरण के दिए हुए होने पर हम उन दशाओं का वस्तुपरक ढंग से (objectively)

2. बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इटली के अर्थशास्त्री विल्फ्रेडो पैरेटो द्वारा प्रदत्त।

विवेचन कर सकते हैं जो पेरेटो इष्टतम दशा तक ले जाती हैं लेकिन यदि हम कल्याण पर आय के पुनर्वितरण के प्रभाव का विवेचन करना चाहें तो हमे अपने पक्ष के समर्थन मे व्यक्तिपरक मूल्य निर्णयो (subjective value judgments) का ही सहारा लेना पडेगा ।

साराश

आर्थिक क्रिया तीन प्रमुख तत्त्वो के इर्द गिर्द चक्कर लगाती है (1) मानवीय आवश्यकताएँ जो विविध एव अतृप्य होती हैं, (2) साधन जो सीमित बहु उपयोगी और एक दी हुई वस्तु को उत्पन्न करने के लिए परिवर्ती अनुपातो म मिलाने लायक होते हैं, (3) आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करने वाली वस्तुओ व सेवाओ को उत्पन्न करने के लिए साधनो के उपयोग की तकनीकें । साधन व तकनीकें केवल आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करने वाली वस्तुओ के उत्पादन म ही प्रयुक्त न हो, बल्कि यह भी आवश्यक है कि वे उन वस्तुओ की ऐसी मात्राएँ उत्पन्न करें जिससे आवश्यकताओ के समग्र सतोष मे सर्वाधिक प्रयोजन मिल सके । आर्थिक क्रिया का लक्ष्य आवश्यकताओ की सन्तुष्टि (जीवन-स्तर) का वह सर्वोच्च स्तर है जिसे अर्थव्यवस्था उपलब्ध कर सकती है । इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि यथासम्भव सर्वोत्तम तकनीको का उपयोग किया जाय, साधनो का पूर्ण उपयोग किया जाए और उपभोक्ताओ की वैकल्पिक आवश्यकताओ के बीच साधनो का उचित आवटन या वितरण किया जाय ।

अर्थशास्त्र का रीति विधान (methodology) भी अन्य विज्ञानो की भाँति ही होता है । परिकल्पनाओ के निर्माण व जाँच के जरिए सिद्धान्तो को विकसित किया जाता है । ये स्वय आधारभूत मान्यताओ व तथ्यों के अवलोकन पर तर्क को लागू करने से उत्पन्न होते हैं ।

प्रारम्भ मे हमे कीमत सिद्धान्त का सम्बन्ध एक तरफ समस्त अर्थशास्त्र विज्ञान से, और दूसरी तरफ वास्तविक जगत से समझना होगा । कीमत सिद्धान्त अर्थशास्त्री के उपकरण या साज सामान (tool kit) का एक आवश्यक अग होता है और इसका उपयोग राष्ट्रीय आय सिद्धान्त के साथ अर्थशास्त्र के विशिष्ट क्षेत्रो मे किया जाता है । वास्तविक जगत मे आर्थिक इकाइयो की क्रियाओ को विस्तारपूर्वक समझाने की बजाय यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होने वाले आर्थिक तथ्यो के आधार पर उनकी क्रियाओ से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्तो का प्रतिपादन करता है । वास्तविक जगत मे पाई जाने वाली आर्थिक इकाइयो की क्रियाएँ सिद्धान्त मे वर्णित आर्थिक इकाइयो की क्रियाओ के सदृश होती हैं, अथवा इनकी ओर प्रवृत्त होती हैं । लेकिन जहाँ एक तरफ वास्तविक जगत से व्यापक सम्पर्क न होने से हानि होती है वहाँ

दूसरी तरफ कार्यरत प्रमुख शक्तियो का ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से लाभ भी मिलता है ।

इस ग्रन्थ मे कल्याण को पेरेटो इष्टतम के अर्थ मे लिया गया है, अर्थात् इसमे एक दिए हुए आय के वितरण के लिए आर्थिक कार्यकुशलता की शर्तों के बारे मे काफी चर्चा होगी लेकिन यह इस सम्बन्ध म ज्यादा नही कह सकेगा कि आय का अमुक वितरण दूसरे से ज्यादा कार्यकुशल (efficient) है ।

अध्ययन सामग्री

Friedman, Milton, 'The Methodology of Positive Economics," *Essays in Positive Economics* (Chicago 111 University of Chicago Press, 1953) pp 3–43

Koopmans, Tjalling C, *Three Essays on the State of Economic Science* (New York McGraw Hill, Inc, 19<7) pp 129–149

Lange, Oscar ' The Scope and Method of Economics," *Review of Economic Studies* Vol XIII (1945–1946), pp 19-32

Marshall, Alfred, Principles of Economics, 8th ed (London, Macmillan & Co, Ltd, 1920), BK 111, Chap 2

अध्याय 2

आर्थिक प्रणाली का संगठन[1]

इस अध्याय का उद्देश्य सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का विस्तृत अध्ययन करने से पूर्व इसका सक्षिप्त परिचय देना है। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध मे प्रारम्भिक कार्यशील अवधारणा (Working concept) का निर्माण करने के बाद हम इसका यथास्थान विस्तृत विवरण देंगे और उस पर उचित परिप्रेक्ष्य मे विचार करेंगे। हम शुरू मे अर्थव्यस्था के एक सरल मॉडल या प्रतिमान की रचना करेंगे। उसके बाद हम अर्थव्यवस्था के कार्यों का विवेचन करेंगे और यह कीमतो के विशेष सन्दर्भ मे किया जायगा जो इन कार्यों का सम्पादन करने मे मुख्य तत्र (key mechanism) का काम करती है।

एक सरल मॉडल (A Simplified Model)

चित्र 2–1 मे दिया गया व्यापक रूप से प्रयुक्त होने वाला "वृत्तीय प्रवाह" ("circular flow") का रेखाचित्र अर्थव्यवस्था का एक अत्यधिक सरल मॉडल प्रस्तुत करता हैं। इसमे आर्थिक इकाइयो का वर्गीकरण दो समूहो मे किया गया है—(1) परिवार व (2) व्यावसायिक फर्में। इनकी अन्त क्रियाए दो तरह के बाजारो मे होती हैं—(1) उपभोग्य वस्तुओ व सेवाओ के बाजार और (2) साधन-बाजार। परिवार, व्यावसायिक फर्में, उपभोग्य वस्तुओ के बाजार और साधनो के बाजार एक स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण अग होते है। ये वे केन्द्र हैं जिनके चारो तरफ कीमत सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है।

परिवारो के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के समस्त व्यक्ति और परिवार आते हैं और ये अर्थव्यवस्था मे वस्तुओ व सेवाओ की उत्पत्ति के उपभोक्ता होते हैं। निर्धन लोगो जैसे मामूली अपवादो को छोडकर ये अर्थव्यवस्था के साधनो के स्वामी भी होते हैं।

व्यावसायिक फर्मों का एक अधिक सीमित समूह होता है जो साधनो को खरीदने

---

1. यह अध्याय हेरी डी गिडियन्स (Harry D. Gideonse) व अन्य द्वारा सम्पादित Contemporary Society Syllabus and Selected Readings (चतुर्थ सस्करण, शिकागो III यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1935) पृ० 125-137, मे प्रकाशित फ्रेन्क एच. नाइट के लेख "Social Economic Organization" पर आधारित है।

व इनको किराये पर रखने और वस्तुओ व सेवाओ के उत्पादन व बिक्री मे सलग्न रहता है। इनमे एकाकी स्वामित्व, साझेदारिया व निगम आते हैं जो उत्पादन की प्रक्रिया मे सभी स्तरो पर पाये जाते है। कुछ दशाओ मे एक ही आर्थिक इकाई फर्म और परिवार (household) दोनो के रूप मे कार्य करती है। इसका दृष्टान्त हमे पारिवारिक खेत (family farm) मे देखने को मिलता है। हम यह मान लेते हैं कि फर्म के रूप मे इसकी क्रियाए परिवार के रूप मे इसकी क्रियाओ से स्पष्टतया पृथक की जा सकती हैं और प्रत्येक क्रिया का वर्गीकरण एक उचित शीर्षक के अन्तर्गत किया जायगा।
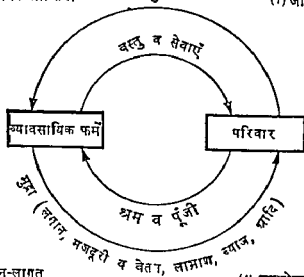
चित्र 2–1 वृत्ताकार प्रवाह का मॉडल

रेखाचित्र 2–1 का परी आधा भाग उपभोग्य वस्तुओ व सेवाओ के बाज़ारे का सूचक है। उपभोक्ताओ के रूप मे परिवारो एव विक्रेताओ के रूप मे व्यावसायिक फर्मों की बाजारो मे अन्त क्रिया देखी जाती है। व्यावसायिक फर्मों की ओर से वस्तुओं व सेवाओ का प्रवाह उपभोक्ताओ की तरफ होता है और उपभोक्ताओ की ओर से व्यावसायिक फर्मों की तरफ मुद्रा का विपरीत प्रवाह होता है। वस्तुओ व सेवाओ की कीमतें दोनो प्रवाहो को जोडने वाली कडी का काम करती है। वस्तुओ व सेवाओ के प्रवाह का मूल्य विपरीत मुद्रा-प्रवाह के बराबर ही होगा।

रेखाचित्र 2–1 का निचला आधा भाग साधन-बाजारो का सूचक है। श्रम व पूंजी की सेवाए अनेक रूपो मे साधनो के स्वामियो (परिवारो) की तरफ से ...

फर्मों की ओर प्रवाहित होती हैं। इन साधनो के भुगतान के लिये मुद्रा का विपरीत प्रवाह कई रूपो मे होता है, जैसे मजदूरी, वेतन, लगान, लाभाश, ब्याज आदि और यह उन प्रसविदो की व्यवस्था पर निर्भर करता है जिनके अन्तर्गत ये साधन उपलब्ध किये जाते हैं। ये साधनो की कीमतें होनी हैं जो साधनों की सेवाओ का मूल्य मापती हैं और दोनो प्रवाहो के बीच मे मिलाने वाली कडी का काम करती हैं। मुद्रा के रूप मे ये दोनो प्रवाह समान ही होते हैं।

मुद्रा निरन्तर परिवारो की तरफ से व्यावसायिक फर्मों की ओर प्रवाहित होती है और पुन परिवारो के पास आ जाती है। वस्तुओ व सेवाओ की बिक्री से व्यावसायिक फर्मों को मुद्रा प्राप्त होनी है जिससे वे उत्पादन जारी रखने के लिए साधनो की सेवाए खरीद सकती हैं। साधनो की सेवाओ की बिक्री अथवा किराये पर देने से इनके स्वामियो को मुद्रा प्राप्त होती है जिसका उपयोग वस्तुओ व सेवाओ की खरीद मे किया जाता है।[2] मुद्रा-प्रवाह पूर्ण वृत्त (complete circuit) बनाने मे चार परिचित पहलुओ को शामिल करता है। चित्र 2-1 मे बिन्दु 1 पर उपभोक्ताओ के हाथो को छोडते समय यह उनके जीवन-व्यय को सूचित करता है। बिन्दु 2 पर यह व्यावसायिक फर्मों के लिए व्यावसायिक प्राप्तिया हो जाता है। (दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से विचार करने पर समग्र (aggregate) जीवन-व्यय और समग्र व्यावसायिक प्राप्तिया एक ही होते हैं।) बिन्दु 3 पर मुद्रा का प्रवाह उत्पादन-लागत बन जाता है और बिन्दु 4 पर यह उपभोक्ता-वर्ग की आय बन जाता है। (समग्र उत्पादन-लागत और समग्र उपभोक्ता-वर्ग की आय भी दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से देखने पर एक ही होते हैं।)

यदि अर्थव्यवस्था गतिहीन (stationary) है—न तो बढती है और न सकुचित होती है—तो चित्र 2-1 के ऊपरी अर्द्धभाग का मुद्रा-प्रवाह निचले अर्द्धभाग के मुद्रा-प्रवाह के बराबर होगा। वस्तुओ व सेवाओ का समग्र मूल्य साधनो की सेवाओ के समग्र मूल्य के बराबर होगा। उपभोक्ता अपनी सारी आय खर्च कर देते है और कोई बचत नही होती है। इसी प्रकार व्यावसायिक फर्में प्राप्त की गई सम्पूर्ण मुद्रा को साधनो के स्वामियो को चुका देती हैं और कोई व्यावसायिक बचत (business

---

2. कुछ दशाओ मे वस्तुओ के बदले मे साधनो की सेवाओ के प्रत्यक्ष विनिमय अथवा साधनो के स्वामियो को "वस्तु-रूप मे आमदनी" होने से मुद्रा-प्रवाह पूर्णतया अवरुद्ध हो जाता है। जिस सीमा तक ऐसा होता है, रेखाचित्र के प्रत्येक अर्द्धभाग मे होने वाले मुद्रा प्रवाह वस्तुओ व सेवाओ के मूल्य और साधनो की सेवाओ के मूल्य से कम होगे। लेकिन चूंकि एक स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था में अधिकाश विनिमय के काय मे मुद्रा व कीमतें शामिल होती हैं, इसलिए हम वस्तु-विनिमय पर विचार नही करेंगे।

saving) नहीं होती है।[3] कोई शुद्ध विनियोग या निवल निवेश (net investment) नहीं होता है। वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में पूंजीगत साज-सामान घिसता है अथवा इसका मूल्य-ह्रास होता है। कुछ साधनों की सेवाएं प्रतिस्थापन (replacement) अथवा मूल्य-ह्रास (depreciation) को पूरा करने में प्रयुक्त की जाती हैं, लेकिन प्रतिस्थापन की लागतें या मूल्य-ह्रास वास्तव में उन वस्तुओं के उत्पादन की लागत का एक अंश ही होते हैं जिनके कारण प्रारम्भ में मूल्य-ह्रास हुआ था।

इस मॉडल का विस्तार किया जा सकता है और हम इसे चाहे जितना जटिल बना सकते हैं।[4] हम इसका विस्तार एक बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था के विवेचन के लिए कर सकते हैं अथवा एक सिकुड़ती हुई अर्थव्यवस्था के विवेचन के लिए कर सकते हैं। हम सरकार की आर्थिक क्रियाओं को शामिल करने के लिए भी इसका विस्तार कर सकते हैं। हम इस मॉडल अथवा इसके संशोधित रूपों का उपयोग राष्ट्रीय आय विश्लेषण को समझाने में भी कर सकते हैं। लेकिन हमारे काम के लिए यहां पर प्रस्तुत किया गया सरल मॉडल ही पर्याप्त होगा।

हम दो तरह के बाजारों एवं उनमें से प्रत्येक में होने वाली अन्त क्रियाओं पर विचार करेंगे। वस्तु-बाजारों में हमारी रुचि वस्तुओं व सेवाओं के प्रवाह की बनावट (composition of the flow), इनमें से प्रत्येक की कीमतों और प्रत्येक की उत्पत्ति में होगी। इसी तरह साधन-बाजारों में कीमतों, बेरोजगारी के स्तरों व साधन आवंटन पर विचार किया जायगा।

एक आर्थिक प्रणाली के कार्य

प्रत्येक आर्थिक प्रणाली को, चाहे वह निजी उद्यमवाली हो अथवा न हो, किसी न किसी तरह परस्पर सम्बद्ध कार्य करने होते हैं। इसे यह निश्चय करना होता है कि (1) किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाय, (2) उत्पादन किस तरह से संगठित किया जाय, (3) वस्तुओं का वितरण कैसे किया जाय, (4) अति अल्पकाल में

---

3. व्यावसायिक फर्मों द्वारा अर्जित किये गये मुनाफे साधनों के स्वामियों के पास चले जाते हैं, ऐसा या तो शेयर होल्डरों को मिलने वाले लाभांश के रूप में होता है अथवा अन्य साधनों के स्वामियों को दिए जाने वाले ऊंचे मूल्यों के रूप में होता है।

4. सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के बारे में एक सुन्दर लेकिन कुछ भिन्न प्रकार के मत के लिए देखिए मिल्टन गिल्बर्ट और जार्ज जाज़ी का लेख "National Product and Income Statistics as an Aid in Economic Problems," जो Dun's Review खण्ड LII (फरवरी 1944) 9-11 व 30-38 में छपा था जिसका पुनर्मुद्रण Readings in the Theory of Income Distribution (फिलाडेल्फिया पी० ब्लैकिस्टन्स सन एण्ड कम्पनी, 1946) पृष्ठ 44-57 में हुआ था।

वस्तुओं की पूर्ति के स्थिर रहने पर उनका राशन कैसे किया जाय और (5) अर्थ-व्यवस्था की उत्पादन-क्षमता को किस प्रकार से बनाये रखा जाय और बढाया जाय।

उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं का निर्धारण
(Determination of What is to Be Produced)

अर्थव्यवस्था में किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाय--इसका निर्णय प्रमुखतया इस बात पर निर्भर करेगा कि उपभोक्ताओं की कौन-सी आवश्यकताएं समग्र रूप से सबसे अधिक महत्व रखती हैं और किस सीमा तक उनकी पूर्ति की जानी है। प्रश्न उठता है कि वर्तमान समय में उपलब्ध इस्पात की मात्रा का उपयोग गाडियों के उत्पादन में किया जाय या टैंको या रेफ्रिजरेटरों अथवा खेल-कूद के मैदानों के निर्माण में किया जाय? अथवा इसका उपयोग इनमें से प्रत्येक की थोडी-थोडी मात्रा के निर्माण में किया जाय? *चूंकि अर्थव्यवस्था के साधन सीमित होते हैं इसलिए* समस्त आवश्यकताओं की सन्तुष्टि पूर्णतया नहीं की जा सकती। यहां पर आवश्यकताओं के असीमित क्षेत्र में से सम्पूर्ण समाज के लिए जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएं हैं उनके छांटने व चुनाव की समस्या आती है। मूलत अर्थव्यवस्था को विभिन्न वस्तुओं व सेवाओं के मूल्यांकन की एक क्रमिक व्यवस्था स्थापित करनी चाहिए जो समूह को स्वीकार्य हो और जो अर्थव्यवस्था के द्वारा उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं के लिए समूह की सापेक्ष इच्छाओं को प्रकट कर सके।

एक स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था में किसी भी वस्तु का मूल्य (value) उसकी कीमत से मापा जाता है और मूल्यांकन की प्रक्रिया उपभोक्ताओं के द्वारा अपनी आय के खर्च करने के समय सचालित की जाती है। उपभोक्ताओं के समक्ष खरीदी जा सकने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में विस्तृत चुनाव की स्थिति विद्यमान होती है। विभिन्न वस्तुओं के लिए लगाये जाने वाले डालर-मूल्य इस पर निर्भर करते हैं कि उपभोक्ता समूह के रूप में प्रत्येक वस्तु को अन्य वस्तुओं की तुलना में में कितनी तीव्रता से चाहते हैं, वस्तु की इच्छा के पीछे उनकी डालर देने की तत्परता व योग्यता कितनी है और उपलब्ध वस्तुओं की पूर्ति कितनी है। जिन वस्तुओं के लिए उपभोक्ताओं की इच्छा ज्यादा तीव्र होती है और जिनके लिए वे डालर देने को अधिक तत्पर होते है, उनकी कीमतें ऊँची होती हैं। *जिन वस्तुओं के लिए इच्छा कम* प्रबल होती है उनकी कीमतें भी नीची होती है। किसी भी उपलब्ध वस्तु की पूर्ति के अधिक होने पर इसकी कीमत नीची होती है। उपभोक्ता के लिए एक वस्तु की कोई भी इकाई उस समय कम महत्त्व की होती है जब कि इसकी पूर्ति कम न होकर अधिक हो। प्रति सप्ताह हमारे पास खाने के लिए जितनी अधिक मात्रा में रोटी होती है, प्रति रोटी का मूल्य हमारे लिए उतना ही कम होता है। इसके विपरीत,

किसी भी वस्तु की पूर्ति जितनी कम होती है उपभोक्ता उसकी किसी भी एक इकाई का मूल्य उतना ही ऊचा लगाते हैं। इस प्रकार उपभोक्ता जिस तरह से अपनी आमदनी खर्च करते हैं उससे अर्थव्यवस्था म कीमतो की एक ऐसी शृखला (array of prices) अथवा कीमतो का एक ऐसा ढाचा (price structure) स्थापित हो जाता है जो उपभोक्ता-वर्ग के लिये विभिन्न वस्तुओ व सेवाओं के सापेक्ष मूल्यो को प्रदर्शित करता है।

उपभोक्ताओ की रुचि व पसन्द मे परिवर्तन होने से आमदनी को खर्च करने के तरीको मे भी अन्तर हो जाता है। इसके फलस्वरूप कीमत-ढाँचे मे भी परिवर्तन हो जाता है। जिन वस्तुओं को उपभोक्ता ज्यादा चाहने लगते हैं उनके भाव बढ जाते हैं और जो कम चाहने लायक हो जाती हैं उनके भाव घट जाते हैं। इससे वस्तुओ व सेवाओ के कीमत या मूल्य-ढाँचे म परिवर्तन हो जाता है जो उपभोक्ताओं की रुचि और पसन्द के परिवर्तनो को सूचित करता है।

उपर्युक्त विश्लेषण यथार्थमूलक (positive) है और यह बतलाता है कि वास्तव मे पदार्थों का मूल्याकन कीमत प्रणाली के जरिये कैसे होता है। यह इस बात को नही बतलाता कि वस्तुओ का मूल्याकन कैसे होना चाहिए। दूसरा प्रश्न नैतिक (ethical) है और बहुत कुछ कीमत सिद्धान्त के क्षेत्र से परे है। थोडी आय वाले उपभोक्ता की अपेक्षा ज्यादा आय वाला उपभोक्ता मूल्य-ढाँचे पर अधिक प्रभाव डालेगा। इस बात की कल्पना की जा सकती है कि निर्धन व्यक्तियों के बच्चो के लिए दूध की अपेक्षा धनी व्यक्तियो के कुत्तो के लिये बिस्कुटो को मूल्यों के-पैमाने (scale of values) मे अपेक्षाकृत ऊँचा स्थान दिया जाय, बशर्ते कि काफी सख्या मे धनिक व्यक्ति इस दिशा मे डालर खर्च करने को तैयार हो और दूध पर डालर खर्च करने के लिये काफी सख्या म निर्धन व्यक्ति न हो। ऐसी दशा मे कीमत-प्रणाली पूर्णरूप से काय करते हुए भी ऐसे सामाजिक परिणाम ला सकती है जिन्हें हम अवाछनीय समझें और राजनीतिक प्रक्रिया के जरिये सुधारने का प्रयास करें। आय का पुन-वितरण और आरोही आयकर (progressive income taxes) ऐसी राजनीतिक प्रक्रियाओ के दृष्टान्त हैं।

उत्पादन का सगठन (Organization of Production)

उत्पादन के लिए वस्तुओ के निर्धारण के साथ-साथ एक आर्थिक प्रणाली को यह भी तय करना होगा कि वांछित वस्तुओं को उचित मात्रा मे उत्पन्न करने के लिए साधनो को किस प्रकार से सगठित किया जाय। उत्पादन के सगठन मे ये आते हैं (1) साधनो को उन उद्योगो से कम किया जाय जो ऐसी वस्तुओं को उत्पन्न करते हैं जिन्हें उपभोक्ता कम चाहते हैं और उनको ऐसे उद्योगों की तरफ ले जाया जाय

जो ऐसी वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं जिन्हे उपभोक्ता अधिक चाहते हैं और (2) वैयक्तिक फर्मों के द्वारा साधनो का कुशल उपयोग किया जाय। हम इन पर क्रमश विचार करेंगे।

स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था मे कीमत प्रणाली के माध्यम से उत्पादन का सगठन होता है। जो फर्मे ऐसी वस्तुएँ व सेवाएँ उत्पन्न करती है जिन्ह उपभोक्ता सबसे अधिक तीव्रता से चाहते है, उन्हे लागत की तुलना मे अपेक्षाकृत ऊँची कीमतें प्राप्त होती है और वे अधिक लाभ प्राप्त करती है। जो फर्मे ऐसी वस्तुएँ व सेवाएँ उत्पन्न करती हैं जिन्ह उपभोक्ता कम तीव्रता से चाहते हैं वे घाटा उठाती हैं। अधिक लाभ प्राप्त करने वाली फर्मे अपने विस्तार के लिए साधनो की अपेक्षाकृत ऊँची कीमतें दे सकती हैं और देती भी हैं। घाटा उठाने वाली फर्मे साधनो के लिए इतनी राशि नही दे पाती। साधनो के स्वामी अपनी आमदनी बढाने के लिए अपने साधन उन फर्मों को बेचना चाहगे जो उन्ह अपेक्षाकृत ऊँची कीमतें दे सकती है। इसलिए साधन निरन्तर उन फर्मों से दूर होते जाते है जो ऐसी वस्तुएँ व सेवाएँ उत्पन्न करती हैं जिन्हे उपभोक्ता सबसे कम पसद करते हैं और ये उन फर्मों की तरफ चलते जाते हैं जो ऐसी वस्तुएँ व सेवाएँ उत्पन्न करती है जिन्ह उपभोक्ता सबसे ज्यादा चाहते हैं। साधन निरन्तर कम भुगतान वाले उपयोगो से अधिक भुगतान वाले उपयोगो मे अथवा कम महत्त्व वाले उपयोगो से अधिक महत्त्व वाले उपयोगो मे गतिमान होते रहते है।

अर्थशास्त्र म कार्यकुशलता शब्द का अर्थ भौतिकशास्त्र अथवा यत्रशास्त्र मे इसके प्रयोग से कुछ भिन्न होता है। लेकिन दोनो ही दशाओ मे यह उत्पत्ति (Output) का इन्पुट (Input) से अनुपात सूचित करता है। यात्रिक कुशलता के सम्बन्ध मे हम जानते है कि एक भाप का इजन अकुशल (inefficient) होता है, क्योकि यह अपनी ईंधन की ऊष्माशक्ति के बडे अश को शक्ति मे बदलने मे विफल रहता है। यात्रिक दृष्टि से एक आन्तरिक-दहन इजन (internal-combustion engine) अधिक कार्यकुशल होता है। लेकिन यदि भाप के इजनो के लिए ईंधन सस्ती हो और आन्तरिक-दहन इजनो के लिए महगी हो तो भाप के इजन से अपेक्षाकृत सस्ती शक्ति प्राप्त की जा सकती है।

अब हम आर्थिक कार्यकुशलता की धारणा को लेते है जो स्वय भी उत्पत्ति का इन्पुट* से अनुपात होती है। एक विशिष्ट उत्पादन प्रक्रिया की आर्थिक कार्यकुशलता उपयोगी उत्पत्ति का साधनो की उपयोगी इन्पुट से अनुपात मात्र होती है। उत्पादित माल की उपयोगिता अथवा समाज के लिए इसका मूल्य डालरो मे मापा जाता है।

* Input के लिए आगत, निविष्टि या आदा शब्द भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

इसी प्रकार साधन इन्पुट की उपयोगिता या मूल्य डालर में ही मापा जाता है। उदाहरण के लिए एक भाप का इंजन एक आन्तरिक दहन इंजन से यान्त्रिक दृष्टि से कम कुशल और आर्थिक दृष्टि से अधिक कुशल हो सकता है, बशर्ते कि यह एक विशिष्ट उत्पादन प्रक्रिया के लिए अपेक्षाकृत सस्ती शक्ति प्रदान करे।

लाभ की मात्रा ही कुशल उत्पादन के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। माल की कीमत के दिए हुए ज्ञान पर एक फर्म जितनी ज्यादा कार्यकुशल होती है, उसका मुनाफा उतना ही अधिक होता है। कार्यकुशलता की परिभाषा को दूसरे शब्दों में यों भी रखा जा सकता है कि यह साधन इन्पुट के प्रति इकाई मूल्य से प्राप्त माल की उत्पत्ति का मूल्य होती है। प्रति डालर साधन-इन्पुट के उपयोग से उत्पादित माल का डालर मूल्य जितना अधिक होगा, आर्थिक कार्यकुशलता उतनी ही अधिक मानी जायगी। इस कथन को दूसरे ढंग से भी प्रस्तुत कर सकते हैं। एक डालर के मूल्य का माल उत्पन्न करने के लिए साधन इन्पुट का डालर मूल्य जितना कम होगा, आर्थिक कार्य-कुशलता उतनी ही अधिक होगी। आर्थिक कार्यकुशलता के माप के लिए वस्तुओं व सेवाओं का मूल्य आंकना आवश्यक होता है। माप में यह भी आवश्यक होता है कि विभिन्न किस्म के साधनों एवं एक ही किस्म के साधन के लिए विभिन्न उपयोगों में मूल्य आंका जाय। बाजार में साधनों का मूल्यांकन वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन में उनके योगदान के अनुसार किया जाता है।

एक फर्म की आर्थिक कार्यकुशलता के अन्तर्गत उत्पादन की प्रक्रिया में प्रयुक्त किये जाने वाले साधनों के संयोग एवं तकनीकों के चुनाव को शामिल किया जाता है। तकनीकों का चुनाव साधनों के सापेक्ष भावों और उत्पादित की जाने वाली वस्तु की मात्रा पर निर्भर करता है। फर्म का उद्देश्य अपना माल सस्ते से सस्ता (कार्यकुशलता से) उत्पन्न करना होता है। जैसे यदि श्रम अपेक्षाकृत महंगा और पूंजी अपेक्षाकृत सस्ती हो तो फर्म अधिक पूंजी और कम श्रम का उपयोग करने वाली तकनीक अपनाना चाहेगी। यदि पूंजी अपेक्षाकृत महंगी और श्रम अपेक्षाकृत सस्ता है तो सबसे अधिक कार्यकुशल तकनीकें वे होंगी जिनमें कम पूंजी और अधिक श्रम का उपयोग किया जाता है। सबसे अधिक कार्यकुशल संचालन के लिए तकनीकों का उपयोग उत्पादित माल की मात्राओं के अनुसार भी भिन्न भिन्न होगा। बड़े पैमाने के उत्पादन की विधियां एवं जटिल मशीनों का उपयोग थोड़ी मात्रा में माल के उत्पादन के लिए कार्यकुशलता से नहीं किया जा सकता, किन्तु बड़ी मात्रा में उत्पादन करने के लिए ये बहुत कार्यकुशल सिद्ध हो सकती हैं।

वस्तु-वितरण (Output Distribution)

एक स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था में उत्पन्न किए जाने वाले माल एवं उत्पादन

के संगठन के निर्धारण के साथ-साथ कीमत-प्रणाली के माध्यम से वस्तु का वितरण भी निर्धारण किया जाता है। वस्तु-वितरण वैयक्तिक आय-वितरण पर निर्भर करता है। थोडी आय वालो की अपेक्षा अधिक आय वाले व्यक्ति अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति मे अपेक्षाकृत बडा अंश प्राप्त करते हैं।

एक व्यक्ति की आय दो बातो पर निर्भर करती है (1) विभिन्न साधनो की मात्राएँ जो वह उत्पादन की प्रक्रिया मे लगा सकता है और (2) वे कीमतें जो वह उनके लिए प्राप्त करता है। यदि किसी व्यक्ति के पास श्रम-शक्ति ही एक मात्र साधन है तो उसकी मासिक आय उसके द्वारा प्रति माह काम मे लगाए गए श्रम-घटो को उसके द्वारा प्राप्त की जाने वाली प्रति घटा मजदूरी से गुणा करने से निर्धारित होगी। इसके अतिरिक्त यदि उसके पास स्वय की भूमि है जिसे वह लगान पर उठाता है तो भूमि से उसकी आमदनी लगान पर दी गई भूमि की मात्रा को प्रति एकड मासिक लगान से गुणा करने से प्राप्त राशि के बराबर होगी। श्रम की आय को भूमि की आय मे जोडने से उसकी कुल मासिक आय तय होगी। यह दृष्टान्त व्यक्ति के अधिकार मे होने वाले अन्य साधनो पर भी लागू किया जा सकता है।

इस प्रकार आय का वितरण अर्थव्यवस्था मे साधनो के स्वामित्व के वितरण पर निर्भर करता है और साथ मे इस बात पर कि व्यक्ति अपने साधन उन वस्तुओ के उत्पादन मे लगाते है या नही जिनको उपभोक्ता सबसे अधिक चाहते है, अर्थात् जहाँ उनके साधनो के लिए सर्वोच्च कीमतें दी जाती हैं। व्यक्तियो को नीची आय इसलिए प्राप्त होती हैं कि उनके अधिकार मे साधनो की मात्राएँ थोडी होती हैं और/अथवा वे अपने साधन ऐसी दिशाओ मे लगाते है जिनसे उपभोक्ता की सन्तुष्टि मे बहुत कम योगदान मिलता है। व्यक्तियो को ऊँची आमदनी इसलिए प्राप्त होती है कि उनके स्वामित्व मे साधनो की बडी मात्राएँ होती है और/अथवा वे अपने साधन उन रोजगारो मे लगाते हैं जहाँ उपभोक्ता की सन्तुष्टि मे अधिक योगदान मिलता है। इस प्रकार आमदनी के अन्तर कुछ व्यक्तियो के द्वारा उत्पादन की प्रक्रिया मे साधनो को अनुपयुक्त ढग से लगाने और उनके बीच पाए जाने वाले साधनो के स्वामित्व के अन्तरो से उत्पन्न होते है।

उत्पादन की प्रक्रिया मे कुछ साधनो को अनुपयुक्त ढग से लगाने से जो आमदनी के अन्तर उत्पन्न होते है उनमे स्वय को ठीक कर लेने (self-correcting) प्रवृत्ति पायी जाती है। मान लीजिए, कुछ व्यक्ति एक विशेष किस्म की दक्षता के कार्य मे प्रति सप्ताह एक-सी मात्रा मे श्रम करने के योग्य हैं और दो समूह दो भिन्न-भिन्न वस्तुओ के निर्माण मे लगाए गए है। प्रथम समूह के श्रमिक द्वारा उत्पादित माल का मूल्य द्वितीय समूह के श्रमिक द्वारा उत्पादित माल के मूल्य से काफी ऊँचा होता है। चूँकि

समाज प्रथम श्रेणी के श्रमिकों के कार्य का मूल्य दूसरी श्रेणी के श्रमिकों से ज्यादा लगाता है इसलिए प्रथम श्रेणी के श्रमिकों की वैयक्तिक आमदनी अपेक्षाकृत अधिक होगी। जब द्वितीय श्रेणी के श्रमिक आय का यह अन्तर देखते है तो उनमे से कुछ श्रमिक अधिक प्रतिफल देने वाले रोजगार मे चले जाते हैं। प्रथम वस्तु की पूर्ति के बढने से इसके सम्बन्ध मे उपभोक्ता का मूल्यांकन घट जाता हैं और द्वितीय वस्तु की पूर्ति के घटने से इसके लिए उपभोक्ता का मूल्यांकन बढ़ जाता है। इसके फलस्वरूप प्रथम श्रेणी के श्रमिकों की (जो अब ज्यादा हैं) आमदनी घट जाती है और द्वितीय श्रेणी के श्रमिकों की (जो अब कम है) आमदनी बढ जाती हैं। जब दोनों समूहों के श्रमिकों के बीच आमदनी का अन्तर समाप्त हो जाता है तो दूसरे से पहले समूह की ओर श्रमिकों की गतिशीलता बन्द हो जाती है। लेकिन स्वयं को ठीक कर लेने वाले इस तंत्र (self-correcting mechanism) को काम करने मे समय लगता है और कुछ मामलों में यह द्वितीय श्रेणी के श्रमिकों की अज्ञानता के कारण अपना काम नहीं कर पाता अथवा संस्थागत बाधाओं के कारण अपना काम नहीं कर पाता जो उनको गतिमान होने से रोकती हैं। ऐसी दशाओं मे आय के अन्तर स्थायी रूप धारण कर लेते है।

साधनों के स्वामित्व के अन्तरों से उत्पन्न होने वाले आय के अन्तरों का बडा भाग स्वयं को ठीक कर लेने वाला नहीं होता। साधनों के स्वामित्व मे पाए जाने वाले अन्तरों के प्रमुख स्रोतों का विवेचन आगे चलकर अध्याय 17 मे किया गया है। उनका वर्गीकरण श्रम शक्ति के अन्तरों एवं पूँजी की किस्म व मात्रा के अंतरों के अंतर्गत किया जा सकता है। विभिन्न व्यक्तियों की श्रम शक्ति के अन्तर भौतिक व मानसिक विरासत या उत्तराधिकार (inheritance) के अन्तरों एवं विशेष किस्म के प्रशिक्षण को प्राप्त करने के अवसरों के अन्तरों से उत्पन्न होते है। पूँजी की किस्म व मात्राओं के अन्तर अनेक स्रोतों से उत्पन्न होते है। इनमे श्रम-साधनों के स्वामित्व के प्रारम्भिक अन्तर, विरासत के अन्तर, आकस्मिक परिस्थितियाँ, धोखा-धडी और संग्रह की प्रवृत्तियों के अन्तर शामिल होते हैं।

यदि समाज यह चाहता है कि आमदनी के अन्तर अपेक्षाकृत कम हो तो कीमत प्रणाली के संचालन को विशेष रूप से प्रभावित किये बिना स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थ-व्यवस्था म कुछ संशोधन अनिवार्य रूप से लागू किये जा सकते हैं। सरकार के माध्यम से समाज आरोही या वर्धमान आयकर लागू कर सकता है और कल्याणकारी कार्यों पर व्यय कर सकता है। यह निम्न आय वाले वर्गों को अनेक तरीकों से आर्थिक सहायता प्रदान कर सकता है। लेकिन आय का पुनर्वितरण आर्थिक क्रिया के द्वारा सन्तुष्ट की जाने वाली आवश्यकताओं को प्रभावित करेगा और इसके लिए

यह वस्तुओं व सेवाओं के लिए सामाजिक अभिलाषाओं के प्रभावपूर्ण प्रारूप (effective pattern) को ही बदल देगा। ऊँची आमदनी के घटने से जिन व्यक्तियों को चोट पहुँचती है वे बाजार में कम प्रभावशाली हो जाते हैं। नीची आमदनी की वृद्धि से जिनको मदद मिलती हैं वे बाजार में अधिक प्रभावशाली बन जाते हैं। कीमत प्रणाली उत्पादन को इस प्रकार से पुनःसंगठित कर देगी कि इनका वस्तुओं व सेवाओं के लिए प्रभावपूर्ण इच्छाओं के नये प्रारूप से मेल स्थापित हो जाय।

अति अल्पकाल में राशन (Rationing in the very short run)

एक आर्थिक प्रणाली को उस समयावधि के लिए वस्तुओं के राशन की कुछ व्यवस्था करनी होगी जिनमें इनकी पूर्ति परिवर्तित नहीं की जा सकती। यह समयावधि अति अल्पकाल कहलाती है। मान लीजिए, समस्त देश में गेहूँ की फसल प्रति वर्ष एक ही महीने में काटी जाती है। एक वर्ष से दूसरे वर्ष तक उपभोग के लिए गेहूँ की उपलब्ध पूर्ति स्थिर रहेगी। इसमें यह मान्यता निहित है कि एक वर्ष से दूसरे वर्ष तक गेहूँ का स्टॉक नहीं ले जाया गया है। ऐसी स्थिति में गेहूँ के लिए अति अल्पकाल एक वर्ष का होगा। अर्थव्यवस्था को स्थिर पूर्ति का राशन दो तरह से करना होगा : (1) इसे अर्थव्यवस्था के विभिन्न उपभोक्ताओं के बीच पूर्ति का आवटन करना होगा, (2) इसे दी हुई पूर्ति को एक फसल से दूसरी फसल की अवधि तक फैलाना होगा।

स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था में कीमत के माध्यम से ही स्थिर पूर्ति का विभिन्न उपभोक्ताओं के बीच आवटन किया जाता है। वस्तु के अभाव के कारण कीमत बढ़ जाती है जिससे प्रत्येक उपभोक्ता के द्वारा खरीदी जाने वाली मात्रा में कमी आ जाती है। कीमत उस समय तक बढ़ती रहेगी जब तक की समस्त उपभोक्ता एक साथ स्थिर पूर्ति को लेने मात्र के लिए उद्यत नहीं हो जाते। वस्तु के आधिक्य से कीमत घट जाती है जिससे उपभोक्ताओं के द्वारा खरीदी जाने वाली मात्रा उस समय तक बढ़ती जाती है जब तक कि वे बाजार से सम्पूर्ण पूर्ति नहीं उठा लेते।

कीमत के माध्यम से ही वस्तु का राशन एक *समयावधि में भी किया जाता है।* यदि फसल के तुरन्त बाद ही सम्पूर्ण पूर्ति *उपभोक्ताओं के हाथों में डाल दी जाय तो* कीमत नीचे आ जायेगी। नीची कीमत पर उपभोग तीव्र गति से बढ़ेगा। अगली फसल के समीप आने पर वर्ष के प्रथम भाग में अधिकांश वस्तु के समाप्त हो जाने पर वर्ष के दूसरे भाग के लिए बहुत कम पूर्ति शेष रह जायगी। परिणामस्वरूप, अति अल्पकाल के दूसरे भाग में कीमतें ऊँची होंगी।

सट्टा एक समयावधि में वस्तु के उपभोग को नियमित करने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह जानते हुए कि कीमत अवधि के प्रारम्भ में नीची होगी और बाद में

ऊँची होगी, सटोरिए अवधि के प्रारम्भ में पूर्ति का एक बड़ा भाग इस आशा से खरीद लेंगे कि वे बाद में इसे ऊँचे मूल्यों पर बेच सकें और इस प्रकार वस्तु में किये गये अपने विनियोग के शुद्ध लाभ प्राप्त कर सकें। उनकी खरीद के फलस्वरूप अवधि के प्रारम्भिक भाग में कीमत उस स्तर से ऊँची होगी जो अन्यथा पाया जाता और इससे उस समय वस्तु के उपभोग की दर में कमी आ जायेगी। अवधि के दूसरे भाग में उनकी बिक्री से कीमत उस स्तर से नीची आ जायेगी जो अन्यथा पाया जाता। इससे अवधि के दूसरे भाग में उपभोग के लिए वस्तु की अधिक मात्राएँ उपलब्ध हो जायेंगी। सटोरियों की क्रियाएँ उस कीमत-वृद्धि में परिवर्तन ला देती है जो अति अल्पकाल में पायी जाती और ये उपभोक्ताओं के लिए एक समयावधि में वस्तु के प्रवाह को अधिक समान बना देती है।

(6) आर्थिक अनुरक्षण और विकास (Economic maintenance and growth)

आधुनिक जगत् में प्रत्येक अर्थव्यवस्था से यह आशा की जाती है कि वह अपनी उत्पादन क्षमता को बनाये रखे और इसका विस्तार करे। अनुरक्षण का आशय है अर्थव्यवस्था की उत्पादन-क्षमता को मूल्य ह्रास की व्यवस्था के जरिए यथास्थिर बनाये रखना। विस्तार का आशय है अर्थव्यवस्था के साधनों की किस्मों व मात्राओं में निरन्तर वृद्धि करना और साथ में उत्पादन की तकनीकों में निरन्तर सुधार करना।

श्रम-शक्ति में वृद्धि जनसंख्या की वृद्धि के जरिए और प्रशिक्षण व शिक्षा के द्वारा दक्षता में विकास व सुधार करके की जा सकती है। एक स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थ-व्यवस्था में दक्षता में विकास व सुधार बहुत-कुछ कीमत तन्त्र (price mechanism) के माध्यम से ही प्रेरित (motivated) होते है, जैसे ज्यादा ऊँची दक्षता वाले व अधिक उत्पादक कार्य के लिए अपेक्षाकृत ऊँचे प्रतिफल की सम्भावनाएँ होती हैं। शारीरिक व मानसिक योग्यताओं के साथ साथ प्रशिक्षण व शैक्षणिक सुविधाओं से दक्षता (skills) के विकास व सुधार की सीमा निर्धारित होती है।

पूँजी-सचय कई जटिल आर्थिक उद्देश्यों पर निर्भर करता है और उनके सापेक्ष महत्व व सम्बन्ध में काफी विवाद पाया जाता है। पूँजी-सचय के लिए यह आवश्यक है कि कुछ साधन वर्तमान उपभोग्य वस्तुओं के उत्पादन से हटाये जायें और उन्हें मूल्य-ह्रास को दूर करने के लिए आवश्यक मात्रा से अधिक पूँजीगत माल उत्पन्न करने में लगाया जाय।

उत्पादन की तकनीकों के सुधार से, साधनों की दी हुई मात्राओं की स्थिति में, अपेक्षाकृत अधिक माल का उत्पादन सम्भव हो जाता है। आविष्कारों और सुधारों

की खोज के पीछे जो उद्देश्य होते हैं, उनको मालूम करना सदैव आसान नहीं होता है। आविष्कारक इसलिए भी आविष्कार कर सकता है कि उसे इस तरह की क्रिया रुचिप्रद लगती है। बहुधा तकनीकों के सुधार ऐसी विद्वता के परिणाम मात्र होते हैं जिनका प्रमुख उद्देश्य ज्ञान को आगे बढ़ाना था। लेकिन उत्पादन की तकनीकों के अधिकांश सुधार मुनाफे की तलाश के ही प्रत्यक्ष परिणाम होते हैं। इसका सुन्दर दृष्टान्त उन लाभकारी परिणामों के बढ़ते हुए प्रवाह में मिलता है जो बड़े निगमों व विकासोन्मुख अनुसंधान व विकास विभागों (research and development departments) की तरफ से आ रहे हैं।

आर्थिक अनुरक्षण और विकास में कीमत-तंत्र का स्थान एवं उसके महत्त्व की मात्रा स्पष्ट नहीं होती। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि कीमतें व लाभ की सम्भावनाएँ इस बात को निश्चित करने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं कि अनुरक्षण व विकास होते हैं अथवा नहीं। लेकिन आर्थिक अनुरक्षण और विकास का क्षेत्र वस्तुतः अपने आप में एक व्यावहारिक विषय का क्षेत्र ही माना गया है। परिणामस्वरूप हमारा सम्बन्ध प्रमुखतया प्रथम चार कार्यों से होगा जैसे कि ये एक स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था में सम्पादित किये जाते हैं।

सारांश

इस अध्याय में हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की तस्वीर प्राप्त करना और इस बात को समझना रहा है कि कीमत-तंत्र एक स्वतंत्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था का पथ-प्रदर्शन व निर्देशन किस प्रकार से करता है। सर्वप्रथम, हम एक स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था का एक सरल आर्थिक मॉडल बनाते हैं। आर्थिक इकाइयाँ दो वर्गों में बाँटी गई हैं : (1) परिवार और (2) व्यावसायिक फर्में। ये उपभोग्य वस्तुओं व सेवाओं के बाजारों एवं साधन-बाजारों में अन्तर्क्रिया (interact) करते हैं। परिवार साधनों के स्वामियों के रूप में अपने साधनों की सेवाएँ व्यावसायिक फर्मों को बेचते हैं। प्राप्त की गई आय व्यावसायिक फर्मों से माल खरीदने के लिए प्रयुक्त की जाती है। व्यावसायिक फर्में उपभोक्ताओं को अपना माल बेचकर आय प्राप्त करती हैं। बदले में व्यावसायिक आय साधनों के स्वामियों से साधन खरीदने में प्रयुक्त की जाती है।

द्वितीय, हमने एक आर्थिक प्रणाली के पाँच मूल कार्य बतलाये हैं और उन विधियों का विवेचन किया है जिनके द्वारा एक स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था इन कार्यों को सम्पन्न करती है। कीमतों की एक व्यवस्था प्रमुख संगठक शक्ति होती है। कीमतें यह निर्धारित करती हैं कि किन वस्तुओं का उत्पादन किया जायगा। कीमतें उत्पादन को संगठित करती हैं और वे वस्तु के वितरण में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती

हैं। कीमतें अति अल्पकाल में एक विशेष वस्तु की पूर्ति के स्थिर रहने पर उसका राशन करती हैं। ये आर्थिक अनुरक्षण और विकास में भी अपना स्थान रखती हैं।

अध्ययन सामग्री

Knight, Frank H., "Social Economic Organization," Contemporary Society Syllabus and selected Readings, Harry D. Gideonse and others, eds., 4th ed. (Chicago, Ill: University of Chicago press 1935), pp 125-137

Stigler, George J., The Theory of Price, 3rd ed. (New York: Crowell-Collier and Macmillan, Inc, 1966), Chap 2.

□ □ □

अध्याय 3

विशुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक बाजार का मॉडल

अधिकांश व्यक्ति मांग, पूर्ति, बाजार व प्रतिस्पर्धा शब्दो के सम्पर्क मे आए हैं, लेकिन आर्थिक विश्लेषण के उपयोग से भली-भांति परिचित नही होने से वे इन्हे ढीले-ढाले ढग से प्रयुक्त करते रहते हैं। वास्तव मे ये अर्थशास्त्रियो के लिए सुनिश्चित शब्द हैं और आधुनिक व्यष्टि आर्थिक सिद्धान्त मे व्यापक रूप से प्रयुक्त होने वाले विशुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक बाजार मॉडल के तत्त्व हैं। इस मॉडल की रचना मे हम प्रारम्भ मे विशुद्ध प्रतिस्पर्धा की धारणा का विवेचन करेंगे। उसके बाद हम मांग व पूर्ति की धारणाओ को लेंगे। एक विशेष वस्तु की मांग व पूर्ति को एक साथ लाने पर कीमत-निर्धारण का विश्लेषण उत्पन्न होता है जो इस मॉडल का सार है और जिस पर आगे विचार किया जाएगा। अन्त मे हम लोच की धारणा का विवेचन करेंगे।

प्रतिस्पर्धा

प्रतिस्पर्धा शब्द का उपयोग आर्थिक साहित्य व साधारण बातचीत मे काफी अस्पष्ट अर्थ मे किया जाता है। इसका सामान्य अभिप्राय तो होड (rivalry) है। लेकिन अर्थशास्त्र मे विशुद्ध शब्द के साथ प्रयुक्त होने पर यह एक भिन्न आशय प्रकट करता है। हम प्रारम्भ मे विशुद्ध प्रतिस्पर्धा के अस्तित्व के लिए आवश्यक शर्तों पर विचार करेंगे और तत्पश्चात् आर्थिक विश्लेषण मे इसके महत्त्व पर प्रकाश डालेंगे।

विशुद्ध प्रतिस्पर्धा के लिए आवश्यक शर्तें

वस्तु की समरूपता (Homogeneity of the Product) विशुद्ध प्रतिस्पर्धा के लिए पहली आवश्यकता यह है कि एक विशेष किस्म की वस्तु के समस्त विक्रेता क्रेताओ की निगाह मे उसकी एक-सी इकाइयां ही बेचते हैं। क्रेता सोचते हैं कि विक्रेता **A** के द्वारा बेची जाने वाली वस्तु विक्रेता **B** के द्वारा बेची जाने वाली वस्तु के समान ही है। इसका महत्त्वपूर्ण परिणाम यह होता है कि क्रेताओ के लिए एक विक्रेता की वस्तु को दूसरे विक्रेता की वस्तु से ज्यादा पसन्द करने का कोई कारण नही होता है।

बाजार की तुलना मे प्रत्येक क्रेता अथवा विक्रेता का छोटापन—सम्बन्धित व
का प्रत्येक क्रेता व प्रत्येक विक्रेता वस्तु के सम्पूर्ण बाजार की तुलना मे इतना छोट
होना चाहिए कि वे अपने द्वारा खरीदी अथवा बेची जाने वाली वस्तु की कीमत क
प्रभावित नही कर सकें। बिक्री पक्ष की ओर, एक विक्रेता कुल पूर्ति का इतना थोड़
अंश बेचता है कि यदि वह बाजार मे बिल्कुल हट जाए तो भी कुल पूर्ति मे इतन
कमी नही आएगी कि कीमत म वृद्धि उत्पन्न हो जाय। अथवा, यदि एक विक्रे
जितना माल उत्पन्न कर सकता है उतने की ही पूर्ति कर दे तो कुल पूर्ति इतनी नह
बढ जाएगी कि कीमत घट जाय। दृष्टान्त के तौर पर अधिकाश फार्म-वस्तुअ
(farm products) के एक विक्रेता को लिया जा सकता है। खरीद-पक्ष पर अके
क्रेता बाजार म प्रस्तुत की गई वस्तु की कुल मात्रा का इतना छोटा अंश लेता है कि
वह उसकी कीमत को प्रभावित करने म असमर्थ रहता है। उपभोक्ता के रूप मे
हमारी यह स्थिति उन अनेक वस्तुओं के सम्बन्ध म होती है जिन्हे हम खरीदते हैं।
व्यक्तियो की हैसियत म हम रोटी, साग, दूध, सेफ्टी पिन आदि की कीमतो पर को
प्रभाव नही डाल सकते। यहाँ पर मुख्य बात यह है कि वस्तु के अकेले क्रेता या
विक्रेता का कोई महत्त्व नही होता।

कृत्रिम प्रतिबन्धों का अभाव—विशुद्ध प्रतिस्पर्धा के अस्तित्व के लिए एक और
आवश्यक शर्त यह है कि जिस किसी का भी विनिमय किया जाता है उसकी माग
पूर्ति व कीमतो पर कोई कृत्रिम प्रतिबन्ध न लगाए जाएँ। कीमतें, माँग व पूर्ति की
परिवर्तनशील दशाओ के अनुसार बदलने के लिए पूर्णतया स्वतन्त्र हो। कीमत
निर्धारण पर न तो सरकार का अधिकार हो और न किसी संस्था का अथवा उत्पादकों
के सगठनो, श्रम-सघो अथवा अन्य निजी एजेन्सियों का। पूर्ति पर प्रतिबन्ध न तो
सरकार का हो और न सगठित उत्पादक समूहो का हो। सरकारी राशन के जरिये
माँग पर नियन्त्रण नही होना चाहिए।

गतिशीलता—विशुद्ध प्रतिस्पर्धा की एक अतिरिक्त शर्त यह है कि अर्थव्यवस्था में
वस्तुओ एव सेवाओ और साधनो की गतिशीलता पाई जाय। नई फर्में किसी भी
वाछित उद्योग म प्रवेश करने के लिए स्वतन्त्र हो और साधन वैकल्पिक उपयोगो में
जहाँ कही वे रोजगार चाहते हैं वहाँ जाने के लिए मुक्त हो। विक्रेता वस्तुएँ व
सेवाएँ जहाँ उन्हे सर्वोच्च कीमतें मिलें, वहाँ बेचने मे समर्थ हो। साधन भी अपने
सर्वोच्च प्रतिफल वाले उपयोगो मे काम पा सकने म समर्थ हो।

"विशुद्ध" और "पूर्ण" प्रतिस्पर्धा

अर्थशास्त्री बहुधा 'विशुद्ध" और "पूर्ण" प्रतिस्पर्धा के बीच अन्तर करते हैं।
इनके बीच अन्तर अंश (degree) का ही होता है। ऊपर जिन चार शर्तों का वर्णन

किया गया है वे प्राय विशुद्ध प्रतिस्पर्धा के अस्तित्व के लिए आवश्यक मानी जाती हैं, लेकिन पूर्ण प्रतिस्पर्धा के लिए एक शर्त और आवश्यक होती है।

अतिरिक्त शर्त यह है कि समस्त आर्थिक इकाइयो को अर्थव्यवस्था का पूर्ण ज्ञान हो। विक्रेताओ के द्वारा रखे गए भावो के समस्त अन्तरो का शीघ्र ही पता लग जाता है और क्रेता न्यूनतम भावो पर ही माल खरीदते हैं। इससे वे विक्रेता जो अपेक्षाकृत ऊँचे मूल्य लेते हैं शीघ्र ही अपने भाव गिराने के लिए बाध्य हो जाते हैं। यदि विभिन्न क्रेता जो कुछ खरीदते हैं उसके लिए भिन्न भिन्न कीमतें देने को उद्यत होते हैं, तो विक्रेताओ को शीघ्र ही इसकी जानकारी हो जायगी और वे सबसे ऊँची कीमत देने वाले को ही अपना माल बेचेंगे। नीचा भाव लगाने वालो को बाध्य होकर ऊँची कीमत लगानी होगी। एक विशेष पदार्थ या साधन के बाजार मे एक ही कीमत पायी जायगी। पूर्ण प्रतिस्पर्धा के दृष्टान्त बहुत कम देखने को मिलते हैं, लेकिन न्यूयार्क के शेयर बाजार मे शेयरो के सौदे लगभग इन दशाओ के समीप पाये जाते हैं। शेयरो के सौदे होते ही उनकी शर्तें शेयर बाजार के बोर्ड पर सूचित कर दी जाती हैं। उसके बाद सूचना सारे देश मे सम्बन्धित व्यक्तियो तक तुरन्त पहुँचा दी जाती है। पूर्ण प्रतिस्पर्धा की स्थिति मे माँग व पूर्ति की दशाओ मे हलचल होने से अर्थ-व्यवस्था मे समायोजन (adjustments) तुरन्त हो जाते हैं। विशुद्ध प्रतिस्पर्धा की दशाओ मे वैयक्तिक आर्थिक इकाइयो को अपूर्ण ज्ञान होने से समायोजनो म अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है।

आर्थिक विश्लेषण मे विशुद्ध प्रतिस्पर्धा

अर्थशास्त्र मे प्रतियोगिता अव्यक्तिगत (impersonal) किस्म की होती है। गेहूँ के दो कृषको मे इस बात को लेकर कोई शत्रुता होने का कारण नही हो सकता कि उनमे से किसी एक का बाजार पर कोई प्रभाव है, क्योकि किसी का कोई प्रभाव ही नही होता। प्रत्येक के पास जो कुछ है उससे वह सर्वोत्तम कार्य करता है। वह दूसरे व्यक्ति तक पहुँचने अथवा उस हराने का प्रयत्न नही करता। इसके विपरीत एक ही शहर म गाडियो के दो एजेण्टो अथवा दो पेट्रौल-पम्पो के बीच तीव्र प्रतिस्पर्धा पाई जा सकती है। एक विक्रेता के कार्य दूसरे के बाजार को प्रभावित करते हैं, और फलस्वरूप, इस स्थिति म विशुद्ध प्रतिस्पर्धा नही पाई जाती है।

कोई भी अर्थशास्त्री इस बात पर जोर नही देता कि पूरी तरह की विशुद्ध प्रतिस्पर्धा अमरीकी अर्थव्यवस्था का लक्षण है। किसी का यह दावा भी नही है कि यह कभी पायी जाती है। ऐसी स्थिति म यह प्रश्न उठता है कि हम विशुद्ध प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्तो का अध्ययन ही क्यो करें। इसके तीन महत्त्वपूर्ण उत्तर दिये जा सकते हैं। सर्वप्रथम, विशुद्ध प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्त हमारे समक्ष आर्थिक विश्लेषण के लिए

एक सरल और युक्तिसगत प्रारम्भ प्रस्तुत करते हैं । द्वितीय, आज अमरीका मे काफी मात्रा मे प्रतिस्पर्धा पाई जाती है, हालाकि सम्भवत यह विशुद्ध रूप मे नही है। तृतीय, विशुद्ध प्रतिस्पर्धा का सिद्धान्त एक ऐसा 'मान" ("norm") प्रदान करता है जिससे अर्थव्यवस्था की वास्तविक कार्यसिद्धि की जाँच अथवा मूल्याकन किया जा सकता है ।

प्रथम उत्तर के सम्बन्ध मे तुलना यान्त्रिकी (mechanics) के अध्ययन से ली जा सकती है । कोई भी व्यक्ति यान्त्रिकी के अध्ययन का प्रारम्भ उस विधि से करने पर आपत्ति नही करेगा जिसमे घर्षण (friction) को एक बार छोड दिया जाय। यह भी अवास्तविक है क्योकि घर्षण तो वास्तविक जगत मे अवश्यम्भावी है । लेकिन घर्षण की स्थिति को छोड देने पर यान्त्रिक सिद्धान्तो के स्पष्ट निरूपण मे मदद मिलती है । बाद मे घर्षण का समावेश किया जाता है और उस पर विचार किया जाता है । प्रतिस्पर्धात्मक आर्थिक सिद्धान्त का आर्थिक विश्लेषण मे लगभग वही स्थान है जो यान्त्रिकी के अध्ययन मे घर्षणरहित सिद्धान्तो का है । जब हम इस बात को समझ लेते हैं कि एक घर्षणरहित (प्रतिस्पर्धात्मक) अर्थव्यवस्था किस तरह से काय करती है तो हम घर्षण (अपूर्ण प्रतिस्पर्धा व विभिन्न किस्म के प्रतिबन्धो) के प्रभावो को भी देख सकते हैं और उन पर विचार कर सकते है । विशुद्ध प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्त के अध्ययन का आशय यह नही है कि हमारा यह विश्वास है कि वास्तविक जगत् मे विशुद्ध प्रतिस्पर्धा पाई जाती है और न यह अपूर्ण प्रतिस्पर्धा के उचित अध्ययन को ही अस्वीकार करता है । यह उन मूलभूत कारण-परिणाम सम्बन्धो को प्रकट करता है जो अपूर्ण प्रतिस्पर्धा मे भी पाय जाते हैं । यह तो केवल प्रारम्भ करने का युक्तिसगत बिन्दु है क्योकि तभी हम अपूर्ण प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्तो एव उसके प्रयोगो और साथ मे विशुद्ध प्रतिस्पर्धा के भी प्रयोगो को समझ सकेगे ।

द्वितीय उत्तर के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि अध्ययनो मे यह प्रकट होना है कि अमेरिका मे काफी प्रतिस्पर्धा विद्यमान है ।[1] वहाँ पर काफी मात्रा मे प्रतिस्पर्धा पाई जाती है और काफी आर्थिक इकाइयाँ विशुद्ध प्रतिस्पर्धा के समीप की दशाओ मे क्रय या विक्रय करती हैं और वे अनेक आर्थिक प्रश्नो के सही उत्तर प्रदान करती हैं ।

1. देखिए F M. Scherer, **Industrial Market Structure and Economic Performance** (Chicago Rand McNally and Company, 1971), अध्याय 3, एव G Warren Nutter and Henry A Einhorn, **Enterprise Monopoly in the United States, 1899-1958** (New York : Columbia University Press, 1969)

तृतीय, बाजार अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त मे आय के वितरण के दिए हुए होने पर अधिकतम आर्थिक कल्याण या हित को परिभाषित करने वाली दशाओ तक ले जाती है। इससे अर्थव्यवस्था की वास्तविक कार्यसिद्धि का मूल्याकन "सर्वश्रेष्ठ" सम्भाव्य (potential) कार्यसिद्धि के सन्दर्भ मे किया जा सकता है। अपूर्ण प्रतिस्पर्धात्मक या एकाधिकारात्मक शक्तियाँ आर्थिक साधनो के "सर्वश्रेष्ठ" आवटन व उपयोग की प्राप्ति को रोकने का कार्य करती हैं। इस प्रकार एक विशुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक मॉडल का उपयोग बहुधा अपूर्ण प्रतिस्पर्धात्मक स्थितियो के सार्वजनिक नियमन (public regulation) के आधार के रूप में किया जाता है। सम्भवत यही मॉडल 1890 के सशोधित शरमन ट्रस्ट विरोधी अधिनियम (Sherman Anti-trust Act) की विचारधारा व इसके क्रियान्वयन के पीछे विद्यमान रहा है। इसी तरह यह सार्वजनिक उपयोगिताओ के उपक्रमो (public utilities) के सरकारी नियमन और कई अन्य सार्वजनिक नीति-सम्बन्धी उपायो के पीछे पाया गया है।

मांग

अब बाजार-मॉडल को लेकर हम एक वस्तु की मांग को इस प्रकार परिभाषित करते हैं कि इसमे प्रति इकाई समय के अनुसार एक वस्तु की वे विभिन्न मात्राएँ आती हैं जिन्हे उपभोक्ता, अन्य बातो के समान या स्थिर रहने पर, सभी सम्भव वैकल्पिक भावो पर बाजार मे खरीदेंगे। उपभोक्ताओ के द्वारा ली जाने वाली मात्रा पर कई बातो का प्रभाव पडेगा, जैसे (1) वस्तु की कीमत, (2) उपभोक्ताओ की रुचि व पसन्द (preferences), (3) विचाराधीन उपभोक्ताओ की सख्या, (4) उपभोक्ताओ की आमदनी, (5) परस्पर सम्बद्ध वस्तुओ के भाव, (6) उपभोक्ताओ को उपलब्ध होने वाली वस्तुओ की सीमा (range), एव (7) वस्तु की भावी कीमतो के सम्बन्ध मे उपभोक्ताओ की प्रत्याशाएँ (expectations)।[2] अतिरिक्त परिस्थितियाँ भी प्रस्तुत की जा सकती हैं, लेकिन ये ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती हैं।

---

2 फलन के रूप मे हम इस प्रकार लिख सकते हैं

$$x = f(P_x, T, C, I, P_n, R, E)$$

जिसमें

x X–वस्तु या सेवा की मात्रा है

P_x x की कीमत है

T उपभोक्ताओ की रुचियो व पसन्दो (अधिमानो) का सूचक है

C विचाराधीन उपभोक्ताओ की सख्या है

P_n सम्बद्ध वस्तुओ की कीमतो का सूचक है

R उपभोक्ताओं को उपलब्ध वस्तुओ व सेवाओ की सीमा का सूचक है

E उपभोक्ताओं की प्रत्याशाओ का सूचक है।

मॉग-अनुसूचियाँ व मॉग-वक्र
(Demand Schedules and Demand Curves)

मॉग की पूर्वोक्त परिभाषा अध्ययन के लिए उस सम्बन्ध को पृथक कर लेती है जो वस्तु की सम्भव वैकल्पिक कीमतो एव उपभोक्ताओ के द्वारा ली जाने वाली मात्राओ के बीच मे पाया जाता है । माग की एक दी हुई स्थिति की परिभाषा के लिए अन्य परिस्थितियो को स्थिर मान लिया जाता है । प्राय हम ली जाने वाली मात्रा को कीमत के विपरीत परिवर्तित होने वाली मानते हैं। वस्तु की कीमत जितनी ज्यादा होगी उपभोक्ता, अन्य बातो के समान या यथास्थिर रहने पर, इसकी उतनी ही कम मात्रा खरीदेगे, और वस्तु की कीमत जितनी कम होगी उपभोक्ता इसकी उतनी ही अधिक मात्रा खरीदेगे। ऐसे कुछ अपवाद हो सकते हैं जिनमे वस्तु की खरीदी जाने वाली मात्रा कीमत की दिशा म ही परिवर्तित हो, लेकिन ये अपवाद बहुत थोडे होते हैं।

ध्यान रहे कि माग शब्द सम्पूर्ण माग-अनुसूची अथवा माग-वक्र को सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है ।[3] माग अनुसूची एक वस्तु की उन विभिन्न मात्राओ को दर्शाती है जिन्हे उपभोक्ता वस्तु की विभिन्न वैकल्पिक कीमतो पर खरीदना चाहेगे। सारणी 3–1 म एक कल्पित माग अनुसूची दी गई है । इसमे X–वस्तु ली गई है। कीमतें P_X के नीचे सूचित की गई हैं और वस्तु की खरीदी जाने वाली मात्राए X प्रति इकाई समय के नीचे प्रदर्शित की गई हैं। एक माग वक्र माग-अनुसूची को साधारण रेखाचित्र पर खीचने से प्राप्त होता है । चित्र 3–1 मे एक माग-वक्र दर्शाया गया है । रेखाचित्र के उदग्र या लम्बवत् अक्ष (vertical axis) पर प्रति इकाई कीमत मापी गई है । क्षैतिज अक्ष पर प्रति इकाई समयानुसार वस्तु की मात्रा मापी गई है । ध्यान रहे कि कीमत व खरीदी गई मात्रा के विलोम सम्बन्ध (inverse relationship) के कारण ही माग-वक्र नीचे दाहिनी तरफ झुकता है ।

---

3 X के लिए मांग का समीकरण इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$X=f(P_X)$$

यहाँ हम फुटनोट 2 म दी गई अन्य चर राशियों (variables) को प्राचल (parameters) मान लेते हैं। अथवा, हम आश्रितता व सम्बन्ध को उलट कर इस प्रकार लिख सकते हैं —

$$P_X=g(x)$$

यह माग-समीकरण वह रूप है जो प्राय रेखाचित्र म दिखाया जाता है । इस खण्ड में मांग-समीकरण व वक्र रेखीय दिखाये गए हैं, लेकिन ऐसा होना आवश्यक नहीं है। रेखीय मांग वक्रों को वक्रीय रूप की अपेक्षा खीचना व समझाना अपेक्षाकृत ज्यादा आसान होता है।

सारणी 3–1 X-वस्तु की माग-अनुसूची

कीमत (P_x)	मात्रा (X प्रति इकाई समय)
10 डालर	1
9	2
8	3
7	4
6	5
5	6
4	7
3	8
2	9
1	10
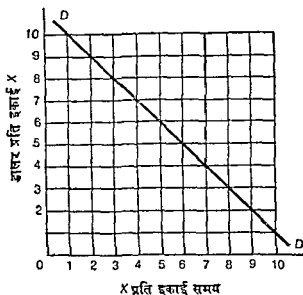
चित्र 3–1 X–वस्तु का माग-वक्र

सारणी 3–1 अथवा चित्र 3–1 मे दर्शायी गयी मात्राओ का उस समय तक कोई अर्थ नही निकलता जब तक कि वे प्रति समयावधि प्रवाहो (flows) के रूप मे व्यक्त न की जाँय। इन मात्राओ का आधार एक सप्ताह, एक माह अथवा एक वर्ष

अथवा अन्य उपयुक्त समयावधि भी हो सकता है। इस कथन का कोई अर्थ नही है कि "प्रति इकाई पाँच डालर कीमत पर उपभोक्ता वस्तु की छ इकाइया खरीदेंगे।" यह कथन तभी सार्थक होता है जब हम इस प्रकार कहे "प्रति इकाई पाँच डालर कीमत पर प्रति सप्ताह (या माह, या जो भी समयावधि हो) उपभोक्ता वस्तु की छ इकाइया खरीदेंगे।' अत हम सदैव यह स्मरण रखना होगा कि हमारा सम्बन्ध केवल मात्राओ से ही नही है, बल्कि प्रति इकाई समयानुसार मात्राओ से है। ये खरीद की दरें है जैसे प्रति माह 500,000 कारें अथवा प्रति माह 60,000,000 बुशल गेहूँ।

माग वक्र उन खरीदो को जिन्हें उपभोक्ता करने को इच्छुक हैं उनसे पृथक कर देता है जिन्हे वे करने को इच्छुक नही है। यह उन अधिकतम कीमतो को दर्शाता है जिन्हे उपभोक्ता क्षैतिज अक्ष के पैमाने पर सूचित की गई विभिन्न मात्राओ के लिए देने के लिए प्रेरित किये जा सकते है, अर्थात् इस पर वह अधिकतम कीमत होती है जिस पर ऊपर की प्रत्येक कुल मात्रा वेची जा सकती है। अथवा, यह उन अधिकतम मात्राओ को दर्शाता है जिन्हे उपभोक्ता लम्बवत् अक्ष पर सूचित कीमत-स्तरो पर लेने के लिए प्रेरित किये जा सकते है। माग-वक्र पर अथवा इसके बायी तरफ व नीचे एक बिन्दु के द्वारा दर्शायी गई मात्रा व कीमत उपभोक्ताओ के लिए कीमत-मात्रा का सभव या उचित सयोग माना जाता है। माग-वक्र के दायी ओर व ऊपर की तरफ कोई भी बिन्दु सम्भव या उचित सयोग नही माना जाता।

माग मे परिवर्तन बनाम एक दिये हुए माग-वक्र पर होने वाली गति

एक दिये हुए माग-वक्र पर होने वाली गति और माग के परिवर्तन के बीच स्पष्ट रूप से अतर करना होगा। एक दिये हुए माग-वक्र पर होने वाली गति स्वय वस्तु की कीमत मे होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप खरीदी जाने वाली मात्रा के परिवर्तन की द्योतक होती है, जबकि खरीदी जाने वाली मात्रा को प्रभावित करने वाली अन्य समस्त परिस्थितियाँ अपरिवर्तित बनी रहती है। चित्र 3–2 मे कीमत के P से P_1 तक घट जाने से खरीदी जाने वाली मात्रा X से X_1 तक बढ जाती है। इसे माग का परिवर्तन नही कह सकते क्योकि यह अकेले माग-वक्र पर ही होता है, और माग शब्द सम्पूर्ण माग-वक्र को सूचित करता है। माग की परिभाषा मे हम यह मान लेते हैं कि जब हम वस्तु की कीमत को परिवर्तित करते हैं तो माग को प्रभावित करने वाली अन्य दशाएँ यथास्थिर रहती है, और हम यह देखते है कि खरीदी जाने वाली मात्रा मे क्या परिवर्तन होता है।[4]

4. यदि माग-समीकरण $P_x = a - b_x$ हो तो P_x व X के निर्देशाक (co-ordinates) a व b प्राचलों (parameters) के स्थिर रहने पर एक विशिष्ट माग-वक्र (unique de-

चित्र 3–2 एक माग-वक्र पर गति
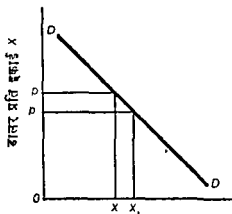
जब माग की एक दी हुई स्थिति की परिभाषा मे स्थिर मानी जाने वाली दशाए परिवर्तित होती हैं तो स्वय माग-वक्र ही बदल जाता है। जैसे चित्र 3–3 मे उपभोक्ताओं की आमदनी मे वृद्धि हो जाने से माग-वक्र दायी ओर DD मे D_1D_1 पर खिसक जायगा। ऊंची आमदनी पर उपभोक्ता प्राय. प्रत्येक वैकल्पिक कीमत
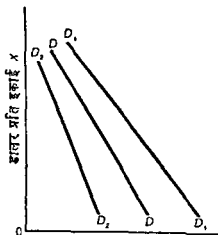
चित्र 3–3 माग मे परिवर्तन

mand curve) बनायेंगे। Px के मूल्य मे परिवर्तन होने से वक्र पर चल कर X का तदनुरूप मूल्य प्राप्त होता है।

(alternative price) पर अपनी खरीद की दर में वृद्धि करने को उद्यत हो जायेंगे। X-वस्तु के प्रति उपभोक्ता वर्ग की रुचि व पसंद के बढ़ने से भी ऐसे ही परिणाम निकलेंगे। समूह में उपभोक्ताओं की संख्या में वृद्धि होने से भी यही होगा। उपभोक्ताओं को उपलब्ध होने वाली वस्तुओं की संख्या में वृद्धि हो जाने से सम्भव है कि वे X-वस्तु के लिए अपनी आय का कम भाग निर्धारित करें। ऐसा होने पर चित्र 3–3 में माग-वक्र बायीं ओर D_2D_2 स्थिति में आ जायगा।[5]

X-वस्तु से सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तनों के X-वस्तु की माग पर पड़ने वाले प्रभाव इनके सम्बन्धों की प्रकृति को परिभाषित करते हैं। यदि सम्बन्धित वस्तु एक प्रतिस्पर्धात्मक अथवा स्थानापन्न वस्तु है तो इसकी कीमत में वृद्धि होने से X का माग-वक्र दायीं ओर खिसक जायगा, क्योंकि उपभोक्ता अब अपेक्षाकृत ऊँचे मूल्य वाले प्रतिस्थापन पदार्थ से हट कर X की तरफ आ जायेंगे।

मान लीजिए X गो-मास (beef) है और तीतर-बटेर (pork) के मास की कीमत बढ़ जाती है। उपभोक्ता तीतर-बटेर के माग से गो-मास की तरफ आ जाते हैं जिससे गो-मास की माग बढ़ जाती है। यदि सम्बन्धित वस्तु एक पूरक वस्तु (complementary good) है तो इसकी कीमत में वृद्धि होने से X का माग-वक्र बायीं ओर खिसक जायगा। सम्बन्धित वस्तु की ऊँची कीमत के कारण उपभोक्ता इसकी कम मात्रा लेंगे। इसकी कम मात्रा लेने पर यदि X के प्रति इच्छा कम होती है तो यह पूरकता का सूचक होता है। यहाँ पर मान लीजिए X तो दूध है और अनाज की कीमत इतनी बढ़ जाती है कि अनाज का उपभोग घट जाता है। अनाज की मात्रा का उपभोग कम होने से दूध की माग घट जाती है, अर्थात् दूध का माग-वक्र बायीं ओर खिसक जाता है।

पूर्ति

वस्तु की पूर्ति से अभिप्राय वस्तु की वे विभिन्न मात्राएं हैं जिन्हें विक्रेता, अन्य बातों के समान रहने पर, सभी सम्भव वैकल्पिक कीमतों पर बाजार में प्रस्तुत करना चाहेंगे। यह कीमतों और प्रति इकाई समयानुसार विक्रेताओं के द्वारा बेची जाने वाली वस्तु की मात्राओं के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध का सूचक होता है। पूर्ति-अनुसूची व पूर्ति-वक्र के बीच में भी वही अन्तर है जो माग-अनुसूची और माग-वक्र के बीच में पाया जाता है। पूर्ति-वक्र रेखाचित्र पर अंकित पूर्ति-अनुसूची को ही कहते हैं। पूर्ति-वक्र प्रायः दाहिनी ओर ऊपर की तरफ उठता, चूँकि अपेक्षाकृत ऊँची

5. $P_x = a - bx$ समीकरण में a में परिवर्तन से वक्र की स्थिति (position) व b में परिवर्तन से इसका ढाल (slope) बदल जायगा।

कीमत विक्रेताओ को बाजार मे अधिक माल प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करेगी और यह अतिरिक्त विक्रेताओ को मैदान मे आने के लिए प्रेरित कर सकती है। चित्र 3–4 मे एक कल्पित पूर्ति-वक्र दर्शाया गया है।
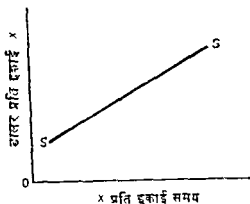
चित्र 3–4 X–वस्तु का पूर्ति-वक्र

एक दिये हुए पूर्ति-वक्र को परिभाषित करते समय जो 'अन्य बातें" यथास्थिर मानी जाती है वे मूलत इस प्रकार है (1) वस्तु को उत्पन्न करने म प्रयुक्त साधनो की कीमतें और (2) उपलब्ध उत्पादन तकनीका की सीमा।[6]

माग-वक्र की भाति, पूर्ति-वक्र भी विक्रेता जो कुछ करेंगे और जो कुछ नही करेंगे उनके बीच की सीमा-रेखा मात्र होता है। किसी भी दिये हुए भाव पर विक्रेता उस भाव पर पूर्ति-वक्र द्वारा प्रदर्शित मात्रा से कम की पूर्ति करना चाहगे, लेकिन उन्हे ज्यादा पूर्ति के लिए प्रेरित नही किया जा सकता। एक दी हुई मात्रा की पूर्ति के लिए प्रेरित करने हेतु विक्रेताओ को कम से कम वह कीमत अवश्य मिलनी चाहिए जो उस मात्रा पर पूर्ति-वक्र द्वारा प्रदर्शित की जाती है। वे उस मात्रा की प्रति इकाई ऊँची कीमत पर भले ही पूर्ति कर दे, लेकिन कम कीमत पर पूर्ति कदापि नही

6—पूर्ति-फलन (supply function) इस प्रकार लिखा जा सकता है

$$X = S(P_x, P_r, K)$$

जिसमे

X X–वस्तु या सेवा की मात्रा है
P_x X की कीमत है
P_r X–वस्तु को उत्पन्न करने म प्रयुक्त साधनो की कीमतो का सैट है
K उपलब्ध उत्पादन तकनीको की सीमा है।

एक अल्पकालीन पूर्ति फलन के लिए हम स्वतन्त्र चरराशियो की सूची मे M जोड लेंगे, जहाँ M, X की पूर्ति करने वाली फर्मों की सख्या है।

करेंगे। पूर्ति-वक्र पर कोई भी बिन्दु अथवा इससे ऊपर एवं दायीं ओर का बिन्दु सूचित कीमत पर पूर्ति की संभव या उचित मात्रा का द्योतक होता है। इससे नीचे या दायीं ओर का कोई भी बिन्दु संभव या उचित नहीं माना जाता।[7]

बाजार-कीमत

एक वस्तु के लिए माँग वक्र और पूर्ति वक्र उसकी बाजार-कीमत को निर्धारित करने वाली शक्तियों का दर्शन के लिए एक ही रेखाचित्र पर प्रयुक्त किए जा सकते हैं। माँग-वक्र तो यह दर्शाता है कि उपभोक्ता क्या करने को इच्छुक हैं और पूर्ति वक्र यह दर्शाता है कि विक्रेता क्या करने को इच्छुक हैं। उपभोक्ताओं की माँग विक्रेताओं की क्रियाओं से स्वतन्त्र मानी जाती है। इसी तरह पूर्ति-वक्र के लिए यह माना जाता है कि यह उपभोक्ताओं की क्रियाओं पर बिलकुल भी निर्भर नहीं करती। उपभोक्ताओं के लिए यह माना जाता है कि वे एक दूसरे से स्वतन्त्र होकर कार्य करते हैं, और विक्रेता भी इसी तरह करते हैं।
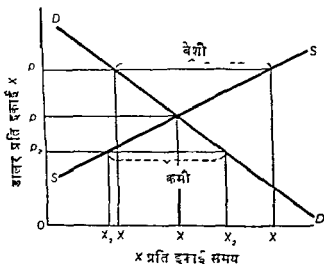
चित्र 3–5 संतुलन कीमत निर्धारण

7 हम पूर्ति-समीकरण को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं
$$X = h(P_x),$$
अथवा वैकल्पिक रूप में इस प्रकार $P_x = K(x)$,
जहाँ फुटनोट 6 की अन्य स्वतन्त्र चरराशियाँ (independent variables) प्राचल (parameters) बन जाती हैं। पुनः पूर्ति-वक्र पर होने वाली गति (movements) निर्देशांकों (coordinates) के एक सैट से दूसरे सैट पर होने वाली गति होती है जिसमें समीकरण के प्राचल (parameters of the equation) स्थिर रहते हैं। पूर्ति के परिवर्तन का आशय है पूर्ति-समीकरण के प्राचलों में परिवर्तन। पुनः रेखाएं खींचना का उपयोग उनकी सरलता के कारण किया गया है, न कि इसलिए कि वे वास्तविक पूर्ति-दशाओं के अधिक प्रतिनिधि हैं।

बाजार-कीमत का निर्धारण

चित्र 3–5 मे बाजार-कीमत का निर्धारण दर्शाया गया है। P_1 कीमत पर उपभोक्ता प्रति इकाई समयानुसार X_1 मात्रा लेने को उद्यत हैं। लेकिन विक्रेता प्रति इकाई समय के अनुसार बाजार मे X_1^1 मात्रा प्रस्तुत करेंगे, इसमे प्रति इकाई समयानुसार $X_1X_1^1$ आधिक्य या बेशी (Surplus) की स्थिति आ जाती है। आधिक्य रखने वाला विक्रेता यह सोचता है कि यदि वह अन्य विक्रेताओ से अपना मूल्य थोडा कम कर देवे तो वह अपना सारा आधिक्य बाजार म निकाल सकेगा। अत विक्रेताओ के लिए अपने भावो को घटाने और पूर्ति की मात्रा को कम करने की प्रेरणा पाई जाती है। विक्रेताओ के द्वारा कीमत घटाई जाएगी जिससे पूर्ति की मात्राएँ घटेंगी और उपभोग की मात्राएँ बढेंगी। अन्त मे कीमत घट कर P पर आ जायेगी, और उपभोक्ता वस्तु की ठीक वही मात्रा लेने को उद्यत हो जायेंगे जिसे विक्रेता उस कीमत पर बाजार मे प्रस्तुत करना चाहते हैं।

अब मान लीजिए कि विक्रेता प्रारम्भ मे P_2 कीमत स्थापित करते हैं। इस कीमत पर उपभोक्ता प्रति इकाई समयानुसार X_2 मात्रा खरीदना चाहेंगे। विक्रेता इसी अवधि मे बाजार मे X_2^1 मात्रा प्रस्तुत करेंगे। इस बार एक समयावधि मे अभाव या कमी की मात्रा X_2 व X_2^1 के अन्तर के बराबर होगी। अभाव के कारण उपभोक्ता उपलब्ध पूर्ति के लिए परस्पर होड लगायेंगे और जब तक अभाव बना रहेगा तब तक वे ऐसा ही करते रहेंगे। जब उपभोक्ता कीमत को P तक पहुँचा देते हैं, तब अभाव समाप्त हो जाएगा और क्रेता वस्तु की उतनी ही मात्रा खरीदेंगे जितनी कि विक्रेता बेचना चाहते है।

P कीमत सतुलन-कीमत कहलाती है। X वस्तु की मांग व पूर्ति की दशाओ के दिए हुए होने पर यही कीमत प्राप्त कर लेने पर बनाई रखी जा सकेगी। यदि कीमत P से.हट जाती है तो इसे उसी स्तर पर वापिस लाने के लिए शक्तियां काम करने लगती हैं। सतुलन-कीमत से ऊपर की कीमत आधिक्य की स्थिति उत्पन्न कर देती है जो विक्रेताओ को परस्पर कीमत घटाने के लिए प्रेरित करती है जिससे कीमत वापिस अपने सतुलन-स्तर पर आ जाती है। सतुलन-स्तर से नीचे की कीमत से अभाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिससे उपभोक्ता कीमत को बढाकर पुन सतुलन तक ले आते हैं। P_1 जितनी ऊँची कीमत पर बाजार मे वस्तु की इतनी मात्रा प्रस्तुत की जाती है कि इसके सम्बन्ध मे उपभोक्ताओ का मूल्याकन पूर्ति कीमत से भी कम हो जाता है। P_2 कीमत पर बाजार मे प्रस्तुत की जाने वाली मात्रा इतनी कम होती है कि उपभोक्ताओ के लिए इसकी एक इकाई का मूल्य इसकी पूर्ति-कीमत से भी अधिक होता है। केवल P सतुलन-कीमत पर ही बाजार मे पूर्ति करने वालो के

द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली मात्रा इतनी होती है कि वस्तु की पूर्ति-कीमत और उसका उपभोग करने के लिए उपभोक्ताओं का मूल्यांकन (Consumer's Valuation) दोनों बराबर होते हैं।[8]

माँग व पूर्ति में परिवर्तन

प्रश्न उठता है कि वस्तु की माँग में परिवर्तन होने से सन्तुलन कीमत और इसकी विनिमय की मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ता है? मान लीजिए चित्र 3-6 में DD और SS किसी समाज में कमरों की माँग व पूर्ति के सूचक हैं। अब कल्पना कीजिए कि उस समाज में एक प्राइवेट कॉलेज स्थापित किया जाता है और उसमें भर्ती का विस्तार तेजी से होता है। इस समूह में कमरों के उपभोक्ताओं की अधिक संख्या होने से माँग बढ़कर D_1D_1 हो जाती है। प्रारम्भिक कीमत या किराये की दर P पर XX^1 कमरों की कमी (Shortage) रहेगी और उपभोक्ता कीमत बढ़ाकर P_1 कर देंगे। बाजार में किराये पर प्रस्तुत की जाने वाली मात्रा X_1 तक बढ़ जायगी क्योंकि किराये का अपेक्षाकृत ऊँचा दर के कारण समाज में कुछ सम्पत्ति के स्वामी व भवन निर्माणकर्ता कमरे बनाने को प्रेरित होंगे। माँग में वृद्धि के बाद नई सन्तुलन कीमत व मात्रा क्रमशः P_1 व X_1 होगी।

इसी रेखाचित्र का प्रयोग वस्तु की कीमत व विनिमय की मात्रा पर माँग में कमी के प्रभावों को समझाने के लिए किया जा सकता है। मान लीजिए कि प्रारम्भ में कमरों का माँग वक्र D_1D_1 है और SS पूर्ति वक्र है। अब कल्पना कीजिए कि राज्य विश्वविद्यालय जो शहर से काफी दूर पर स्थित है अपनी ट्यूशन फीस कम कर देता है और प्राइवेट कॉलेज समुदाय के विद्यार्थी अपनी तरफ खींचने

---

8 सन्तुलन कीमत व मात्रा गणितीय विधि से भी निकाले जा सकते हैं। इसके लिए माँग व पूर्ति समीकरणों को एक साथ हल करना होगा। यदि ये क्रमशः इस प्रकार हैं

$$P_x = g(x)$$

एवं

$$P_x = k(x)$$

इस प्रकार प्राप्त दो समीकरण, दो अज्ञात राशियों (Unknowns) के एक निश्चित हल होगा। कोई निश्चित रूप में माँग व पूर्ति की रेखाओं या वक्रों द्वारा सूचित करने पर मान लीजिए माँग व पूर्ति समीकरण इस प्रकार हैं

$$P_x = 20 - \frac{3}{4} X \text{ (माँग)}$$

$$P_x = 4 + \frac{1}{4} X \text{ (पूर्ति)}$$

इनको एक साथ हल करने पर X=16 और $P_x = 8$ होगा।

लगता है। समाज में कमरों की मांग घट कर DD हो जाती है और प्रारम्भिक सन्तुलन कीमत P_1 पर $X_1^1 X_1$ का आधिक्य (Surplus) उत्पन्न हो जाता है।
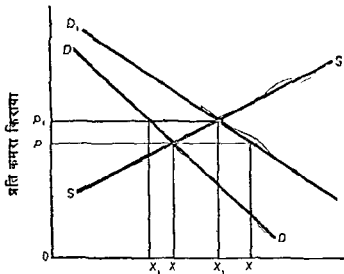
चित्र 3–6 मांग में परिवर्तन के प्रभाव
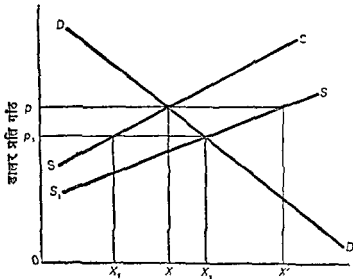
चित्र 3–7 पूर्ति में परिवर्तन के प्रभाव

किराये की दरें घट जाती हैं और थोड़े कमरे किराये पर दिए जाते हैं क्योंकि (मकान) के स्वामी अपने कुछ कमरों को उपलब्ध करने एवं उन्हें कायम रखना कम लाभप्रद मानने लगते हैं। नई सन्तुलन कीमत व मात्रा क्रमशः P व X होगी।

इसी प्रकार, वस्तु के माँग-वक्र के दिए हुए होने पर, पूर्ति के परिवर्तन सन्तुलन कीमत व विनिमय की मात्रा में परिवर्तन उत्पन्न कर देंगे। मान लीजिए चित्र 3-1 में DD व SS कपास की गाँठों के प्रारम्भिक माँग वक्र व प्रारम्भिक पूर्ति-वक्र को सूचित करते हैं। अब कल्पना कीजिए कि इसकी फसलें प्रारम्भिक आशा से ज्यादा अच्छी हो जाती हैं जिससे पूर्ति बढ़ कर $S_1 S_1$ हो जाती है। प्रारम्भिक सन्तुलन कीमत P पर XX^1 का आधिक्य होगा जिससे कीमत घट कर P_1 पर आ जायेगी और विनिमय की मात्रा बढ़ कर X_1 हो जायगी। इसके विपरीत यदि S_1S_1 प्रारम्भिक पूर्ति-वक्र हो और सूखे के कारण कपास की पूर्ति घट कर SS हो जाय तो सन्तुलन कीमत P_1 पर प्रति इकाई समयानुसार $X_1^1 X_1$ गाँठों का अभाव रहेगा। इससे कीमत बढ़ कर P हो जायगी और विनिमय की मात्रा घट कर X हो जायगी।

माँग की लोच (Elasticity of Demand)

हम अगले अध्याय में एवं इस ग्रन्थ के शेष भाग में सर्वत्र यह देखेंगे कि माँग की लोच का विचार आर्थिक विश्लेषण में बहुत उपयोगी होता है। माँग-वक्र के दिए हुए होने पर, एक वस्तु या सेवा की कीमत में परिवर्तनों के फलस्वरूप माँग की मात्रा में होने वाली प्रतिक्रियात्मकता (responsiveness) का माप माँग की लोच कहलाता है। यदि कीमत के मामूली परिवर्तन के प्रति माँग की मात्रा ज्यादा प्रतिक्रिया बतलाती है तो कीमत की वृद्धि से वस्तु पर कुल व्यय में कमी हो जाएगी और कीमत में कमी होने से उसमें वृद्धि हो जाएगी। यदि कीमत परिवर्तनों के प्रति माँग की मात्रा ज्यादा प्रतिक्रियाशील नहीं है तो कीमत में वृद्धि से वस्तु पर कुल व्यय में वृद्धि होगी, जब कि कीमत में कमी होने से उसमें गिरावट आएगी। ये बातें इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि हम नीचे इनका सविस्तार वर्णन करेंगे। लेकिन हम पहले लोच की माप के तकनीकी पहलुओं की जाँच करेंगे।

लोच का माप

सहज रूप से तो माँग-वक्र का ढाल (slope) कीमत-परिवर्तनों के प्रति माँग की मात्रा की प्रतिक्रियात्मकता का पर्याप्त माप प्रतीत होता है। कीमत के कुछ सीमा तक ऊपर या नीचे जाने पर माँग की मात्रा के परिवर्तनों को देखकर ऐसे वक्र के छोटे से हिस्से के ढाल को जाना जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि आलू की कीमत

के 10 सेंट कम होने से माँग की मात्रा मे 100 बुशल की वृद्धि होती है तो माँग-वक्र के उस हिस्से का ढाल – 10/100 या – 1/10 होगा। लेकिन यदि हम माँग-वक्र को पुन खीचते है और कीमत सेंट मे न लेकर डालर मे लेते है तो माँग वक्र के उसी हिस्से का ढाल (– 1/10)/100 या – 1/1000 हो जाता है। कीमत का माप सेंट से डालर मे बदल देने से माँग-वक्र के नीचे की ओर होने वाले ढाल म तीव्र गिरावट आ जाती है, हालाकि स्वय माँग-वक्र मे कोई वास्तविक परिवर्तन नही हुआ है। यदि हम माँग-वक्र पुन खीचते हैं और इस बार भी कीमत डालरो म और माँग की मात्रा पैको (Pecks)* मे मापते हैं तो माँग-वक्र के उसी हिस्से का ढाल (– 1/10)/400 अथवा – 1/4000 हो जायगा। माँग-वक्र का ढाल कीमत के परिवर्तनों से माँग की मात्रा की प्रतिक्रिया को जानने का एक बहुत ही अविश्वसनीय सूचक होता है।

माँग वक्रो के तुलनात्मक ढाल भी कीमतो म परिवतनो के फलस्वरूप माँग की मात्राओ की तुलनात्मक प्रतिक्रियात्मकता के माप के रूप मे निरर्थक होते हैं। मान लीजिए गेहूँ के माँग-वक्र की तुलना गाडियो के माँग-वक्र से करने मे हम यह जानना चाहते हैं कि इनमे से किसके लिए कीमत के परिवर्तन से माँग की मात्रा अधिक प्रतिक्रिया दिखलाएगी। दोनो माँग वक्रो के तुलनात्मक ढाल हमे इस सम्बन्ध मे कुछ भी नही बतलाते। गेहूँ की कीमत मे एक डालर की कमी माँग की मात्रा मे प्रति माह बीस मिलियन बुशल की वृद्धि कर सकती है। गाडियो की कीमत मे एक डालर की कमी प्रति माह माँग की मात्रा मे पाँच गाडियो की वृद्धि कर सकती है। लेकिन इसका आशय यह नही है कि गेहूँ की माँग की मात्रा इसकी कीमतो के परिवर्तनो के परिणामस्वरूप अधिक प्रतिक्रिया दिखलाती है, बनिस्बत गाडियो की कीमतो के परिवर्तनो के फलस्वरूप गाडियो की माँग की मात्रा के। गेहूँ की कीमत मे एक डालर का परिवर्तन काफी बडा सापेक्ष परिवर्तन *माना जाता है*। *गाडी* की कीमत मे एक डालर का परिवर्तन कोई महत्त्व नही रखता। इसके अलावा गेहूँ की एक इकाई और गाडी की एक इकाई एक दूसरे से *पूर्णतया* भिन्न धारणाएँ मानी जाती है और इनकी परस्पर तुलना करने के लिए कोई आधार नही हैं।

महान् आग्ल अर्थशास्त्री एल्फ्रेड मार्शल ने इस कठिनाई का समाधान लोच को इस तरह से परिभाषित करके निकाला है "**कीमत के मामूली परिवर्तन की स्थिति मे** यह माँग की मात्रा के प्रतिशत परिवर्तन मे कीमत के प्रतिशत परिवर्तन का भाग देने से प्राप्त होती है।[9] बीजगणित के रूप मे, लोच की परिभाषा इस प्रकार दी

---

* एक पेक दो गैलन के बराबर होता है।

9 एल्फ्रेड मार्शल, Principles of Economics (आठवाँ सस्करण, लदन मैकमिलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, 1920) पुस्तक III, अध्याय IV.

जा सकती है

$$e = \frac{\Delta X/X}{\Delta P/P}$$

चित्र 3–8 में A से B तक होने वाली गति पर विचार कीजिए। माँग की मात्रा में X से X_1 तक का परिवर्तन ΔX है। कीमत का परिवर्तन P से P_1 तक ΔP है।
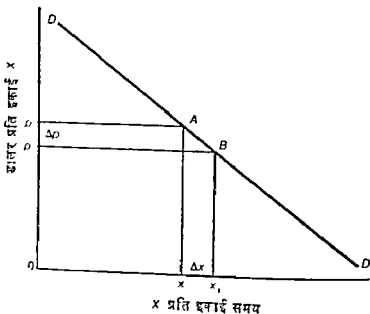
चित्र 3–8 आर्क-लोच का माप

लोच को सूचित करने वाला अंक या गुणांक (Coefficient) एक प्रतिशत को दूसरे प्रतिशत से विभाजित करके प्राप्त किया जाता है और यह एक विशुद्ध अंक मात्र होता है जो माप की ऐसी इकाइयों जैसे बुशल, पैंस या डालरों से मुक्त होता है। गेहूँ के माँग-वक्र पर दिए हुए बिन्दुओं के बीच लोच एक-सी होती है, चाहे कीमत डालरों में मापी जाय या सेंटों में और माँग की मात्रा बुशल में मापी जाय या पैकों में। जब माँग-वक्र पर दो भिन्न-भिन्न बिन्दुओं के बीच लोच आँकी जाती है तो उसे आर्क या चाप-लोच (arc elasticity) कहते हैं। वक्र के एक ही बिन्दु पर कीमत व उत्पन्न मात्रा में परिवर्तन के फलस्वरूप जो लोच आँकी जाती है वह बिन्दु-लोच (Point elasticity) कहलाती है। हम इन दोनों धारणाओं पर क्रमशः विचार करेंगे।

आर्क-लोच (Arc Elasticity)

मान लीजिए हम चित्र 3-8 पर A और B के बीच माग की लोच मालूम करना चाहते हैं और दोनो बिन्दुओ के निर्देशाक (coordinates) निम्नांकित हैं

	P (सेंट)	X (बुशल में)
A बिन्दु पर	100	1,000,000
B बिन्दु पर	90	1,200,000

यदि हम लोच के सूत्र म उपयुक्त अको का प्रतिस्थापन करते हुए A से B तक जाते हैं तो हमे पता लगता है कि

$$e = \frac{\frac{-200\,000}{1{,}000{,}000}}{\frac{-10}{100}} = \frac{200\,000}{1{,}000{,}000} \times \frac{100}{-10} = -2 \qquad ....(3\,1)$$

लेकिन यदि हम विपरीत दिशा मे B बिन्दु से A बिन्दु तक जाते हैं तो

$$e = \frac{\frac{-200{,}000}{1{,}200{,}000}}{\frac{10}{90}} = \frac{-200\,000}{1{,}200{,}000} \times \frac{90}{10} = -1\,5 \qquad ....(3\,2)$$

इस प्रकार माग की मात्रा व कीमत मे प्रतिशत परिवर्तन भिन्न भिन्न होते हैं और ये उस कीमत व मात्रा पर निर्भर करते हैं जहाँ से हम प्रारम्भ करते हैं। प्रारम्भिक बिन्दुओ के अन्तर हमे लोच-गुणाक (*elasticity coefficient*) के विभिन्न मूल्यो पर पहुँचा देते हैं।

ऊपर हमने जो गणना का कार्य अभी पूरा किया है वह यह बतलाता है कि एक माग-वक्र पर दो भिन्न-भिन्न बिन्दुओ के बीच आर्क लोच लगभग समीप का मान (approximation) होती है। वे बिन्दु जिनके बीच आर्क-लोच मापी जाती है जितनी अधिक दूरी पर होते हैं, लोच के दो गुणाको के बीच का अन्तर भी उतना ही अधिक होता है और प्रत्येक गुणाक उतना ही कम विश्वसनीय होता है। आर्क-लोच तभी सार्थक होती है जब कि यह माग वक्र पर ऐसे बिन्दुओ के बीच मे आँकी जाय जो एक-दूसरे के समीप हो।

इन कमियो को दूर करने के लिए लोच का मूल सूत्र सशोधित रूप मे प्रयुक्त किया जा सकता है। मान लीजिए चित्र 3-8 के सन्दर्भ मे लोच का माप इस प्रकार किया जाता है

$$\epsilon = \frac{\Delta X/X}{\Delta p/p_1} \quad \text{....(33)}$$

जहाँ p_1 दो कीमतो मे नीचे वाली कीमत है और X दो मात्राओ मे नीचे वाली मात्रा है। अब यदि हम A और B के बीच लोच को आँकते हैं तो हमे पता लगता है कि

$$\epsilon = \frac{200\ 000}{1,000\ 000} - - \frac{10}{90} = \frac{200\ 000}{1\ 000,000} \times \frac{-90}{10} = -1\ 8 \quad \cdot\cdot (34)$$

यह सशोधित सूत्र आधारभूत सूत्र से प्राप्त दो गुणाको के बीच मे एक अत्यन्त उपयोगी औसत प्रदान करता है।[10]

माग की लोच का गुणाक कीमत के 1 प्रतिशत परिवर्तन से माग की मात्रा के निकटतम प्रतिशत परिवर्तन को दर्शाता है और निशान मे ऋणात्मक होगा क्योकि कीमत व माग की मात्रा विपरीत दिशाओ म परिवर्तित होते हैं। लेकिन जब अर्थशास्त्री लोच की मात्रा की चर्चा करते है तो उनका आशय गुणाक के निरपेक्ष मूल्य से होता है और वे ऋणात्मक निशान छोड देते हैं। अत वे इस प्रकार कहते हैं कि -1 लोच $-\frac{1}{2}$ लोच से अधिक होती है और -2 लोच -1 लोच से अधिक होती है।

बिन्दु-लोच (Point Elastici')—बिन्दु-लोच का विचार आर्क-लोच से ज्यादा सुनिश्चित होना है। जिन दो बिन्दुओ के बीच आर्क लोच मापी जाती है यदि वे एक-दूसरे के अधिकाधिक निकट लाए जाते हैं तो बिन्दुओ की दूरी के शून्य के समीप पहुँचने पर आर्क-लोच बिन्दु लोच हो जाती है।

---

10 आर्क-लोच का एक अधिक जटिल सूत्र जो प्राय व्यवहार मे आता है, इस प्रकार होना ह

$$\epsilon = \frac{X - X_1}{X + X_1} \div \frac{p - p_1}{p + p_1}$$

चित्र 3-8 म A और B बिन्दुओ के बीच इस सूत्र के उपयोग से प्राप्त की गई लोच 1 7 होगी। यह सूत्र भी आधारभूत सूत्र के प्रयोग से प्राप्त किए गए गुणाको के बीच का औसत प्रदान करता है जब कि हम शुरू में A से B तक जाते हैं और बाद में विपरीत दिशा म B से A तक जाते हैं। देखिए जॉर्ज जे॰ स्टिगलर, The Theory of Price, तृतीय सस्करण, (न्यूयार्क, कोलेन-कोलियर एण्ड मैकमिलन कम्पनी, 1966) पृष्ठ 331–333.

बिन्दु पर लोच का माप एक सरल ज्यामितीय विधि के द्वारा किया जा सकता है। चित्र 3–9 एक सरल रेखा (रेखीय) माग वक्र को प्रदर्शित करता है। p बिन्दु पर लोच का माप करने के लिए हम आधारभूत सूत्र से आरम्भ करते हैं :

$$\epsilon = \frac{\Delta X/X}{\Delta p/p} = \frac{\Delta X}{X} \times \frac{p}{\Delta p} \qquad \dots (3\ 5)$$
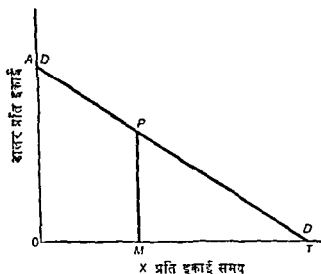
चित्र 3–9 बिन्दु-लोच का माप

इसको दूसरे रूप मे इस प्रकार भी रख सकते हैं [11]

$$\epsilon = \frac{\Delta X}{\Delta p} \times \frac{p}{X} \qquad \dots (3\ 6)$$

माग-वक्र पर p बिन्दु से कीमत के मामूली परिवर्तनो के लिए $\frac{\Delta p}{\Delta X}$ वक्र के निकटतम ढाल का बीजगणितीय स्वरूप होता है। ज्यामितीय रूप मे, माग-वक्र का ढाल

11. कलन (calculus) की भाषा में

$$\epsilon = \lim_{\Delta P \to 0} \frac{\Delta X}{\Delta P} \times \frac{P}{X} = \frac{dX}{dP} \times \frac{P}{X}$$

MP/MT है। अत $\frac{\Delta p}{\Delta X} = \frac{MP}{MT}$, अथवा, दोनों भिन्नों को उलटने पर $\frac{\Delta X}{\Delta p} = \frac{MT}{MP}$ होता है। p बिन्दु पर कीमत MP और माग की मात्रा OM है। इस प्रकार p बिन्दु पर

$$\epsilon = \frac{MT}{MP} \times \frac{MP}{OM} = \frac{MT}{OM}$$

लोच के गुणाक अकीय मात्राओं की दृष्टि से तीन वर्गीकरणों मे रखे जा सकते हैं। लोच के एक से अधिक होने पर माग लोचदार (elastic) कहलाती है। जब लोच एक के बराबर होती है तो यह इकाई (unitary) लोच कहलाती है। लोच के एक से कम होने पर माग बेलोच (inelastic) कहलाती है। ये तीनो श्रेणियां चित्र 3–10 मे रेखीय माग-वक्र पर बतलाई गई हैं। मान लीजिए हम P बिन्दु
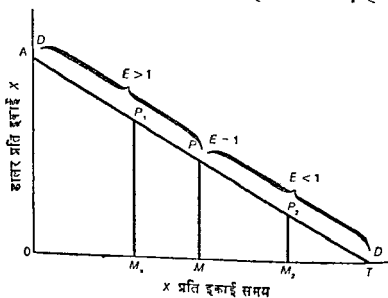
चित्र 3–10 रेखीय माग-वक्र पर लोच के माप

लेते हैं जहां पर OM=MT है। चूंकि P बिन्दु पर माग की लोच MT/OM है इसलिए उस बिन्दु पर लोच एक के बराबर है। मान लीजिए, हम माग-वक्र के ऊपरी भाग मे किसी बिन्दु P_1 को लेते हैं। चूंकि M_1T दूरी OM_1 से अधिक है इसलिए P_1 बिन्दु पर लोच एक से अधिक है। इस प्रकार हम माग वक्र के ऊपरी भाग में जितनी दूर चलते जाते हैं, लोच उतनी ही अधिक होती जाती है और अन्त में ह

A बिन्दु पर पहुँच जाते हैं जहाँ लोच असीमित (∞) होने लगती है। P बिन्दु से माग-वक्र के दायी ओर नीचे की तरफ चलन पर लोच एक से कम होगी और जितनी दूर हम चलते जायेंगे उतनी ही यह कम होती जाएगी। जब हम T बिन्दु के समीप पहुँचते हैं तो लोच शून्य के समीप आ जाती है।
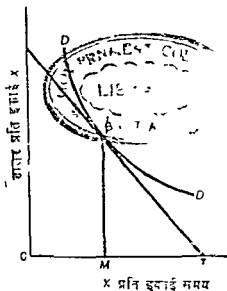
चित्र 3–11 अरैखिक माग-वक्र पर लोच का माप

बिन्दु लोच को मापने की यह ज्यामितीय विधि अरैखिक माग-वक्र (nonlinear demand curve) के किसी भी बिन्दु पर लागू की जा सकती है। मान लीजिए चित्र 3–11 मे माग-वक्र के P बिन्दु पर लोच का माप किया जाना है। सर्वप्रथम, माग-वक्र के P बिन्दु पर एक स्पर्श-रेखा (tangent) खींचनी होगी और इसे बढाना होगा ताकि यह मात्रा अक्ष को T बिन्दु पर काटे। P बिन्दु पर माग-वक्र और स्पर्श-रेखा एक-दूसरे से मिल जाते हैं और इनका ढाल एक हो जाता है, इसलिए इनकी लोचें उस बिन्दु पर एक होती हैं। लोच का माप पहले की भाँति किया जा सकता है। P से OT पर एक लम्ब डालिए और मात्रा अक्ष पर इसके कटान को M बिन्दु कहिए। P बिन्दु पर माग की लोच MT/OM के बराबर होगी।

लोच और कुल मौद्रिक व्यय
(Elasticity and total money outlays)

कीमत के परिवर्तनों, लोच व एक दी हुई वस्तु पर व्यय की जाने वाली कुल राशि का पारस्परिक सम्बन्ध माग की लोच का एक सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण पहलू

होता है। व्यय की गई कुल राशि को वस्तु के लिए उपभोक्ताओं के द्वारा किया गया कुल व्यय (TO) अथवा विक्रेताओं की कुल प्राप्तियों (TR) के रूप में माना जा सकता है। इस राशि का पता विक्रय की मात्रा को प्रति इकाई कीमत, जिस पर वस्तु बेची जाती है, से गुणा करके लगाया जा सकता है।

अब मान लीजिए कि कीमत में थोड़ी कमी होने से वस्तु की माग लोचदार होती है—ऐसी स्थिति में विक्रय की गई मात्रा में प्रतिशत वृद्धि कीमत की प्रतिशत गिरावट से अधिक होगी। चूँकि विक्रय की गई मात्रा की वृद्धि कीमत की गिरावट से आनुपातिक दृष्टि से अधिक है, इसलिए कीमत की ऐसी गिरावट से विक्रेताओं की कुल प्राप्तियाँ बढ़गी। इसी प्रकार, यदि कीमत की ऐसी गिरावट से माग बेलोच पाई जाती, तो कीमत की गिरावट की तुलना में विक्रय की मात्रा आनुपातिक दृष्टि से कम होती और विक्रेताओं की कुल प्राप्तियाँ घट जाती। लोच के एक के बराबर होने पर विक्रय की मात्रा की आनुपातिक वृद्धि कीमत की आनुपातिक गिरावट के बराबर होगी और कुल प्राप्तियाँ अपरिवर्तित बनी रहेगी। कीमत की वृद्धियों से कुल प्राप्तियों पर पड़ने वाले प्रभाव इसके ठीक विपरीत निकलेंगे।

चित्र 3–12 में रेखीय माग-वक्र पर जहा OM = MT है, उपर्युक्त परिणामों का साराश दिया गया है। जैसे-जैसे हम माग-वक्र के नीचे A से J की तरफ चलते जाते हैं, माग की लोच घटती जाती है, लेकिन यह एक से अधिक रहती है और TR बढ़ता जाता है। उदाहरण के लिए, B कीमत पर और S मात्रा पर TR बराबर होता है OBGS आयत के क्षेत्रफल के, जबकि C कीमत व मात्रा M पर TR बराबर है OCJM आयत के क्षेत्रफल के। देखने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि OCJM क्षेत्रफल OBGS क्षेत्रफल से अधिक है। जब हम माग-वक्र पर J से T की ओर बढ़ते है तो लोच घटती जारी रहती है और अब एक से कम रहती है और TR घटता है। F कीमत पर और V मात्रा पर TR की मात्रा OFRV आयत के क्षेत्रफल के बराबर होती है और स्पष्ट है कि ये क्षेत्रफल OCJM से कम है। इससे यह परिणाम निकलता है कि J बिन्दु पर लोच के एक होने पर TR अधिकतम होता है।

जब माग-वक्र एक आयताकार द्विपरवलय या अतिपरवलय (rectangular hyperbola) होता है तो इसके सभी बिन्दुओं पर माग की लोच एक के बराबर होती है। ऐसा वक्र चित्र 3–13 में दिखलाया गया है। इसका मूल लक्षण यह है कि माग की मात्रा को कीमत से गुणा करने पर कुल प्राप्तियाँ उतनी ही बनी रहती हैं चाहे कोई भी कीमत क्यों न ली गई हो। कीमत की वृद्धि अथवा कीमत की गिरावट पर कुल प्राप्तियाँ (total receipts) अपरिवर्तित बनी रहती है; अर्थात् $X \times P = X_1 \times p_1 = \ldots\ldots = X_n \times p_n$.
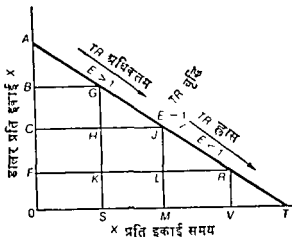
चित्र 3–12 लोच, कीमत-परिवर्तन और TR*
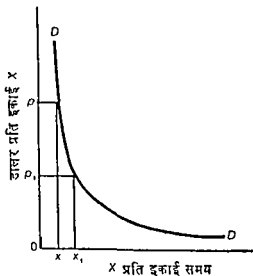
चित्र 3–13 इकाई लोच, कीमत-परिवर्तन, और TR

जो व्यवसायी अपनी वस्तु की कीमत मे परिवर्तन करने की बात सोचता है उसका कीमत के परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तु की माग की लोच से गहरा सम्बन्ध होता है। माग के बेलोच होने पर कीमत मे वृद्धि तो की जा सकती है, लेकिन कीमत मे कमी करना उचित नही होगा। कीमत की वृद्धि से विक्रेता को कुल प्राप्तिया बढ जायेंगी जबकि साथ मे इससे उसकी बिक्री मे कमी आ जायगी। कीमत की कमी

* चित्र 3–12 में TR अधिकतम के स्थान पर TR वृद्धि एव TR वृद्धि के स्थान पर TR अधिकतम पढ़ें।

से उसकी बिक्री तो बढ जायेगी लेकिन उसकी कुल प्राप्तियो मे कमी आ जायेगी।

माग की लोच को प्रभावित करने वाल तत्व

अब लोच को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्वो पर विचार करना शेष रह गया हैं। ये इस प्रकार है —(1) विचाराधीन वस्तु के लिए अच्छे स्थानापन पदार्थों की उपलब्धि (2) वस्तु कितने उपयोगो मे लगाई जा सकती है, (3) ग्राहको की क्रय-शक्ति की तुलना म वस्तु की कीमत, और (5) स्थापित होने वाली कीमत माग वक्र के ऊपरी सिरे की तरफ है अथवा निचले सिरे की तरफ है। प्रचलित कीमत के समीप माग अधिक लोचदार हैं अथवा कम, इसको जानने के लिए हमे उपर्युक्त तत्वो पर विचार करना होगा।

स्थानापन्न पदार्थों की उपलब्धि सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व है। यदि उत्तम स्थानापन्न (good substitutes) उपलब्ध होते है तो एक दी हुई वस्तु या साधन की माग मे लोचदार होने की प्रवृत्ति होगी। यदि सम्पूर्ण-गेहूँ (whole-wheat) की रोटी की कीमत घटा दी जाती है और अन्य किस्मो की कीमतें स्थिर रहती हैं तो उपभोक्ता शीघ्रतापूर्वक अन्य किस्मो से सम्पूर्ण गेहूँ की रोटी की तरफ आ जायेंगे। इसके विपरीत, सम्पूर्ण गेहूँ की रोटी की कीमत के बढने पर, अन्य किस्मो की कीमतो के स्थिर रहने पर, उपभोक्ता शीघ्रतापूर्वक इससे हटकर अपेक्षाकृत नीची कीमत वाली स्थानापन्न किस्मो पर आ जायेंगे।

एक दी हुई वस्तु या साधन के लिए उपयोगो की सीमा जितनी विस्तृत होती है, इसकी माग उतनी ही अधिक लोचदार होती है। एक वस्तु के उपयोगो की सख्या जितनी अधिक होती है उसकी कीमत के परिवर्तनो से माग की मात्रा मे परिवर्तन की उतनी ही अधिक सम्भावना होती है। मान लीजिए, एल्यूमिनियम का उपयोग केवल वायुयान के फ्रेम या ढाचे के निर्माण मे ही किया जाता है। इसकी कीमत के परिवर्तन से इसकी माग की मात्रा मे परिवर्तन की ज्यादा सम्भावना नही होगी और इसकी माग बेलोच होगी। वास्तव मे एल्यूमिनियम का प्रयोग ऐसे सैकडो उपयोगो मे किया जा सकता है जिनमे हल्के वजन वाले धातु की आवश्यकता होती है। इसलिए माग की मात्रा मे सम्भावित परिवर्तन काफी अधिक होगा। इसकी कीमत मे वृद्धि होने से इसके आर्थिक दृष्टि मे वाछनीय उपयोगो की सूची मे से कुछ उपयोग कम हो जायेंगे और कीमत की गिरावट से उस सूची मे कुछ उपयोग और जुड जायेंगे। इन सम्भावनाओ से एल्यूमिनियम की माग अधिक लोचदार हो जाती है।

जो वस्तुएँ ग्राहको की क्रय-शक्ति मे से बडा भाग ले लेती है उनकी लोच उन वस्तुओ की माग की लोच से अधिक होती हैं जो उनकी क्रय शक्ति मे अपेक्षाकृत कोई महत्व नहीं रखती। गहरे हिमकारी यत्रो (deep freezers) जैसी वस्तुए, जिनमे

भारी मात्रा मे व्यय की आवश्यकता होती है, उपभोक्ताओं को कीमत-जागरूक (price-conscious) और स्थानापन्न-जागरूक (substitute-conscious) बना देती हैं। गहरे हिमकारी यंत्रों की कीमत मे वृद्धि होने से व्यावसायिक लॉकरों के उपयोग मे वृद्धि हो जायेगी। इसलिए कीमत के परिवर्तनों के फलस्वरूप माग की मात्रा मे काफी परिवर्तन होंगे। मसाले जैसी वस्तुओं के लिए जिन पर उपभोक्ता की आय का नगण्य-सा भाग खर्च होता है, कीमत के परिवर्तनों का माग की मात्रा पर लगभग कोई प्रभाव नही पडता।

यदि एक वस्तु की चालू कीमत उसके माग-वक्र के ऊपरी हिस्से मे है तो माग की लोच उस स्थिति की बनिस्बत अधिक होगी जबकि कीमत निचले हिस्से मे होती है। यह लोच का एक विशुद्ध गणितीय निर्धारक (determinant) है और इसकी मान्यता वक्र के स्वरूप पर निर्भर करती है। यह अन्य तीन निर्धारकों की तुलना मे पूर्णतया भिन्न आधार पर टिका हुआ है।

चित्र 3–14 मे एक रेखीय माग-वक्र दर्शाया गया है।[12] यदि प्रारम्भिक कीमत P है और यह बदल कर P_1 हो जाती है और प्रारम्भिक मात्रा X है और वह बदल कर X_1 हो जाती है तो माग की मात्रा का प्रतिशत परिवर्तन अधिक होगा क्योंकि *मात्रा के परिवर्तन की तुलना मे प्रारम्भिक मात्रा थोडी है। कीमत का प्रतिशत*
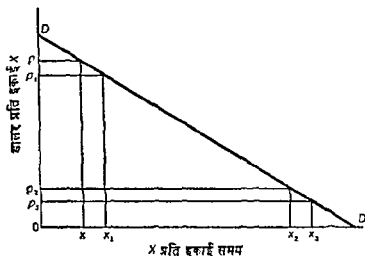
चित्र 3–14 तुलनात्मक प्रतिशत परिवर्तनों पर लोच की निर्भरता

12. इस पैरा का तर्क उस माग-वक्र पर लागू नही होता जो आयताकार हाइपरबोला (rectangular hyperbola) है, अथवा जो इसकी तुलना मे मूलबिन्दु के ज्यादा उन्नतोदर होता है। यह केवल उन्ही पर लागू होता है जिनमे कम उन्नतोदरता (convexity) पाई जाती है।

परिवर्तन थोड़ा होगा क्योंकि कीमत के परिवर्तन की तुलना में प्रारम्भिक कीमत अधिक है। मात्रा के अधिक प्रतिशत परिवर्तन को कीमत के थोड़े प्रतिशत परिवर्तन से विभाजित करने का परिणाम यह है कि मांग लोचदार होती है।

यदि प्रारम्भिक कीमत P_3 है जो बदलकर P_3 हो जाती है और प्रारम्भिक मात्रा X_2 है जो बदलकर X_3 हो जाती है, तो उलटा परिणाम निकलेगा। यहाँ पर मात्रा का प्रतिशत परिवर्तन थोड़ा है, क्योंकि प्रारम्भिक मात्रा अधिक है। कीमत का प्रतिशत परिवर्तन अधिक है क्योंकि प्रारम्भिक कीमत थोड़ी है। मात्रा के थोड़े प्रतिशत परिवर्तन को कीमत के बड़े प्रतिशत परिवर्तन से विभाजित करने का परिणाम है कि मांग बेलोच होती है।

स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि से सम्बन्धित प्रथम बात के सम्भावित अपवाद को छोड़कर मांग की लोच के कोई अचूक आधार (inballible criteria) नहीं पाये जाते हैं, बल्कि वे केवल प्रवृत्ति के कुछ सूचक अवश्य होते हैं। इसके अलावा यह आवश्यक नहीं है कि वे सब एक ही समय में एक ही दिशा में काम करें। उनमें से एक या अधिक दूसरों के विपरीत भी कार्य कर सकते हैं और ऐसी स्थिति में लोच की मात्रा विरोधी तत्वों की सापेक्ष शक्ति पर ही निर्भर करेगी।

मांग की तिरछी लोच या प्रतिलोच
(Cross Elasticity of demand)

मांग की तिरछी लोच या प्रतिलोच लोच की एक दूसरी धारणा है जो आर्थिक विश्लेषण में उपयोगी होती है। यह इस बात को मापती है कि विभिन्न वस्तुएँ परस्पर कहाँ तक सम्बद्ध हैं। यदि हम X और Y वस्तुओं को लें तो Y के सन्दर्भ में X की तिरछी लोच, X की मात्रा के प्रतिशत परिवर्तन को Y की कीमत के प्रतिशत परिवर्तन से विभाजित करने से प्राप्त परिणाम के बराबर होगी। इसे गणितीय रूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

$$\theta_{xy} = \frac{\Delta x/x}{\Delta P_y / P_y} \quad ....(3.8)$$

वस्तुएं व सेवाएं, अथवा साधन भी परस्पर स्थानापन्न या पूरक के रूप में पाये जा सकते हैं।

जब वस्तुएं एक दूसरे की स्थानापन्न होती हैं तो उनके बीच पाई जाने वाली तिरछी लोच धनात्मक होती। इस स्थिति के लिए हम फ्रैंकफरटर्स मांग (Frankfurters) और हेमबरगर मांग (Hamburger) का उदाहरण ले सकते हैं। फ्रैंकफरटर्स की कीमत में वृद्धि हो जाने से हेम्बरगर का उपयोग बढ़ जायेगा।

फ्रेंकफरटर्स की कीमत और हेम्बरगर के उपभोग के परिवर्तन एक ही दिशा मे होते हैं, चाहे कीमत बढ़े अथवा घटे। इनमे तिरछी लोच धनात्मक (positive) ही होती है।

जो वस्तुएँ एक दूसरे की पूरक होती हैं उनमे तिरछी लोच के गुणाक ऋणात्मक (negative) होते है। उदाहरण के लिए, हम नोटबुक के कागज एव पन्सिलो को ले सकते हैं। नोटबुक के कागज की कीमत मे वृद्धि होने से कागज का उपभोग कम हो जाता है, और परिणामस्वरूप पेन्सिलो का उपभोग भी कम हो जाता है। कागज की कीमत मे कमी होने से इसका उपभोग बढ जाता है और पन्सिलो का उपभोग भी बढ जाता है। नोटबुक के कागज की कीमत मे परिवर्तन होने से पेन्सिलो के उपभोग मे विपरीत दिशा मे परिवर्तन होता है। इसलिए माग की तिरछी लोच का गुणाक ऋणात्मक होता है।

बहुधा माग की तिरछी लोच का उपयोग एक उद्योग की सीमाओ (boundaries) को परिभाषित करने मे किया जाता ह। लेकिन इस सम्बन्ध म इसके उपयोग मे कुछ जटिलताएँ पाई जाती हैं। ऊँची तिरछी लोच गहरे सम्बन्धो अथवा एक ही उद्योग की वस्तुओ को सूचित करती है। नीची तिरछी लोचे दूर के सम्बन्धो अथवा विभिन्न उद्योगो की वस्तुओ को सूचित करती है। एक वस्तु जिसकी तिरछी लोच अन्य सभी वस्तुओ के सम्बन्ध मे नीची होती है, कभी-कभी अकेली ही एक उद्योग म मानी जाती है। वह वस्तु-समूह प्राय एक उद्योग कहलाता है, जिसकी तिरछी लोचे समूह के अदर तो ऊँची होती है लेकिन अन्य वस्तुओ के सन्दभ म जिसकी तिरछी लोचें नीची होती हैं। पुरुषो के विभिन्न किस्म के जूतो की तिरछी लोचे आपस म तो ऊँची होती हैं, लेकिन पुरुषो के वस्त्रो की अन्य वस्तुओ की तुलना म ये नीची होती हैं। इस प्रकार पुरुषो के जूतो के उद्योग को पृथक् करने के सम्बन्ध मे हम एक आधार मिल जाता है।

उद्योग की सीमाओ को निर्धारित करने के साधन के रूप मे तिरछी लोच की एक कठिनाई यह है कि वस्तुओ के बीच मे गुणाक (coefficients) कितने ऊँचे हो ताकि वे एक ही उद्योग मे शामिल की जा सकें। कुछ खाद्य पदार्थों मे तिरछी लोचें काफी ऊँची होती है-जैसे जमे हुए मटर, जमी हुई हरी सेम, जमे हुए शतावर (asparagus) की नोके, आदि मे पाई जाती है। अन्य खाद्य पदार्थो के बीच, जैसे जमी हुई सब्जियो एव जमे हुए मास मे यह काफी नीची होती है। प्रश्न उठता है कि क्या कोई जमा हुआ खाद्य उद्योग भी होता है? इसका कोई सुस्पष्ट उत्तर नहीं दिया जा सकता। कुछ सामान्य आर्थिक समस्याओ का सर्वोत्तम हल तभी निकल सकता है जबकि समस्त जमे हुए खाद्य पदार्थ एक ही उद्योग मे शामिल किये जायें। अधिक

सकीर्ण अथवा अधिक विशिष्ट आर्थिक समस्याओ के लिए अधिक सकीर्ण उद्योग-समूहो की आवश्यकता होगी, जैसे एक जमे हुए सब्जी-उद्योग या सम्भवत एक जमे हुए मटर उद्योग की भी आवश्यकता हो सकती है। तिरछी लोचे उद्योग की सीमाओं को सुनिश्चित रूप से निर्धारित करने के बजाय उनके लिए केवल निर्देशन का ही काम करती है।

दूसरी जटिलता तिरछे सम्बन्धो की श्रृंखलाओ से सरोकार रखती है। यात्री कारो एव स्टेशन वैगनो के बीच और स्टेशन वैगनो व पिक-अप ट्रको (pick-up trucks) के बीच तिरछी लोचे ऊँची हो सकती हैं। लेकिन यात्री-कारो एव पिक-अप ट्रको की तिरछी लोचे नीची हो सकती है। प्रश्न उठता है कि ऐसी स्थिति मे वे भिन्न-भिन्न उद्योगो मे है या एक ही उद्योग मे है? इसके अलावा जिस प्रश्न का हम हल निकालना चाहते है उसकी प्रकृति ही उद्योग की सीमाओ की उचित परिभाषा करने मे हमारा मार्गदर्शन करेगी।

सारांश

विशुद्ध प्रतिस्पर्धा की प्रकृति एव आर्थिक विश्लेषण मे इसके स्थान को स्पष्टतया समझना होगा। विशुद्ध प्रतिस्पर्धा की धारणा वस्तुत ऐसी है जो एक व्यक्तिगत आर्थिक इकाई के उन बाजारो के सदर्भ मे जिनमे यह अपना कार्य करती है, छोटेपन (smallness) को प्रगट करती है, यह माग व पूर्ति के परिवर्तनो के फलस्वरूप कीमतो की स्वतन्त्र रूप से बदलने की प्रवृत्ति को बतलाती है, और यह इस बात को भी स्पष्ट करती है कि अर्थव्यवस्था मे वस्तुओ व साधनो के लिए काफी मात्रा मे गतिशीलता पाई जाती है।

विशुद्ध प्रतिस्पर्धा की धारणा वास्तविक जगत का सही वर्णन प्रस्तुत नही करती है, लेकिन इससे इसकी लाभदायकता समाप्त नही हो जाती। यह आर्थिक विश्लेषण के लिए तर्कसगत प्रारम्भिक बिन्दु प्रदान करती है। पर्याप्त मात्रा मे प्रतिस्पर्धा पाई जाती है, ताकि यह हमे अनेक आर्थिक समस्याओ के सही उत्तर दे सके। इसके अतिरिक्त प्रतिस्पर्धा अर्थव्यवस्था की वास्तविक कार्य-सिद्धि का मूल्याकन करने मे एक मानक" ("norm") का काम करती है।

अन्य बातो के पूर्ववत् रहने पर, माग प्रति इकाई समय के अनुसार एक वस्तु की उन मात्राओ को दर्शाती है जिन्हे उपभोक्ता वैकल्पिक कीमतो पर खरीदेंगे। यह माग अनुसूची अथवा माग-वक्र के रूप मे प्रदर्शित की जा सकती है। हमे माग के परिवर्तनो और एक दिये हुए माग-वक्र पर होने वाली गति (movements) के बीच सावधानीपूर्वक भेद करना होगा। माग के परिवर्तन तो "अन्य बातो के समान" रहने वाली शर्तों मे से एक या अधिक के परिवर्तित होने से उत्पन्न होते हैं। एक दिये

हुए माग वक्र पर होने वाली गति मे यह मान लिया जाता है कि "अन्य बातो के समान" रहने की शर्तें नही बदलती हैं।

पूर्ति प्रति इकाई समय के अनुसार एक वस्तु की उन विभिन्न मात्राओ को दर्शाती है जिन्हें विक्रेता सभी सभावित कीमतो पर, अन्य बातो के पूर्ववत् रहने पर, बाजार मे प्रस्तुत करने को उद्यत होंगे, और माग सहित यह वस्तु की सतुलन-कीमत निर्धारित करती है। वस्तु की सतुलन-कीमत वह कीमत होती है जो एक बार प्राप्त किये जाने पर बनी रहती है। आधिक्य को बेचने का प्रयास करने वाले विक्रेताओ के कार्यों से सतुलन कीमत से ऊँची कीमत घटकर सतुलन-कीमत की तरफ आती है। अल्प पूर्ति को खरीदने का प्रयास करने वाले क्रेताओ के कार्यों से सतुलन कीमत से नीची कीमत बढकर सतुलन की तरफ जाती है। पूर्ति के दिये हुए होने पर माग मे वृद्धि से साधारणतया एक वस्तु की कीमत व माग की मात्रा दोनो म वृद्धि होती है, जबकि माग मे कमी से विपरीत प्रभाव आता है। एक वस्तु की माग के दिये हुए होने पर पूर्ति मे वृद्धि से साधारणतया कीमत मे कमी व माग की मात्रा म वृद्धि आती है। पूर्ति मे कमी से प्राय कीमत मे वृद्धि व विनिमय की मात्रा मे कमी आती है।

माग की लोच एक वस्तु की कीमत के परिवर्तन से उसकी माग की मात्रा की प्रतिक्रियात्मकता (responsiveness) का माप होती है। इसकी परिभाषा इस प्रकार की जाती है कि, जब कीमत का परिवर्तन मामूली होता है, तो यह मात्रा के प्रतिशत परिवर्तन को कीमत के प्रतिशत परिवर्तन से विभाजित करने से प्राप्त होती है। आर्क-लोच दो विभिन्न बिन्दुओ के बीच लोच का निकटतम माप होती है। बिन्दु-लोच माग-वक्र के एक ही बिन्दु पर लोच का माप प्रस्तुत करती है। माग की लोच वह प्रमुख तत्त्व है जो इस बात को निर्धारित करता है कि जब एक वस्तु की कीमत परिवर्तित होती है तो, माग के दिये हुए होने पर, कुल व्यावसायिक प्राप्तियो मे क्या परिवर्तन होता है। जब माग बेलोच होती है तो कीमत की वृद्धि से कुल प्राप्तियाँ बढ जाती हैं, और कीमत की गिरावट से कुल प्राप्तियाँ घट जाती हैं। माग के लोचदार होने पर कीमत के बढने अथवा घटने से विपरीत परिणाम निकलते हैं। किसी भी वस्तु के लिए माग की लोच का अश निम्न बातो पर निर्भर करता है स्थानापन्न पदार्थों की उपलब्धि, उस वस्तु के उपयोगो की सख्या, उस वस्तु का उपभोक्ताओ के बजटो मे स्थान एव माग-वक्र का वह क्षेत्र (region) जिसके अन्तर्गत कीमत गतिमान होती रहती है।

वस्तुओ के बीच माग की तिरछी लोच कीमत सिद्धान्त की एक महत्त्वपूर्ण धारणा मानी जाती है। ऊँची धनात्मक तिरछी लोचें वस्तुओ के बीच प्रतिस्थापन के ऊँचे अश को सूचित करती है और इसका उपयोग बहुधा विशेष उद्योगो की सीमाओ

के निर्धारण मे किया जाना है। ऊँची ऋणात्मक तिरछी लोचें वस्तुओं के बीच पूरकता के उँचे अंश को सूचित करती हैं।

अध्ययन-सामग्री

Boulding, Kenneth E., *Economic Analysis*, 4th ed., Vol, 1 (New York Harper & Row, Publishers, Inc., 1966), Chaps. 7 and 8.

Knight Frank H, *Risk, Uncertainty and Profit* (Boston: Houghton Mifflin Company, 1921) chap. 1.

Machlup, Fritz, *The Political Economy of Monopoly* (Baltimore: The Johns Hopkins Press, 1952), pp. 12-23.

Marshall, Alfred, *Principles of Economics*, 8th ed. (London: Macmillan & Co. Ltd., 1920), Bk. III, chap. IV and Bk. V, Chaps I–III.

Stonier, Alfred W. & Hague, Douglas., *A Textbook of Economic Theory*, 3rd ed. (New York John Wiley & Sons, Inc., 1964), Chap. 1.

□ □ □

मॉडल के आधारभूत प्रयोग

माग-पूर्ति-कीमत मॉडल सरकार व निजी समूहो के द्वारा अपनायी जाने वाली कुछ नीतिया को समझने मे मदद देता है। यह मॉडल अधिक प्रत्यक्ष रूप मे कीमत-निर्धारण के समझौतो व कर नीतियो पर लागू किया जा सकता है। इनमे से अधिकाश का स्पष्ट उद्देश्य आमदनी के वितरण की असमानताओ को ठीक करना होता है। लेकिन विश्लेषणात्मक यन्त्र के रूप मे मॉडल का उपयोग करने पर इन समझौतो के परिणाम सदैव आशानुकूल नही होते। सर्वप्रथम हम उन नीतियो पर दृष्टिपात करेंगे जिनके द्वारा विशिष्ट वस्तुओ के लिए न्यूनतम कीमत अथवा निम्नतम कीमतें (price floors) निर्धारित की जाती हैं। उसके बाद हम अधिकतम कीमत अथवा कीमत सीमा-निर्धारण (price-ceiling) की नीतियों पर विचार करेंगे। अन्त मे हम करापात (tax incidence) की समस्या की जाँच करेंगे।

न्यूनतम कीमत-नीतियाँ

कृषि कीमत समर्थन (Agricultural Price Supports)

सरकार की तरफ से न्यूनतम कीमत नीतियो का सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त निस्सदेह वह कृषि कीमत समर्थन कार्यक्रम है जो 1930 की दशाब्दी की महान् मन्दी के दिनो मे व उस समय से सघीय सरकार द्वारा विकसित किया गया है। समर्थन कार्यक्रम के पक्ष वालो का मत है कि बेचे जाने वाले कृषि पदार्थों की कीमतें किसानो द्वारा खरीदे जाने वाले पदार्थों की कीमतो की तुलना मे बहुत नीची होती हैं। दूसरे शब्दो मे, वे असमान या अनुचित होती हैं। ये अपेक्षाकृत नीची फार्म कीमतें ही वह महत्त्वपूर्ण कारण है जिसकी वजह से प्रति व्यक्ति फार्म आमदनी औसत अमरीकी प्रति व्यक्ति आमदनी से नीची होती है। परिणामस्वरूप, काग्रेस ने कीमत-समर्थनो की इजाजत दी है और फार्म-आमदनी की समस्या के आशिक हल के रूप मे इनका उपयोग किया गया है।

कार्यक्रम के कीमत सिद्धान्त सम्बन्धी आवश्यक लक्षण गेहूँ के सन्दर्भ मे चित्र 4–1 मे दर्शाये गए हैं। अनियन्त्रित बाजार मे जहाँ कीमत स्वतन्त्र रूप से बदल सकती है,
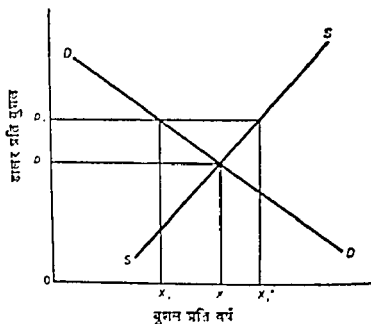
चित्र 4–1 कृषि कीमत समर्थनों (price supports) के प्रभाव

सन्तुलन कीमत स्तर प्रति बुशल P है, और विनिमय की मात्रा प्रति वर्ष X बुशल है। अब कल्पना कीजिए कि कीमत P अपेक्षाकृत काफी नीची मानी जाती है और समर्थित कीमत P_1 निर्धारित की जाती है। किसान जिस गेहूँ को P कीमत पर नहीं बेच सकें सरकार उसे खरीद कर कीमत-समर्थन प्रदान करती है।[1] चित्र 4–1 में उपभोक्ता प्रतिवर्ष X_1 बुशल खरीदेंगे और सरकार के लिए $X_1 X'_1$ का आधिक्य खरीदने हेतु छोड़ देंगे।

समर्थित कीमत सन्तुलन स्तर से ऊपर होने पर ही प्रभावपूर्ण होगी और इसके प्रभावपूर्ण होने पर आधिक्य (surpluses) उत्पन्न होंगे। यदि यह P से नीची होगी

1. विभिन्न कृषि समायोजन (adjustment) अधिनियमों के अन्तर्गत समर्थित कीमत संग्रह व ऋण कार्यक्रम के माध्यम से निर्धारित की जाती है। एक कृषक बाजार में P कीमत पर अपना गेहूँ बेचने की बजाय सरकार से प्रति बुशल P_1 कीमत पर अपने गेहूँ पर कर्ज प्राप्त कर सकता है, बशर्ते कि वह सरकार द्वारा स्वीकृत सुविधाओं के अन्तर्गत संग्रहालय में गेहूँ रख देवें। ऋण चुकाने के समय वह अपने गेहूँ को बेचकर इसका भुगतान कर सकता है, अथवा वह सरकार को पूर्ण भुगतान करने के लिए गेहूँ दे सकता है। प्रश्न यह है कि भुगतान के समय गेहूँ के बाजार भाव के P_1 से ऊँचा होने पर किसान क्या करेगा? कीमत के P_1 से नीचे होने पर वह क्या करेगा? वास्तव में सरकार इस बात की गारन्टी दे रही है कि कीमत P_1 से नीचे नहीं गिरेगी। किसान बाजार में कीमत पर जितना बेच सकते हैं उतना बेच देते हैं और वस्तुतः सरकार आधिक्य (surplus) को खरीद लेती है।

है तो अभाव के कारण ग्राहक कीमत को बढा कर सन्तुलन स्तर की तरफ ले जाने के लिए प्रेरित होंगे जिससे समर्थित कीमत प्रभावपूर्ण नहीं रहेगी। अत यह P से ऊपर के कीमत स्तरो पर ही प्रभावपूर्ण रहेगी। फिर भी काग्रेस के लोग, सरकारी अधिकारी, किसान और शेष सामान्य जनता का बडा भाग इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया करता है कि कीमत-समर्थन कार्यक्रम से आधिक्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और इन आधिक्यो के पाए जाने पर वे इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि कार्यक्रम मे कुछ-न-कुछ चोज ठीक ढग से सचालित नही की जा रही है।

आधिक्य के सचय या इकट्ठा होने की स्थिति म सरकार क्या करती है ? हम बाजारो के बारे मे जो कुछ जानते हैं उसके आधार पर कह सकते हैं कि यदि यह गेहूँ की निजी माग को बढा सके और/अथवा पूर्ति को घटा सके तो आधिक्य की समस्या कम गम्भीर हो जाएगी। लेकिन सरकार के लिए गेहूँ की निजी माग को बढाना बहुत मुश्किल हो सकता है। ज्यादा से ज्यादा उसे इस बात से सन्तुष्ट होना पडेगा कि वह आधिक्य के उपयोग के मार्ग निकाल ले। उदाहरण के लिए यह आधिक्य मे से मुफ्त या कम कीमत पर गेहूँ देकर स्कूल के दोपहर के भोजन के कार्यक्रम मे आर्थिक सहायता दे सकती है। अथवा यह विदेशो म घरेलू समर्थित भावो से नीचे के भावो पर गेहूँ बेच सकती है। इनमे से कोई भी विकल्प समस्या से मुक्त नही है, क्योकि सरकार को यह निश्चित करना होगा कि विदेशो मे बेचा गया गेहूँ वही वापस देशी बाजार मे प्रविष्ट न हो जाए और अपने देश मे यह जिन उपयोगो मे लगाया गया है उससे यह निजी माग का एक अश प्रतिस्थापित न कर दे। पूर्ति को घटाने के उपायो मे क्षेत्रफल के प्रतिबन्ध, "भूमि-बैंक" ("soil bank') के माध्यम से भूमि को काश्त से अलग रखने, विपणन अभ्यश (marketing quotas), आदि आते हैं।

इस सम्बन्ध मे रुचिप्रद प्रश्न उठाए जा सकते है कि कृषि कीमत-समर्थन कार्यक्रमों से अर्थव्यवस्था मे वस्तुत अधिक समानता की दिशा म योगदान मिलता है अथवा नही। क्या ये आमदनी की असमानताएँ घटाते हैं ? चूँकि वस्तु की प्रति इकाई कीमत बढायी जाती है, इसलिए जो किसान दूसरे से दस गुना गेहूँ उत्पन्न करता है और बेचता है उसकी पूरक आय दूसरे से दस गुनी होगी। समर्थन कार्यक्रम की लागत कर-राजस्व से पूरी की जाती है। प्रश्न उठता है कि करदाताओ से किसानो की तरफ आय के अन्तरण (transfer of income) से पूर्व क्या करदाता उन व्यक्तियो की तुलना मे ज्यादा धनी या ज्यादा निर्धन हैं जिन्हे समर्थन-कार्यक्रम मे भुगतान मिलते हैं ? एक प्रश्न यह भी है कि हम उस स्थिति मे अर्थव्यवस्था की समग्र कार्यकुशलता के बारे मे क्या कह सकते है जहाँ कृषक सन्तुलन कीमत स्तर पर जितना उत्पादन करते उससे ज्यादा उत्पादन करने हेतु साधनो का उपयोग करने

के लिए प्रेरित होते हैं, अथवा, पूर्ति-प्रतिबन्धों की दशा में अर्थव्यवस्था के कुछ दुर्लभ साधनों को अप्रयुक्त (idle) ही छोड़ देते हैं ?

न्यूनतम मजदूरी

सरल कीमत-निर्धारण विश्लेषण जितना वस्तुओं व सेवाओं के बाजारों पर लागू होता है उतना ही यह साधन-बाजारों पर भी लागू होता है । श्रम-बाजार सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं, क्योंकि न्यूनतम कीमतों या मजदूरी की दरों का निर्धारण इस देश में काफी व्यापक रूप से पाया जाता है और इसे सामान्यतया स्वीकृत भी माना जाता है । न्यूनतम मजदूरी की दरों का निर्धारण दो विधियों से किया जाता है : (1) न्यूनतम मजदूरी कानून बनाकर और (2) मजदूर संघ व प्रबन्ध में वार्ता के जरिये तय किए गए सामूहिक सौदाकारी संविदाओं (collective bargaining contracts) के द्वारा ।

मान लीजिए हम साधारण अदक्ष श्रम के बाजार पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं जो दो कारणों से उत्तम दृष्टान्त प्रस्तुत करता है : (1) अधिकांश दशाओं में यह प्रतिस्पर्धात्मक रूप से खरीदा जाता है—पर्याप्त मात्रा में प्रयोगकर्ता (users) पाए जाते हैं, इनमें से प्रत्येक प्रयोगकर्ता कुल पूर्ति का छोटा-सा अंश ही लेता है जिससे कोई भी अकेला प्रयोगकर्ता मजदूरी की दर को प्रभावित नहीं कर सकता—
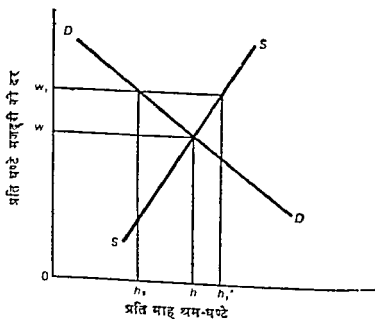
चित्र 4–2 न्यूनतम मजदूरी की दरों के प्रभाव

(2) 1938 के फेयर लेबर स्टैण्डर्ड्स एक्ट के अन्तर्गत निर्धारित न्यूनतम मजदूरी की कानूनी दरें, संशोधित रूप मे, मुख्यतया अदक्ष श्रम बाजारो मे ही क्रियाशील होती हैं, विशेषतया ऐसे बाजारो मे जिनमे अल्पसख्यक समूह व 12 से 20 वर्ष तक की उम्र के व्यक्ति भाग लेते हैं।

सन्तुलन स्तर से ऊपर निर्धारित न्यूनतम मजदूरी की दर के क्या प्रभाव होंगे ? इसका स्पष्ट उत्तर चित्र 4–2 से मिल जाता है। W सन्तुलन मजदूरी की दर पर श्रमिक h श्रम-घण्टे काम मे लगाना चाहते हैं और मालिक भी यही मात्रा प्रयुक्त करना चाहते हैं। W से नीचे निर्धारित मजदूरी की न्यूनतम दर का कोई प्रभाव नही होगा और सन्तुलन दर ही कायम रहेगी। लेकिन यदि न्यूनतम मजदूरी कानून अथवा किसी किस्म के सामूहिक समझौते की वजह से न्यूनतम मजदूरी की दर W_1 स्थापित हो जाती है तो मालिक केवल h_1 श्रम-घण्टो का काम देने को उद्यत होंगे जबकि श्रमिक h'_1 रोजगार मे लगाना चाहेंगे। परिणामस्वरूप प्रति माह बेरोजगारी की मात्रा $h_1h'_1$ श्रम-घण्टे होगी।

बहुत से लोगो को यह विश्लेषणात्मक निष्कर्ष नापसन्द होगा। उदाहरण के लिए, उस व्यापक समर्थन को देखिए जो केलिफोर्निया के अगूर चुनने वाले श्रमिको को अपना सगठन करने व अगूर उगाने वालो से ऊँची मजदूरी की दरें प्राप्त करने के सम्बन्ध मे मिला था। साथ मे विरोध के उस नितान्त अभाव पर भी दृष्टि डालिए जो सघीय (federal) न्यूनतम मजदूरी की दर के प्रति घण्टे 1 60 डालर 2 00 डालर की प्रस्तावित वृद्धि के सम्बन्ध मे उस अवधि (1972) के लिए था जबकि बेरोजगारी की दरें श्रम-शक्ति के 6 प्रतिशत मे अधिक थी। सघीय (union) नेता इस बात मे लगभग एकमत पाये जाते हैं कि वार्ता से तय की गई मजदूरी की दरो और बेरोजगारी *की दर मे कोई सम्बन्ध नही पाया जाता है।*

न्यूनतम मजदूरी के श्रमिको की आमदनी पर क्या प्रभाव होते हैं ? चित्र 4–2 मे h_1 श्रमिक जो अपेक्षाकृत ऊँची मजदूरी की दरो पर काम पा जाते हैं वे स्पष्टतया लाभ उठाते हैं। h_1h_1' श्रमिक जो बेरोजगार रहते हैं स्पष्टत हानि म रहते हैं। प्रश्न उठता है कि विचाराधीन किस्म के श्रम के सम्पूर्ण समूह पर क्या प्रभाव आता है, अर्थात्, उसके कुल मजदूरी बिल का क्या होता है ? इसका उत्तर माग की लोच पर निर्भर करता है। यदि श्रम का माग-वक्र लोचदार होता है तो मजदूरी की दर के सन्तुलन-स्तर से ऊपर तक बढ जाने पर कुल मजदूरी बिल घट जाता है। यदि माग बेलोच हो तो कुल मजदूरी बिल बढता है और यदि इसमे इकाई लोच होती है तो कुल मजदूरी बिल परिवर्तित नही होगा।

पूर्ति-प्रतिबन्ध

एक वस्तु या साधन के विक्रेताओं के समूह प्राय पूर्ति-प्रतिबन्धों का सहारा लेते हैं ताकि उन्हे जो कुछ बेचना है उसकी वे कीमतें बढा सकें। ऐसा वे इस आशा से करते हैं कि इस नीति से वे अपनी आमदनी बढा सकेंगे। मजदूर-संघो पर प्राय यह दोषारोपण किया जाता है कि व अपनी सदस्यता को सीमित करके मजदूरी की दरों को उस सीमा से ऊँचा कर लेते हैं जो अन्यथा पाई जाती। 1930 की दशाब्दी के मध्य भाग म कृषि समायोजन अधिनियम का प्रयोजन पूर्ति को प्रत्यक्ष रूप से कम करके कुछ फार्म वस्तुओं की कीमतो म वृद्धि करना था। अमेरिकी चिकित्सा सगठन व राज्य चिकित्सा सगठन भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए चिकित्सा स्कूलो मे भर्ती को सीमित करते रहे हैं। कुछ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने विश्वविद्यालयो को केवल पी-एच डी की उपाधि वाले लोगो को नियुक्त करने की आवश्यकता पर ही बल देते हैं।

इन मामलो म कार्यविधि एक-सी होती है। चित्र 4-3 मे DD माँग-वक्र व SS पूर्ति वक्र के होने पर जिस किसी का भी विनिमय किया जाएगा उसकी सन्तुलन कीमत P और क्रय व विक्रय की मात्रा X होगी। यदि X के विक्रेताओं की पूर्ति प्रतिबन्धक क्रियायें सफल होती हैं तो पूर्ति वक्र S_1S_1 के बायीं ओर खिसक जाएगा जिससे कीमत बढ कर P_1 और बिक्री की मात्रा घट कर X_1 हो जाएगी। क्या विक्रेता व्यक्तिगत हैसियत से लाभ उठाते हैं ? क्या विक्रेता सामूहिक रूप से लाभ उठाते हैं ?

पूर्ति-प्रतिबन्ध के बाद जो व्यक्तिगत विक्रेता पहले की भाँति माल बेचना जारी रखते हैं उन्हें स्पष्टतया लाभ होता है। यदि इनमे से कुछ बाजार से पूरी तरह हटा दिये जाते हैं तो उन्हे स्पष्टत घाटा होता है। अब यदि कुछ विक्रेता अपेक्षाकृत ऊँचे भावो पर बाजार म थोडी मात्रा प्रस्तुत करते हैं तो उनके बारे मे अधिक जाँच किए बिना यह नही कहा जा सकता कि उन्हे लाभ होगा या हानि। ऊँची कीमत के कारण विक्रेताओं को समूह के रूप मे लाभ होता है या हानि यह इस बात पर निर्भर करता है कि कीमत के बढने पर माग लोचदार होती है, बेलोच होती है, अथवा इकाई लोच के बराबर होती है।

अधिकतम कीमत सम्बन्धी नीतियाँ

अधिकतम कीमतें अथवा सरकार द्वारा निर्धारित कीमत-नियन्त्रण कम से कम दो प्रकार की परिस्थितियो मे आम जनता के लिए ज्यादा आकर्षण रखते हैं। सर्वप्रथम, जब कुछ मदें जिन्हे जनता अनिवार्य वस्तुओं मे शामिल करती है—उदाहरणार्थ, आवास व दवा—काफी ऊँची मानी जाने वाली कीमतो पर अपर्याप्त मात्रा मे
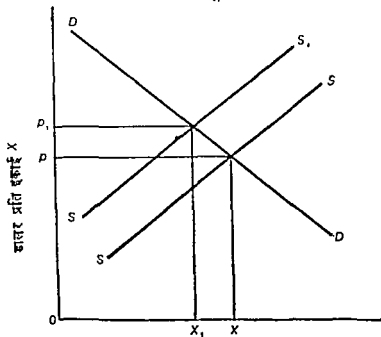
चित्र 4–3 पूर्ति प्रतिबन्ध के प्रभाव
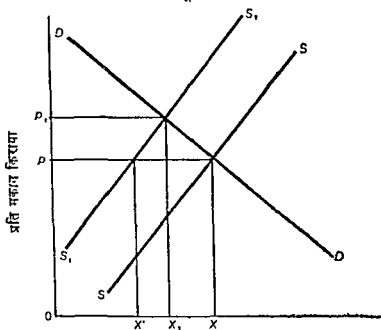
चित्र 4–4 किराए पर नियन्त्रण के प्रभाव

उपलब्ध होती हैं तो उनके सम्बन्ध में कीमत-नियन्त्रण का समर्थन किया जाने लगता है ताकि ये निर्धन व्यक्तियों की क्रय-शक्ति की पहुँच के अन्दर रह सकें। द्वितीय, बढ़ती हुई कीमतों की अवधि में जिसे मुद्रास्फीति कहा जाता है, कीमत-नियन्त्रणों को बहुधा उपयुक्त समाधान के रूप में देखा जाता है।

"अनिवार्यताओं" के लिए कीमत-नियन्त्रण

मकानों के बाज़ार कुछ अनिवार्यताओं" की कीमतों को नीचा रखने के लिए कीमत-नियन्त्रणों के उपयोग व प्रभावों का उपयुक्त दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। चित्र 4–4 में एक गंदा (ghetto) या गन्दी बस्ती में जहाँ कीमतें नियन्त्रित नहीं हैं, मकानों के लिए DD व SS बाजार माँग व पूर्ति वक्र है। सन्तुलन किराया P है और इस पर भरे हुए मकानों की संख्या X है। मकानों का कोई अभाव नहीं है क्योंकि उपभोक्ता जितने मकान चाहते हैं उनकी संख्या उस किराये पर मकान-मालिकों द्वारा की जाने वाली मकानों की पूर्ति के बराबर है।

अब कल्पना कीजिए कि गन्दी बस्तियों के लोगों की दशा सुधारने के लिए एक आवास कोड (housing code) बनाया जाता है जिसमें चालू मकानों की काफी मरम्मत व फेर-बदल आवश्यक कर दी जाती है और कोड स्टेण्डर्ड बनाये रखने के लिए रख-रखाव की लागतें बढ़ा दी जाती हैं। मकानों की पूर्ति करने की बढ़ी हुई लागत रेखाचित्र पर पूर्ति-वक्र के ऊपर S_1S_1 तक जाने से सूचित की जाती है। प्रारम्भिक किराये के स्तर P पर मकानों का अभाव X^1 X होगा। इससे किराये पर ऊपर की ओर दबाव पैदा हो जायगा।

मान लीजिए किरायों को निर्धनों की पहुँच के अन्दर रखने हेतु और मकान-मालिकों द्वारा सुधार की लागतों को किराएदारों पर टालने से रोकने के लिए किराये पर कन्ट्रोल लगा दिए जाते हैं। यदि ये P पर निर्धारित किए जाते हैं तो क्या परिणाम होगा? X′ X मकानों का अभाव जारी रहेगा और लिए जाने वाले किराए के स्तर पर प्रतिबन्धों के कारण कुछ मकान, जो कोड की आवश्यकता को पूरा नहीं कर पाते हैं, वे खाली पड़े रहेंगे।

क्या आपने एक देश के बड़े शहरों में गन्दी बस्तियों में कभी यह देखा है और इस पर विचार किया है कि यदि आवास की इतनी अधिक आवश्यकता है तो खासा अच्छे दिखने वाले मकान खाली क्यों पड़े हैं? उत्तर यह है कि नियन्त्रित कीमत पर मकान-मालिक अपने स्वामित्व वाले कुछ मकानों को कोड की आवश्यकता के अनुसार हालत में लाने की लागत लगाना उचित नहीं समझते। वे अर्थव्यवस्था में अन्यत्र अपनी मुद्रा को विनियोजित या निवेश करके ऊँचे प्रतिफल प्राप्त कर सकते हैं। यदि कीमत-नियन्त्रण न हो तो भी हम आवास कोडों के निर्माण से किरायों

के बढ़ने और उपलब्ध मकानों की संख्या के घटने की ही आशा कर सकते हैं।

मुद्रास्फीति को रोकने के लिए कीमत-नियन्त्रण

जिन बाजारों में कीमतें नियन्त्रित नहीं होती हैं उनमें वे (कीमतें) वस्तुओं की उपलब्ध पूर्तियों को उनको चाहने वाले उपभोक्ताओं में बाँटने का काम करती हैं। मान लीजिए चित्र 4–5 में अर्थव्यवस्था में उत्पादित की जाने वाली व बेची जाने वाली अनेक वस्तुओं में से X एक वस्तु है। माँग व पूर्ति क्रमश DD और SS हैं।
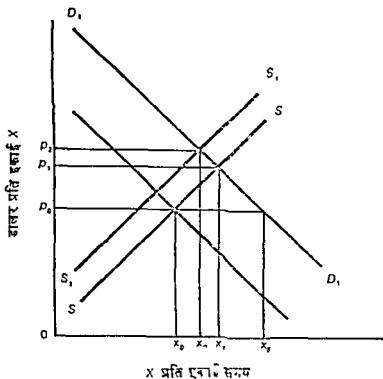
चित्र 4–5 कीमत-नियन्त्रणों के प्रभाव

कीमत सन्तुलन-स्तर P_0 पर चली जाती है जहाँ यह उपलब्ध पूर्ति को उपभोक्ताओं में बाँट देती है। अर्थव्यवस्था में प्रत्येक उपभोक्ता सन्तुलन कीमत स्तर पर जितनी मात्रा चाहता है उतनी प्राप्त कर लेता है; कोई अभाव या आधिक्य नहीं होता।

अब यदि उपभोक्ता की मौद्रिक आय में काफी वृद्धि हो जाती है तो प्रश्न उठता है कि कीमत-नियन्त्रणों के अभाव में क्या होगा? X के लिए माँग D_1D_1 जैसे स्तर तक बढ़ जाती है और कीमत-नियन्त्रणों के अभाव में उपभोक्ता कीमत बढ़ा कर P_1 कर देते हैं। जब यह क्रम चलता है और X का उत्पादन करना अधिक लाभप्रद

हो जाता है तो उत्पादक वस्तु के निर्माण के लिए आवश्यक साधनों की अधिक मात्राएँ चाहने लगते हैं। अन्य वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन में भी यही बात होती रहती है और उत्पादकों द्वारा साधनों की होड़ लगाने पर इनकी कीमतें बढ़ती हैं। यदि प्रारम्भ में अर्थव्यवस्था में कुछ साधन बेकार पाए जाते तो वे उत्पादन में लगाए जा सकते हैं जिससे कुछ वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन का विस्तार होता है। लेकिन बेकारी के मिट जाने पर विस्तार का यह ढंग आगे नहीं चल पाता। पूर्ण रोजगार के पाए जाने पर माँग की वृद्धियाँ कीमत की वृद्धियों में प्रकट होती हैं और अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति की मात्राएँ नहीं बढ़ती।

किसी भी वस्तु या सेवा की उत्पत्ति में प्रयुक्त साधनों की कीमतों में वृद्धि होने से उस मद का पूर्ति-वक्र बायीं ओर खिसक जाता है। चित्र 4–5 में साधनों की कीमतों के बढ़ने से X का पूर्ति-वक्र S_1S_1 पर आ जाता है। नई सन्तुलन कीमत P_2 और नई सन्तुलन मात्रा X_2 होती है। इसमें यह दिखलाया है कि X उद्योग प्रयुक्त किए गए साधनों की मात्राओं में कुछ सीमा तक वृद्धि कर पाया है और यह उत्पत्ति की मात्रा भी बढ़ा पाया है। अधिक माँग की वृद्धि का अधिकांश भाग उत्पत्ति की कीमत में वृद्धि के रूप में प्रकट हुआ है। नई सन्तुलन कीमत P_2 होती है जो उपभोक्ताओं को उस कीमत पर उपलब्ध मात्रा को परस्पर बाँटने के लिए प्रेरित करती है।

प्रभावपूर्ण कीमत नियन्त्रण से स्थिति ही बदल जायगी। पुन. X के लिए प्रारम्भिक सन्तुलन स्थिति पर विचार कीजिए जहाँ माँग व पूर्ति क्रमश DD और SS हैं। पुन कल्पना कीजिए कि उपभोक्ता की आमदनी में वृद्धि होने से माँग बढ़ कर D_1D_1 हो जाती है। लेकिन इस बार यह कल्पना करें कि X की कीमत नियन्त्रित है और यह P_0 से ऊपर नहीं उठने दी जाती है और साधन-कीमतें भी नहीं बढ़ने दी जाती हैं। इसका सीधा प्रभाव यह होगा कि $X_0X_0^1$ के बराबर अभाव उत्पन्न हो जायगा। उपभोक्ता नियन्त्रित कीमत पर उस मात्रा से अधिक चाहते हैं जितनी कि विक्रेता बाजार में प्रस्तुत करते हैं। वे अब उपलब्ध मात्रा तक अपने उपभोग को और सीमित नहीं रखना चाहते। चूँकि कीमत उपलब्ध मात्राओं को बाँटने (राशन) का कार्य नहीं कर सकती, अत राशनिंग कैसे किया जाय? क्या यह क्रमवार (पहले आओ पहले पाओ) किया जाय जिसमें धूप खाना अथवा वस्तु के लिए पंक्ति में इन्तजार करना शामिल है? क्या यह विक्रेताओं की इच्छा पर छोड़ दिया जाय जिसमें वे कुछ ग्राहकों का विशेष रूप से पक्ष लेते हैं? क्या यह सरकार द्वारा लागू की गई राशनिंग व्यवस्था से किया जाय? अथवा किसी अन्य विधि से किया जाय?

अधिकतम कीमत सम्बन्धी नीतियाँ बाजार प्रणाली के सचालन पर अतिरिक्त प्रभाव डालती है। ये विभिन्न वस्तुओं की सापेक्ष कीमता (relative prices) के लिए उन वस्तुओं के सम्बन्ध म उपभोक्ताओं के सापक्ष मूल्याकनो (relative valuations) के परिवर्तनो को प्रगट करना असम्भव बना देती हैं और ये कीमत प्रणाली के लिए एम परिवतना क अनुरूप उत्पादन को पुनर्सगठित करना असम्भव बना देती हैं। चित्र 4–5 एक ऐसी स्थिति को प्रदर्शित करता है जिसम उपभोक्ता की आमदनी के बढने से X वस्तु अन्य सभी उपलब्ध वस्तुओं की तुलना म उपभोक्ताओं के लिए पूर्वापेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण (more valuable) हो जाती है। नियन्त्रणो के अभाव मे साधनो की कुछ अतिरिक्त मात्राएँ X के उत्पादन मे चली जाती हैं जिससे उत्पादन की सन्तुलन मात्रा X_0 से बढकर X_2 हो जाती है। X की कीमत के P_0 पर नियन्त्रित होन पर और साधना की कीमता क प्रारम्भिक स्तरो पर नियन्त्रित होने पर, यह पुनरावटन (reallocation) नही होगा।

जैसा कि प्रोफेसर मिल्टन फ्रीडमैन ने सही कहा है कि बाजार अर्थव्यवस्था म कीमत नियन्त्रणो या एक समूह (set) लागू करना एक जहाज के पतवार पर ताला लगाने के समान होता है। इससे उपभोक्ताओं की इच्छा के मुताबिक मार्गों पर इसे खेने के साधन समाप्त हो जाते हैं।[2] कीमतें विभिन्न वस्तुओं व सेवाओं के सापेक्ष मूल्यो को प्रदर्शित करने और उपभोक्ताओं की इच्छाओं के अनुसार उत्पादन को सगठित करने का कार्य नही कर सकती। इसकी एवज मे कोई दूसरा तत्र प्रतिस्थापित करना होगा, जैसे किसी तरह का सरकार का राशनिग कार्यक्रम और उत्पादको मे किसी तरह का साधनो का ऐच्छिक आवटन।

उत्पादन कर का आपात (Excise Tax Incidence)

इस मॉडल का एक सुप्रसिद्ध प्रयोग एक वस्तु या सेवा पर लागू किए गए उत्पादन कर के आपात के विश्लेषण मे इसका उपयोग करना है। उत्पादन-कर वस्तु की प्रति इकाई के अनुसार एक दी हुई राशि हो सकती है जैसे कि राज्य गैसोलिन कर, अथवा यह वस्तु की बिक्री-कीमत पर कोई निश्चित प्रतिशत के हिसाब से हो सकती है जैसे राज्य बिक्री कर। पहले को विशिष्ट कर (specific tax) कहा जाता है और दूसरे को मूल्यानुसार कर (ad valorem tax) कहा जाता है। प्रत्येक किस्म के लिए विश्लेषण अनिवार्यत एक-सा होता है, लेकिन रेखाचित्र पर विशिष्ट कर का विवेचन थोडा आसान होता है, इसलिए इसी पर ध्यान केन्द्रित किया जायगा।

2. मिल्टन फ्रीडमैन, "Why the Freeze is a Mistake." Newsweek (अगस्त 30, 1971), पृ. 23.
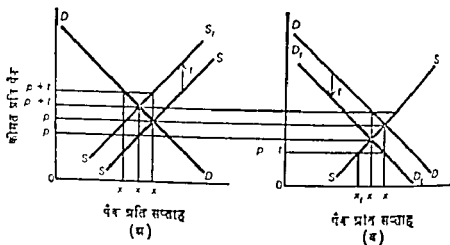
चित्र 4–6 उत्पादन कर का आपात

पहले हम उस स्थिति को लेते हैं जिसमें कर सिगरेट के विक्रेताओं—मुदरा स्टोरों से एकत्र किया जाता है। चित्र 4–6 (अ) में पूर्ति वक्र SS प्रति पैक (pack) उन कीमतों को दर्शाता है जिनके प्राप्त करने पर ही विक्रेता समूह के रूप में बाजार में विभिन्न मात्राएँ प्रस्तुत करने को प्रेरित होते हैं। ये मात्राएँ रेखाचित्र में क्षैतिज अक्ष पर दर्शायी गयी हैं। इस प्रकार कर की t मात्रा लागू करने पर पूर्ति-वक्र कर की राशि के बराबर ऊपर खिसक जाता है। यदि विक्रेताओं को बाजार में प्रति सप्ताह X पैक प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करना है तो उन्हें अपने लिए प्रति पैक P राशि मिलनी चाहिए जिससे उनके लिए ग्राहकों से P+t राशि लेना आवश्यक हो जायगा।

क्रेता कर सहित P+t कीमत प्रति पैक पर प्रति सप्ताह X पैक नहीं लेंगे। प्रति पैक व्यय के इस स्तर पर माँग वक्र यह दर्शाता है कि वे केवल X^1_t मात्रा ही लेंगे जिससे विक्रेताओं के पास प्रति सप्ताह X^1_t X का आधिक्य बच जायगा। व्यक्तिगत विक्रेताओं के द्वारा कीमत कम करने की होड़ से कीमत कर सहित P_1+t तक घट जायगी जिस पर क्रेता सम्पूर्ण मात्रा X_1 ले लेंगे जिसे विक्रेता P_1 कीमत पर (जिसमें कर शामिल नहीं है) प्रस्तुत करेंगे। P और P_1+t का अन्तर कर की वह मात्रा है जो क्रेताओं पर टाल दी जाती है। P_1 और P का अन्तर कर की वह मात्रा है जिसे विक्रेताओं को भुगतना पड़ेगा।

यदि कर विक्रेताओं की बजाय क्रेताओं से एकत्र किया जाता है तो भी करापात (incidence of the tax) वही होगा। चित्र 4–6 (ब) के माँग-वक्र व पूर्ति-वक्र DD व SS चित्र 4–6 (अ) के वक्रों के समान ही हैं। अब DD वक्र प्रति पैक उन व्ययों (outlays) को दर्शाता है जिन्हें उपभोक्ता प्रति सप्ताह अलग अलग

मात्राओं के लिए देने को उद्यत होते हैं। इन मात्राओं को क्षैतिज अक्ष पर मापा गया है। उपभोक्ताओं के दृष्टिकोण से मांग-वक्र कर की t मात्रा के लागू होने से प्रभावित नहीं होता, लेकिन विक्रेताओं के दृष्टिकोण से कर मांग-वक्र को कर की राशि D_t D_t के बराबर नीचे खिसका देगा। उपभोक्ता प्रति पैक P कीमत पर प्रति सप्ताह X पैक ही खरीदना चाहेंगे। कर के लागू होने के बाद विक्रेताओं के लिए P – t प्रति पैक ही बच रहेगा। परिणामस्वरूप वे बिक्री के लिए मात्रा घटा कर X_t कर देंगे जिससे X_t X का अभाव रहेगा। क्रेता थोड़ी पूर्ति के लिए खरीदने की होड़ लगायेंगे जिससे विक्रेताओं के द्वारा प्राप्त कीमत बढ़कर P_1 हो जायगी। विनिमय की मात्रा X_1 हो जायगी और क्रेता प्रति पैक कुल $P_1 + t$ कीमत देंगे। यहां भी करापात पहले की स्थिति के बराबर ही होगा। क्रेता अब कर से पूर्व स्थिति की तुलना में प्रति पैक $(P_1+t)—P$ ज्यादा देते हैं। विक्रेताओं को $P—P_1$ कम राशि मिलती है।

क्रेताओं व विक्रेताओं के द्वारा वहन किए जाने वाले कर का सापेक्ष अंश मांग की लोच व पूर्ति की लोच से प्रभावित होगा। उदाहरण के लिए, कल्पना करें कि DD के दिए होने पर पूर्ति की लोच सभी कीमतों पर उस मात्रा से ज्यादा है जो चित्र 4–6 पर दर्शायी गयी है। प्रश्न है कि करापात पर क्या प्रभाव आएगा ? अथवा, SS के दिए होने पर, कल्पना करें कि मांग की लोच सभी कीमतों पर अधिक होती है। पुन यही सवाल उठता है कि करापात पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

वेतनपत्रक (payroll) (सामाजिक सुरक्षा) कर वास्तव में मूल्यानुसार (ad valorem) किस्म के उत्पादन-कर होते हैं। क्या वस्तुत इस बात से कोई अन्तर पड़ेगा कि मालिक व कर्मचारी में से प्रत्येक से कर का आधा भाग ले लिया जाय ? यदि सम्पूर्ण कर की राशि केवल मालिक से ले ली जाय तो क्या करापात भिन्न होगा ? क्या केवल कर्मचारी से लेने पर करापात भिन्न होगा ?

सारांश

बाजार-कीमत का मॉडल कुछ सरकारी व निजी-समूह की आर्थिक नीतियों के प्रभावों के सम्बन्ध में उपयोगी रोशनी डालता है। यह बतलाता है कि संग्रह व ऋण किस्म (storage-and-loan type) के प्रभावपूर्ण कृषि कीमत समर्थन कार्यक्रमों से समर्थित पदार्थों के आधिक्य एकत्र हो जाते हैं और प्रभावपूर्ण न्यूनतम मजदूरी से प्राय बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है। कीमतें बढ़ाने के लिए प्रयुक्त की गई पूर्ति-प्रतिबन्ध की नीतियों से समस्त विक्रेताओं की कुल आमदनी बढ़ सकती है और नहीं भी बढ़ सकती है, हालांकि इनसे कुछ विक्रेताओं की आमदनी अवश्य बढ़ेगी और इसके लिए कुछ विक्रेताओं को बाजार से हटना पड़ेगा।

कभी-कभी वस्तुओं की कीमतों पर सीमा लगा दी जाती है ताकि (1) अनिवार्य

समझी जाने वाली कुछ मदों की ऊँची कीमतों से उपभोक्ता की रक्षा की जा सके और (2) मुद्रास्फीति को नियन्त्रित किया जा सके। मॉडल यह दर्शाता है कि प्रथम उद्देश्य के लिए प्रयुक्त किए गए प्रभावपूर्ण कीमत नियन्त्रणों से अभाव की दशा उत्पन्न हो जायगी और वह काफी समय तक जारी रहेगी जिससे राशनिंग की समस्या पैदा हो जायगी। जब कीमत नियन्त्रण मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने के लिए प्रयुक्त किए जाते है तो कीमतें न तो उपभोक्ताओं के बीच उपलब्ध पूर्ति की मात्राओं को बांटने का उद्देश्य पूरा कर पाती हैं और न वस्तुओं व सेवाओं के लिए उपभोक्ताओं के द्वारा समूह के रूप में लगाए गए सापेक्ष मूल्यों (relative value) को प्रगट कर पाती हैं।

उत्पादन कर के आपात की समस्या पर इस मॉडल का प्रयोग यह दर्शाता है कि कर चाहे क्रेताओं पर लगाया जाय अथवा विक्रेताओं पर इसमें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। इसके अतिरिक्त, करापात मांग व पूर्ति की लोचों के अनुसार बदलेगा।

अध्ययन सामग्री

Brozen, Yale, "The Effect of Statutoı Minimum Wage Increases on Teenage Unemployment," *Journal of law and Economics*, Vol. 12 (April 1969), pp 109–122

Knight, Wyllis R, "Agriculture," in Walter Adams, ed, *Structure of American Industry*, 4th ed (New York : The Macmillan Co, 1971).

Radford, R A., "The Economic Organization of a P. O W. Camp," *Economica*, Vol. XII (November, 1945) PP. 189–201.

उपभोक्ता का चुनाव और माँग-1

उपभोक्ता के चुनाव के सिद्धान्त से व्यष्टिमूलक आर्थिक सिद्धान्तों के क्रमबद्ध विकास को प्रारम्भ करना तर्कसंगत होगा। इस अध्याय में हम तटस्थता वक्र विश्लेषण (indifference curve analysis)* पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे जो उपभोक्ता के चुनाव का सामान्य सिद्धान्त माना जाता है। अध्याय 6 का उपयोगिता विश्लेषण सामान्य सिद्धान्त का एक विशिष्ट रूप है। इसमें काफी कुछ ऐतिहासिक रुचि का एवं चालू महत्त्व का पाया जाता है।

तटस्थता वक्र तकनीकों का प्रारम्भ 1880 की दशाब्दी से माना जाता है, लेकिन इनका विकास और मुख्य आर्थिक विचारधारा के साथ इनका एकीकरण 1930 की दशाब्दी तक नहीं हो पाया था। एक आग्ल अर्थशास्त्री फ्रांसिस वाई० एजवर्थ ने 1881 में तटस्थता वक्रों का उपयोग प्रारम्भ किया था।[1] कुछ संशोधन के बाद एजवर्थ की तकनीकें 1906 में इटली के अर्थशास्त्री विल्फ्रेडो पेरिटो ने अपनाई।[2] 1930 की दशाब्दी में तटस्थता-वक्र विश्लेषण के प्रयोग को लोकप्रिय करने व व्यापक बनाने का श्रेय दो आग्ल अर्थशास्त्रियों, जॉन आर० हिक्स और आर० जी० डी० ऐलन, को दिया जा सकता है।[3] तब से यह अर्थशास्त्री के विश्लेषणात्मक उपकरण (analytical equipment) का एक प्रामाणिक और आवश्यक अंग हो गया है।

---

* Indifference curve analysis के लिए अनधिमान वक्र विश्लेषण या उदासीनता वक्र-विश्लेषण भी प्रयुक्त होता है।

1. Francis Y Edgeworth, *Mathematical Psychics* (London C K. Paul & Co , 1881)
2. Vilfredo Pareto, *Manuel deconomie politique* (Paris : V. Giard & E Briere, 1909) यह ग्रन्थ सर्वप्रथम इटेलियन (इतालवी) भाषा में 1906 में प्रकाशित हुआ था।
3. John R Hicks and R G D Allen, "A Reconsideration of the Theory of Value," *Economica* (February, May 1934), pp. 52–76, 196–219.

उपभोक्ता के अधिमान (The Consumer's Preferences)

हम एक वैयक्तिक उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन उसके अधिमानों की जाच से प्रारम्भ करते है।[4] ये रेखाचित्र के रूप मे उसके तटस्थता-मानचित्र (indifference map) म निहित हैं। इसके बाद हम तटस्थता वक्रो, जो तटस्थता मानचित्र का निर्माण करते हैं, के मुख्य लक्षणो की जाच करेंगे।

उपभोक्ता का तटस्थता मानचित्र
(The consumer's Indifference Map)

आधुनिक जगत म एक उपभोक्ता के समक्ष वस्तुओ व सेवाओं की एक बडी सख्या होती है जिनके बीच वह अपने अधिमान व्यक्त कर सकता है। इनके बीच सम्भावित सयोगो की विविधता अनन्त होती है। प्रश्न है कि विश्लेषण के रूप मे हम सम्भावनाओं की इस व्यापक सीमा के सम्बन्ध मे उपभोक्ता के व्यवहार के बारे मे क्या कह सकते हैं?

किसी भी चीज के बारे म ज्यादा चर्चा करने के लिए उसके अधिमानो की मूल प्रकृति के बारे मे कुछ मान्यताए लेकर चलना आवश्यक होगा। हम सर्वप्रथम यह मान लेते है कि उपभोक्ता अपने समक्ष पाये जाने वाले सयोगो (combinations) के अधिमानो को क्रमबद्ध रूप मे जचा सकता है। वह यह निर्धारित कर सकता है कि कौन-से सयोग दूसरो से ऊँचे हैं और किन सयोगो के बीच वह तटस्थ है। द्वितीय, हम यह मान लेते हैं कि एक उपभोक्ता के अधिमान परस्पर सगत (consistent) अथवा युक्तियुक्त (transitive) हैं। यदि वह सयोग A को सयोग B से ज्यादा उत्तम मानता है और सयोग B को सयोग C से ज्यादा उत्तम मानता है तो वह सयोग A को सयोग C से अवश्य उत्तम मानेगा। इसी प्रकार यदि सयोग D संयोग E के बराबर है और सयोग E सयोग F के बराबर है तो सयोग D सयोग F के बराबर माना जायगा। तृतीय, हम यह मान लेते हैं कि उपभोक्ता किसी भी वस्तु या सेवा की अधिक मात्रा को इसकी कम मात्रा से ज्यादा पसद करेगा, अर्थात्, वह किसी विशिष्ट वस्तु से तृप्त नही होता है।[5]

इन मान्यताओ के आधार पर हम एक व्यक्तिगत उपभोक्ता के तटस्थता मानचित्र का अवधारणा की दृष्टि से (conceptually) निर्माण कर सकते हैं। सरलता के

---

4 अर्थव्यवस्था म उपभोग की आधारभूत इकाई एक अकेले व्यक्ति के बजाय प्राय एक परिवार होती है। इसलिए "वैयक्तिक उपभोक्ता" मे हम मोटे तौर पर परिवार व स्वतन्त्र व्यक्तियों दोनों को शामिल करते हैं।

5 किसी एक वस्तु से तृप्ति (satiation) होना असम्भव नहीं है। हम सबने यह देखा है कि यह भोजन, शराब और अन्य मदों मे कुछ समय के लिए हो सकता है लेकिन हम आगे चलकर देखेंगे कि विवेकशील आर्थिक व्यवहार में प्राय ऐसी मदों से तृप्ति की स्थिति नहीं मानी जाती जो इतनी बहुतायत से नहीं मिलतीं कि मांगते ही मिल जाएँ।

लिए हम मान लेते हैं कि जगत में केवल दो वस्तुए –X और Y ही पाई जाती हैं। उपभोक्ता को अनेक सम्भव उपलब्ध सयोगो को क्रमबद्ध करने के लिए कहा जाता है ताकि वह हमें यह बतला सके कि वह किन सयोगो को दूसरो से ऊँचा मानता है और किन सयोगो के बीच वह तटस्थ है।

उपभोक्ता जिन सयोगो के बीच तटस्थ रहता है उनको तटस्थता-अनुसूची या *तटस्थता-वक्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।* उदाहरण के लिए, यदि वह सारणी 5–1 में दिये गये सभी सयोगो को परस्पर समान मानता है तो ये तटस्थता-अनुसूची (indifference schedule) का निर्माण करेंगे। चित्र 5–1 पर इन सभी सयोगो (और अनुसूची में होने वाले अन्य सभी मध्यवर्तियों) को अंकित करने पर एक तटस्थता वक्र I बन जाता है।

सारणी 5–1 एक तटस्थता-अनुसूची

X (बुशल)	Y (पाउंड)
3	7
4	4
5	2
6	1
7	½
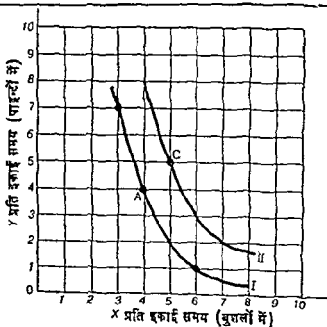
चित्र 5–1 तटस्थता-वक्र

यद्यपि चित्र 5–1 में केवल दो तटस्थता वक्र हैं, लेकिन ऐसे असीमित वक्र खींचे जा सकते हैं। X और Y अक्षों द्वारा घिरे हुए वस्तु के स्थान (commodity space) में दो वस्तुओं के सभी सम्भावित संयोग आ जाते हैं। C जैसा संयोग जो पाच बुशल X और पाच पाइन्ट Y का सूचक है संयोग A से ज्यादा उत्तम होगा जिस पर चार बुशल X और चार पाइन्ट Y होते हैं। (तृतीय मान्यता स्मरण करें) C के समान अन्य संयोगों का पता लगाया जा सकता है और इनसे तटस्थता वक्र II प्राप्त हो जाता है। इस तरह हम चाहे जितने तटस्थता वक्र खीच सकते हैं। ऊँचे तटस्थता वक्रों के सभी संयोग—जो मूलबिन्दु से दूर हैं—नीचे के तटस्थता वक्रों के बिन्दुओं से ज्यादा उत्तम है। एक उपभोक्ता के तटस्थता वक्रों का सम्पूर्ण समूह उसका तटस्थता मानचित्र होता है।[6]

तटस्थता वक्र के लक्षण

तटस्थता वक्रों का एक समूह तीन मूलभूत लक्षण प्रगट करता है (1) व्यक्तिगत वक्र नीचे दायी ओर झुकते है, (2) व एक दूसरे को काटते नहीं; और (3) वे चित्र के मूल बिन्दु के उन्नतोदर (convex) होते हैं। इन लक्षणों पर क्रम से विचार किया जायगा।

तटस्थता वक्रों का दायीं ओर नीचे की तरफ ढाल इस मान्यता पर आधारित है कि एक उपभोक्ता सदैव एक वस्तु की कम मात्रा की बजाय उसकी अधिक मात्रा पसंद करेगा। यदि एक तटस्थता वक्र क्षैतिज हो तो इसका आशय यह होगा कि एक उपभोक्ता ऐसे दो संयोगों के बीच तटस्थ है जहां दोनों में Y की मात्रा तो एक-सी है लेकिन एक म X की मात्रा दूसरे की अपेक्षा ज्यादा है। ऐसा तभी हो सकता है जबकि उपभोक्ता के पास X की इतनी मात्रा हो जाती है कि वह इससे तृप्त हो जाय, अर्थात् केवल X की अतिरिक्त इकाइया उसके कुल संतोष में कोई वृद्धि नहीं करे। इसी तरह, यदि एक तटस्थता वक्र लम्बवत् (vertical) हो तो इसका आशय यह होगा कि X और Y के ऐसे दो संयोग, जिनमें X की मात्रा तो एक-सी हो, लेकिन

---

6 एक उपभोक्ता का अधिमान-फलन या तटस्थता-मानचित्र निम्न से सूचित किया जा सकता है

$$U = f(X, Y)$$

जिसमें U अधिमान के उन स्तरों का द्योतक है जो केवल क्रमसूचक रूप में (ordinal terms) होते हैं। एक तटस्थता वक्र का समीकरण इस प्रकार होता है

$$U_1 = f(X, Y)$$

जिनमें U_1 एक स्थिर राशि (constant) है, अर्थात् अधिमान का एक दिया हुआ स्तर है। U के अन्य मूल्य (other values) अन्य तटस्थता वक्रों के द्योतक हैं, ये सब मिलकर एक उपभोक्ता का तटस्थता मानचित्र बनाते हैं। ये दिये हुए मूल्य अधिमान की मात्राओं का क्रम बतलाते हैं, न कि निरपेक्ष (absolute) (मापनीय) मात्राएँ।

एक मे Y की मात्रा दूसरी से अधिक हो, उपभोक्ता को समान सतोष प्रदान करेंगे। पुनः ऐसा तभी हो सकता है जब कि उपभोक्ता Y के सम्बन्ध मे तृप्ति के बिन्दु पर पहुँच चुका है। उपभोक्ता विभिन्न सयोगो के बीच तटस्थ तभी रह सकता है जब कि उसके द्वारा एक वस्तु की इकाइयो का त्याग करने से जो क्षति होती है उसकी पूर्ति दूसरी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयो से कर दी जाय। इसका परिणाम, जैसा कि रेखाचित्र के द्वारा दर्शाया गया है, दायी ओर नीचे की तरफ ढाल का होना है।

यदि सगति की मान्यता (transitivity assumption) लागू होती है तो तटस्थता-वक्र एक-दूसरे को नही काटेंगे। चित्र 5-2 को देखने पर सयोग C सयोग A से ज्यादा अच्छा है। सयोग A सयोग B के समान है। लेकिन सयोग C सयोग B के भी समान है। इसलिए सगति की मान्यता के अनुसार C सयोग B से ऊँचा माना जायगा। कुछ बिन्दुओ पर वे एक दूसरे से दूर हो सकते है और कुछ पर एक दूसरे के समीप आ सकते हैं। उन पर एक प्रतिबन्ध यही होना है कि वे एक दूसरे को काटते नही।
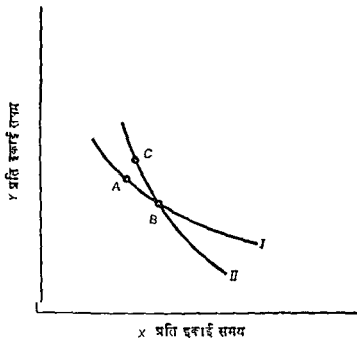
चित्र 5-2 तटस्थता वक्रो के कटान के परिणाम

हम अपने अध्ययन के इस स्थल पर निर्णयात्मक रूप से यह सिद्ध नही कर सकते कि तटस्थता वक्र मूलबिन्दु के उन्नतोदर होते है लेकिन हम यह दर्शा सकते हैं कि वे सम्भवत ऐसे ही होगे। मुख्य विषय पर पहुँचने के लिए हम पहले **प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (marginal rate of substitution)** के विचार का परिचय देंगे।

एक वस्तु के लिए दूसरी वस्तु के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर, जैसे Y के लिए X की (MRS_{xy}), इस तरह परिभाषित की जाती है कि यह Y की वह मात्रा है जिसे उपभोक्ता X की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए देने को उद्यत होता है—यह वस्तुओं के समूहों के बीच होने वाला वह विनिमय है जिसके बीच वह तटस्थ रहता है। मान लीजिए, चित्र 5–1 म उपभोक्ता प्रारम्भ मे 7 पाउन्ड Y और 3 बुशल X लेता है। 4 बुशल X के उपभोग की दर पर पहुँचने के लिए वह प्रति इकाई समयानुसार 3 पाउन्ट Y का उपभोग त्यागने के लिए तैयार हो जायगा। अत यहाँ पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर 3 हुई। उपभोक्ता के पास Y की मात्रा जितनी अधिक और X की मात्रा जितनी कम होती जाती है, X की एक इकाई उसके लिए Y की एक इकाई की तुलना म उतनी ही अधिक महत्वपूर्ण होती जाती है। उदाहरण के लिए, चित्र 5–3 म A बिन्दु पर वह X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए Y की अत्यधिक मात्रा का त्याग करने को उद्यत हो जायगा। B बिन्दु
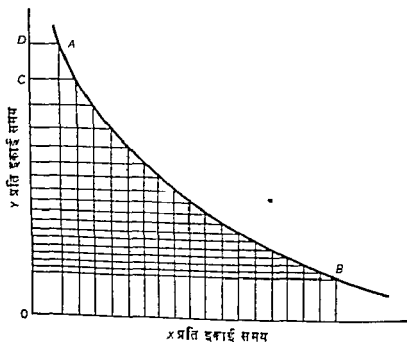
चित्र 5–3 प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर

पर उपभोक्ता के पास X की काफी मात्रा और Y की बहुत कम मात्रा होगी, इसलिए A बिन्दु की अपेक्षा यहा पर X की एक इकाई की तुलना मे Y की एक इकाई का महत्व अधिक होगा और वह X की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए,

की बहुत थोडी मात्रा का त्याग करने के लिए तत्पर होगा। A और B के बीच X-अक्ष समान मात्रा की इकाइयो मे बाट दिया गया है। A बिन्दु पर तटस्थता वक्र यह दर्शाता है कि उपभोक्ता X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए Y की केवल CD मात्रा का त्याग करने को ही उद्यत होगा। ज्यो-ज्यो उपभोक्ता प्रति इकाई समयानुसार X की अधिक मात्रा और Y की कम मात्रा प्राप्त करता जाता है, त्यो-त्यो X की एक इकाई के महत्त्व की तुलना मे Y की एक इकाई का महत्त्व उत्तरोत्तर बढता जाता है। X की अतिरिक्त इकाइयो को प्राप्त करने के लिए वह Y की जिन मात्राओ को त्यागने के लिए तत्पर होता है वे उत्तरोत्तर कम होती जाती हैं, अर्थात् Y के लिए X के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती जाती है।[7]

यदि Y के लिए X के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती है तो तटस्थता वक्र मूलबिन्दु की ओर अवश्य उन्नतोदर होगा। यदि यह स्थिर रहती है, तो उपभोक्ता X की अतिरिक्त इकाइयो को प्राप्त करने के लिए Y की जो मात्राए देने को उद्यत होगा वे घटने की बजाय स्थिर रहेगी। ऐसी स्थिति मे तटस्थता वक्र एक सरल रेखा बन जायगा जिसका ढाल नीचे दायी ओर होगा। यदि प्रतिस्थापन की सीमान्त दर बढती है तो तटस्थता वक्र मूलबिन्दु की तरफ नतोदर (concave) होगा।[8]

पूरकता व स्थानापन्नता के सम्बन्ध

यदि उपभोक्ता वस्तुओ व सेवाओ को परस्पर सम्बद्ध मानता है तो यह सम्बन्ध

---

7. चित्र 5-3 में MRS के अधिक अमूर्त (abstract) ज्यामितीय स्वरूप पर आने से पहले चित्र 5-1 मे तटस्थता वक्र I पर विभिन्न बिन्दुओ के बीच इसको गणितीय रूप में निकालना ज्यादा लाभदायक सिद्ध होगा।

8. फुटनोट 5 के अधिमान-फलन का कुल अवकल (total differential of the preference function) यह है,

$$f_d\, d_x + f_y\, d_y = dU$$

एक दिए हुए वक्र के लिए dU=O, अत

$$f_x\, d_x + f_y\, d_y = 0$$

और :

$$-\frac{d_y}{d_x} = \frac{x}{f_y} = MRS_{xy}$$

तटस्थता वक्र मूलबिन्दु के उन्नतोदर तभी होगा जबकि :

$\frac{d(MRS_{xy}}{d_x} < 0$ हो।

पूरकता (complementarity) या अथवा स्थानापन्नता (subtitutability) का हो सकता है। सामान्यतया, दो वस्तुएं उस समय पूरक मानी जाती हैं जब एक के उपभोग के स्तर में वृद्धि (कमी) से उपभोक्ता के लिए दूसरी वस्तु की सापेक्ष वाञ्छनीयता में वृद्धि (कमी) हो जाती है। वस्तुएं एक दूसरे की स्थानापन्न उस समय मानी जाती हैं जब कि एक के उपभोग के स्तर में वृद्धि (कमी) से दूसरी वस्तु की सापेक्ष वाञ्छनीयता में कमी (वृद्धि) उत्पन्न हो जाय।

ये परिभाषाएं तटस्थता वक्र की धारणा की सहायता से ज्यादा स्पष्ट की जा सकती हैं। मान लीजिए उपभोक्ता दो वस्तु जगत तक सीमित नहीं रहता और उसे X Y और अन्य कई वस्तुओं व सेवाओं में से अपना चुनाव करना है। हम मान लेते हैं कि अन्य वस्तुओं व सेवाओं की मात्राएं मौद्रिक इकाइयों में मापी जाती हैं, जबकि X और Y पहले की भांति बुशलों व पाउन्डों में माप जाते हैं। अब उपभोक्ता के समक्ष सम्भावना केवल Y के बदले में X के प्रतिस्थापन की ही नहीं है बल्कि मुद्रा के बदले में X का अथवा मुद्रा के बदले में Y का प्रतिस्थापित करने की भी है। Y के किसी भी दिये हुए उपभोग के स्तर पर X और मुद्रा के कुछ संयोग ऐसे होंगे जिनके बीच वह तटस्थ होगा और X व मुद्रा के कुछ संयोग ऐसे होंगे जो अन्य संयोगों से ज्यादा अच्छे होंगे। दूसरे शब्दों में X व मुद्रा के लिए तटस्थता वक्रों का एक सैट स्थापित किया जा सकता है और किसी भी तटस्थता वक्र के एक बिन्दु पर हम MRS_{xm} को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं कि यह मुद्रा की वह राशि है जिसे उपभोक्ता X की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए देने को उद्यत हो जाता है। अतः यह वह मूल्य है जो उपभोक्ता उस बिन्दु पर X की एक इकाई के लिए लगाता है। इसी प्रकार X के किसी भी दिये हुए उपभोग के स्तर पर, Y और मुद्रा के बीच तटस्थता वक्रों का एक सैट स्थापित किया जा सकता है; और MRS_{ym} उस मूल्य को मापता है जो उपभोक्ता उन तटस्थता वक्रों में से एक वक्र के दिये हुए बिन्दु पर Y की एक इकाई के लिए लगाता है।

मान लीजिए हम एक उपभोक्ता के X, Y व मौद्रिक इकाइयों में मापे गये अन्य वस्तुओं के उपभोग के स्तरों (consumption levels) और उनके बीच उसके तटस्थता वक्रों के समूहों को जानते हैं। इसका अर्थ है हम उसके MRS_{xy}, उसके MRS_{xm}, और उसके MRS_{ym} को भी जानते हैं। अब यदि वह X का उपभोग स्थिर रखकर अपना Y का उपभोग बढ़ाता है, और MRS_{xm} बढ़ता है, तो X वस्तु Y की पूरक होगी। दूसरे शब्दों में, Y के उपभोग में वृद्धि होने से उपभोक्ता के लिए X की एक इकाई अधिक मूल्यवान हो गई है। इसके विपरीत, यदि Y के उपभोग में वृद्धि होने से MRS_{xm} घट जाता है, तो X-वस्तु Y-वस्तु का स्थानापन्न होगी अर्थात् X की एक इकाई उपभोक्ता के लिए कम मूल्यवान (less valuable) हो गई है।

व्यवहार में हमारे चारों तरफ पूरक व स्थानापन्न वस्तुओं के अनेक दृष्टान्त पाये जाते हैं। टेनिस के बल्ले और टेनिस की गेंद, रोटी व मुरब्बा (जेली), कहवा व मीठी पूरी (dough nuts), गाड़ियां व गैसोलीन पूरक वस्तुओं के अनेक समूहों में माने जाते हैं। स्थानापन्न वस्तुओं के समूहों में हैम (मांस) व स्टीक (मांस) मोटर-गाडी से यात्रा और हवाई जहाज से यात्रा, विद्युत रेजर व सेफ्टी रेजर आदि अनेक को शामिल कर सकते हैं।

उपभोक्ता पर प्रतिबन्ध (Constraints on the consumer)

एक उपभोक्ता जो कुछ कर सकता है उन पर अभी तक विचार नहीं किया गया है। हमने केवल उसकी रुचियों व अधिमानों का चित्र ही प्रस्तुत किया है। उसके उपभोग की क्रियाओं पर जो प्रतिबन्ध होते हैं उन्हें बजट रेखाओं (budget lines) के जरिए दिखाया जाता है। इन्हें कभी-कभी प्राप्य संयोगों की रेखाएं (lines of attainable combinations) भी कहा जाता है।

बजट रेखा (The Budget Line)

उपभोक्ता की क्रय-शक्ति और जो कुछ वह खरीदना चाहता है उसकी कीमतें उसकी बजट रेखा को निर्धारित करते हैं। उसकी क्रय-शक्ति को बहुधा उसकी आमदनी कहा जाता है। यह शब्द उसकी चालू आय तक ही सीमित नहीं होता, बल्कि यह व्यापक रूप से प्रयुक्त होता है और इसमें कुछ पूरक राशियां व घटायी जाने वाली राशियां भी शामिल होती हैं, चाहे उसकी आय कुछ भी क्यों न हो। इस रूप में परिभाषित करने पर हम उसकी आय को साप्ताहिक, मासिक या वार्षिक औसत के रूप में देख सकते हैं। एक उपभोक्ता के समक्ष जो कीमतें होती हैं वे उसके द्वारा खरीदी जाने वाली मदों की बाजार कीमतें होती हैं।

यह दिखलाने के लिए कि बजट रेखा कैसे स्थापित की जाती है, हम पुनः उपभोक्ता को दो-वस्तु जगत् तक सीमित कर देते हैं। कल्पना कीजिए कि उसकी आमदनी प्रति सप्ताह 100 डालर है और X व Y की कीमतें क्रमश 2 डालर व 1 डालर हैं। यदि वह अपनी सम्पूर्ण आमदनी X पर व्यय कर देता है तो वह प्रति सप्ताह 50 इकाइयों का उपभोग करेगा—वह चित्र 5-4 में A बिन्दु पर होगा। इसके विपरीत यदि वह केवल Y खरीदता है और X नहीं खरीदता तो वह Y की 100 इकाइयों का उपभोग करेगा और B बिन्दु पर होगा। यदि वह B बिन्दु पर है और अपने उपभोग के ढांचे में X शामिल करना चाहता है तो ऐसा करने के लिए उसे अपना Y का उपभोग घटाना होगा। Y के उपभोग में 2 इकाइयों की कमी से 2 डालर खाली हो जाते हैं जो X की एक इकाई की खरीद में लगाये जा सकते हैं। प्रति इकाई समयानुसार X के उपभोग की मात्रा में प्रत्येक एक इकाई की वृद्धि के

लिए उसके Y के उपभोग में दो इकाई की कमी करना आवश्यक है। ऐसा उस समय तक करना होगा जबतक कि $P_y = \$1$ और $P_x = \$2$ बने रहते हैं। इस प्रकार उसकी बजट रेखा B और A बिन्दुओं को मिलाने वाली सरल रेखा होगी।

बजट-रेखा का ढाल उस अनुपात (ratio) से निर्धारित होता है जो X की कीमत Y की कीमत से रखती है। मान लीजिए, उपभोक्ता की आमदनी I_1 है, X की कीमत P_{x1} है, और Y की कीमत P_{y1} है। यदि वह अपनी सम्पूर्ण आमदनी Y पर व्यय करता है तो चित्र 5-5 में I_1/P_{y1}, Y की उन कुल मात्राओं को दर्शाता है जिन्हें वह खरीद सकेगा। यदि वह अपनी सम्पूर्ण आमदनी X पर व्यय करे तो I_1/P_{x1}, X की उन इकाइयों को दर्शाता है जिन्हें वह खरीद सकेगा। बजट रेखा BA दो छोर के बिन्दुओं (extreme points) को मिलाती है।[9]
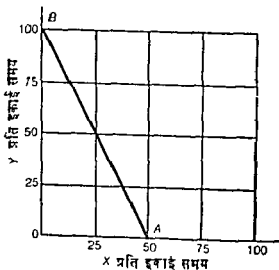
चित्र 5–4 बजट-रेखा

---

9. पाठ के दो-वस्तु दृष्टांत में बजट-रेखा समीकरण इस प्रकार होगा

$$XP_x + YP_y = I$$

Y के लिए हल करने पर हमें निम्न प्राप्त होगा :

$$Y = \frac{I}{P_y} - \frac{P_x}{P_y} \times X$$

जो यह बतलाता है कि Y-अक्ष का अंतखण्ड (intercept) I/P_y होगा और इस रेखा का ढाल $-P_x/P_y$ होगा।
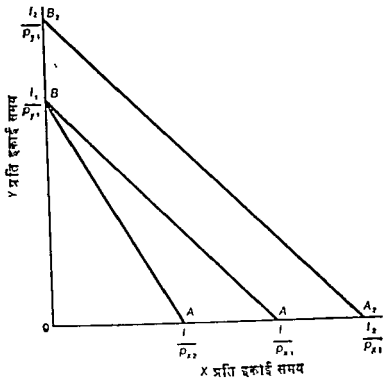
चित्र 5-5 बजट-रेखा मे परिवर्तन

अधिक सामान्य रूप मे बजट रेखा का ढाल इस प्रकार होगा .

$$-\frac{I/P_y}{I/P_x}=-\frac{I}{P_y}\times\frac{P_x}{I}=-\frac{P_x}{P_y} \quad ....(5\ 1)$$

यह ध्यान देने की बात है कि उपभोक्ता चित्र 5-4 या 5-5 मे BOA त्रिभुज की सीमाओ पर अथवा इसके अन्दर वस्तुओ के किसी भी सयोग को प्राप्त कर सकता है। ये सब उसके लिए सम्भाव्य सयोगो (feasible combinations) के समूह होते हैं। बजट-रेखा BA उसके सम्भाव्य सयोगो को—जिन्हे उपभोक्ता खरीद सकने मे समर्थ होता है—उन सयोगो से पृथक् करती है जो वित्तीय दृष्टि से उसकी पहुँच से परे होते हैं।

बजट रेखा मे परिवर्तन (Shifts in the Budget Line)

उपभोक्ता की आय के परिवर्तन और उसके द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओ व सेवाओ की कीमतो के परिवर्तन उसकी बजट रेखा को बदल देंगे। मान लीजिए उसकी आमदनी प्रारम्भ मे I_1 है और X व Y की कीमतें क्रमश P_{x1} व P_{y1} हैं।

चित्र 5–5 में उसकी बजट रेखा BA होगी। अब यदि X की कीमत बढ़ कर P_{x2} हो जाती है और उसकी आमदनी व Y की कीमत स्थिर रहती है तो बजट रेखा BA′ हो जायगी। यदि उसकी सारी आमदनी Y पर व्यय की जाती है तो Y की खरीद की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होगा, लेकिन X की ऊँची कीमत के परिणामस्वरूप सारी मुद्रा के X पर व्यय किए जाने पर X की खरीद की मात्रा OA से घट कर OA′ हो जायगी। इसलिए नई बजट रेखा B और A′ को मिलाती है।

अब हम प्रारम्भिक बजट रेखा BA पर वापस आ जाते हैं और यह कल्पना करते हैं कि उपभोक्ता की आमदनी I_1 से बढ़कर I_2 हो जाती है जबकि X और Y की कीमतें स्थिर रहती हैं। बजट रेखा दाहिनी तरफ स्वयं के समान्तर (parallel to itself) B_2A_2 पर खिसक जाती है। ऊँची आमदनी से उपभोक्ता यदि अकेली X खरीदता है तो ज्यादा मात्रा में X खरीद सकेगा और अकेली Y खरीदने पर ज्यादा Y खरीद सकेगा। इसमें A_2 बिन्दु A के दायीं ओर होगा और B बिन्दु B से ऊपर होगा। चूँकि X और Y की कीमतें नहीं बदली हैं, इसलिए दोनों बजट

रेखाओं का ढाल $-\frac{P_{x1}}{P_{y1}}$ होगा और वे एक दूसरे के समान्तर होंगी।

उपभोक्ता की ज्यादा उत्तम स्थिति
(The Consumer's Preferred Position)

उपभोक्ता व्यवहार का सिद्धान्त इस मान्यता पर टिका हुआ है कि वैयक्तिक उपभोक्ता वस्तुओं व सेवाओं के उन उपलब्ध संयोगों की तरफ बढ़ने का प्रयास करते हैं जो सबसे ज्यादा पसंद किये जाते हैं (सर्वाधिक अधिमान्यता रखते हैं), अर्थात् वे सन्तोष को अधिकतम करना चाहते हैं। इस लक्ष्य को प्राप्त करने की शर्तों को दर्शाने के लिए उपभोक्ता के अधिमान तत्त्व (preference factors) (उसका तटस्थता मानचित्र) और उस पर प्रतिबन्ध लगाने वाले तत्त्व (उसकी बजट रेखा) एक साथ चित्र 5–6 में प्रस्तुत किये गये हैं। बजट रेखा पर उसको कोई भी संयोग A,B,C,D अथवा E उपलब्ध होना है। इसी प्रकार उसे G जैसा कोई भी संयोग उपलब्ध हो सकता है जो बजट रेखा के बायीं ओर अथवा नीचे रहता है। बजट प्रतिबन्ध के कारण बजट रेखा के दायीं ओर अथवा ऊपर की ओर पाये जाने वाले संयोग उसे उपलब्ध नहीं होते।

उपभोक्ता का सर्वोत्तम संयोग (the most preferred combination) बजट रेखा पर आयेगा। यदि उपभोक्ता G संयोग लेता है तो इस मान्यता की अवहेलना हो जायगी कि वह सदैव एक वस्तु की थोड़ी मात्रा की जगह अधिक मात्रा पसंद करता है। G से C पर जाकर वह Y का त्याग किये बिना अधिक X प्राप्त
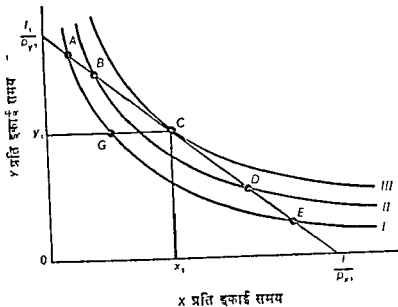
चित्र 5–6 उपभोक्ता का ज्यादा उत्तम सयोग

करता है और परिणामस्वरूप एक ऊँचे तटस्थता वक्र पर पहुँच जाता है। बजट रेखा के नीचे के किसी भी संयोग से इस प्रकार की गति (move) सदैव सम्भव होती है। बजट रेखा पर पडने वाले संयोगों में से उपभोक्ता उस सयोग को चुनता है जो इस रेखा के द्वारा स्पर्श होने वाले सर्वोच्च तटस्थता वक्र पर होता है। यह सयोग C होगा। संयोग A,B,D व E सभी नीचे के तटस्थता वक्रो पर आते हैं। सयोग C सर्वोच्च तटस्थता वक्र पर है जहाँ तक वह पहुँच सकता है और इसके अलावा, उस तटस्थता-वक्र पर उसे केवल यही सयोग उपलब्ध होता है। अत उपभोक्ता का ज्यादा उत्तम संयोग सदैव वही पर होगा जहा उसकी बजट रेखा उसके तटस्थता वक्र को स्पर्श करेगी। चित्र 5–6 मे इस संयोग पर X की X_1 मात्रा और Y की Y_1 मात्रा होती है।

तटस्थता वक्र से बजट रेखा की स्पर्शिता (tangency) का अर्थ यह है कि उपभोक्ता X को प्राप्त करने के लिए जिस दर से Y का त्याग करने को उद्यत (willing) होता है वह उस दर के बराबर है जिस पर बाजार की दशाओं के कारण X को प्राप्त करने के लिए उसके लिए Y का त्याग करना आवश्यक है; अर्थात् $MRS_{xy} = P_x / P_y$ होगा।[10] तटस्थता-वक्र के किसी भी विन्दु पर पाया जाने वाला

10. इस बात को जानते हुए कि तटस्थता वक्रो व बजट रेखाओ दोनो के ढाल ऋणात्मक होते हैं, हम ढाल के मापो के ऋणात्मक निशान छोड देते हैं और केवल सख्यात्मक मूल्यो पर ही ध्यान देते हैं। यह विधि परम्परागत है और गणितीय रूप में जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं उनको टाल देती है।

ढाल उस बिन्दु पर उसका MRS_{xy} होगा। बजट रेखा के किसी भी बिन्दु पर इसका ढाल P_x / P_y होगा। स्पर्शिता के बिन्दु पर—अर्थात् C पर—दोनों वक्रों के ढाल अनिवार्यतः बराबर होंगे।

चित्र 5–6 म बिन्दु पर विचार कीजिए। तटस्थता वक्र I का ढाल प्राप्य संयोगों की रेखा के ढाल से अधिक होगा। दूसरे शब्दों म, उपभोक्ता X की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए Y की जो मात्रा देने को उद्यत होगा वह Y की उस मात्रा से अधिक होगी जो उसे X की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए देनी होगी (अर्थात् $MRS_{xy} > P_x / P_y$) उपभोक्ता X की अतिरिक्त इकाइयों के लिए Y की इकाइयां देना चाहेगा क्योंकि ऐसा करके वह पहले से ज्यादा अच्छी स्थिति प्राप्त कर सकेगा। B बिन्दु पर भी यही स्थिति होगी। D बिन्दु पर तटस्थता वक्र II का ढाल प्राप्य संयोगों की रेखा के ढाल से कम होगा। इसका आशय यह है कि उपभोक्ता X की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए Y की जो मात्रा देने के लिए उद्यत होगा वह उस राशि में कम होगी जो उसे देनी होगी (अर्थात् $MRS_{xy} < P_x / P_y$)। अतएव उपभोक्ता C बिन्दु से परे D जैसे किसी बिन्दु पर नहीं जायगा क्योंकि इस प्रकार की गतिशीलता से वह कम अधिमान्यता की स्थिति (घटिया स्थिति) पर चला जायगा। वह C बिन्दु पर सन्तुलन में होता है अथवा अपनी सर्वाधिक अधिमान्यता (most preferred) की स्थिति में होता है और इस बिन्दु पर Y के लिए X की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर उनकी आपसी कीमतों के अनुपात के बराबर होगी एवं वह अपनी सम्पूर्ण आमदनी खर्च कर देता है।[11]

---

11 उपभोक्ता की अधिकतमकरण की समस्या को गणितीय रूप में हल करने के लिए, हम उसका अधिमान-फलन (preference function) इस प्रकार मान लेते हैं

$$U = f(X, Y) \quad \text{....(1)}$$

बजट प्रतिबंध इस प्रकार है

$$XP_x + YP_y = I$$

अथवा :

$$XP_x + YP_y - I = 0 \quad \text{... (2)}$$

(1) को प्रतिबंध (2) के सन्दर्भ में अधिकतम करने के लिए हम लाग्रेन्ज गुणक विधि (Lagrange multiplier method) काम म लेते हैं, एक नया फलन बनाते हैं जिसमें V, X व Y का फलन होता है ताकि

$$V = g(X, Y) = f(X, Y) + \lambda(XP_x + YP_y - I) \quad \text{....(3)}$$

मान लीजिए चित्र 5-6 मे Y तो दूध है और X शहद है और दोनों के लिए उपभोक्ता का बजट स्थिर रहता है। उपभोक्ता प्रारम्भ में A बिन्दु पर है और हम मान लेते हैं कि इस बिन्दु पर $MRS_{xy}=4$ है—अर्थात् वह शहद का एक अतिरिक्त पौंड लेने के लिए दूध के 4 पाइन्ट देने को उद्यत (willing) हो जाता है। मान लीजिए दूध का भाव प्रति पाइन्ट $1 है और शहद का भाव प्रति पौंड $2 है। इन कीमतों पर बाजार यह आवश्यक समझता है कि वह अपना शहद का उपभोग 1 पौंड बढ़ाने के लिए दूध के केवल 2 पाइन्टों का ही त्याग करे। इन दशाओं में उपभोक्ता बाजार की आवश्यकताओं के अनुसार काम कर सकता है—वह एक पौंड शहद के लिए 2 पाइन्ट दूध दे सकता है—और चूंकि फिर भी उसके पास 2 पाइन्ट दूध रह जाता है जिसे देने के लिए वह उद्यत हो जाता, इसलिए वह स्पष्टतया ज्यादा उत्तम स्थिति में होगा।

मांग-वक्र व एंजिल वक्र

हमने अब तक विश्लेषण के जिन उपायों को विकसित किया है उनकी सहायता से हम एक दी हुई वस्तु या सेवा के लिए एक उपभोक्ता के मांग वक्र व उसके एंजिल

V के अधिकतमकरण के लिए,

$$\frac{\delta V}{\delta X} = f_x + \lambda P_x = 0, \text{ अथवा } f_x = -\lambda P_x \qquad \ldots(4)$$

$$\frac{\delta V}{\delta Y} = f_y + \lambda P_y = 0, \text{ अथवा : } f_y = - \quad y \qquad \ldots(5)$$

$$\frac{\delta V}{\delta \lambda} = XP_x + YP_y - I = 0, \text{ अथवा } XP_x + 1P_y = I \qquad \ldots(6)$$

(4) को (5) से विभाजित करने पर एवं (6) को वैसा ही रहने देने पर, अधिकतम संतुष्टि की शर्तें इस प्रकार हो जाती हैं.

$$\frac{-f_x}{f_y} = \frac{-P_x}{P_y} \qquad \ldots(7)$$

साथ में :

$$XP_x + YP_y = I \qquad \ldots(8)$$

f_x व f_y आंशिक अवकलजों (partial derivatives) का अनुपात तटस्थता वक्र के उस ढाल का सूचक है जो वह बजट-रेखा को स्पर्श करते समय बनाता है।

वक्र के पीछे पायी जाने वाली शक्तियों तक पहुँच सकते हैं। माग की धारणा पहले आ चुकी है, लेकिन वहा वह बाजार के सन्दर्भ मे परिभाषित की गई थी। एक वैयक्तिक उपभोक्ता के लिए परिभाषा ज्यादा भिन्न नही होगी, एक वस्तु के लिए उसका माग-वक्र प्रति इकाई समयानुसार उन मात्राओं को दर्शायेगा जिन्हे, अन्य बातों के समान रहने पर, वह विभिन्न सभाव्य कीमतो पर लेगा। एंजिल वक्र[12] की धारणा नई तो है लेकिन मुश्किल नही है। यह प्रति इकाई समयानुसार एक वस्तु की उन मात्राओं का दर्शाता है जिन्हे उपभोक्ता, अन्य बातो के समान रहने पर, आमदनी के विभिन्न स्तरो पर खरीदेगा।

माग-वक्र

हम शुरू मे किसी वस्तु X के माग-वक्र पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। उपभोक्ता की आमदनी, Y की कीमत, और उपभोक्ता की रुचि व अधिमान (उसके तटस्थता वक्र) स्थिर रखे जाते है। हम X की कीमत परिवर्तित करते हैं और यह देखते हैं कि X की ली जाने वाली मात्रा मे क्या परिवर्तन होता है।

X की कीमत के परिवर्तन उपभोक्ता की बजट-रेखा को परिवर्तित कर देते हैं। मान लीजिए चित्र 5–7 (अ) मे बजट रेखा AB है। X की कीमत बढ़कर P_{x2} हो जाने पर उसके द्वारा खरीदी जा सकने वाली इसकी मात्रा घट कर I_1/P_{x2} हो जाती है बशर्ते कि वह अपनी सम्पूर्ण आय X पर व्यय करता है और नई बजट-रेखा AC हो जाती है। यह AB रेखा के नीचे रहती है और इसका ढाल भी अधिक होता है।[13]

AB रेखा की बनिस्बत AC रेखा एक नीचे के तटस्थता वक्र को अनिवार्यत स्पर्श करेगी और X व Y का जो नया सयोग उपभोक्ता अधिक पसद करेगा वह प्रारम्भिक सयोग से भिन्न होगा। प्रारम्भ मे उपभोक्ता ने X वस्तु की X_1 मात्रा और Y की Y_1 मात्रा पसद की थी। इससे ज्यादा उत्तम नये सयोग मे X वस्तु की X_2 मात्रा और Y की Y_2 मात्रा होगी। X की विभिन्न कीमतो पर बजट रेखा विभिन्न स्थिति धारण कर लेगी, लेकिन इसका केन्द्रीय बिन्दु सदैव A बना रहेगा। X की

12 एंजिल वक्र अर्स्ट एंजिल (Ernst Engel) के नाम से जाने जाते हैं जो बजट-सम्बन्धी अध्ययनों के क्षेत्र मे उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम अर्द्ध भाग मे एक जर्मन प्रणेता था। देखिए जार्ज जे॰ स्टिग्लर, "The Early History of Empirical Studies of Consumer Behavior," *The Journal of Political Economy*, Vol LXII (अप्रैल, 1954), पृष्ठ 98–100

13 AB का ढाल P_{x1}/P_{y1} है। AC का ढाल P_{x2}/P_{y1} है, चूंकि $P_{x2} > P_{x1}$ है, अत $P_{x2}/P_{y1} > P_{x1}/P_{y1}$ होगा।

ऊँची कीमतो पर यह घडी के क्रम मे घूमेगी और नीचे के तटस्थता वक्रो को स्पर्श करेगी। X की नीची कीमतों पर यह घडी के विपरीत क्रम म घूमेगी और ऊँचे तटस्थता वक्रो को स्पर्श करेगी।

X की विभिन्न कीमतो पर उपभोक्ता-सतुलन के बिन्दुओ को मिलाने वाली रेखा **कीमत-उपभोग वक्र रेखा** होती है। ऐसा वक्र चित्र 5–7 (अ) म दिखलाया गया है। स्मरण रहे कि वस्तुत यह कीमतें नही दर्शाता है। यह तो केवल X और Y *के ज्यादा उत्तम सयोगो को मिलाता है, जबकि उसकी रुचि व अधिमान, उसकी आय* और एक वस्तु की कीमत स्थिर रखे जाते हैं और दूसरी वस्तु की कीमत बदली जाती है।

X-वस्तु के लिए उपभोक्ता की माग अनुसूची और माग वक्र को स्थापित करने के लिए आवश्यक सूचना चित्र 5–7 (अ) से प्राप्त गई है। जब X की कीमत P_{x1} होती है तो उपभोक्ता X की X_1 मात्रा लेता है। इस चुनाव से उसकी अनुसूची अथवा मांग-वक्र पर एक बिन्दु स्थापित हो जाता है। P_{x2} की अपेक्षाकृत ऊँची कीमत पर वह X की थोडी मात्रा X_2 लेगा। इससे X के लिए उपभोक्ता की मांग अनुसूची अथवा मांग-वक्र पर दूसरा बिन्दु प्राप्त हो जाता है। चित्र 5-7 (आ) म ये बिन्दु E_1 व E_2 के रूप मे अकित किये गये है। कीमत-मात्रा सम्बन्धी अतिरिक्त बिन्दु इसी तरह से स्थापित किये जा सकते हैं और ये बिन्दु प्रचलित विधि से परम्परागत मांग के रेखाचित्र पर *अकित किये जा सकते है। प्राप्त मांग-अनुसूची अथवा मांग वक्र* साधारणत यह दर्शायेंगे की X की कीमत जितनी ऊँची होगी, ली जाने वाली मात्रा उतनी ही कम होगी और इसके विपरीत भी सही होगा।

मांग की लोच और कीमत उपभोग वक्र

यदि हम तटस्थता वक्र रेखाचित्र के X-अक्ष पर किसी भी वस्तु की इकाइयाँ लेते हैं और Y-अक्ष पर X पर व्यय की जाने वाली क्रय-शक्ति को लेते हैं[14] *तो कीमत उपभोग वक्र का ढाल यह बतलायेगा कि वस्तु की मांग की लोच एक के बराबर है, एक से अधिक है अथवा एक से कम है।*

चित्र 5–8 (अ) मे *तटस्थता वक्र ऐसे है कि कीमत उपभोग वक्र X–अक्ष के समान्तर* (parallel) होता है अथवा इसका ढाल शून्य होता है। जब X की कीमत P_{x1} से बढ कर P_{x2} हो जाती हैं तो उसकी आय का जो अश X पर व्यय नही

---

14 एक दिया हुआ तटस्थता वक्र मुद्रा और X-वस्तु के उन सयोगो को प्रदर्शित करेगा जिनके बीच उपभोक्ता तटस्थ रहता है। बजट रेखा साधारण विधि से खीची जाती है। क्रय शक्ति की कीमत, P_{y1} डालरो म $1 प्रति इकाई है। अत I_1/P_{y1} उपभोक्ता की आय है। चूंकि बजट रेखा का ढाल P_{x1}/P_{y1} है और $P_{y1}=\$1$ है, इसलिए ढाल P_{x1} है।

किया जाता वह Oy_1 पर स्थिर रहता है। इस तरह X पर व्यय की जाने वाली राशि भी स्थिर रहती है। यदि X की कीमत के बढ़ने से X पर व्यय की जाने वाली कुल राशि में कोई परिवर्तन नहीं होता तो कीमत के बढ़ने से X की मांग की लोच एक के बराबर होगी।
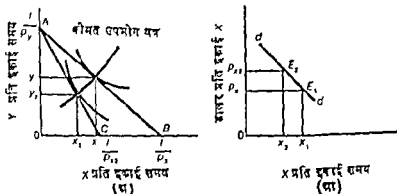
चित्र 5–7 एक वस्तु के लिए उपभोक्ता का मांग-वक्र
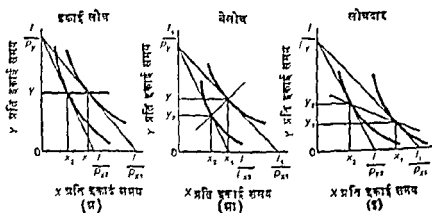
चित्र 5–8 कीमत उपभोग वक्र रेखाएँ व मांग की लोच

चित्र 5–8 (आ) में कीमत उपभोग वक्र का ऊपर की ओर उठने वाला ढाल यह बतलाता है कि X की मांग बेलोच है। X की कीमत के P_{x1} से बढ़ कर P_{x2} हो जाने पर X पर व्यय नहीं किया जाने वाला आय का अंश घट कर Oy_1 से Oy_2 हो जाता है। दूसरे शब्दों में, ऊँची कीमत पर X पर अधिक आय व्यय की जाती है। X की कीमत के बढ़ने पर इस पर किए जाने वाले व्यय में वृद्धि तभी हो सकती है जब कि कीमत के बढ़ने पर X की मांग बेलोच हो।

चित्र 5–8 (इ) नीचे की ओर झुकने वाला कीमत उपभोग वक्र बतलाता है जिसका आशय यह है कि X की मांग लोचदार है। X की कीमत के घटने से X पर व्यय नहीं किया जाने वाला आय का अंश Oy_1 से बढ़ कर Oy_2 हो जाता है। इसलिए X पर व्यय कम किया जाता है। X की कीमत की जो वृद्धि इस पर होने वाले कुल व्यय को घटा देती है वह दो कीमतों के बीच X के लिए लोचदार मांग-वक्र का परिणाम होती है।
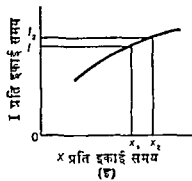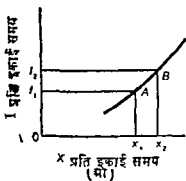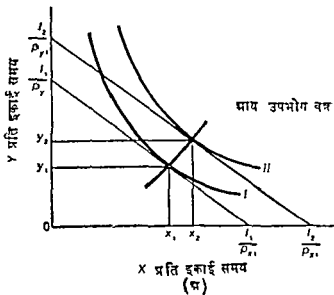
चित्र 5–9 एक वस्तु के लिए उपभोक्ता का एंजिल वक्र

एंजिल वक्र (Engel Curves)

X–वस्तु व Y–वस्तु के एंजिल वक्र प्राप्त करने के लिए इनकी कीमतें और उपभोक्ता की रुचि व अधिमान स्थिर रखे जाते हैं, लेकिन आय को परिवर्तित होने

दिया जाता है। X की कीमत के P_{x1} और Y की कीमत के P_{y1} होने पर आय के I_1 से बढ़ कर I_2 हो जाने पर बजट रेखा स्वयं के दायीं ओर समान्तर आ जाती है, जैसा कि चित्र 5–9 (अ) में दर्शाया गया है। P_{y1} कीमत पर यदि उपभोक्ता अपनी सम्पूर्ण आय Y पर व्यय करता है तो उसे पहले की अपेक्षा Y की ज्यादा इकाइयाँ प्राप्त हो सकती हैं। इसी तरह, यदि P_{x1} कीमत पर अपनी सम्पूर्ण आय X पर व्यय करता है तो उसे पहले की अपेक्षा X की अधिक इकाइयाँ प्राप्त हो सकती हैं। नई बजट रेखा पुरानी के दायीं ओर ऊपर की तरफ होगी। चूंकि दोनों रेखाओं के ढाल P_{x1}/P_{y1} के बराबर है, इसलिए वे एक दूसरे के समान्तर होंगी। यदि आय के बढ़ने से एक वस्तु की ली जाने वाली मात्रा बढ़ जाती है तो इसे सामान्य वस्तु (normal good) कहा जाता है। चित्र 5–9 में X व Y दोनों सामान्य वस्तुएँ हैं। आय के परिवर्तित होने पर उपभोक्ता के सन्तुलन के सभी बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा को आय-उपभोग वक्र (income consumption curve) कहते हैं।

X व Y के लिए एंजिल वक्र चित्र 5–9 (अ) के तटस्थता-वक्र रेखाचित्र से प्राप्त सूचना के आधार पर बनाए जा सकते हैं। चित्र 5–9 (आ) व (इ) में दो विशेष किस्म के एंजिल वक्र दर्शाए गए हैं। इनमें आय को रेखाचित्रों के लम्बवत् अक्षों पर मापा गया है जब कि मात्राएँ प्रति इकाई समय के अनुसार क्षैतिज अक्षों पर मापी गई है। हम चित्र 5–9 (अ) से यह जान सकते हैं कि I_1 आय के स्तर पर उपभोक्ता X–वस्तु की X_1 मात्रा लेगा। यह चित्र 5–9 (आ) पर A बिन्दु के रूप में अंकित है। I_2 आय के स्तर पर X_2 मात्रा ली जायगी। हम इसे B बिन्दु से अंकित करते है। यदि वे बजट रेखाएँ जो आय के स्तरों के अनुरूप हैं, चित्र 5–9
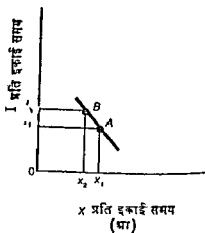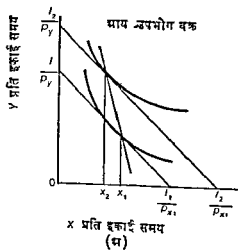
चित्र 5–10 घटिया वस्तु के लिए एंजिल वक्र

(अ) मे दर्शायी जाती हैं तो X की ली जाने वाली सम्बन्धित मात्राएँ निर्धारित करके चित्र 5-9 (आ) पर उन आय के स्तरो के सामने अंकित की जा सकती हैं। यह मान लेने पर कि X एक सामान्य वस्तु है, आय के ऊँचा होने पर इसकी ली जाने वाली मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होगी।

कुछ वस्तुएँ सामान्य होने की बजाय घटिया (*Inferior*) होती हैं। उनकी विशेषता यह होती है कि उपभोक्ता की आय के बढने पर उनका उपभोग का स्तर घट जाता है। हेम्बर्गर मांस इसका उदाहरण माना जा सकता है। आमदनी के ऊँचे स्तरो पर उपभोक्ता इसके स्थान पर ज्यादा महँगे मांस—प्राइम रिब स्टीक—प्रतिस्थापित करने लगते है।

ऐसी वस्तु के लिए आय उपभोग वक्र व एंजिल वक्र को चित्र 5-10 पर प्रदर्शित किया गया है। चित्र 5-10 (अ) मे दर्शाया गया है कि I_1 आय पर उपभोक्ता अपनी सर्वश्रेष्ठ स्थिति मे X की X_1 मात्रा लेता है। यह चित्र 5-10 (आ) मे A बिन्दु के रूप मे अंकित है। इसी प्रकार I_2 आय पर वह X_2 लेता है और उसके एंजिल वक्र पर B बिन्दु अंकित हो जाता है। ध्यान रहे कि X के लिए आय-उपभोग वक्र और एंजिल वक्र दोनो बायीं ओर ऊपर की तरफ जाते हैं।

एंजिल-वक्र विभिन्न वस्तुओ व विभिन्न व्यक्तियो के उपभोग प्रारूपो (Consumption patterns) के सम्बन्ध मे मूल्यवान सूचना प्रदान करते हैं। जब उपभोक्ता की आय बहुत नीचे स्तरो से आगे बढती है तो खाद्य (food) जैसी मूलभूत वस्तुओ के लिए यह कहा जा सकता है कि इनका उपभोग प्रारम्भ मे काफी तेजी से बढेगा। लेकिन आय की वृद्धि के जारी रहने पर उपभोग प्रारम्भ मे काफी तेजी से बढेगा। लेकिन आय की वृद्धि के जारी रहने पर उपभोग की वृद्धि आय की वृद्धि की तुलना मे उत्तरोत्तर कम हो सकती है। इस किस्म की स्थिति चित्र 5-9 (आ) मे दर्शायी गई है। आवास (housing) जैसी अन्य मदो के लिए उपभोक्ता की आय के बढने पर प्रति इकाई समय के अनुसार खरीदी जाने वाली मात्रा आय की अपेक्षा ज्यादा अनुपात मे बढ सकती है। चित्र 5-9 (इ) इसी तरह की स्थिति को प्रकट करता है। यह भी सम्भव है कि एक वस्तु नीची आय पर सामान्य वस्तु हो और ऊँची आय पर वह घटिया वस्तु हो जाय।

माँग की आय लोच

आय के परिवर्तनो से प्रति इकाई समयानुसार एक उपभोक्ता द्वारा एक वस्तु की खरीदी जाने वाली मात्रा की अनुक्रियात्मकता (*responsiveness*) उस वस्तु के लिए **मांग की आय-लोच** से मापी जाती है। अब हमारे लिए लोच की धारणा कोई

नई नही है इसलिए इस विशेष सन्दर्भ मे हमे इसका केवल अर्थ देना है। इसकी परिभाषा इस प्रकार से दी जा सकती है

$$\theta = \frac{\Delta X/X}{\Delta I/I} \qquad ....(5\ 2)$$

अर्थात् जब आय के स्तर मे मामूली परिवर्तन हो तो यह मात्रा के प्रतिशत परिवर्तन म आय के स्तर म प्रतिशत परिवर्तन का भाग देने से प्राप्त होती है।[15] चित्र 5-11 (अ) म EF जैसे चाप (arc) के लिए लोच का माप करने के लिए लोच के सूत्र म उपयुक्त आकडे लगाये जा सकते हैं। चित्र 5-11 (आ) मे A बिन्दु पर आय की लोच MT/OM होगी। बिन्दु आय लोच के माप की विधि ठीक उसी प्रकार से निकाली गई है जिस प्रकार से बिन्दु कीमत लोच के माप की विधि निकाली गई है। प्रश्न उठता है B बिन्दु पर CC की आय-लोच एक से अधिक होगी या कम ? क्या CC पर कोई ऐसा बिन्दु है जहाँ आय-लोच ठीक एक के बराबर हो ? वह एजिल वक्र कैसा लगेगा जिसके समस्त बिन्दुओ पर आय-लोच इकाई के बराबर हो ?
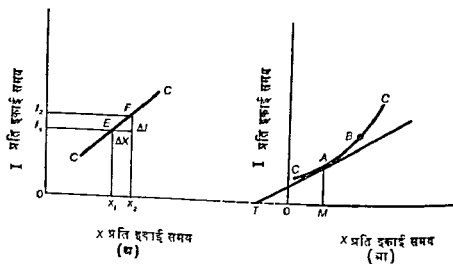
चित्र 5-11 माँग की आय-लोच

15. कलन (calculus) के रूप में यह इस प्रकार होगी

$$\theta = \lim_{\Delta I \to 0} \frac{\Delta X/X}{\Delta I/I} = \frac{dX/X}{dI/I} = \frac{dX}{dI} \times \frac{I}{X}$$

आय-प्रभाव और प्रतिस्थापन-प्रभाव

एक वस्तु की कीमत व प्रति इकाई समयानुसार एक उपभोक्ता द्वारा खरीदी जाने वाली मात्रा के बीच *एक मांग-वक्र* द्वारा प्राय जो विलोम सम्बन्ध व्यक्त किया जाता है वह कीमत के परिवर्तन से उत्पन्न **प्रतिस्थापन प्रभाव व आय प्रभाव** का संयुक्त परिणाम होता है। जब एक वस्तु की कीमत बढती है तो उपभोक्ता इससे हट कर अपेक्षाकृत नीची कीमत वाले स्थानापन्न पदार्थों पर चले जाते हैं जिससे प्रतिस्थापन के कारण मात्रा मे कमी आ जाती है। इसके अतिरिक्त, वस्तु की कीमत के बढने से उपभोक्ता की वास्तविक आमदनी या क्रय-शक्ति घट जाती है जिससे वह सभी सामान्य वस्तुओ की खरीद मे कमी कर देता है। वास्तविक आय मे कमी से जिस सीमा तक विचाराधीन वस्तु का उपभोग प्रभावित होता है, उस सीमा तक आय प्रभाव होता है।

आय-प्रभावों व प्रतिस्थापन-प्रभावों का पृथक्करण चित्र 5–12 मे दर्शाया गया है। उपभोक्ता की आय I_1 है और X व Y की कीमतें क्रमश. P_{x1} और P_{y1} हैं। संयोग A, जिसमे X–वस्तु की X_1 मात्रा और Y की Y_1 मात्रा है, उपभोक्ता का ज्यादा उत्तम संयोग है। मान लीजिए, X की कीमत बढ कर P_{x2} हो जाती है। इससे बजट रेखा घडी की क्रम मे घूम जाती है और इसका केन्द्रीय बिन्दु I_1/P_{y1} होता है। अब यह X–अक्ष को I_1/P_{x2} पर काटती है। यह ध्यान देने योग्य है कि X की कीमत के बढने पर नई बजट रेखा का ढाल पुरानी रेखा से ज्यादा होता है। मूल
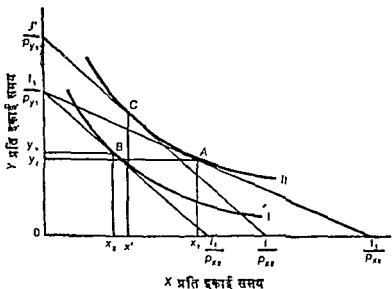
चित्र 5–12 आय व प्रतिस्थापन प्रभाव

बजट रेखा का ढाल P_{x1}/P_{y1} है और नई का P_{x2}/P_{y1} है। X की कीमत में वृद्धि के बाद संयोग B, जिसमें X की x_2 मात्रा और Y की y_2 मात्रा होती हैं, उपभोक्ता के ज्यादा उत्तम या बेहतर संयोग (preferred combination) को व्यक्त करता है।

X की कीमत में वृद्धि होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय घट जाती है। यह चित्र में इस तथ्य से प्रगट होता है कि संयोग B संयोग A की तुलना में नीचे तटस्थता-वक्र पर स्थित है। लेकिन संयोग A से संयोग B की तरफ होने वाली गति और X की ली जाने वाली मात्रा में X_1 से X_2 तक की गिरावट कीमत परिवर्तन का संयुक्त आय और प्रतिस्थापन प्रभाव बतलाती है।

प्रतिस्थापन-प्रभाव को पृथक् करने और उसकी मात्रा को निर्धारित करने के लिए हम मान लेते हैं कि उपभोक्ता की मौद्रिक आय इतनी बढ़ाई जाती है कि इससे उसकी क्रय-शक्ति की क्षति की पूर्ति हो सके। अतिरिक्त क्रय-शक्ति या "आय में क्षतिपूरक वृद्धि" से बजट रेखा दायी ओर स्वयं के समान्तर आ जायगी, और जब उपभोक्ता की क्षति पूर्ति के लिए पर्याप्त राशि दे दी जाती है तो यह C बिन्दु पर तटस्थता-वक्र II को स्पर्श करेगी। संयोग C उपभोक्ता को उतना ही संतोष देता है जितना संयोग A देता है लेकिन अब X की कीमत बढ जाने से वह संयोग A नही ले सकता। नीचे अधिमान या संतोष की स्थिति टालने के लिए वह अपेक्षाकृत सस्ते Y को अपेक्षाकृत अधिक महँगे X के लिए प्रतिस्थापित करने के लिए बाध्य हो गया है। X की कीमत में वृद्धि का आय-प्रभाव उपभोक्ता की आय में क्षतिपूरक परिवर्तन से मिट गया है इसलिए A से C तक की गतिशीलता, अथवा ली जाने वाली X की मात्रा में X_1 से X^1 तक की कमी प्रतिस्थापन-प्रभाव है। यह X की कीमत में Y की कीमत की तुलना में परिवर्तन होने से ही उत्पन्न होता है।

प्रतिस्थापन-प्रभाव के अलावा आय प्रभाव उपभोक्ता में आय में क्षतिपूरक परिवर्तन को अलग करके भी निर्धारित किया जा सकता है। बजट-रेखा बायी ओर खिसक जाती है और सर्वोच्च तटस्थता-वक्र जिसे यह स्पर्श करती है वह तटस्थता वक्र I होता है। संयोग B, जहाँ Y की y_2 मात्रा और X की x_2 मात्रा होती है, ज्यादा उत्तम स्थिति मानी जाती है। C से B तक की गतिशीलता आय-प्रभाव की सूचक होती है और यह X की ली जाने वाली मात्रा को x' से घटाकर x_2 कर देती है।

इस प्रकार X की कीमत के P_{x1} से P_{x2} तक बढ़ने पर संयोग A से संयोग B की तरफ उपभोक्ता की गतिशीलता को दो चरणों में विभक्त किया जा सकता है, इनमें से एक तो प्रतिस्थापन-प्रभाव दिखलाता है और दूसरा आय-प्रभाव। प्रायः ये दोनों एक ही दिशा में क्रियाशील होते हैं। लेकिन यदि X एक घटिया वस्तु है तो आय-प्रभाव प्रतिस्थापन-प्रभाव से विपरीत दिशा में कार्य करेगा। ऐसी स्थिति में X

की कीमत मे वृद्धि होने से उपभोक्ता की तरफ से X के लिए अपेक्षाकृत नीची कीमत वाली वस्तुओ को प्रतिस्थापित करने की प्रवृत्ति होगी लेकिन साथ मे उपभोक्ता की अपेक्षाकृत नीची वास्तविक आय के कारण X के उपभोग मे अन्य स्थिति की अपेक्षा वृद्धि की तरफ भी प्रवृत्ति हो सकती है।

प्रतिस्थापन प्रभाव प्राय आय-प्रभाव की तुलना म ज्यादा प्रबल होता है। जो उपभोक्ता अनेक वस्तुएँ खरीदता है, वह साधारणतया किसी एक वस्तु की कीमत मे वृद्धि हो जाने से अपनी वास्तविक आय मे अत्यधिक कमी का अनुभव नही करेगा। लेकिन यदि विचाराधीन वस्तु के लिए उत्तम स्थानापन्न वस्तुएँ उपलब्ध होनी हैं तो वह बडी मात्रा मे प्रतिस्थापन-प्रभाव का अनुभव कर सकता है।

विनिमय और कल्याण

व्यक्तियो के बीच वस्तुओ के ऐच्छिक विनिमय को उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ और कल्याण पर ऐच्छिक विनिमय के प्रभाव को तटस्थता-वक्र-विश्लेषण के माध्यम से आसानी से समझाया जा सकता है। मान लीजिए हम दो उपभोक्ताओ–A और B-को लेते हैं जो X और Y दो वस्तुओ की मात्राओ को प्रति इकाई समयानुसार प्राप्त करते हैं और इनका उपभोग करते है।

X और Y के लिए व्यक्ति A की रुचि व अधिमान चित्र–13 के परम्परागत
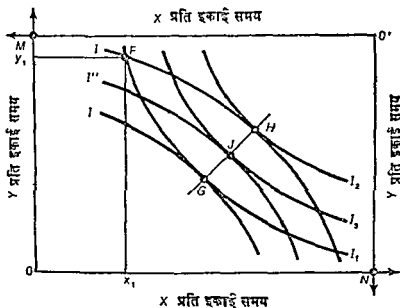
चित्र 5-13 विनिमय का आधार

अंश पर दिखलाए गए है । B का तटस्थता मानचित्र 180° घुमाया जाता है और यह A के ऊपर रख दिया जाता है जिससे दोनों रेखाचित्रों के अक्ष मिलकर एक बॉक्स बनाते हैं जिसे एजवर्थ बॉक्स कहते हैं । B के लिए रेखाचित्र इस तरह से रखा जाता है कि OM दोनो व्यक्तियो के द्वारा रखे जाने वाले Y की कुल मात्रा का सूचक होता है और ON, X के लिए उनकी कुल मात्रा का सूचक होता है । A के तटस्थता वक्र O के उन्नतोदर होते हैं और B के O' के उन्नतोदर होते हैं । आयत (rectangle) के ऊपर अथवा आयत के अन्दर कोई भी बिन्दु दो व्यक्तियो के बीच वस्तुओ के सम्भव वितरण का सूचक होता है ।

दोनो के बीच X और Y का प्रारम्भिक वितरण एक F जैसे बिन्दु मे भी सूचित किया जा सकता है जो अक्षो के दोनो समूहो से निर्मित आयत मे पडता है । व्यक्ति A, Y की प्रति इकाई समयानुसार OY_1 मात्रा प्राप्त करता है और B व्यक्ति Y_1M मात्रा प्राप्त करता है । A के द्वारा प्रति इकाई समयानुसार प्राप्त की जाने वाली X की मात्रा OX_1 है और B के द्वारा रखी जाने वाली मात्रा X_1N है । A तटस्थता-वक्र I_1 पर है । B तटस्थता-वक्र I' पर है । F बिन्दु पर A के लिए Y के बदले X के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर B की अपेक्षा ज्यादा है । A व्यक्ति X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए अधिक मात्रा मे Y का त्याग करने के लिए उद्यत होगा, बनिस्बत उस मात्रा के जो B उससे X की एक इकाई के लिए त्याग करवाना चाहेगा । इस प्रकार विनिमय के लिए परिस्थिति तैयार हो जाती है ।

जब दो वस्तुओ का प्रारम्भिक वितरण ऐसा हो कि A का तटस्थता-वक्र B के तटस्थता-वक्र को काटे तो एक या दोनो पक्षो को विनिमय से लाभ हो सकता है । F बिन्दु X और Y के प्रारम्भिक वितरण को प्रदर्शित करता है और व्यक्ति A के द्वारा व्यक्ति B से X के बदले Y के विनिमय इस तरह से हो सकते हैं कि तटस्थता-वक्र I_1 दाहिनी तरफ नीचे की ओर जाता है । A की स्थिति खराब नही होगी, लेकिन B उत्तरोत्तर सन्तोष के ऊँचे स्तरो पर उस समय तक पहुँचेगा जब तक कि दोनों व्यक्तियो के बीच वस्तुओ का वितरण ऐसा नही हो जाता जैसा कि G बिन्दु के द्वारा सूचित किया जाता है, जहाँ तटस्थता-वक्र I_1 तटस्थता-वक्र I'' को स्पर्श करता है । इससे आगे विनिमय एक या दोनो पक्षो की स्थिति मे G की तुलना मे गिरावट लाये बिना नही हो सकता । इसी तरह व्यक्ति A व्यक्ति B से X के बदले Y का विनिमय इस तरह से करेगा कि तटस्थता-वक्र I^1 दाहिनी ओर नीचे की तरफ झुके । ऐसे विनिमयो से B की स्थिति मे कोई गिरावट नही आएगी, लेकिन A उत्तरोत्तर ऊँचे तटस्थता-वक्रो पर अथवा सन्तोष के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तरो पर उस समय तक चलता जाएगा जब तक कि वस्तुओ का वितरण H बिन्दु के द्वारा सूचित वितरण के जैसा

नही हो जाता, जहाँ पर तटस्थता-वक्र I^1 तटस्थता-वक्र I_2 को स्पर्श करता है। इससे आगे होने वाले विनिमयो से एक या दोनो पक्षो के कल्याण मे गिरावट आएगी।

पुन F से प्रारम्भ करने पर दोनो पक्षो को तभी लाभ होगा जबकि विनिमय (exchanges) F से J का मार्ग अपनाते हैं और वे FG एव FH के द्वारा घिरे हुए क्षेत्र मे कही पर होते हैं। दोनो पक्ष किसी बिन्दु J तक सन्तोष के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तरो पर पहुँच जायेंगे, और वहाँ पर A का तटस्थता-वक्र B के तटस्थता-वक्र को स्पर्श करेगा। इससे आगे के विनिमयो से एक या दोनो पक्षो की स्थिति म गिरावट आएगी।

ऐसे विनिमय जो वस्तुओ के वितरण को इस स्थिति से बदल देते हैं जहाँ एक उपभोक्ता का तटस्थता-वक्र दूसरे उपभोक्ता के तटस्थता-वक्र को काटता है, और इसे ऐसे वितरण की ओर ले जाते है जो दो तटस्थता वक्रो से घिरे हुए क्षेत्र के भीतर होता है एव जिसके अन्दर स्पर्शिता (tangency) पाई जाती है, तो ये पेरेटो इष्टतम अथवा वस्तुओ के कुशल (efficient) वितरण की तरफ ले जाते हुए माने जायेंगे।

अध्याय 1 मे हमने पेरेटो इष्टतम दशा को इस तरह परिभाषित किया था कि यह वह दशा होती है जिसम किसी अन्य व्यक्ति की स्थिति म गिरावट लाए बिना एक भी व्यक्ति की स्थिति म सुधार नही लाया जा सकता, और यही स्थिति G या J या H अथवा अन्य किसी बिन्दु पर होती है जिस पर A का तटस्थता-वक्र B के तटस्थता-वक्र को स्पर्श करता है। इन समस्त स्पर्शिता बिन्दुओ को मिलाने वाली रेखा GJH, जो चित्र 5-13 मे बढाई गई है, प्रसंविदा वक्र (contract curve) कहलाती है।

दो दलो के बीच वस्तुओ के कुशल वितरण के लिए अथवा वितरण मे पेरेटो इष्टतम के लिए एक के लिए MRS_{xy} दूसरे के लिए MRS_{xy} के समान होना चाहिए। अर्थात् यदि Y की वह अधिकतम मात्रा जिसे A व्यक्ति X की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए देने को उद्यत होता है, Y की उस न्यूनतम मात्रा के बराबर होती है जिसे B व्यक्ति X की एक इकाई के बदले मे स्वीकार कर लेगा, तो किसी भी व्यक्ति को ऐसे विनिमय से कोई लाभ नही होगा। ये शर्तें प्रसंविदा वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर पूरी होती है। ऐसे प्रत्येक बिन्दु पर A का तटस्थता-वक्र B के तटस्थता वक्र को स्पर्श करेगा, अर्थात् A के तटस्थता-वक्र का वही ढाल होता है जो B के तटस्थता-वक्र का होता है, अथवा A के लिए MRS_{xy} वही है जो B के लिए है।

यह विश्लेषण बतलाता है कि उपभोक्ताओ के बीच वस्तुओ (आमदनी) के कुछ पुनर्वितरण कल्याण को बढाते हैं, लेकिन अन्य के बारे मे हम अन्धकार म रह जाते हैं—हम नही कह सकते कि समाज उनसे बेहतर (better off) होगा या नही।

प्रारम्भिक वितरण F के दिए होने पर, G से H तक इनको शामिल करते हुए प्रसविदा वक्र पर कोई भी बिन्दु पेरेटो इष्टतम होगा, और F से ऐसे किसी भी बिन्दु तक की गति समाज के कल्याण मे वृद्धि करती है। उपभोक्ताओ A व B के बीच X व Y के लिए कई कुशल (efficient) या पेरेटो इष्टतम वितरण हो सकते हैं, लेकिन प्रसविदा वक्र के प्रत्येक बिन्दु के लिए तो एक ही वितरण कुशल होगा। उदाहरणार्थ, यदि J से H तक पुनर्वितरण किया जाता है तो उपभोक्ता B की स्थिति खराब हो जाएगी और उपभोक्ता A की स्थिति मे सुधार हो जाएगा। कौन कह सकता है कि A के कल्याण की वृद्धि B के कल्याण की कमी के बराबर होगी, इससे अधिक होगी अथवा इससे कम रह जाएगी ?

तटस्थता-वक्र विश्लेषण के कुछ प्रयोग

तटस्थता-वक्र विश्लेषण विकल्पो के बीच चुनाव की अधिकाश समस्याओ का विश्लेषण करने म उपयोगी माना गया है। दो आम समस्याएँ—मुद्रा के रूप मे अथवा अनुषगी लाभो (fringe benefits) के रूप मे प्राप्त प्रतिफल (pay) के बीच चुनाव और काम व विश्राम (leisure) के बीच चुनाव—इसके उपयोग के लिए सुन्दर दृष्टान्त माने जा सकते है।

अनुषगी लाभो का अर्थशास्त्र (Economics of Fringe Benefits)

अनुषगी लाभ—जैसे सेवानिवृत्ति वेतन की गारण्टी, कुछ सीमा तक नि शुल्क चिकित्सा की सुविधाएँ, जीवन-बीमा, कम्पनी की तरफ से मनोरजन की सुविधाओ का उपयोग और अन्य कई लाभ—वेतन पैकेज के अग के रूप मे साधारण बात बन गए हैं। ये मालिको के लिए लागतें हैं जैसे कि मजदूरी व वेतन लागतें है और ये लाभ कर्मचारी जो कुछ कमाते है उसका अग होते है। यहाँ हमे इस प्रश्न पर विचार करना है कि यदि मालिक अपने कर्मचारियो को अनुषगी लाभ प्रदान करने की बजाय इनके मौद्रिक मूल्य (लागत) के बराबर अतिरिक्त मजदूरी व वेतन का भुगतान कर दे तो कर्मचारियो की स्थिति बेहतर होगी या बदतर होगी। चुनाव की समस्या को सरलतम रखने के लिए हम मान लेते है कि कर्मचारियो को मुद्रा की बजाय अनुषगी लाभो के रूप मे भुगतान करने मे मालिको या कर्मचारियो को करो से सम्बन्धित कोई लाभ नही मिलते।[16]

16. समाज में जो सस्थागत व्यवस्थाएँ होती हैं उनका चुनावों पर स्पष्टत्या प्रभाव पडता है। लेकिन मूलभूत "शुद्ध" चुनाव चिकित्सा सेवाओं के रूप में मिलने वाले वेतन व मुद्रा के रूप में होने वाले वेतन के बीच होता है, जब कि यह चुनाव कर नियमो जैसी सस्थागत व्यवस्थाओं से मुक्त रखा जाता है। यदि इच्छा हो तो कोई इन सस्थागत व्यवस्थाओ को शामिल करके इनका प्रभाव चुनावों (choices) पर देख सकता है।
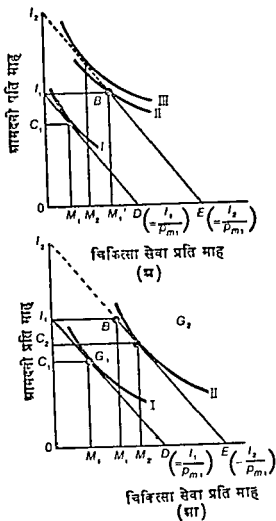
चित्र 5–14 अनुषंगी लाभ (Fringe Benefits) बनाम मौद्रिक आय

मान लीजिए प्रारम्भ मे एक व्यक्ति की आय, बिना अनुषंगी लाभो के, OI_1 डालर है जो चित्र 5–14 (अ) के लम्बवत् अक्ष पर मापी गई है। चिकित्सा-सेवा की इकाइयाँ क्षैतिज अक्ष पर मापी जाती हैं और P_{m1} प्रति इकाई कीमत पर एक व्यक्ति की कुल आमदनी से जो राशि खरीदी जा सकती है वह OD होती है। दिए हुए तटस्थता मानचित्र व बजट रेखा I_1D की स्थिति मे वह व्यक्ति चिकित्सा-सेवा की OM_1 इकाइयो के लिए अपनी आमदनी मे से I_1C_1 खर्च करता है।

अब हम यह मान लेते हैं कि उसका मालिक उसे नि शुल्क चिकित्सा-सेवा के रूप मे वेतन की वृद्धि प्रदान करता है जो प्रति माह OM'_1 के बराबर होती है। अनुषंगी

लाभ से स्पष्टतया व्यक्ति का कल्याण बढ़ जाता है, लेकिन महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यदि वेतन की यह वृद्धि वस्तु या सेवा के किसी विशिष्ट रूप के बजाय मुद्रा के रूप में दी जाती तो व्यक्ति का कल्याण उस राशि से अधिक, कम या समान मात्रा में बढ़ता ?

चित्र 5–14 (अ) एक ऐसी स्थिति दिखलाता है जिसमें अनुषंगी लाभ से कल्याण में कम वृद्धि होती है, बजाय उस दशा के जब कि व्यक्ति को समान मात्रा में मुद्रा-राशि दी जाती। नि:शुल्क चिकित्सा सेवाओं की OM'_1 राशि मौद्रिक आय की OI_1 राशि के साथ मिलकर बजट रेखा को I_1BE तक खिसका देती है। I_1B भाग (segment) मौद्रिक आय OI_1 से निर्धारित होता है—जो बढ़ाया नहीं गया है—और चिकित्सा सेवा की OM'_1 (जो बराबर है I_1B के) इकाइयाँ। अब मौद्रिक आय में कमी किए बिना प्राप्त की जा सकती हैं (यह मौद्रिक आय उपभोक्ता के लिए अपनी इच्छानुसार व्यय करने के लिए उपलब्ध होती है)। लेकिन यदि उपभोक्ता प्रति माह चिकित्सा सेवा की OM'_1 से अधिक इकाइयों का उपभोग करता है तो OM'_1 से अधिक प्रत्येक इकाई के लिए उसे P_{m1} देना होगा। ये दशाएँ बजट रेखा के BE भाग से सूचित की गई हैं। स्मरण रहे कि BE रेखा I_1D के समान्तर है क्योंकि दोनों वक्रों के ढाल P_{m1} के बराबर है। यह भी ध्यान रहे कि $DE = OM'_1$ है। नई बजट रेखा B बिन्दु पर "विकुंचित" ("kinked") है अथवा इसमें एक कोना है। तटस्थता वक्र II वह सर्वोच्च वक्र है जहाँ तक व्यक्ति पहुँच सकता है इसलिए इस स्थिति में वह नि:शुल्क चिकित्सा सेवाओं की सम्पूर्ण मात्रा का उपभोग करता है जिससे अन्य वस्तुओं व सेवाओं पर व्यय के लिए उसके पास OI_1 डालर बच जाते हैं।

यदि व्यक्ति को वेतन में मुद्रा के रूप में इतनी वृद्धि (money increase) प्राप्त होती है जो अनुषंगी लाभ वाली चिकित्सा सेवाओं के मूल्य के तो बराबर होती है, लेकिन इनके बदले में होती है, तो उसकी बजट रेखा I_2E हो जाती है। मौद्रिक आय की वृद्धि I_1I_2 बराबर होती है $OM'_1 \times P_{m1}$ के, जो बाजार में अनुषंगी लाभ वाली चिकित्सा सेवाओं के मूल्य के बराबर होता है। बजट रेखा का BE भाग वही है जो पहले था, चूँकि व्यक्ति यदि B पर होता तो वह चिकित्सा सेवाओं के OM'_1 के लिए I_1I_2 व्यय करता और उसके पास OI_1 शेष रह जाता जिसे वह इच्छानुसार व्यय कर सकता है। B बिन्दु के ऊपर I_2B भाग महत्त्वपूर्ण है। यह उपभोक्ता के लिए उपलब्ध उन अवसरों को बतलाता है जो अनुषंगी लाभ की व्यवस्था के अन्तर्गत सम्भव नहीं थे—वह चिकित्सा सेवाओं के अपने उपभोग को OM'_1 इकाइयों से नीचे तक घटा सकता है, और प्रत्येक इकाई के घटाने पर उसके पास अन्य वस्तुओं पर

व्यय के लिए P_{m_1} अधिक डालर होंगे। चित्र 5-14 (अ) के तटस्थता-मानचित्र के दिए होने पर व्यक्ति वस्तुत चिकित्सा सेवाओं का अपना उपभोग घटाकर प्रति माह OM_2 कर लेगा जहाँ तटस्थता-वक्र III बजट रेखा के I_2E भाग को स्पर्श करेगा। यह भाग उसे अनुषंगी-लाभ व्यवस्था के अन्तर्गत उपलब्ध नहीं था। इस स्थिति मे यदि उसके वेतन की वृद्धि उसे "नि शुल्क" चिकित्सा सेवाओं की बजाय मुद्रा के रूप मे दी जाती है तो उसका कल्याण अधिक होगा।

यदि एक व्यक्ति के अधिमान इस प्रकार के हैं कि वेतन-वृद्धि के बाद वह प्रति माह उस सीमा से अधिक चिकित्सा सेवाएँ चाहता है जितनी वेतन-वृद्धि से वह खरीद पाता या वेतन-वृद्धि उसे दे पाती, तो वृद्धि के रूप से उसका कल्याण प्रभावित नहीं होगा। यह स्थिति चित्र 5-14(आ) मे दर्शायी गई है। वेतन वृद्धि से पूर्व व्यक्ति की आमदनी OI होती है और वह G_1 पर सन्तुलन मे होता है जहाँ वह प्रति माह *चिकित्सा सेवाओं की OM_1 इकाइयाँ लेता है। अब कल्पना करें कि उसे OM_1' राशि* के बराबर चिकित्सा सेवाओं के रूप में वेतन-वृद्धि दे दी जाती है जिससे उसकी बजट-रेखा बदल कर I_1BE हो जाती है। उनकी नई सन्तुलन स्थिति G_2 होती है और वह प्रति माह चिकित्सा सेवाओं की OM_2 इकाइयाँ खरीदता है।

यदि वेतन-वृद्धि मुद्रा के रूप म होती है और अनुषंगी लाभवाली चिकित्सा सेवाओं के बराबर होती है तो उसकी नई सन्तुलन स्थिति भी G_2 होगी। उसकी बजट-रेखा I_1BE की अपेक्षा I_2E हो जाती है, लेकिन चूंकि *तटस्थता-वक्र पर स्पर्शिता* की दशा दोनो बजट रेखाओं पर पडने वाले BE भाग पर आती है, इसलिए दोनो तरफ परिणाम एक से निकलते हैं।

श्रम की पूर्ति

तटस्थता-वक्र तकनीक विश्राम व आमदनी के बीच एक व्यक्ति के चुनाव के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी प्रदान करती है, अथवा दूसरे रूप मे व्यक्त किये जाने पर, यह इस बात की जानकारी देती है कि एक व्यक्ति ने विभिन्न मजदूरी की दरो पर कितने श्रम की पूर्ति करने का निश्चय किया है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि चित्र 5-15 (अ) मे तटस्थता मानचित्र दैनिक आमदनी या विश्राम के सयोगो के लिए उसके अधिमान-ढाचे (preference structure) को दर्शाता है। आय लम्बवत् अक्ष पर मापी जाती है और विश्राम क्षैतिज अक्ष पर मापा जाता है। कोई भी तटस्थता-वक्र आय व विश्राम के उन सयोगो को दर्शाता है जो एक व्यक्ति की दृष्टि मे समान होते हैं। ऊँचे तटस्थता-वक्र आय-विश्राम के अधिक उत्तम सयोग बतलाते है।

एक बजट रेखा या आमदनी की रेखा उस आमदनी के स्तर को दिखलाती है जो दी हुई मजदूरी की दर पर विभिन्न घण्टे काम करके (विश्राम छोड़कर) प्राप्त की जा

सकती है। OH दूरी प्रतिदिन विश्राम के उन अधिकतम घण्टो को सूचित करती है
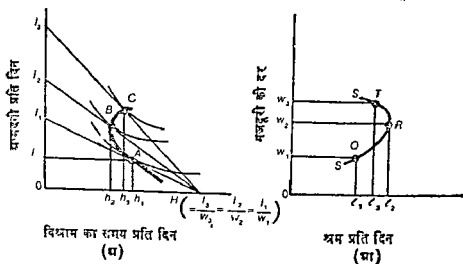
चित्र 5–15 काम, विश्राम व श्रम की पूर्ति

जिन्हे एक व्यक्ति काम के बदले मे देने को तत्पर हो जाता है। खाने व सोने मे कुछ न्यूनतम घण्टे लग जाते हैं। यदि इनकी सख्या प्रतिदिन दस घटे होती है तो OH की मात्रा चौदह घण्टे होगी। W_1 मजदूरी की दर पर व्यक्ति I_1 आमदनी $(=OH \times W_1)$ प्रतिदिन OH घटे काम करके प्राप्त कर सकता है जिससे उसके पास बदले मे देने लायक विश्राम शून्य हो जाता है। यदि वह प्रतिदिन h_1H घटे काम करता है तो उसके पास कमाई हुई आय I_1' $(=h_1H \times W_1)$ हो जाती है और उसके पास बदले मे देने लायक विश्राम का समय Oh_1 घटे हो जाता है। स्मरण रहे कि आमदनी की रेखा का ढाल W_1 मजदूरी की दर हो जाता है।

एक व्यक्ति अपनी आय रेखा से प्राप्त होने वाले आय व विश्राम के सभी सयोगो मे से सर्वाधिक अधिमान वाला सयोग (the most preferred combination) चुनने की आशा करेगा। W_1 मजदूरी की दर पर, सयोग A अन्य सभी उपलब्ध सयोगो से बेहतर है, यह सर्वोच्च तटस्थता वक्र है जहाँ तक वह पहुँच सकता है। वह h_1H घटे काम करके प्रतिदिन I_1' डालर आमदनी कमायेगा। इस बिन्दु पर आमदनी के लिए विश्राम के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर मजदूरी की दर के बराबर होती है—अर्थात आमदनी की जो मात्रा वह विश्राम का अतिरिक्त घटा प्राप्त करने के लिए त्यागने को तत्पर होता वह उतनी ही है जितनी उसे श्रम-बाजार मे त्यागने की आवश्यकता होगी।

विभिन्न मजदूरी की दरो से उत्पन्न होने वाली आय रेखाओ पर विचार करने पर

एक व्यक्ति के श्रम पूर्ति वक्र पर विभिन्न बिंदु निर्धारित किये जा सकते हैं। W_1 मजदूरी की दर पर श्रम की पूर्ति की मात्रा $h_1H(=Ol_1)$ प्रतिदिन होगी। यह बिन्दु चित्र 5-15(आ) मे Q बिन्दु के रूप म अकित किया गया है। W_2 ऊँची मजदूरी की दर उसकी आय की रेखा को घडी के श्रम मे I_2H तक खिसका देगी जिससे श्रम की पूर्ति की मात्रा बढ कर $h_2H(=Ol_2)$ हो जायगी। चित्र 5-15 (आ) मे यह R बिन्दु के रूप मे अकित की गई है। और भी ऊँची मजदूरी की दर W_3 आय रेखा I_3H का निर्माण करती है और व्यक्ति को प्रतिदिन श्रम के h_3H $(=Ol_3)$ घटे सप्लाई करने के लिए प्रेरित करती है जिससे T बिन्दु प्राप्त हो होना है। ये और इसी तरह से निर्धारित अन्य बिन्दु श्रम का पूर्ति वक्र SS बनाते हैं।

मजदूरी की दर के परिवर्तन का श्रम की पूर्ति की मात्रा (अथवा विश्राम की मांग की मात्रा) पर जो कुल प्रभाव पड़ता है वह आय प्रभाव (income effect) व प्रतिस्थापन प्रभाव (substitution effect) का सयुक्त परिणाम होता है। W_1 से W_2 तक की मजदूरी की दर की वृद्धि के लिए प्रतिस्थापन प्रभाव आय प्रभाव से अधिक वजनदार होता है, विश्राम के एक घटे की ऊँची लागत व्यक्ति को विश्राम के स्थान पर आय को प्रतिस्थापित करने के लिए प्रेरित करती है और वह प्रतिदिन अधिक घटे काम करने लगता है। मजदूरी की दर मे वृद्धि होने का आय-प्रभाव होगा और यह स्वय वाछित विश्राम की मात्रा का बढा देगा और व्यक्ति जो काम करना चाहते हैं उसकी मात्रा को घटा देगा। मजदूरी की दर के W_2 मे बढकर W_3 हो जाने पर एक ऐसी स्थिति आ जाती है जिसम मजदूरी की वृद्धि का आय-प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव से अधिक वजनदार होता है। एक व्यक्ति के लिए जब कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है तो उसके श्रम का पूर्ति-वक्र ऊपर की ओर बायी तरफ मुडेगा, (bend upward and to the left) जैसा कि चित्र 5-15 (आ) मे बतलाया गया है।

साराश

तटस्थता-वक्र उपकरण या विश्लेषण उपभोक्ता चुनाव व विनिमय सिद्धान्त के लिए एक उपयोगी ढाचा प्रस्तुत करता है। एक उपभोक्ता की रुचि व अधिमान उसके तटस्थता मानचित्र से सूचित किये जाते हैं। उपभोक्ता के अवसर तत्त्व-उसकी आमदनी व उसके द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं की कीमतें-उसकी बजट रेखा के द्वारा दर्शाये जाते हैं। जिस बिंदु पर उसकी बजट रेखा तटस्थता-वक्र को स्पर्श करती है वह वस्तुओं के उस सयोग का द्योतक होता है जिसे उपभोक्ता अन्य उपलब्ध सयोगों से ज्यादा उत्तम मानता है।

एक वस्तु के लिए उपभोक्ता का माग वक्र उस वस्तु की कीमत मे परिवर्तन करके प्राप्त किया जाता है, लेकिन इसके लिए उसकी रुचि व अधिमान, उसकी आमदनी,

व अन्य वस्तुओ की कीमतें स्थिर रखी जाती हैं। इस सम्बन्ध मे उपभोक्ता-सतुलन के जो बिन्दु प्राप्त होते हैं वे उस वस्तु के लिए उसका कीमत-उपभोग वक्र बनाते हैं। मांग वक्र की सूचना तटस्थता-वक्र रेखाचित्र से प्राप्त की जा सकती है।

एक वस्तु के कीमत उपभोग वक्र का ढाल मांग की लोच को प्रदर्शित करता है जबकि विचाराधीन वस्तु X-अक्ष पर मापी जाती है और मुद्रा Y-अक्ष पर मापी जाती है। एक क्षैतिज कीमत-उपभोग-वक्र का आशय यह है कि मांग की लोच इकाई के बराबर है। जब कीमत-उपभोग-वक्र ऊपर दाहिनी ओर जाता है तो मांग बेलोच होती है। जब यह दाहिनी तरफ नीचे आता है तो मांग लोचदार होती है।

वस्तुओ के लिए एजिल वक्र उपभोक्ता की आमदनी को बदलकर निकाले जा सकते हैं, इसके लिए उसकी रुचि व अधिमान व समस्त वस्तुओ की कीमतें स्थिर रखी जाती हैं। उपभोक्ता सतुलन के बिन्दु आय-उपभोग-वक्र बनाते हैं। तटस्थता-वक्र रेखाचित्र एजिल वक्रो की स्थापना के लिए आवश्यक आंकडे प्रदान करता है।

कीमत परिवर्तन के परिणामस्वरूप माग की मात्रा का परिवर्तन, जो एक वस्तु के मांग-वक्र के द्वारा दर्शाया जाता है, दो शक्तियो—आय-प्रभाव व प्रतिस्थापन-प्रभाव का सयुक्त परिणाम होता है। सामान्य वस्तुओ के लिए ये एक ही दिशा मे काम करते हैं, कीमत के बढने से मांग की मात्रा मे कमी हो जाती है और कीमत मे कमी होने से मांग की मात्रा मे वृद्धि हो जाती है। घटिया वस्तुओ के लिए दोनो प्रभाव विपरीत दिशाओ मे काम करते हैं, लेकिन दोनो मे से प्रतिस्थापन प्रभाव प्राय ज्यादा मजबूत होता है।

एजवर्थ बॉक्स की सहायता से उपभोक्ताओ के बीच वस्तुओ के कुशल या पेरेटो इष्टतम विवरण की शर्तें स्थापित की जा सकती हैं। ये इस प्रकार हैं कि एक उपभोक्ता के लिए दो वस्तुओ—X व Y— के लिए MRS_{xy} वही होता है जो इन दोनो वस्तुओ के लिए किसी दूसरे उपभोक्ता के लिए MRS_{xy} के समान होता है। इन दशाओ को पूरा करने वाले वस्तुओ के वितरण प्रसविदा वक्र कहलाते हैं। वस्तुओ का जो वितरण प्रसविदा वक्र पर नही होता उसका पुर्नवितरण होने से यह प्रसविदा वक्र पर चला जाता है जिससे समाज का कल्याण बढता है। जो पुर्नवितरण एक प्रसविदा वक्र पर होते हैं उनसे समाज के कल्याण के बारे मे कोई निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते।

तटस्थता-वक्र तकनीको के प्रयोगो मे एक कर्मचारी के कुल मुआवजे (compensation) के अग के रूप मे मुद्रा की एवज मे अनुषगी लाभो का विश्लेषण पाया जाता है। यदि एक कर्मचारी स्वेच्छा से अनुषगी लाभ की मदो को उसके मुआवजे के अग के रूप मे प्रदान की जाने वाली मात्राओ के बराबर या अधिक लेता है तो इस बात से

कोई अन्तर नही पडता कि उसके मुआवजे का अश अनुपगी लाभो मे चुकाया जाता है अथवा मुद्रा मे। अन्यथा, पूर्णतया मुद्रा म चुकाये जाने पर उसकी स्थिति ज्यादा अच्छी होगी।

तटस्थता-वक्र तकनीकों का दूसरा प्रयोग एक व्यक्ति के श्रम विश्राम चुनावो का विश्लेषण होता है। ऊँची मजदूरी की दरें विश्राम की कीमत को ऊँचा कर देती हैं और व्यक्ति को विश्राम के बदले आमदनी को प्रतिस्थापित करने को प्रेरित करती हैं अर्थात् अधिक काम करने को प्रेरित करती हैं। इस प्रतिस्थापन प्रभाव के साथ साधारणतया आय प्रभाव होता है जो इसके विपरीत काम करता है।

अध्ययन सामग्री

Baumol, William J, *Economic Theory and Operations Analysis*, 3rd ed (Englewood Cliffs, N J : Prentice-Hall, Inc, 1972), pp 207–221

Boulding, Kenneth E, *Economic Analysis*, 4th ed Vol I (New York Harper & Row, Publishers 1966) Chaps 27–28.

Hicks, John R, *Value and Capital*, 2nd ed (Oxford, England The Clarendon Press, 1946), Chaps 1–2

अध्याय 6

वैयक्तिक उपभोक्ता का चुनाव और माँग-2

पिछले अध्याय में जिस तटस्थता वक्र विश्लेषण का विवेचन किया गया था वह उपभोक्ता के चुनाव, माँग व विनिमय के सम्बन्ध में पुराने उपयोगिता दृष्टिकोण से ही विकसित हुआ है। उपयोगिता दृष्टिकोण तटस्थता वक्र दृष्टिकोण का एक विशिष्ट स्वरूप माना जा सकता है। यद्यपि तटस्थता वक्र दृष्टिकोण चुनाव-सिद्धान्त के विवेचन की एक स्टैंडर्ड (स्टेन्डर्ड) विधि बन गया है, लेकिन उपयोगिता दृष्टिकोण के कई प्रसंगों में अर्थशास्त्रियों के द्वारा इसके व्यापक उपयोग को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि विद्यार्थी इसे पूर्ण रूप से समझने का प्रयास करें।

उपयोगिता अथवा व्यक्तिपरक मूल्य सिद्धान्त (subjective value theory) 1870 से प्रारम्भ होने वाले दशक में उत्पन्न हुआ, जबकि स्वतन्त्र रूप से काम करने वाले तीन अर्थशास्त्रियों के द्वारा इसके मूलभूत पहलुओं के सम्बन्ध में एक साथ रचनाएँ प्रकाशित की गई। ये थे ग्रेट ब्रिटेन के विलियम स्टेनले जेवन्स, ऑस्ट्रिया के कार्ल मेन्जर एवं फ्रांस के लियों वालरा। आधुनिक उपयोगिता सिद्धान्त ने इन तीनों सिद्धान्तकारों से काफी कुछ ग्रहण किया है।

उपयोगिता की धारणा (The Utility Concept)

उपयोगिता शब्द उस सन्तुष्टि को व्यक्त करता है जिसे उपभोक्ता किसी भी वस्तु व सेवा के उपभोग से प्राप्त करता है। विश्लेषण की दृष्टि से कुल उपयोगिता की धारणा व सीमान्त उपयोगिता की धारणा के बीच भेद करना उपयोगी होगा। ऐसा उन परिस्थितियों में किया जायगा जबकि वस्तुएँ परस्पर सम्बद्ध नहीं होती हैं और जब उनमें सम्बद्धता पायी जाती है।

असम्बद्ध वस्तुएँ व सेवाएँ (Nonrelated Goods and Services)

विभिन्न किस्म की वस्तुएँ, जहाँ तक उनके उपयोग का प्रश्न है, उस समय असम्बद्ध मानी जाती हैं जबकि एक वस्तु से उपभोक्ता को प्राप्त होने वाली उपयोगिता या सन्तुष्टि उसके द्वारा उपभोग की जाने वाली अन्य वस्तुओं की मात्रा पर किसी भी प्रकार से निर्भर नहीं करती। उदाहरण के लिए, यह असम्भव होगा कि सेव या

कीलो (nails) के उपभोग से प्राप्त उपयोगिता गैसोलीन के उपभोग से प्राप्त उपयोगिता पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव डाले।

कुल उपयोगिता : एक वस्तु से प्राप्त कुल उपयोगिता एक उपभोक्ता को मिलने वाले उस सम्पूर्ण सन्तोष को सूचित करती है जो वह इसे विभिन्न कीमतों पर उपभोग करके प्राप्त करता है। एक उपभोक्ता, समय की प्रति इकाई के अनुसार, एक वस्तु की जितनी अधिक मात्रा का उपभोग करता है, एक बिन्दु तक उसकी कुल उपयोगिता या सन्तुष्टि उतनी ही अधिक होती है। उपभोग के किसी स्तर पर कुल उपयोगिता अधिकतम हो जायगी। यदि उपभोक्ता को वस्तु की इससे अधिक मात्रा लेने के लिए बाध्य किया जाता है तो भी वह अधिक सन्तोष प्राप्त करने में समर्थ नहीं होगा। यह दशा उस वस्तु के लिए उसका सतृप्ति बिन्दु (saturation point) कहलायेगी।[1]

चित्र 6–1 (अ) में एक कल्पित कुल उपयोगिता-वक्र दिखलाया गया है जो ऊपरवर्णित विशेषताओं को बतलाता है। इस वक्र को अंकित करते समय हम यह मान लेते हैं कि उपयोगिता को मापा जा सकता है और उपभोक्ता की उपयोगिता की विभिन्न मात्राओं को जोड़कर एक सार्थक योग प्राप्त किया जा सकता है।[2]

सतृप्ति बिन्दु प्रति इकाई समय के अनुसार X की 6 इकाइयों के उपभोग पर आयेगा। उस सीमा तक उपभोग के बढ़ते जाने पर कुल उपयोगिता बढ़ती जाती है। इससे परे कुल उपयोगिता घटती है।[3]

सीमान्त उपयोगिता सीमान्त उपयोगिता को इस प्रकार से परिभाषित किया जाता है कि यह कुल उपयोगिता में होने वाला वह परिवर्तन है जो प्रति इकाई

---

1 इस बात की कल्पना की जा सकती है कि यदि उसे वस्तु की और भी अधिक इकाइयाँ लेने के लिए बाध्य किया जाय तो उसकी कुल उपयोगिता घट जायगी। इसके लिये और भी कोई कारण न हो तो अपच की समस्याएँ ही काफी हैं। लेकिन हमारे उद्देश्य की दृष्टि से सतृप्ति बिन्दु से परे कुल उपयोगिता में कमी की सम्भावना का हमारे लिए कोई महत्व नहीं है।

2 आर्थिक विचार के विकास में इस बात को लेकर ऐतिहासिक बहस पाई गई है कि उपयोगिता गणनावाचक रूप में (cardinally) मापी जाती है अथवा इसके माप का केवल क्रमवाचक अर्थ (ordinal meaning) ही निकलता है। यहाँ पर जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया है उसके लिए वास्तव में माननीयता आवश्यक नहीं है. लेकिन उसके लिए केवल यह आवश्यक है कि उपभोक्ता उपयोगिता की अपेक्षाकृत अधिक व अपेक्षाकृत कम मात्राओं के बीच अन्तर कर सके। स्पष्टीकरण के लिए हम उपयोगिता को गणनावाचक (cardinal) मान कर चलेंगे।

3 इस पैरा (अनुच्छेद) में यह मान लिया गया है कि उपभोग की दर में वृद्धि असतत इकाइयों (discrete units) में होनी चाहिए। कुल उपयोगिता प्रति इकाई समय के अनुसार X की पाँच इकाइयों और छ इकाइयों दोनों पर अधिकतम है। लेकिन अध्ययन की दृष्टि से छ इकाइयों पर ही अधिकतम बिन्दु के मानने में लाभ है।

समयानुसार वस्तु के उपभोग मे 1–इकाई के परिवर्तन से उत्पन्न होता है। चित्र 6–1 (अ) मे यदि उपभोक्ता प्रति इकाई समयानुसार 2 इकाइयो का उपभोग करता है और अपना उपभोग बढाकर 3 इकाइयो का कर देता है तो उसकी कुल उपयोगिता 18 से 24 इकाइयां हो जायेगी। तीसरी इकाई की सीमान्त उपयोगिता भी A और B बिन्दुओ के बीच कुल उपयोगिता वक्र के औसत ढाल के लगभग बराबर होती है।

A और B बिन्दुओ के बीच कुल उपयोगिता-वक्र का ढाल उपयोगिता की उस वृद्धि को दर्शाता है जो उपभोग मे 1 इकाई की वृद्धि से उत्पन्न होती है और यह वक्र के उस भाग को एक सरल रेखा मानने पर $\frac{6}{1}$ के बराबर होता है। A और B के बीच कुल उपयोगिता वक्र अनिवार्यत एक सरल रेखा होता नही लेकिन इसको ऐसा मान लेने से कोई विशेष त्रुटि नही होगी और इन बिन्दुओ के बीच की दूरी के कम होते जाने पर यह त्रुटि उत्तरोत्तर घटती जाती है। यदि X– अक्ष पर X की 1 इकाई को मापने वाली दूरी बहुत कम होती है, तो उपभोग के किसी भी
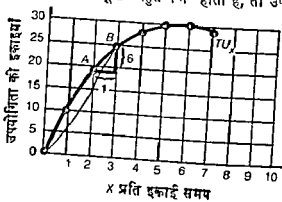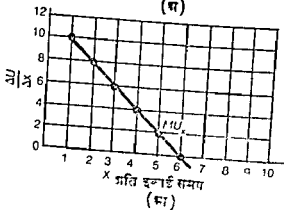
चित्र 6–1 कुल व सीमान्त उपयोगिता

दिये हुए स्तर पर सीमान्त उपयोगिता उस बिन्दु पर कुल उपयोगिता-वक्र के ढाल के बराबर होती है।[4]

जब उपभोग बढाया या घटाया जाता है तो सीमान्त उपयोगिता कुल उपयोगिता वक्र की आकृति को प्रतिबिम्बित करता है। चित्र 6–1 (अ) मे जब उपभोग प्रति इकाई समयानुसार O से 6 तक बढता है तो सीमान्त उपयोगिता घटती है। इसको हम यो भी कह सकते हैं कि प्रति इकाई समयानुसार उपभोग की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई कुल उपयोगिता मे उत्तरोत्तर कम मात्रा जोडती जाती है और अन्त मे छठी इकाई कुछ भी नही जोडती। यह भी ध्यान देने की बात है कि ज्यो-ज्यो प्रति इकाई समय के अनुसार उपभोग बढता जाता है, दो लगातार उपभोग के स्तरो के बीच कुल उपयोगिता-वक्र का औसत ढाल क्रमश: घटता जाता है, और अन्त मे X की 5 व 6 इकाइयो के बीच यह शून्य हो जाता है। घटती हुई सीमान्त उपयोगिता की धारणा और कुल उपयोगिता-वक्र की नतोदरता (concavity) नीचे से देखे जाने पर एक ही होते हैं।

X की O व 6 इकाइयो के बीच उपभोग के सभी स्तरो पर घटती हुई सीमान्त उपयोगिता का पाया जाना आवश्यक नही है। हम कल्पना कर सकते हैं कि चित्र 6–1 (अ) मे हल्का वक्र O से 3 इकाइयो के बीच कुल उपयोगिता का वक्र है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए, कई बच्चो वाले परिवार मे एक ही टेलिविजन सैट के होने से कार्यक्रम के चुनाव पर इतना सघर्ष पाया जाता है कि इससे परिवार के सतोष मे कुछ भी वृद्धि नही होती। यदि दो सैट हो—एक माता-पिता के लिए और दूसरा बच्चो के लिए—तो सतोष प्रथम सैट के सतोष के दुगुने से भी अधिक होगा। लेकिन तीन, चार और पाँच सैटो से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता की उत्तरोत्तर वृद्धियाँ निश्चित रूप से क्रमश कम होती जाएगी। इस प्रकार उपभोग की एक सीमा तक उपभोग के स्तर के बढने से सीमान्त उपयोगिता बढ सकती है और कुल उपयोगिता-वक्र नीचे की ओर उन्नतोदर (convex) होता है। उपभोग के उस स्तर से परे सीमान्त उपयोगिता घटती है। यदि किसी उपभोक्ता के लिए एक वस्तु के

---

4 चलन कलन (differential calculus) की भाषा में, यदि कुल उपयोगिता वक्र निम्नांकित हो :

$$U = f(x) = 12x - x^2$$

तब

$$MU = f'(x) = 12 - 2x$$

X की 2 इकाइयों पर सीमात उपयोगिता 8 इकाई, उपयोगिता है, X की 3 इकाइयों पर 6 इकाई उपयोगिता है।

सम्बन्ध में सतृप्ति का बिन्दु पाया जाता है तो उस बिन्दु तक उसके उपभोग के स्तर के पहुँचने के समय सीमान्त उपयोगिता अवश्य घटती जाती है, हालांकि उपभोग के नीचे के स्तरों पर यह बढ़ती हुई हो सकती है।

चित्र 6–1 (अ) के कुल उपयोगिता-वक्र की सहायता से सीमान्त उपयोगिता-वक्र का निर्माण किया जा सकता है। चित्र 6–1 (आ) मे उपयोगिता-अक्ष फैला दिया गया है जिससे एक इकाई को मापने वाली लम्बवत् दूरी चित्र 6–1 (अ) की अपेक्षा अधिक हो गई है। दोनों चित्रों मे X– अक्ष समान रहता है। उपभोग के प्रत्येक स्तर पर सीमान्त उपयोगिता X–अक्ष पर उपभोग के उसी स्तर के ऊपर लम्बवत् दूरी के रूप मे अंकित की गई है। चित्र 6–1 (अ) मे 6 इकाइयों के उपभोग पर 5 व 6 इकाइयों के बीच कुल उपयोगिता-वक्र का औसत ढाल O हो जाता है। अतः सीमान्त उपयोगिता भी O होती है और चित्र 6–1 (आ) मे सीमान्त उपयोगिता-वक्र X – अक्ष को उपभोग के उसी स्तर पर काटता है। चित्र 6–1 (आ) मे MU_x रेखा जो उपभोग के प्रत्येक स्तर पर अंकित सीमान्त उपयोगिताओं को मिलाती हैं, X का सीमान्त उपयोगिता-वक्र होती है।

एक दिए हुए समय मे विभिन्न वस्तुओं के लिए एक उपभोक्ता के सीमान्त उपयोगिता-वक्रों का समूह उसकी रुचियों एव अधिमानों को रेखा-चित्र के रूप मे प्रस्तुत करता है जैसा कि आगे चलकर चित्र 6-4 मे दर्शाया गया है। जिन वस्तुओं मे उपभोक्ता की तृप्ति आसानी से हो जाती है उनके सीमान्त उपयोगिता-वक्र बड़ी तेजी से नीचे की ओर आते हैं और उपभोग के अपेक्षाकृत नीचे स्तरों पर ही वे शून्य तक पहुँच जाते हैं। उपभोक्ता जिन अन्य वस्तुओं से आसानी से तृप्त नहीं होता उनके सीमान्त उपयोगिता-वक्र धीरे-धीरे नीचे की ओर आते हैं और उपभोग के काफी ऊँचे स्तरों पर ही शून्य तक पहुँचते हैं।[5] उपभोक्ता की रुचियों एव अधिमानों में परिवर्तन विभिन्न वस्तुओं के लिए सीमान्त उपयोगिता-वक्रों की आकृतियों व स्थितियों को ही बदल देते हैं।

सम्बद्ध वस्तुएँ व सेवाएँ (Related Goods and Services)

एक व्यक्ति जिन वस्तुओं व सेवाओं का उपभोग करता है उनमें से बहुत-सी एक दूसरे से किसी न किसी तरह से सम्बद्ध होती हैं, इसका अर्थ यह है कि वह एक की जो मात्रा लेता है उससे दूसरी वस्तुओं व सेवाओं से प्राप्त उपयोगिता प्रभावित होती है। इनमे परस्पर पूरक सम्बन्ध हो सकते हैं अथवा स्थानापन्न सम्बन्ध हो सकते हैं।

5, केवल दैवयोग की स्थिति को छोड़कर, व्यवहार में कोई भी उपभोक्ता उस वस्तु के लिए सतृप्ति बिन्दु पर नहीं पहुँचता जिसकी उसे कीमत देनी होती है। इसका कारण इस अध्याय के अगले अनुच्छेद में स्पष्ट हो जाएगा।

सामान्यतया जो वस्तुएँ एक साथ उपभोग के काम आती हैं जैसे रोटी व मक्खन अथवा टेनिस के बल्ले व टेनिस की गेंद, ये पूरक वस्तुएँ होती हैं जब कि उपभोक्ता के अधिमानो के पैमाने (scale of preferences) मे एक दूसरे से स्पर्धा करने वाली वस्तुएँ जैसे गाय का मास व सुअर का मास, स्थानापन्न वस्तुएँ होती हैं।

सम्बद्धता का स्वरूप चित्र 6-2 (अ) के तीन आयाम वाले रेखाचित्र (three-dimensional diagram) पर दर्शाया गया है। X व Y अक्ष एक क्षैतिज धरातल को परिभाषित करते हैं और कुल उपयोगिता इससे ऊपर लम्बवत् दूरी के रूप मे मापी गई है। उदाहरणार्थ, यदि एक व्यक्ति प्रति सप्ताह A_1 सयोग का उपभोग करता है जिसमे X की X_1 इकाइयाँ व Y की Y_1 इकाइयाँ शामिल होती हैं तो दोनो से उसकी कुल उपयोगिता A_1B_1 होगी। B_1, B_2 B_4, F_1, F_2, और F_5 जैसे बिन्दु जो X व Y के विभिन्न सयोगो के लिए कुल उपयोगिता दर्शाते है, XY धरातल से ऊपर होने वाला कुल उपयोगिता तल (utility surface) बनाते हैं।

चित्र 6-2 (अ) मे दिखाया गया उपयोगिता-तल न केवल X और Y के विभिन्न सयोगो के उपभोग से उपभोक्ता को प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता दर्शाता है, बल्कि वह यह भी दर्शाता है कि एक वस्तु के उपभोग की दर म परिवर्तन होने से, दूसरी वस्तु के उपभोग की दर के दिए हुए होने पर, कुल उपयोगिता कैसे परिवर्तित होती है।

उदाहरण के लिए, Y के उपभोग के तीन विभिन्न स्तरो मे से प्रत्येक पर X के उपभोग मे होने वाले परिवर्तनो पर विचार कीजिए। यदि Y का उपभोग नही किया जाता, तो X के उपभोग की विभिन्न दरो के लिए उपभोक्ता की कुल उपयोगिता TU_{x0} होगी, जो चित्र 6-2 (अ) मे दिखाई गई है। वही वक्र चित्र 6-2 (आ) के दो आयाम वाले रेखाचित्र पर भी दिखाया गया है। यदि Y के उपभोग की मात्रा प्रति सप्ताह Y_1 होती है तो X के नही लेने पर कुल उपयोगिता $Y_1 B_0$ होती है। X की मात्रा के परिवर्तन, Y के उपभोग के स्तर को Y_1 पर स्थिर रखकर, कुल उपयोगिता-वक्र TU_{x1} का निर्माण करते है। हम कल्पना कर लेते है कि उपभोक्ता उपयोगिता-तल (utility surface) पर B_0 बिन्दु से प्रारम्भ करता है और चिह्नित रेखा (dotted line) $Y_1A_1A_2A_4$ के ठीक ऊपर के तल पर चलता जाता है। पुन, प्राप्त होने वाला TU_{x1} वक्र चित्र 6-2 (आ) मे दो आयामो के अन्तर्गत अंकित किया गया है। अब X के तीसरे कुल उपयोगिता-वक्र TU_{x2} का अर्थ स्पष्ट है। यदि X का उपभोग नही होता तो केवल Y की Y_2 मात्रा से कुल उपयोगिता Y_2F_0 होती है। Y को Y_2-पर स्थिर रखकर X के बढते हुए उपभोग के स्तरो से उपयोगिता-तल पर कुल उपयोगिता-वक्र TU_{x2} प्राप्त होगा और यह चित्र 6-2 (आ)
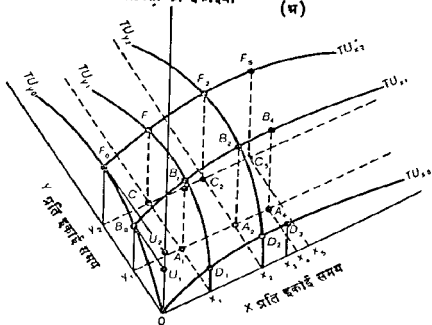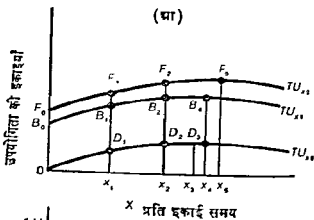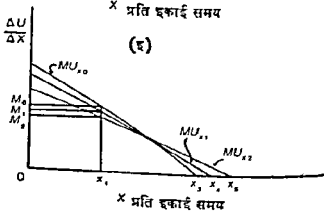
चित्र 6–2 उपयोगिता-तल (The Utility Surface)

के दो आयाम वाले रेखाचित्र मे ही है। TU_{y0}, TU_{y1}, और TU_{y2} वक्र भी इसी तरह से निकाले गए हैं।[6]

X और Y की परस्पर सम्बद्धता को लेने से उपयोगिता सिद्धान्त निस्सदेह अधिक वास्तविक बन जाता है, लेकिन साथ मे यह अधिक जटिल भी हो जाता है। एक बात तो यह है कि प्रत्येक वस्तु के लिए अनेक सम्भव हो सकने वाले कुल उपयोगिता-वक्र पाए जाते हैं। उपभोक्ता के लिए उपभोग की जाने वाली Y की प्रत्येक भिन्न मात्रा के लिए X का एक भिन्न कुल उपयोगिता-वक्र होगा। इसी प्रकार X के उपभोग के प्रत्येक भिन्न स्तर के लिए Y का एक भिन्न कुल उपयोगिता-वक्र होगा। प्रत्येक वस्तु के लिए अनेक सीमान्त उपयोगिता-वक्र भी होते हैं। चूँकि Y के उपभोग के प्रत्येक भिन्न स्तर पर X के लिए *कुल उपयोगिता-वक्र भिन्न-भिन्न होते हैं, इसी प्रकार* X के लिए तदनुरूप सीमान्त उपयोगिता वक्र होते हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 6–2 (इ) मे MU_{x0} MU_{x1}, व MU_{x2} क्रमश TU_{x0}, TU_{x1}, व TU_{x2} से निकाले गए हैं। *यहाँ हम देखते हैं कि* X *के* x_1 *उपभोग के स्तर पर* X *की सीमान्त उपयोगिता* Y की उपभोग की मात्रा और साथ म X की x_1 मात्रा पर निर्भर करती है। यदि Y का उपभोग नही किया जाता तो यह M_0 अथवा D_1 बिन्दु पर TU_{x0} के ढाल के बराबर होती है। *यदि* Y *की* y_1 *मात्रा का उपभोग किया जाता है तो यह* M_1 *या* B_1 पर TU_{x1} के ढाल के बराबर होती है। यदि Y की y_2 मात्रा का उपभोग किया जाता है तो यह M_2 या F_1 पर TU_{x2} के ढाल के बराबर होती है। इसी प्रकार का तर्क Y पर लागू होता है। यदि X या Y मे से किसी के उपभोग मे वृद्धि से सीमान्त उपयोगिता घटती है तो उपयोगिता-तल (utility surface) उल्टे प्याले की आकृति (inverted bowl shape) वाला होगा जैसा चित्र 6–2 (अ) म दिखाया गया है, अर्थात् X या Y के लिए खींचा गया कोई भी कुल उपयोगिता वक्र ऊपर की ओर उन्नतोदर होगा।

पूरक या स्थानापन्न सम्बन्ध कभी-कभी इस रूप मे भी परिभाषित किए जाते हैं कि जब सम्बद्ध वस्तुओ के उपभोग की मात्रा मे परिवर्तन किया जाता है तो एक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता मे क्या परिवर्तन होता है। यदि Y के उपभोग मे वृद्धि से X की सीमान्त उपयोगिता म गिरावट आती है, जब कि X के उपभोग की मात्रा मे

---

6 यदि उपभोग की समस्त वस्तुएँ एक दूसरे से स्वतन्त्र हो तो उपभोक्ता के उपयोगिता-फलन का रूप इस प्रकार होगा .

$$U=f(x)+g(y)+\dots\dots+n(n)$$

यदि उपभोग की वस्तुएँ परस्पर सम्बद्ध हो तो इसका रूप यह होगा :

$$U=f(x, y, \dots\dots n)$$

कोई परिवर्तन नही होता, तो X वस्तु Y – वस्तु की स्थानापन्न (substitute) मानी जाती है। लेकिन यदि X के उपभोग की मात्रा के स्थिर रहने पर, Y के उपभोग म वृद्धि होने से X की सीमान्त उपयोगिता मे वृद्धि होती है, तो X वस्तु Y की पूरक (complementary) मानी जाती है।

तटस्थता वक्र

तटस्थता वक्र विश्लेषण उपयोगिता-तल की धारणाओ का एक तर्कसम्मत विकास माना जा सकता है। चित्र 6–3 (अ) मे हम मान लेते है कि एक उपभोक्ता प्रारम्भ म केवल Y वस्तु का उपभोग करता है और वह इसका उपभोग प्रति इकाई समया नुसार Y_1 की दर से करता है। उसकी कुल उपयोगिता Y_1A_1 अथवा OU_1 होती है। क्या यह सम्भव नही है कि अल्प मात्रा मे Y के उपभोग का त्याग करके और S के उपभोग मे कुछ मात्रा म वृद्धि करके वह अपने उपयोगिता के स्तर को स्थिर रख सके ? ऊपर वर्णित विधि से Y के अपने उपभोग मे कमी करके और X के उपभोग मे वृद्धि करके वह XY धरातल (plane) से स्थिर दूरी पर तटस्थता-तल (indifference surface) के इर्द गिर्द घूमता है और A_1B_2 वक्र उसका मार्ग बतलाता है। XY धरातल पर ठीक नीचे लम्बवत् रूप मे प्रक्षेपित किए जाने पर (projected) A_1B_2 वक्र डैश वाली रेखा Y_1X_2 हो जाता है। चित्र 6–3 (आ) मे यह वक्र केवल XY धरातल (plane) के सन्दर्भ मे ही पुन खीचा गया है।

Y_1X_2 वक्र X और Y के उन समस्त सयोगो को दर्शाता है जो OU_1 या Y_1A_1 के बराबर उपयोगिता के स्तर (levels of utility) प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 6–3 (अ) मे E बिन्दु पर उपभोक्ता Y की y_0 मात्रा और X की x_1 मात्रा लेता है तो यह सयोग EF ($=Y_1A_1$) कुल उपयोगिता प्रदान करता है। इसी प्रकार यदि वह x_2 स्तर पर केवल X का उपभोग करता है तो उसकी कुल उपयोगिता X_2B_2 ($=Y_1A_1$) होती है। y_1x_2 वक्र प्रत्येक अर्थ से एक तटस्थता-वक्र है। चूँकि इस वक्र द्वारा दर्शाये गए X और Y के समस्त सयोग उपभोक्ता को समान मात्रा मे कुल उपयोगिता प्रदान करते है, इसलिए वह इस सम्बन्ध मे तटस्थ रहता है कि इनमे से किसका उपभोग किया जाए।

उपयोगिता के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर तल (surface) पर ऊँची कन्टूर रेखाओ से सूचित किए जाते है जब कि नीची कन्टूर रेखाएँ उपयोगिता के नीचे स्तर दर्शाती हैं। XY धरातल पर प्रक्षेपित किए जाने या गिराये जान पर ऊँची कन्टूर रेखाओ के अनुरूप तटस्थता वक्र मूल बिन्दु से ज्यादा दूर होत है जैसे कि चित्र 6–3 (आ) म y_2x_3 है। नीची कन्टूर रेखाओ के प्रक्षप (projections) मूल बिन्दु के समीप होते हैं। ये तथ्य इस मान्यता पर टिके हुए हैं कि जैसे-जैसे हम ऊपर जाते हैं उपयोगिता-तल
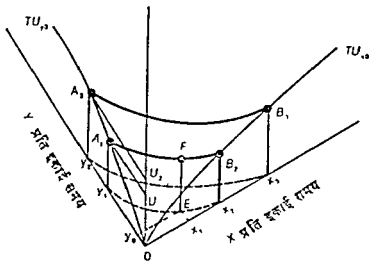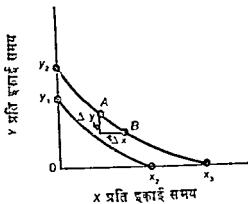
चित्र 6–3 उपयोगिता तल से निर्मित तटस्थता वक्र

(utility surface) एक शिखर की ओर जाता है। यह प्राय एक उल्टे प्याले की आकृति का माना जाता है, यद्यपि यह प्रतिबन्धात्मक आकृति पूर्व तथ्यों के लागू होने के लिए वास्तव मे आवश्यक नहीं है।

Y के लिए X के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर X की सीमान्त उपयोगिता के Y की सीमान्त उपयोगिता से होने वाले अनुपात से मापी जाती है, अथवा $MRS_{xy}=$

MU_x / MU_y । चित्र 6–3 (आ) मे कल्पना करें कि एक उपभोक्ता प्रारम्भ में A सयोग का उपभोग करता है । यदि वह सयोग A से सयोग B की तरफ जाता है तो वह Y का $\triangle y$ छोडता है और X का $\triangle x$ प्राप्त करता है और उसके कुल उपयोगिता स्तर मे कोई परिवर्तन नही होता । Y के छोडने से जो उपयोगिता की हानि होती है वह $\triangle y \times MU_y$ के बराबर होती है । X को प्राप्त करने से $\triangle x \times MU_x$ लाभ होता है । अत

$$\triangle y \times MU_y = \triangle x \times MU_x \qquad \cdots(6\ 1)$$

$$\frac{\triangle y}{\triangle x} = \frac{MU_x}{MU_y} = MRS_{xy} \qquad \cdots(6\ 2)$$

इस विवेचन मे हमने यह मान्यता जारी रखी है कि उपयोगिता मापनीय है। उदाहरण के लिए, चित्र 6–3 (अ) मे OU_1 दूरी एक निश्चित मापनीय मात्रा है जैसे 8 इकाई उपयोगिता जब कि OU_2 की मात्रा 10 इकाई उपयोगिता है । इसलिए, चित्र 6–3 (आ) मे हम Y_1X_2 तटस्थता-वक्र पर सख्या 8 लगा देते है और Y_2X_3 वक्र के सख्या 10 लगा देते हैं । लेकिन क्या यह आवश्यक है कि हम प्रत्येक तटस्थता वक्र पर कोई उपयोगिता की निरपेक्ष मात्रा (magnitudes) लगावें ? क्या तटस्थता मानचित्र के होने पर यह सम्भव नही कि हम प्रत्येक वक्र पर उपयोगिता का क्रम (ranking) लगा सकें ?

यदि हम ऐसा कर सके तो 8 या 10 का निरपेक्ष माप के रूप मे कोई महत्व नही होगा । वे केवल उपयोगिता की मात्राओ का क्रम ही सूचित करेंगे, जैसे 10 की सख्या 8 से अधिक है । हम वही चीज Y_1X_2 के सख्या 1 और Y_2X_3 के सख्या 2 लगाकर प्राप्त कर सकते हैं ।[7]

यदि उपयोगिता की मात्राओ के निरपेक्ष माप (absolute measure) के बजाय केवल क्रम (order) की ही आवश्यकता हो तो हम इसको भुला सकते हैं कि

---

7 यदि उपभोक्ता का उपयोगिता-फलन निम्न से सूचित हो ,

$$U = f(x, y)$$

तो एक तटस्थता-वक्र का समीकरण इस प्रकार होगा •

$$U_1 = f(x, y)$$

जिसमें U_1 स्थिर राशि है । U को दिए जाने वाले अन्य मूल्य अन्य तटस्थता-वक्रों को परिमापित करते है । ये सब मिलकर उपभोक्ता का तटस्थता मानचित्र बनाते हैं । केवल यह आवश्यक है कि दिये हुए मूल्य (assigned values) उपयोगिता की मात्राओं का क्रम सूचित करें , यह आवश्यक नहीं कि वे उपयोगिता की निरपेक्ष (मापनीय) मात्राएँ दर्शाएँ ।

उपयोगिता का तल XY धरातल (plane) से ऊपर कितना ऊँचा उठता है। केवल इसकी सामान्य आकृति का ही महत्त्व होता है। मान लीजिए हम इसको ऊपर से नीचे इस रूप में गिरनेवाला मानते हैं कि नीचे से ऊपर की ओर कन्टूर रेखाएँ अपनी मौलिक आकृति बनाए रखती हैं। यदि हम ऐसा करते हैं तो हम इस मान्यता से मुक्त हो जाते हैं कि उपयोगिता मापनीय है। तटस्थता मानचित्र अपने अनिवार्य पहलुओं में ठीक वैसा ही है जैसा कि पहले अध्याय 5 में वर्णित है।

उपभोक्ता का चुनाव

उपयोगिता सम्बन्धी धारणाएँ इस बात को निर्धारित करने का आधार प्रस्तुत करती हैं कि एक उपभोक्ता उसके समक्ष पाई जाने वाली विभिन्न वस्तुओं व सेवाओं के बीच अपनी आमदनी को किस प्रकार आवंटित (allocate) करेगा, लेकिन अधिक सामान्य तटस्थता वक्र विश्लेषण की अपेक्षा इनका प्रयोग करना ज्यादा टेढा होता है। विवेचन को यथासम्भव स्पष्ट रखने के लिए हम निम्न सरल मान्यताओं का उपयोग करेंगे—(1) हम यह मान लेते हैं कि उपभोक्ता के विचाराधीन वस्तुएँ व सेवाएँ परस्पर असम्बद्ध (nonrelated) हैं, (2) हम इस रूप में आगे बढते हैं मानो उपयोगिता गणनावाचक (cardinal) होती है, (3) हम यह मान लेते हैं कि प्रत्येक उपभोग की जाने वाली वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घट रही है।[8] इनमें से किसी से भी हमारे निष्कर्षों को कोई क्षति नहीं पहुँचती है, बल्कि ये उन निष्कर्षों तक पहुँचाने का मार्ग सुगम बना देते हैं।

उद्देश्य और प्रतिबन्ध

एक विवेकशील उपभोक्ता के सम्बन्ध में प्राय यह उद्देश्य माना जाता है कि वह अपनी सन्तुष्टि या उपयोगिता अधिकतम करना चाहता है। जिन विभिन्न वस्तुओं व सेवाओं को उपभोक्ता चाहता है उनके लिए उसके अधिमान उसके उपयोगिता-वक्रों के द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। उसके लिए चुनाव की समस्या इस बात का निर्णय करने की है कि वह इनमें से किन किस्मों व कितनी मात्राओं को ले ताकि उसको कुल उपयोगिता का सर्वाधिक जोड प्राप्त हो सके।

उपभोक्ता के समक्ष निम्न प्रतिबन्ध होते हैं: उसकी आमदनी (प्रति इकाई

---

8. वास्तव में हमें तो केवल यह मानने की आवश्यकता है कि जब एक वस्तु का उपभोग अन्य वस्तुओं के उपभोग के अनुपात में बढाया जाता है तो एक की सीमांत उपयोगिता अन्य की सीमांत उपयोगिताओं की तुलना में घटती है। X की सीमांत उपयोगिता बढ भी सकती है। लेकिन यदि X के अतिरिक्त उपभोग से अन्य वस्तुओं की सीमांत उपयोगिताएँ बढ़ जाती हैं तो X की अन्य वस्तुओं की "तुलना" में घट जायगी।

समयानुसार व्यय किये जाने वाले डालर) और उपलब्ध वस्तुओं व सेवाओं की कीमतें विशेष बात यह है कि प्रति इकाई समयानुसार उसकी आमदनी लगभग स्थिर मात्रा में होती है और उसके समक्ष कीमतें भी स्थिर होती हैं (चूँकि अधिकांश वस्तुओं की खरीद में वह शुद्ध प्रतियोगी होता है)। इन प्रतिबन्धक तत्त्वों के साथ वह चुनाव के प्रश्न का सामना करता है।

उपयोगिता का अधिकतमकरण (Maximization of Utility)

अनावश्यक उलझनों को टालने के लिए हम पुनः उपभोक्ता को दो वस्तुओं, X और Y, तक सीमित रखते हैं और उनकी कीमतें क्रमशः P_x व P_y होती हैं। यह ध्यान रहे कि यदि P_x व P_y दिये हुए व स्थिर हों तो हम इन वस्तुओं की मात्राओं को डालर-मूल्य में माप सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि एक बुशल X की कीमत $2 हो तो हम इस भौतिक मात्रा को दो डालर-मूल्य के रूप में अथवा एक डालर में आधा बुशल के रूप में दर्ज कर सकते हैं। सारणी 6–1 (अ) में X व Y के लिए उपभोक्ता की सीमान्त उपयोगिता अनुसूचियाँ दर्ज की गई हैं जो मात्राओं को डालरों में मापती हैं और दोनों वस्तुओं को एक दूसरे से स्वतन्त्र मानती हैं।[9]

सारणी 6–1 सीमान्त उपयोगिता की अनुसूचियाँ

(अ)			
वस्तु X		वस्तु Y	
मात्रा (डालर मूल्य में)	MU_x (उपयोगिता की इकाइयाँ)	मात्रा (डालर मूल्य में)	MU_y (उपयोगिता की इकाइयाँ)
1	40	1	30
2	36	2	29
3	32	3	28
4	28	4	27
5	24	5	26
6	20	6	25
7	12	7	24
8	4	8	20

9. प्रत्येक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता अनुसूची को अन्य वस्तु के उपभोग के स्तर से स्वतन्त्र मान कर हम अधिकतम सन्तोष के लिए आवश्यक शर्तों पर प्रत्यक्ष रूप से एवं शीघ्रता से जा सकते हैं। यदि X और Y एक दूसरे के स्थानापन्न हों तो X की अधिक मात्रा के उपभोग से Y के विभिन्न उपभोग के स्तरों पर Y की सीमान्त उपयोगिता अपेक्षाकृत कम होगी। यदि वे परस्पर पूरक हों तो X की अधिक मात्रा के उपभोग से Y के विभिन्न उपभोग के स्तरों पर Y की सीमान्त उपयोगिता अपेक्षाकृत ऊँची होगी। ये सम्भावनाएँ सन्तुष्टि के अधिकतमकरण की आवश्यक शर्तों को तो परिवर्तित नहीं करतीं, लेकिन ये इसका गणितीय विवेचन (numerical exposition) लगभग असम्भव बना देती हैं।

(आ)

वस्तु X		वस्तु Y	
मात्रा (बुशलों में)	MUx (उपयोगिता की इकाइयाँ)	मात्रा (पाइन्टों में)	MUy (उपयोगिता की इकाइयाँ)
1	50	1	30
2	44	2	28
3	38	3	26
4	32	4	24
5	26	5	22
6	20	6	20
7	12	7	16
8	4	8	10

यदि उपभोक्ता की आमदनी प्रति इकाई समयानुसार $12 होती है तो प्रश्न उठता है कि X और Y के बीच इसका आवंटन या वितरण किस भांति होगा ताकि उसकी उपयोगिता अधिकतम हो सके। मान लीजिए वह प्रति इकाई समय में केवल $1 व्यय करता है। Y पर व्यय किये जाने पर इससे केवल 30 इकाई सन्तोष मिलेगा, जबकि X पर व्यय किये जाने पर इससे 40 इकाई सन्तोष मिलेगा। अतः यह डालर X पर व्यय होगा। यदि हमारा उपभोक्ता अपने व्यय का स्तर $2 तक बढ़ा देता है तो दूसरा डालर कहाँ जाएगा ? X पर व्यय किये जाने से उसकी कुल उपयोगिता 36 से बढ़ जाएगी (यह X के दूसरे डालर-मूल्य की सीमान्त उपयोगिता है); लेकिन Y पर व्यय किये जाने से केवल 30 इकाई उपयोगिता ही बढ़ती है। दूसरा डालर X पर व्यय किया जायगा और तीसरा डालर भी। व्यय के $3 से $4 तक बढ़ने से स्थिति बदल जाती है। चौथे डालर के X पर व्यय होने से कुल उपयोगिता में 28 इकाई की वृद्धि हो जाती है, लेकिन Y के प्रथम डालर मूल्य के बराबर माल पर व्यय होने से यह वृद्धि 30 इकाइयों की होती है। चौथा डालर Y पर जाएगा और चूंकि प्रति इकाई समयानुसार व्यय में एक एक डालर की वृद्धि की जाती है, इसलिए पांचवा डालर Y पर जाना चाहिए, छठे व सातवें में एक X पर व एक Y पर, आठवां, नवां व दसवां Y पर, और ग्यारहवां व बारहवां एक X पर व एक Y पर। उपभोक्ता अब पांच डालर-मूल्य का X लेता है और सात डालर-मूल्य का Y लेता है। प्रति डालर-मूल्य के अनुसार X की सीमान्त उपयोगिता एक डालर-मूल्य के Y के बराबर होती है और दोनों की 24 इकाई उपयोगिता होती है।

हम देखते हैं कि $12 व्यय से हमारे उपभोक्ता की उपयोगिता अधिकतम होती है, क्योंकि यह एक एक डालर करके उस दिशा में व्यय की गई थी जहां प्रत्येक डालर

से उसकी कुल उपयोगिता मे सर्वोच्च योगदान मिला था।

सामान्य निष्कर्ष निकालते हुए हम कह सकते है कि एक उपभोक्ता उपलब्ध वस्तुओ व सेवाओ (बचत सहित) के बीच अपनी आमदनी को इस प्रकार से आवंटित करके अपनी उपयोगिता अधिकतम कर सकता है कि (1) एक डालर-मूल्य के बराबर किसी एक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता एक डालर-मूल्य के बराबर किसी दूसरी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता के बराबर होती है और (2) वह अपनी सम्पूर्ण आय व्यय करता है। बचतें, जिनसे समस्या उत्पन्न हो सकती है, केवल किसी दूसरी वस्तु के रूप मे देखी जा सकती हैं। एक उपभोक्ता बचतो से उपयोगिता प्राप्त करता है, और यह माना जा सकता है कि अन्य वस्तुओ व सेवाओ की भाँति बचतो की मात्रा के बढाये जाने पर इनकी सीमान्त उपयोगिता भी घटती है।

अब दूसरे उपभोक्ता को लीजिए जिसकी सीमान्त उपयोगिता की अनुसूचियाँ सारणी 6–1 (आ) मे दिखायी गई हैं। X की कीमत $2 प्रति बुशल है और Y की $1 प्रति पाइन्ट है। उपभोक्ता की आमदनी प्रति इकाई समय के अनुसार $15 होती है। प्रश्न यह है कि X व Y के बीच वह इसका आवटन किस भाँति करे?

चूँकि सीमान्त उपयोगिता अनुसूचियाँ डालर-मूल्यो के रूप मे न होकर X और Y की भौतिक इकाइयो के रूप मे होती हैं, इसलिए हमारे पास उनमे निहित सूचना को प्रति डालर मूल्य के अनुसार सीमान्त उपयोगिताओ मे परिवर्तित करने का कोई साधन होना चाहिए। इसको प्राप्त करने के लिए X के चौथे बुशल पर विचार कीजिए। यदि उपभोक्ता X के चार बुशल लेता है तो चौथे बुशल की सीमान्त उपयोगिता 32 इकाइयाँ होती है। चौथे बुशल की कीमत (अन्य किसी बुशल की भाँति) $2 होती है। उपभोग के इस स्तर पर प्रति बुशल X की सीमान्त उपयोगिता को X की कीमत से विभाजित करने पर, अथवा MU_x/P_x एक डालर मे प्राप्त X की मात्रा की सीमान्त उपयोगिता के बराबर होती है। इस बिन्दु पर एक डालर मे प्राप्त X की मात्रा की सीमान्त उपयोगिता 16 इकाइयो के बराबर होगी। इसी तरह उपभोग के किसी भी स्तर पर प्रति पाइन्ट Y की सीमान्त उपयोगिता मे Y की कीमत का भाग देने पर, अर्थात् MU_y/P_y उपभोग के उस स्तर पर एक डालर मे प्राप्त होने वाली Y की सीमान्त उपयोगिता के बराबर मानी जा सकती है। सतोष को अधिकतम करने की प्रथम शर्त इस प्रकार होती है:

$$\frac{MU_x}{P_x} = \frac{MU_y}{P_y} = \frac{MU_z}{P_z} = \quad \cdots (6.3)$$

यह शर्त कि उपभोक्ता अपनी सम्पूर्ण आय खर्च कर देता है—न अधिक और न कम—इस रूप मे व्यक्त की जा सकती है:

$$X \times P_y + Y \times P_y + Z \times P_z + \ldots\ldots = I \quad ..(6\ 4)$$

X पर उसका कुल व्यय X की कीमत को खरीदी गई X की मात्रा से गुणा करने के बराबर होना है। अन्य किसी वस्तु या सेवा के लिए भी, बचत सहित, उसके व्यय पर यही बात लागू होती है। इनका योग उसकी आय I के बराबर होता है।

चूंकि X की कीमत $2 प्रति बुशल है और Y की कीमत $1 प्रति पाइन्ट है, इसलिए हमें X और Y का ऐसा सयोग मालूम करना चाहिए जहां एक बुशल X की सीमान्त उपयोगिता प्रति पाइन्ट Y की सीमान्त उपयोगिता से दुगुनी हो। ऐसा 6 बुशल X और 8 पाइन्ट Y पर होता है। लेकिन X पर व्यय की गई कुल राशि $12 होगी, और Y पर व्यय की गई कुल राशि $8 होगी। उपभोक्ता अपनी आमदनी से आगे निकल जाता है। इसलिए कुल उपयोगिता के अधिकतमकरण की दूसरी शर्त पूरी नहीं होती है, हालांकि पहली शर्त पूरी हो जाती है। दूसरा सम्भव सयोग 4 बुशल X और 7 पाइन्ट Y का हो सकता है। यहां पर प्रथम शर्त पूरी हो जाती है क्योंकि 32/$2=16/$1 है। दूसरी शर्त भी पूरी हो जाती है क्योंकि 4 बुशल ×$2 + 7 पाइन्ट ×$1=$15 है। अत उपभोक्ता को अपनी कुल उपयोगिता अधिकतम करने के लिए 4 बुशल और 7 पाइन्ट Y लेना चाहिए।

हम यह दर्शा सकते हैं कि एक डालर X से Y मे हस्तान्तरित करने से उपयोगिता अधिकतम हो सकेगी। एक डालर मे प्राप्त होने वाली X की मात्रा को छोड़ने से, अथवा चौथे बुशल का आधा छोड़ने से कुल उपयोगिता मे 16 इकाइयो की कमी आ जाती है। इस डालर को Y के आठवें पाइन्ट पर व्यय करने से कुल उपयोगिता मे 10 की वृद्धि होती है। अत 6 इकाइयो की शुद्ध हानि होनी है। विपरीत दिशा मे एक डालर के हस्तान्तरण से भी उपयोगिता की शुद्ध हानि होती है जो इस स्थिति मे 3 इकाइयो की होती है।[10]

---

10 यहाँ पर गणितीय समस्या यह है कि उपभोक्ता के उपयोगिता फलन को उसके बजट प्रतिबन्ध के अन्तगत अधिकतम किया जाय। पुस्तक में दिये गए निशानो को प्रयुक्त करने पर, उसका उपयोगिता फलन इस प्रकार होगा :

$$U = f(x, y)$$

बजट प्रतिबन्ध इस प्रकार होगा

$$xP_x + yP_y = I$$

अथवा

$$xP_x + yP_y - I = 0$$

अधिकतमकरण की समस्या वैसी ही है जैसी अध्याय 5 के फुटनोट 11 में दिखाई गई है। उक्त टनोट में f_x व f_y क्रमश MU_x व MU_y हैं।

यह भी हो सकता है कि उपभोक्ता के समक्ष जो तथ्य पाये जाते हैं उनसे उपरोक्त उदाहरण की स्थिति में समुचित हल न निकल सके। मान लीजिए उपभोक्ता की आमदनी प्रति इकाई समय के अनुसार $15 के बजाय $14 होती है। प्रश्न उठता है कि अब वह आय का आवंटन किस प्रकार करे ? वह आधा बुशल X छोड़ सकता है अथवा एक पाइन्ट Y। प्रत्येक दशा में उसकी कुल प्रतियोगिता में 16 इकाइयों की कमी आ जायेगी। यदि उसकी आमदनी $15 के बजाय $16 होती है तो वह X के पाचवें बुशल का आधा लेगा। इससे उसकी कुल उपयोगिता में 13 इकाइयों की वृद्धि होगी, जबकि Y का आठवाँ पाइन्ट लेने पर उसकी कुल उपयोगिता में केवल 10 इकाइयों की वृद्धि होती। अतः अधिकतम संतोष चाहने वाले उपभोक्ता को अपनी आय विभिन्न वस्तुओं के बीच इस प्रकार से वितरित करनी चाहिए कि वह उस स्थिति के यथासम्भव समीप पहुँच सके जहाँ एक वस्तु की एक डालर में प्राप्त मात्रा की सीमान्त उपयोगिता खरीदी जाने वाली अन्य वस्तु की एक डालर में प्राप्त मात्रा की सीमान्त उपयोगिता के बराबर हो सके।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि यह सिद्धान्त एक परिवार विशेष के सम्बन्ध में किस प्रकार से लागू होगा ? कल्पना कीजिए कि परिवार के बजट में निम्न मदें पाई जाती हैं भोजन, कपड़ा, मकान, गाड़ी, दवा, मनोरंजन व शिक्षा। अल्पकाल में इन वर्गीकरणों में से कुछ में व्यय की राशि लगभग स्थिर रहती है। उदाहरण के लिए, बंधक-भुगतानों (mortgage payments) की मासिक राशि स्थिर रहती है। किराना का बिल और दवा का व्यय कभी-कभी चुनाव के बजाय आवश्यकता से अधिक प्रभावित होते हैं। अन्य श्रेणियाँ भी अधिक परिवर्तनशील होती हैं, लेकिन अल्पकाल में उनके निर्धारण में आदत का प्रभाव पड़ सकता है।

दीर्घकाल में बजट में शामिल एक या सभी मदों पर व्यय परिवर्तनशील होगा। जो परिवार अपनी सीमित आमदनी से यथासम्भव अधिकतम संतोष प्राप्त करना चाहता है, उसे समय-समय पर अपने बजट को फिर से जाँचना होगा। हो सकता है कि पारिवारिक कार की थोड़ी-थोड़ी माँग महसूस होने लगे और साथ में यह भी वाञ्छनीय प्रतीत हो कि घर में छोटे सदस्य के लिए एक नया बेडरूम तैयार किया जाय। एक नई कार और एक नया कमरा दोनों को खरीद सकने का तो सवाल ही नहीं उठता, इसलिए व्यय की दिशा के सम्बन्ध में चुनाव करना होगा। यदि इनमें से एक को प्राप्त करना है तो बड़ी बहिन, जो एक प्राइवेट विश्वविद्यालय में पढ़ रही है, की शिक्षा पर किए जाने वाले व्यय में कमी करनी आवश्यक होगी। इस बात पर विचार करना होगा कि क्या उसे स्टेट विश्वविद्यालय में भेज दिया जाय जहाँ व्यय कम लगता है ? नई कार अथवा नये कमरे को सम्भव कर सकने के लिए खाद्य-बजट

एवं वस्त्र-बजट को भी व्यवस्थित करना होगा। इसी तरह परिवार को मनोरंजन एव दवा के खर्चों मे भी किफायत करनी होगी। जब छोटे सदस्य को मामूली-सी बीमारी हो जाय तो उसे डॉक्टर की सहायता के बिना ही काम चलाना पड़ेगा। यदि परिवार के लिए अधिकतम सतोष प्राप्त करना है तो समस्त निर्णय सीमान्त उपयोगिता के नियमो के आधार पर ही लिये जायेंगे।

परिवार प्रत्येक दिशा मे व्यय किये जाने वाले डालरो की सीमान्त उपयोगिताओं का व्यक्तिपरक अनुमान लगाता है। जिन मदो से प्रति डालर प्राप्त माल से सीमान्त उपयोगिता कम मिलती है उनसे व्यय का अन्तरण (transfer) उन मदो की तरफ करने से जहां प्रति डालर प्राप्त माल से सीमान्त उपयोगिता अधिक मिलती है, कुल सतोष बढ़ेगा।

मांग वक्र (Demand Curves)

उपभोक्ता-चुनाव के सम्बन्ध मे उपयोगिता दृष्टिकोण को आगे बढ़ाकर वस्तुओ व सेवाओ के लिए वैयक्तिक उपभोक्ता के मांग वक्रो को स्थापित करने मे उसका उपयोग किया जा सकता है। पुन हम उपभोक्ता को दो वस्तु जगत् तक सीमित रखते हैं जहाँ X व Y स्वतन्त्र वस्तुएँ होती हैं। उपभोक्ता के उपयोगिता वक्र दिये हुए हैं और वे सम्पूर्ण विश्लेषण मे स्थिर बने रहते है। प्रत्येक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घटती हुई मानी जाती है।

X के लिए मांग-वक्र[11]

X वस्तु के लिए उपभोक्ता के मांग-वक्र को स्थापित करने के लिए हम मान लेते हैं कि प्रारम्भ मे X की कीमत P_{x1} है और Y की कीमत P_{y1} है। हम यह भी

---

11 यहाँ पर प्रस्तुत किया गया विश्लेषण वालरा से लिया गया है। देखिए Leon Walras, Abe'rge' des Ele'ments d'e'conomie politique pure (Paris R Pichon et R Durand-Auzias, 1938), pp 131–133

इस पुस्तक मे उपभोक्ता के व्यवहार के सिद्धात से मांग वक्रो की तरफ जो परिवतन दिखलाया गया है वह मार्शल के विवरण से भिन्न है। मार्शल के विवरण मे मुद्रा की सीमांत उपयोगिता समान मान ली जाती है और केवल एक वस्तु के सीमांत उपयोगिता वक्र को उसके माग वक्र मे बदल दिया जाता है। देखिए—केनेथ ई० बोल्डिंग, Economic Analysis, चतुर्थ सस्करण, खण्ड 1 (न्यूयार्क हारपर एण्ड राउ, प्रकाशक, 1966) पृ० 520–527. मार्शल के दृष्टिकोण मे कीमत परिवर्तन के आय प्रभावो पर कोई ध्यान नही दिया गया है। इस ग्रन्थ मे जो दृष्टिकोण अपनाया गया है उसमे आय प्रभावो व प्रतिस्थापन प्रभावों दोनो पर विचार किया गया है। इसमे इस अध्याय का उपयोगिता विश्लेषण पिछले अध्याय के तटस्थता-विश्लेषण के काफी समान हो जाता है।

मान लेते है कि उपभोक्ता सदैव आय के प्रतिबन्ध के अन्तर्गत कार्य करता है। उपभोक्ता अपना सन्तोष उस समय अधिकतम करेगा अथवा सतुलन मे होगा जब वह X व Y की मात्राएँ इस प्रकार ले ताकि .

$$\frac{MU_{x1}}{P_{x1}} = \frac{MU_{y1}}{P_{y1}} \text{ हो जाय} \qquad ....(6\,5)$$

इस प्रकार P_{x1} कीमत पर उपभोक्ता X की एक निश्चित मात्रा लेता है—यह एक ऐसी मात्रा होती है जो एक डालर मे प्राप्त X की सीमान्त उपयोगिता को एक डालर मे प्राप्त Y की सीमान्त उपयोगिता के बराबर करती है। हम इस मात्रा को X_1 कहेगे ।[12]

उपभोक्ता के सतुलन की प्रारम्भिक स्थिति चित्र 6–4 मे प्रदर्शित की गई है। P_{x1} को P_{y1} का दुगुना मानने पर उपभोक्ता X की $x1$ मात्रा और Y की $y1$ मात्रा लेता है। ये मात्राएँ ऐसी हैं कि MU_{x1} मात्रा यहाँ पर MU_{y1} की दुगुनी होती है ।[13] अब X के लिए उपभोक्ता की माँग अनुसूची अथवा माँग वक्र पर एक बिन्दु आ चुका है। P_{x1} कीमत पर उपभोक्ता X_1 मात्रा लेगा।

अब हमारे समक्ष प्रश्न X की उन मात्राओ का पता लगाने का है जिन्हें उपभोक्ता X की अन्य कीमतो पर लेगा जब कि वह इन कीमतो मे से प्रत्येक पर सतुलन की
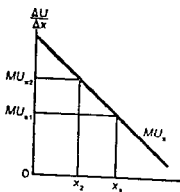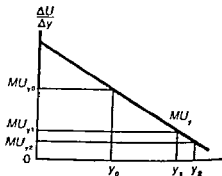
चित्र 6–4 माँग की मात्राओ का निर्धारण

12. वह Y की एक निश्चित मात्रा y_1 भी लेगा, लेकिन हमारा प्रमुख सम्बन्ध उसके द्वारा ली जाने वाली X की मात्रा से ही है।

13. P_x व P_y के एक दिये हुए अनुपात के लिए, X और Y की ली जाने वाली मात्राएँ ऐसी होनी चाहिएँ ताकि $P_x / P_y = MU_x / MU_y$, अथवा $MU_x / P_x = MU_y / P_y$ हो।

स्थिति मे होता है। Y की कीमत P_{y1} पर स्थिर बनी रहती है। उपभोक्ता के सीमान्त उपयोगिता-वक्र नही बदलते, अर्थात् उनकी रुचि व अधिमान स्थिर बने रहते हैं। उसकी आय भी स्थिर बनी रहती है।

मान लीजिए, अब X की कीमत बढकर P_{x2} हो जाती है और वह X की पहले जितनी मात्रा ही खरीदता रहता है। ऐसी स्थिति मे प्रति बुशल X की सीमान्त उपयोगिता तो अपरिवर्तित रहेगी, लेकिन एक डालर मे प्राप्त होने वाली X की मात्रा की सीमान्त उपयोगिता, MU_{x1}/P_{x2} कम होगी। यदि P_{x2} कीमत पर उपभोक्ता $x1$ मात्रा लेता रहता है, तो वह X पर अपनी आय का पहले से ज्यादा अंश व्यय करेगा जिससे Y पर व्यय करने के लिए उसके पास कम राशि रह जायगी। चूंकि P_{y1} तो Y की स्थिर कीमत है, इसलिए वह Y की अपनी खरीद को अनिवार्यत कम करके y_0 मात्रा कर देगा। Y का उपभोग पाइन्टो मे कम कर देने से प्रति पाइन्ट Y की सीमान्त उपयोगिता बढ कर MU_{y0} हो जायगी (देखिए चित्र 6–4)। इससे प्रति डालर के मूल्य की Y की सीमान्त उपयोगिता बढकर MU_{y0}/P_{y1} हो जायगी और :

$$\frac{MU_{x1}}{P_{x2}} < \frac{MU_{y0}}{P_{y1}} \text{ हो जायगा} \qquad \ldots(6.6)$$

अर्थात्, एक डालर के मूल्य के X की सीमान्त उपयोगिता एक डालर के मूल्य के Y की सीमान्त उपयोगिता से कम होगी। उपभोक्ता अपना सतोष अधिकतम नही कर रहा है इसलिए कीमत के बढकर P_{x2} हो जाने पर वह X की $x1$ मात्रा लेना जारी नही रखेगा।

उपभोक्ता X से Y की तरफ डालर अन्तरित करके अपने सतोष मे वृद्धि कर सकता है। X से एक डालर हटाने से उसको हानि एक डालर के मूल्य की X की सीमान्त उपयोगिता के बराबर होगी। एक अतिरिक्त डालर के मूल्य की Y खरीदने से उसका लाभ एक डालर मूल्य के Y की सीमान्त उपयोगिना के बराबर होगा, चूंकि $MU_{x1}/P_{x2} < MU_{y0}/P_{y1}$ है, इसलिए इस अन्तरण (tranfer) से कुल उपयोगिता मे शुद्ध वृद्धि होगी।

X से Y की तरफ डालरो का अन्तरण उस समय तक जारी रहेगा जब तक कि एक डालर के मूल्य की X की सीमान्त उपयोगिता एक डालर मूल्य के Y की सीमान्त उपयोगिता से कम रहती है। लेकिन जब उपभोक्ता X की इकाइयाँ छोडता है तो प्रति बुशल X की सीमान्त उपयोगिता मे वृद्धि होती है जिससे प्रति डालर मूल्य के X की सीमान्त उपयोगिता मे वृद्धि होती है, चूंकि कीमत P_{x2} पर स्थिर बनी रहती है। जब उपभोक्ता Y की अतिरिक्त इकाइयाँ खरीदता है तो प्रति पाइन्ट Y की सीमान्त उपयोगिता घटती है और प्रति डालर मूल्य की Y की सीमान्त

उपयोगिता भी घटती है। यह अन्तरण तभी रुकता है जब कि उपभोक्ता प्रति डालर मूल्य की X की सीमान्त उपयोगिता प्रति डालर मूल्य की Y की सीमान्त उपयोगिता के बराबर कर लेता है और इस प्रकार अपने सन्तोष को अधिकतम कर पाता है। Y की ली जाने वाली मात्रा y_0 से बढ़कर y_2 हो जायगी। X की ली जाने वाली मात्रा x_1 से घटकर x_2 हो जायगी। x_2 और y_2 मात्राएँ ऐसी होनी चाहिए ताकि :

$$\frac{MU_{x2}}{P_{x2}}=\frac{MU_{y2}}{P_{y1}} \quad ....(6\ 7)$$

X और Y की जो मात्राएँ MU_x और MU_y में उचित सम्बन्ध स्थापित करती हैं वे चित्र 6–4 में x_2 और y_2 के रूप में प्रदर्शित की गई हैं। अब हमारे पास उपभोक्ता के लिए X के माँग वक्र पर दूसरा बिन्दु आ गया है। P_{x2} कीमत पर वह X की x_2 मात्रा लेकर सतुलन की स्थिति प्राप्त करेगा। इस विश्लेषण से यह स्पष्ट हो गया है कि X की कीमत में वृद्धि होने से इसकी खरीदी जाने वाली मात्रा में कमी आ जाती है।

$MU_{x2}/P_{x2}=MU_{y2}/P_{y1}$ से प्रारम्भ करके एव X की कीमत में पुन परिवर्तन करके हम इस प्रक्रिया को दोहरा सकते हैं। सतुलन की नई स्थिति में नई कीमत पर ली जाने वाली X की मात्रा निर्धारित की जा सकती है। इस प्रक्रिया को निरन्तर दोहरा कर कीमत-मात्रा सयोगों (price-quantity combinations) की सम्पूर्ण माला (series) को माँग-अनुसूची के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है अथवा माँग-

चित्र 6–5 वैयक्तिक उपभोक्ता का माँग-वक्र
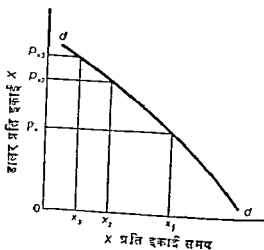
वक्र के रूप मे चित्रित किया जा सकता है। ऐसा वक्र चित्र 6–5 मे प्रदर्शित किया गया है।

अन्य वस्तुओ की ली जाने वाली मात्राएँ

उपर्युक्त विश्लेषण के सहायक निष्कर्ष के रूप मे इसको ध्यान से जानना भी उपयोगी होगा कि Y की ली जाने वाली मात्रा के सम्बन्ध मे क्या होना है। जब X की कीमत बढ कर P_{x2} हो जाती है तो प्रश्न उठता है कि सतुलन की नई स्थिति मे क्या Y की मात्रा प्रारम्भिक मात्रा से अधिक होगी ? उत्तर म कहा जा सकता है कि 'ऐसा अनिवार्यत नही होता," हालाकि हमने चित्र 6–4 म इसे अधिक दर्शाया है। इसमे मुख्य तत्त्व X की माँग की लोच है। यदि X की माँग लोचदार होती तो X की कीमत मे वृद्धि होने से X पर कुल व्यय कम हो जाता है, जिससे Y पर व्यय हेतु उपभोक्ता के पास अधिक आय रह जाती है। इस स्थिति मे y_2 मात्रा y_1 मात्रा से निश्चित रूप से अधिक होगी, जैसा कि चित्र 6–4 म दिखलाया गया है। लेकिन यदि X के लिए माँग की लोच एक के बराबर होती है तो X पर कुल व्यय और Y पर कुल व्यय यथास्थिर रहेगे और Y की ली जाने वाली मात्रा मे कोई परिवर्तन नही होगा। यदि X की माँग बेलोच होती है तो X की कीमत मे वृद्धि होने से इस पर कुल व्यय बढ जाता है और Y पर कुल व्यय घट जाता है और X की ली जाने वाली नई सतुलन की मात्रा y_1 से कम हो जाती है।

बाजार माँग-वक्र

एक वस्तु का बाजार माँग-वक्र उसके लिए वैयक्तिक उपभोक्ता माँग-वक्रो से ही बनता है। हमने एक वैयक्तिक उपभोक्ता के माँग-वक्र को भी उसी तरह से परिभाषित किया है जिस तरह से एक बाजार माँग-वक्र को किया था। यह उन विभिन्न मात्राओ को दर्शाता है जिन्हे उपभोक्ता अन्य बातो के समान रहने पर सभी सभव कीमतो पर खरीदेगा। *अत उन सभी मात्राओ को जोडकर जिन्हे बाजार मे सभी* उपभोक्ता प्रत्येक सभव कीमत पर लेंगे, हम बाजार माँग-वक्र पर पहुँचते हैं।

बाजार माँग-वक्र को प्राप्त करने के लिए वैयक्तिक उपभोक्ता माँग वक्रो को जोडने की प्रक्रिया चित्र 6–6 मे प्रदर्शित की गई है। मान लीजिए ऐसे केवल दो उपभोक्ता है जो X–वस्तु को खरीदते हैं। उनके वैयक्तिक माँग वक्र क्रमश d_1d_1 व d_2d_2 है। P_1 कीमत पर उपभोक्ता न I प्रति इकाई समय के अनुसार X_1 मात्रा लेने को उद्यत होगा और उपभोक्ता न. II प्रति इकाई समय के अनुसार X'_1 लेने को उद्यत होगा। वे दोनो मिलकर उस कीमत पर X_1 $(=X_1+X'_1)$ मात्रा लेने को उद्यत होगे और बाजार माँग-वक्र पर एक बिन्दु के रूप मे **A** विद्यमान होता है।

इसी तरह P_2 कीमत पर उपभोक्ता I प्रति इकाई समय के अनुसार X_2 इकाइयाँ लेने
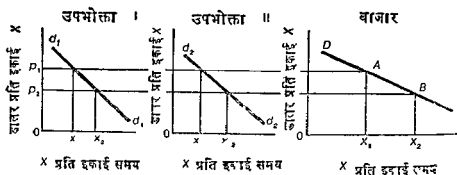
चित्र 6–6 बाजार माँग-वक्र का निर्माण

को उद्यत होगा और उपभोक्ता II X'_2 लेने को उद्यत होगा। वे दोनो उस कीमत पर X_2 $(=X_2+X'_2)$ लेने को उद्यत होगे और बाजार माँग वक्र पर B एक बिन्दु के रूप म अकित है। इसी तरह से अतिरिक्त बिन्दुओ का पता लगाया जा सकता है और उनमे से गुजरने वाला एक बाजार माँग-वक्र DD खीचा जाता है। अत एक वस्तु के लिए बाजार माँग-वक्र उसके वैयक्तिक उपभोक्ता माँग वक्रो का एक क्षैतिज जोड (horizontal summation) ही होता है।

विनिमय और कल्याण

विनिमय आर्थिक क्रिया का एक महत्त्वपूर्ण अग होना है। आधुनिक अर्थ-व्यवस्थाओ मे, जिनम मुद्रा के माध्यम का उपयोग होता है, वस्तुओ का विनिमय वस्तुओ से होता है, साधनो का विनिमय वस्तुओ से होता है और साधनो का विनिमय साधनो से होता है। अनेक व्यक्ति एक बहुत सामान्य किस्म की सी त्रुटि इस प्रकार से सोचकर कर बैठते हैं कि ऐच्छिक सौदे मे एक पक्ष को लाभ होता है और दूसरे को हानि। व्यक्तियो के बीच वस्तुओ के ऐच्छिक विनिमय म विनिमय के सभी पक्ष अपने सतोष या कल्याण म वृद्धि करने की आशा रखते हैं। लाभ की सम्भावना से ही ऐच्छिक विनिमय सम्पन्न हो पाता है। यह बात उपयोगिता–विश्लेषण की सहायता से स्पष्टतया समझायी जा सकती है। हम अपने आपको उपभोक्ताओ–A और B तक सीमित रखेंगे। इनम से प्रत्येक दो वस्तुओ X और Y की प्रति इकाई समयानुसार स्थिर मात्राएँ प्राप्त करता है। सारणी 6–2 मे प्रत्येक उपभोक्ता के लिए दोनो वस्तुओ की सीमान्त उपयोगिता-अनुसूचियाँ प्रदर्शित की गई हैं।

सारणी 6-2 विनिमय का आधार

व्यक्ति A				व्यक्ति B			
वस्तु X		वस्तु Y		वस्तु X		वस्तु Y	
मात्रा (बुशल)	MU_x (उपयोगिता की इकाइयां)	मात्रा (पाइन्टों में)	MU_y (उपयोगिता की इकाइयां)	मात्रा (बुशल)	MU_x (उपयोगिता की इकाइयां)	मात्रा (पाइन्टों में)	MU_y (उपयोगिता की इकाइयां)
1	14	1	10	1	20	1	18
2	13	2	9	2	19	2	17
3	12	3	8	3	18	3	16
4	11	4	7	4	17	4	14
5	10	5	6	5	16	5	12
6	9	6	5	6	15	6	10
7	8	7	4	7	14	7	8
8	7	8	3	8	13	8	6
9	6	9	2	9	12	9	4
10	5	10	1	10	10	10	2

वस्तुओं की तुलनात्मक सीमान्त उपयोगिताएँ उपभोक्ता के लिए वस्तुओं के तुलनात्मक महत्त्व या मूल्यों को सूचित करती हैं। मान लीजिए उपभोक्ता A के पास 5 बुशल X और 6 पाइन्ट Y है। इस स्थिति म एक बुशल X उसके कुल सतोष मे 10 इकाई उपयोगिता का योगदान करता है। एक पाइन्ट Y, 5 इकाई उपयोगिता का योगदान करता है। यदि उसे एक बुशल X छोडना पडे तो उसके सतोष मे 10 इकाई उपयोगिता की हानि होगी; अथवा यदि उसे एक पाइन्ट Y छोडना पडे तो उसकी हानि 5 इकाई उपयोगिता की होगी। इस प्रकार एक बुशल X उसके लिए दो पाइन्ट Y के बराबर है। वैकल्पिक रूप मे, हम इस प्रकार कह सकते हैं कि एक पाइन्ट Y आधे बुशल X के बराबर है।

अब कल्पना कीजिए कि X और Y वस्तुओं की पूर्ति स्थिर है—प्रति सप्ताह X की 12 बुशल और Y की 12 पाइन्ट है, और ये प्रारम्भ मे दो उपभोक्ताओं मे इस प्रकार से वितरित हैं कि A के पास X के 9 बुशल व Y के 3 पाइन्ट हैं और B के पास X के 3 बुशल व Y के 9 पाइन्ट है। चूंकि A के लिए एक बुशल X की सीमान्त उपयोगिता 6 इकाई है और एक पाइन्ट Y की 8 इकाई है, इसलिए उसके लिए एक पाइन्ट Y का महत्त्व $1\frac{1}{3}$ बुशल X के बराबर है। B के लिए एक बुशल

X की सीमान्त उपयोगिता 18 इकाइयो के बराबर है और एक पाइन्ट Y की उपयोगिता चार इकाई के बराबर है। इसलिए B के लिए एक पाइन्ट Y का मूल्य केवल $\frac{2}{9}$ बुशल X के ही बराबर है।

इन परिस्थितियो मे दोनो दल खुशी से कुछ विनिमय करेंगे और विनिमय से समाज का कल्याण बढेगा। व्यक्ति A एक बुशल X व्यक्ति B को एक पाइन्ट Y के बदले मे देने को उद्यत होगा, और B भी एक बुशल X के लिए एक पाइन्ट Y देने को उद्यत होगा। A के लिए प्राप्त किए गए एक पाइन्ट का मूल्य X के दिए गए एक बुशल का $1\frac{1}{6}$ गुना होगा। B के लिए दिए गए एक पाइन्ट Y का मूल्य प्राप्त किए गए X के एक बुशल का $\frac{2}{9}$ होगा। दूसरे शब्दो मे, एक बुशल X का विनिमय एक पाइन्ट Y से करने पर A, 7 इकाई उपयोगिता प्राप्त करने के लिए 6 इकाई उपयोगिता का त्याग करेगा और इस प्रकार 1 इकाई उपयोगिता का शुद्ध लाभ प्राप्त करेगा। B 17 इकाइयो के बदले मे 4 इकाई उपयोगिता का त्याग करेगा और इस प्रकार 13 इकाई उपयोगिता का शुद्ध लाभ प्राप्त करेगा।[14] इस विनिमय से दोनो का कल्याण बढेगा और किसी के भी कल्याण मे कमी नहीं आयेगी।

जब विनिमय का यह कार्य सम्पन्न हो जाता है तो अतिरिक्त विनिमय से दोनों पक्षो को और भी लाभ हो सकता है। जब A के पास 8 बुशल X और 4 पाइन्ट Y हो जाता है तो वह इससे आगे एक पाइन्ट के लिए एक बुशल के आधार पर विनिमय करने को उद्यत नही होगा, क्योकि ऐसे सौदे से उसको लाभ के बजाय हानि अधिक होगी। लेकिन B को X के बुशलो के लिए Y के पाइन्ट देने से अब भी लाभ प्राप्त होगा। चूँकि A के लिए एक पाइन्ट के लिए एक बुशल के आधार पर व्यापार अब आकर्षक नहीं रह गया है, इसलिए B विनिमय की दर अथवा व्यापार-स्थिति (terms of trade) को परिवर्तित कर देगा। यदि B, जिसके पास इस समय 4 बुशल X और 8 पाइन्ट Y है, एक बुशल X के लिए 2 पाइन्ट Y देता है, तो उसे 14 इकाई उपयोगिता का त्याग करना पडता है और 16 इकाइयो का लाभ होता है, इस प्रकार उसे अब भी 2 इकाई उपयोगिता का शुद्ध लाभ मिलता है। A को यह सौदा आकर्षक प्रतीत होगा। इसमे उसे 7 इकाई उपयोगिता के विनिमय मे 11 इकाइयो की उपयोगिता प्राप्त होगी। जब दूसरा विनिमय हो चुकता

14. यहाँ पर 'एक के लिए एक' के जिस विनिमय अनुपात का प्रयोग किया गया है केवल यही अनुपात नहीं है जिस पर प्रारम्भिक विनिमय सम्पन्न हो सकें। दोनो दलो को विनिमय से उस अनुपात पर लाभ होगा जिस पर A एक पाइंट Y प्राप्त करने के लिए X की जिस मात्रा का त्याग करने को उद्यत है वह X की उस मात्रा से अधिक होती है जिसे B एक पाइंट Y का त्याग करते समय लेना चाहेगा।

है तो दोनो पक्षो को व्यापार से और लाभ नही होता है; पेरेटो इष्टतम आ चुका है और विनिमय समाप्त हो जाता है। A के पास 7 बुशल X और 6 पाइन्ट Y होते हैं जिनकी सीमान्त उपयोगिताएँ क्रमश 8 और 5 इकाइयो की होती हैं। B के पास 5 बुशल X और 6 पाइन्ट Y हैं जिनकी सीमान्त उपयोगिताएँ क्रमश 16 और 10 इकाइयो की हैं। A के लिए एक इकाई X 1$\frac{3}{5}$ इकाई Y के बराबर है। B के लिए भी X और Y के सापेक्ष मूल्यांकन वही हैं, इसलिए किसी को भी आगे विनिमय से लाभ नही होगा।

विनिमय का सामान्य सिद्धान्त यह है कि इसके लिए दो या अधिक व्यक्ति सम्बन्धित वस्तुओ के लिए सापेक्ष मूल्यांकन भिन्न-भिन्न रखें। एक पक्ष के लिए वस्तुओ के सापेक्ष मूल्यांकन वस्तुओ की सापेक्ष सीमान्त उपयोगिताओ पर निर्भर करते हैं। अन्त सभी उपभोक्ताओ के लिए सन्तुलन की स्थिति मे जहाँ विनिमय के लिए कोई प्रेरणा नही रह जाती है प्रत्येक व्यक्ति के पास इतनी वस्तुएँ हो ताकि उसके लिए वस्तुओ की सीमान्त उपयोगिताओ का अनुपात वही हो जो अन्य व्यक्तियो के लिए होता है। हमारे सरल दृष्टान्त मे A और B के लिए सन्तुलन मे होने के लिए A के लिए MU_x / MU_y, B के लिए MU_x / MU_y के बराबर होना चाहिये। जब ये दशाएँ लागू नही होती तो उनके लागू होने तक विनिमय मे सलग्न रहना दोनो दलो के लिये लाभप्रद होगा।

उपयोग-मूल्य व विनिमय-मूल्य
(Value in Use and Value in Exchange)

चुनाव व विनिमय के उपयोगिता-सिद्धान्त के विकास ने अर्थशास्त्रियो को इस योग्य बना दिया कि वे हीरा-जल पहेली (diamond-water paradox) को स्पष्ट कर सकें जिसका उल्लेख अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्ध व उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे प्रारम्भिक क्लासिकल अर्थशास्त्रियो ने किया था। यह पहले इस प्रकार थी कि एक व्यक्ति के लिए कुछ वस्तुएँ जैसे हीरे सीमित कुल उपयोग-मूल्य रखते हैं, लेकिन बाजारो मे उनका बहुत ऊँचा विनिमय-मूल्य पाया जाता है। अन्य वस्तुओ, जैसे पानी, का एक व्यक्ति के लिए कुल उपयोग मूल्य तो बहुत अधिक होता है, लेकिन बाजारो मे उनका विनिमय-मूल्य बहुत नीचा होता है। प्रारम्भिक अर्थशास्त्री इसकी कोई सतोषजनक व्याख्या प्रस्तुत नही कर पाए थे।

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध के व्यक्तिपरक मूल्य या सीमान्त उपयोगिता का समर्थन करने वाले अर्थशास्त्रियो ने सारणी 6–3 के जैसे साधन का उपयोग करके उत्तर दिया था। जल को 100 गैलन इकाइयो व हीरे को कैरट मे मापते हुए हम

सारणी 6–3 हीरा-जल पहेली

जल			हीरा		
गैलन प्रति वर्ष	MU प्रति 100 गैलन	TU	कैरट प्रति वर्ष	MU प्रति कैरट	TU
100	30	30	1	40	40
200	28	58	2	36	76
300	26	84	3	24	100
400	24	108	4	10	110
500	22	130	5	0	110
600	20	150			
700	18	168			
800	16	184			
900	12	196			
1000	8	204			

यह मान लेते हैं कि उपभोक्ता A प्रति वर्ष 900 गैलन जल व 2 कैरट हीरे का उपभोग करके अपना संतोष अधिकतम करता है। उसे जल से कुल उपयोगिता 196 इकाई मिलती है। लेकिन प्रश्न यह है कि वह कुल पूर्ति में प्रत्येक 100 इकाई की वृद्धि का मूल्य कैसे आंकता है? सीमान्त उपयोगिता की परिभाषा हमें यह बतलाती है कि 900 गैलन उपभोग के स्तर पर 100 गैलन से उसके संतोष के स्तर में 12 इकाई उपयोगिता की वृद्धि होती है। वह 100 गैलन जल को किसी भी दूसरी वस्तु की उन इकाइयों में बदलने को उद्यत हो जायगा जिनसे उसे 12 या अधिक सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होगी।

इसके विपरीत हीरों से उसे 2 कैरट उपभोग के स्तर पर कुल 76 इकाई उपयोगिता प्राप्त होगी। लेकिन एक कैरट हीरे की सीमान्त उपयोगिता 36 इकाई होगी। उपभोक्ता एक कैरट हीरे को किसी भी दूसरी वस्तु की इकाइयों से बदलने के लिए उस समय तक उद्यत नहीं होगा जब तक कि ऐसी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता 36 इकाई या अधिक न हो जाय।

जल का उसके लिए ऊँचा उपयोगिता-मूल्य और नीचा विनिमय मूल्य है क्योंकि इसकी पूर्ति उसके लिए अधिक है और इसकी सीमान्त उपयोगिता नीची है। हीरों का उसके लिए काफी नीचा उपयोगिता-मूल्य होता है लेकिन विनिमय-मूल्य ऊँचा होता है, क्योंकि उसके लिए इनकी पूर्ति थोड़ी होती है और इनकी सीमान्त उपयोगिता

ऊँची होनी है। अत एक वस्तु का विनिमय मूल्य वास्तव मे उपभोक्ता के पास इसकी सीमान्त इकाई के उपयोगिता मूल्य के द्वारा निर्धारित होना है, अर्थात्, एक वस्तु की एक इकाई की सीमान्त उपयोगिता से निर्धारित होना है।

सारांश

', वैयक्तिक उपभोक्ता के चुनाव व मांग के सिद्धान्त के प्रति उपयोगिता दृष्टिकोण तटस्थता-वक्र दृष्टिकोण की एक विशिष्ट दशा ही है। इसका उपयोग अन्य बातो के साथ, एक उपभोक्ता के द्वारा खरीदी जान वाली वस्तुओ के बीच आमदनी का आवटन, एक दी हुई वस्तु के लिए उपभोक्ता का मांग-वक्र और व्यक्तियो के बीच वस्तुओ के विनिमय को स्पष्ट करने म किया जा सकता है। प्राप्त निष्कर्ष सापेक्षतया (relatively) ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता के नियम पर निर्भर करते हैं जो किसी भी वस्तु या सेवा के उपभोग म अन्य वस्तुओ व सेवाओ की तुलना म होने वाली वृद्धि के परिणाम पर विचार करता है।

एक उपभोक्ता अपनी दी हुई आमदनी का उपयोग करके प्राप्त वस्तुओ व सेवाओ से सन्तोष को अधिकतम करने का प्रयास करता है। अधिकतमकरण के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी आमदनी का आवटन उनम इस प्रकार से करे कि जब वह अपनी सम्पूर्ण आय खर्च करे तो एक वस्तु पर एक डालर के व्यय से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता प्रत्येक दूसरी वस्तु या सेवा पर एक डालर क व्यय से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता के समान हो।

एक वस्तु के लिए उपभोक्ता के मांग-वक्र को स्थापित करने के लिए हम इसकी कीमत को परिवर्तित करते हैं और अन्य वस्तुओ की कीमतें उपभोक्ता की आमदनी, और उसकी रुचि व अधिमान, जो उसकी उपयोगिता अनुसूचियो या वक्रो के द्वारा दर्शाये गए हैं स्थिर रखते हैं। प्रत्येक कीमत पर उपभोक्ता सतोष को अधिकतम करता है और इस प्रकार प्रत्येक कीमत पर ली जाने वाली मात्रा निर्धारित करता है। प्राप्त कीमत मात्रा सयोग उसकी मांग अनुसूची का निर्माण करते है और उसके मांग वक्र के रूप मे अंकित किए जा सकते हैं।

व्यक्तियो के बीच वस्तुओ के ऐच्छिक विनिमय से दोनो दलो के कल्याण मे वृद्धि होती है। ऐच्छिक विनिमय के लिए प्रेरणाएँ वहाँ पायी जाती है जहाँ एक उपभोक्ता के लिए वस्तुओ की सीमान्त उपयोगिताओ के अनुपात दूसरे उपभोक्ता के लिए तदनुरूप अनुपातो (corresponding ratios) से भिन्न होते हैं। समस्त उपभोक्ताओ के लिए एक साथ सन्तुलन की शर्त यह है कि सभी व्यक्तियो के लिए समस्त वस्तुओ की सीमान्त उपयोगिताओ के अनुपात एक-से हो।

अध्ययन-सामग्री

Boulding, Kenneth E. *Economic Analysis,* 4th ed; Vol. 1, (New York : Harper & Row Publishers, 1966), Chap. 24.

Marshall, Alfred, *Principles of Economics,* 8th ed. (London : Macmillan & Co , Ltd., 1920), Bk. III, Chaps. V and VI.

Stigler, George J., "The Development of Utility Theory, I," *The Journal of Political Economy,* Vol. L VIII (August 1950), Pp. 307–324.

□ □ □

अध्याय 7

बाजार-वर्गीकरण और फर्म के समक्ष माँग-वक्र

पिछले अध्यायो मे माँग का विवेचन उपभोक्ता-उन्मुख (consumer-oriented) था क्योकि उपभोक्ता ही माँग को जन्म देते हैं। इस अध्याय म हम माँग पर एक भिन्न दृष्टिकोण से विचार करेंगे—यह दृष्टिकोण एक व्यक्तिगत व्यावसायिक फर्म का है जो माल का उत्पादन करने एव इसकी बिक्री करने की इच्छुक होती है।

यहाँ पर एक फर्म की किसी विशिष्ट परिभाषा की आवश्यकता नही है। यहाँ पर प्रयुक्त की जाने वाली अवधारणा व्यक्तिगत व्यावसायिक उपक्रम की एक साधारण-सी अवधारणा होनी है। यह अकेले स्वामित्व की इकाई हो सकती है, अथवा साभेदारी या एक निगम हो सकती है। विवेचन को सरल रखने के लिए हम यह मान लेते है कि एक फर्म केवल एक वस्तु ही उत्पन्न करती है।

एक फर्म के समक्ष अपनी वस्तु के लिए जो माँग-वक्र होता है वह उन विभिन्न मात्राओ को दर्शाता है जिन्हे, अन्य बातो के समान रहने पर, यह विभिन्न सम्भावित कीमतो पर बेच सकती है और इसे बिक्री-वक्र (sales-curve) कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। ऐसे वक्र की प्रकृति बाजार की उस किस्म पर निर्भर करती है जिसमे फर्म अपना माल बेचती है। विक्रय बाजारो (selling markets) को प्राय चार भिन्न भिन्न किस्मो मे विभाजित किया जा सकता है (1) व्यक्तिगत फर्मों का सम्पूर्ण बाजार के सन्दर्भ मे, जिसमे ये अपना माल बेचती हैं, क्या महत्त्व है और (2) एक विशिष्ट बाजार मे बेची जाने वाली वस्तुएँ सजातीय या समरूप (homogeneous) हैं अथवा नही। बाजार की किस्मे इस प्रकार होती है (1) शुद्ध प्रतियोगिता, (2) शुद्ध एकाधिकार, (3) अल्पाधिकार (oligopoly), और (4) एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता।* यह आवश्यक नही है कि वास्तविक जगत् के बाजार सदैव इनमे से एक या दूसरे वर्गीकरण के अन्तर्गत ही स्पष्ट रूप से आवे, बल्कि वे दो या अधिक के मिश्रण भी हो सकते हैं। लेकिन इन चार सैद्धान्तिक अथवा विशुद्ध वर्गीकरणो मे प्रत्येक मे फर्म के समक्ष होने वाले माँग-वक्र के विश्लेषण के लिए आवश्यक सन्दर्भ-ढांचा तैयार करने की दृष्टि से यह उपयोगी रहेगा। प्रत्येक

* monopolistic competition के लिए एकाधिकारी प्रतियोगिता का भी प्रयोग किया जा सकता है।

के अन्तर्गत कीमत और उत्पत्ति-निर्धारण का विस्तृत विश्लेषण अध्याय 10–13 में किया जायगा।

शुद्ध प्रतियोगिता (Pure Competition)

बाजार में शुद्ध प्रतियोगिता के अस्तित्व के लिए आवश्यक शर्तों की रूपरेखा अध्याय 3 में प्रस्तुत की गई थी। इसमें एक-सी वस्तुओं को बेचने वाली अनेक फर्में होती हैं, और इनमें से कोई एक फर्म सम्पूर्ण बाजार की तुलना में इतनी बड़ी नहीं होती कि वह बाजार-कीमत को प्रभावित कर सके। यदि एक फर्म बाजार से अलग हो जाती है तो पूर्ति इतनी नहीं घट जायगी कि कीमत में कोई उल्लेखनीय वृद्धि हो जाय। किसी भी फर्म के लिए इतनी उत्पत्ति बढ़ा लेना भी सम्भव नहीं होता कि उससे बाजार-कीमत में कोई विशेष गिरावट आ जाय। कोई भी अकेला विक्रेता यह महसूस नहीं करता कि वह बाजार में अन्य विक्रेताओं को प्रभावित करता है अथवा उनसे प्रभावित होता है। किसी भी प्रकार की स्पर्धाएँ उत्पन्न नहीं होतीं। एक फर्म के द्वारा किए गए कार्यों से अन्य फर्मों पर कोई प्रतिक्रियाएँ नहीं होतीं। फर्मों के बीच पाए जाने वाले सम्बन्ध अवैयक्तिक (impersonal) होते हैं।

माँग-वक्र

इन परिस्थितियों में एक फर्म के समक्ष माँग-वक्र प्रचलित बाजार अथवा संतुलन-कीमत पर क्षैतिज (horizontal) होता है। प्रचलित बाजार-कीमत से ऊपर किसी भी कीमत पर वह कुछ भी नहीं बेच सकती। चूँकि उद्योग की सभी फर्में एक-सा माल बेचती हैं, इसलिए यदि एक फर्म अपनी विक्रय-कीमत बाजार-कीमत से अधिक कर देती है तो उपभोक्ता उन फर्मों की तरफ चले जाते हैं जो केवल बाजार-कीमत ही लेती हैं। एक विक्रेता के द्वारा कुल बाजार के इतने थोड़े अंश की पूर्ति की जाती है कि एक फर्म प्रचलित बाजार-कीमत पर अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति को बेच सकती है, इसलिए अन्य विक्रेताओं की कीमत से नीचे कीमत लाने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती। जो फर्म ऐसा करने का प्रयास करेगी उसकी तरफ भारी मात्रा में क्रेता आ जाएँगे जो शीघ्र ही कीमत को पुनः सन्तुलन-स्तर की तरफ धकेल देंगे।

एक आलू के उत्पादक के समक्ष इसी तरह का माँग-वक्र होगा। जब वह अपने आलू बाजार में लाता है तो उसे प्रचलित बाजार-कीमत ही प्राप्त होती है। यदि वह बाजार-भाव से ज्यादा माँगता है और अपनी बात पर अड़ा रहता है तो निःसन्देह उसे आलू पुनः अपने घर ही ले जाने होंगे। इसके विपरीत वह अकेला बाजार में चाहे जितनी मात्रा में आलू ले आये, फिर भी इससे कीमत में कोई गिरावट नहीं आयेगी। वह प्रचलित बाजार-भाव पर जितना चाहे उतना आलू बेच सकता है।

एक फर्म के समक्ष जो मांग-वक्र होता है उसकी प्रकृति चित्र 7–1 के बायी तरफ dd से स्पष्ट हो जाती है। बाजार मांग-वक्र और बाजार पूर्ति-वक्र क्रमश DD और SS हैं। बाजार-कीमत p है और यह फर्म के समक्ष ऐसा मांग-वक्र प्रस्तुत करती है
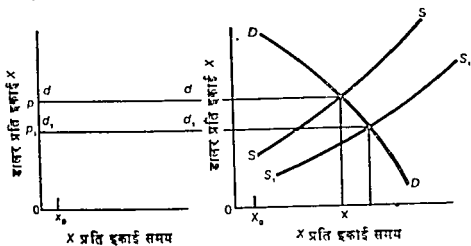
चित्र 7–1 फर्म के समक्ष मांग-वक्र—शुद्ध प्रतियोगिता

जो क्षैतिज व असीमित लोच वाला होता है। दोनो रेखाचित्रो के कीमत-अक्ष समान होते हैं, लेकिन बाजार रेखाचित्र मे मात्रात्मक माप फर्म के रेखाचित्र की तुलना मे काफी छोटे करके दिखलाये गये हैं। उदाहरणार्थ, यदि x_0 फर्म के लिए X की 10 इकाइयाँ बतलाता है तो X_0 कुल बाजार के लिए 10,000 इकाइयाँ बतलाता है।

वस्तुत फर्म के समक्ष जो मांग-वक्र होता है वह बाजार मांग-वक्र का एक बहुत ही छोटा अश होता है जो X मात्रा के पास फर्म के रेखाचित्र पर फैलाया हुआ होता है। किसी भी एक फर्म के बारे मे यह सोचा जा सकता है कि वह X मात्रा के एक अन्तिम छोटे-से अश की पूर्ति करती है। इस छोटे-से अश को फर्म के रेखाचित्र पर फैलाने से फर्म के समक्ष मांग-वक्र क्षैतिज प्रतीत होता है।

फर्म का मांग, कीमत और उत्पत्ति पर प्रभाव

जो शक्तियाँ बाजार-मांग अथवा बाजार-पूर्ति को बदल देती हैं वे वस्तु के बाजार-भाव को भी बदल देती हैं, और, फलस्वरूप, फर्म के समक्ष पाये जाने वाले मांग-वक्र मे भी परिवर्तन हो जाता है। स्वय फर्म अपने मांग-वक्र अथवा बाजार-कीमत के बारे मे कुछ भी नही कर सकती। इसे इन दोनो को दिया हुआ मानकर चलना होता है। यदि बाजार पूर्ति बढकर S_1S_1 हो जाती है तो बाजार-भाव घटकर P_1 हो जाता है, और फर्म के समक्ष होने वाला मांग-वक्र नीचे खिसक कर d_1d_1 हो जाता है। ऐसा कोई भी परिवर्तन एक व्यक्तिगत फर्म के नियन्त्रण से परे होगा। फर्म तो केवल

अपनी उत्पत्ति को ही व्यवस्थित कर सकती है, और यह उत्पत्ति की मात्रा को प्रचलित बाजार-भाव के अनुसार समायोजित कर लेती है।

शुद्ध एकाधिकार

शुद्ध एकाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसमे एक अकेली फर्म ऐसी वस्तु बेचती है जिसके लिए उत्तम स्थानापन्न पदार्थ उपलब्ध नही होते। वस्तु का सम्पूर्ण बाजार स्वयं फर्म तक ही सीमित रहता है। ऐसी एक-सी वस्तुएँ नही पाई जाती जिनकी कीमत या बिक्री स्पष्ट रूप से एकाधिकारी की कीमत या बिक्री को प्रभावित कर सके, और इसके विपरीत भी सही होता है। एकाधिकारी की वस्तु और अन्य वस्तुओं के बीच माँग की तिरछी लोच या तो शून्य होती है अथवा इतनी कम होती है कि अर्थव्यवस्था की सभी फर्में उसको भुला सकती हैं। एकाधिकारी को इस बात में विश्वास नहीं होता कि उसके कार्यों से अन्य उद्योगों की फर्मों में किसी किस्म की बदले की भावना जागेगी। इसी तरह वह अन्य उद्योगों की फर्मों के द्वारा उठाये गये कदमों को इतना महत्त्व नहीं देता कि उन पर ध्यान देवे। उत्पादन के दृष्टिकोण से एकाधिकारी एक उद्योग होता है। उदाहरण के तौर पर, हम एक विशेष समुदाय में टेलिफोन-सेवा की पूर्ति करने वाले को ले सकते हैं।
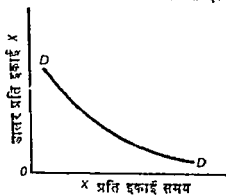
चित्र 7–2 फर्म के समक्ष माँग-वक्र—शुद्ध एकाधिकार

माँग-वक्र

वस्तु का बाजार माँग-वक्र एकाधिकारी के समक्ष होने वाला माँग-वक्र भी होता है। चित्र 7–2 में उस वस्तु का बाजार माँग-वक्र दर्शाया गया है जो एकाधिकारी के द्वारा उत्पादित होती है और बेची जाती है। यह वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं को दर्शाता है जिन्हें क्रेता सभी सम्भावित कीमतों पर बाजार में खरीदेंगे। चूँकि एकाधिकारी ही वस्तु का एकमात्र विक्रेता होता है, इसलिए वह विभिन्न कीमतों पर ठीक उतनी ही मात्राएँ बेच सकता है जिन्हें क्रेता उन कीमतों पर खरीदना चाहेंगे।

फर्म का माँग, कीमत और उत्पत्ति पर प्रभाव

एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत, उत्पत्ति व माँग पर शुद्ध प्रभाव डालने में समर्थ होता है। बाजार माँग-वक्र एकाधिकारी के बाजार की सीमाओं को निर्धारित

करता है। एक दिये हुए मांग वक्र की स्थिति में, वह अपनी कीमत को कम करके बिक्री को बढ़ा सकता है अथवा अपनी बिक्री की मात्रा को सीमित करके वह कीमत को बढ़ा सकता है। इसके अतिरिक्त वह बिक्री बढ़ाने के विभिन्न किस्म के उपाय अपनाकर स्वयं मांग-वक्र को भी प्रभावित कर सकता है। वह ज्यादा लोगो को अपनी वस्तु खरीदने के लिए प्रेरित करके मांग मे वृद्धि कर सकता है और यदि वह काफी लोगो को यह समझा सके कि वे उसकी वस्तु के बिना नहीं रह सकते तो वह मांग को कम लोचदार भी बना सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि एकाधिकारी मांग मे वृद्धि कर सकने मे सफल हो तो वह कीमत कम किये बिना भी कुछ सीमा तक बिक्री बढ़ा सकता है अथवा, वैकल्पिक रूप में अपनी बिक्री की मात्रा को सीमित किये बिना भी वह कुछ सीमा तक कीमत में वृद्धि कर सकता है।

अल्पाधिकार (Oligopoly)

एक अल्पाधिकारी उद्योग मे विक्रेताओं की संख्या इतनी कम होती है कि एक अकेले विक्रेता की क्रियाएँ अन्य फर्मों को और अन्य फर्मों की क्रियाएँ स्वयं उसको प्रभावित कर सकती हैं। एक फर्म के द्वारा किये जाने वाले उत्पत्ति व कीमत के परिवर्तनो से अन्य विक्रेताओं के द्वारा बेची जा सकने वाली मात्राओं और उनकी कीमतो पर प्रभाव पड़ता है। अतः एक अकेली फर्म के कीमत-उत्पत्ति परिवर्तनो से अन्य फर्मों पर किसी-न किसी प्रकार की प्रतिक्रिया अवश्य होगी। व्यक्तिगत विक्रेता परस्पर निर्भर होते हैं, अर्थात् वे उतने स्वतन्त्र नही होते जितने शुद्ध प्रतियोगिता अथवा शुद्ध एकाधिकार मे होते हैं।

अल्पाधिकारी उद्योगो को प्राय विभेदात्मक (differentiated) या शुद्ध (pure) श्रेणियो म बाँटा जाता है। एक विभेदित अल्पाधिकारी उद्योग म फर्मे विभेदित वस्तुएँ (differentiated products) उत्पन्न करती हैं व बेचती हैं। उद्योग मे समस्त फर्मों की वस्तुएँ एक दूसरे की बहुत उत्तम स्थानापन्न होती हैं—उनकी मांग की तिरछी सोचें ऊँची होती हैं—लेकिन प्रत्येक फर्म के माल की अपनी विशेषताएँ होती हैं जो इसको दूसरो के माल से पृथक् करती हैं। ये भेद वास्तविक अथवा काल्पनिक हो सकते हैं। ये किस्म व डिजाइन के भेद हो सकते हैं जैसा कि मोटरगाडी उद्योग मे पाया जाता है, अथवा ये केवल ब्रांड के नामो के भेद हो सकते हैं जैसा कि एस्परीन की गोलियो की बिक्री मे देखा जाता है।

शुद्ध अल्पाधिकारी उद्योग की फर्मे लगभग एक सी वस्तुएँ उत्पन्न करती हैं। क्रेताओं के लिए एक फर्म के माल को दूसरी फर्म के माल से ज्यादा पसन्द करने का कीमत के अलावा और कोई आधार नही प्रतीत होता। शुद्ध अल्पाधिकार के समीप होने वाले उद्योगो के दृष्टान्त के रूप म हम सीमेंट, एल्यूमिनियम, एव इस्पात उद्योगो

को ले सकते हैं।

माँग-वक्र

एक अल्पाधिकारी फर्म के समक्ष मांग की कोई विशेष स्थिति नही पाई जाती। एक अल्पाधिकारी बाजार मे विक्रेताओ की परस्पर निर्भरता किसी भी अकेले विक्रेता के मांग वक्र के निर्धारण को जटिल बना देती है। कुछ दशाओ मे एक फर्म के समक्ष पाया जाने वाला मांग वक्र अनिश्चित या अनिर्धारित (indeterminate) होता है। अन्य दशाओ मे यह कुछ निश्चितता के साथ निर्धारित किया जा सकता है।

जब एक अल्पाधिकारी यह नही बतला सकता कि उसकी तरफ से किये गये कीमत व उत्पत्ति के परिवर्तनो से उसके प्रतिद्वन्द्वियों पर क्या प्रतिक्रियायें होगी, तो उसका मांग-वक्र अनिर्धारित ही माना जायेगा। एक फर्म अपनी कीमत के परिवर्तन से जो माल बेच सकती है वह उस विधि पर निर्भर करता है जिसके द्वारा अन्य फर्में इस कीमत परिवर्तन के प्रति अपनी प्रतिक्रिया दिखलाती हैं।

सम्भावित प्रतिक्रियाओ का क्षेत्र काफी विस्तृत होता है। प्रतिद्वन्द्वी कीमत मे समान परिवर्तन कर सकते हैं, वे कीमत को उसी दिशा मे, लेकिन मूल विक्रेता के परिवर्तन से कम मात्रा मे, बदल सकते हैं, वे प्रतियोगी से भी ज्यादा मात्रा मे कीमत को बदल सकते हैं, वे अपने माल की किस्म मे सुधार कर सकते हैं, वे विस्तृत रूप से विज्ञापनबाजी मे लग सकते हैं, अथवा वे अन्य अनेक तरीको से अपनी प्रतिक्रिया दिखला सकते है। व्यक्तिगत विक्रेता की यह बतलाने की असमर्थता है कि उसके प्रतियोगियो पर क्या प्रतिक्रियायें होंगी और किस मात्रा मे होगी, इस असमर्थता के लिए उत्तरदायी है कि वह अपने समक्ष होने वाले माँग-वक्र को निर्धारित नही कर पाता।

जब एक अकेले विक्रेता को कुछ निश्चितता से यह जानकारी होती है कि उसके प्रतियोगी उसकी तरफ से किये गये कीमत-परिवर्तनो के प्रति क्या प्रतिक्रिया दिखलायेंगे, तो उसके समक्ष पाया जाने वाला मांग-वक्र उस सीमा तक अधिक निश्चित (determinate) हो जाता है। यदि वह अपनी बिक्री पर प्रतियोगियों की प्रतिक्रियाओ के सम्भावित प्रभाव के सम्बन्ध मे कुछ विश्वसनीय अनुमान लगा पाता है, तो वह उनको ध्यान मे रख सकेगा। लेकिन प्रत्येक भिन्न प्रतियोगी की प्रत्येक भिन्न प्रतिक्रिया के फलस्वरूप एक अकेला विक्रेता वस्तु की भिन्न-भिन्न मात्राएँ बेच सकेगा। इसलिए एक व्यक्तिगत फर्म के लिए विभिन्न कीमतो पर बेची जा सकने वाली मात्राओ पर प्रतिद्वन्द्वियो की प्रतिक्रियाओ के प्रभाव जानना एक जटिल प्रक्रिया मानी जा सकती है। हम नीचे कुछ दृष्टात देते हैं जिससे सम्बधित समस्याओं के समझने मे सहायता मिलेगी।

मान लीजिए कि एक विशिष्ट उद्योग मे दो उत्पादक हैं और एक के कीमत परिवर्तन के ठीक बराबर ही दूसरे के कीमत-परिवर्तन होते हैं। यह भी मान लीजिए कि उत्पादक लगभग एक से आकार एव प्रतिष्ठा वाले हैं और लगभग एक सी वस्तुएँ
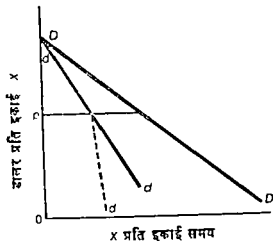
चित्र 7-3 फर्म के समक्ष मांग-वक्र—अल्पाधिकार

उत्पन्न करते हैं। चित्र 7–3 मे बाजार मांग-वक्र DD है। यदि प्रत्येक उत्पादक यह जानता है कि दूसरा उत्पादक उसके कीमत परिवर्तनो के अनुसार ही अपने परिवर्तन करेगा तो किसी भी दी हुई कीमत पर प्रत्येक लगभग आधा बाजार प्राप्त करने की आशा कर सकता है। प्रत्येक के समक्ष अपनी उत्पत्ति के लिए काफी निश्चित मांग-वक्र dd होगा और यह वक्र DD एव कीमत-अक्ष के बीच मे लगभग आधी दूर पर होगा।

अब मान लीजिए कि एक उत्पादक ऊपरवर्णित विधि से व्यवहार नही करता। प्रारम्भिक कीमत के p होने पर, कल्पना कीजिए जब फर्म A कीमत कम करती है तो फर्म B उससे भी अधिक मात्रा मे कीमत कम करती है। फर्म B फर्म A के ग्राहको का कुछ अश अपनी तरफ ले लेगी। इससे फर्म A के समक्ष मांग वक्र रेखा dd नही रह जायेगी, बल्कि यह खण्डित रेखा d^1 जैसा कुछ मार्ग ग्रहण कर लेगी। फर्म A अपनी कीमत कम करने पर स्वय के बाजार का कुछ अश खो देगी क्योकि इसका प्रतियोगी उससे भी अधिक कीमत कम करके अपनी प्रतिक्रिया दिखलायेगा। लेकिन व्यवहार मे फर्म A इसको यो ही नही सहन कर लेगी। यह पुन B की कीमत से भी कम कीमत लेना प्रारम्भ कर सकती है और यह स्थिति कीमत-सघर्ष (price war) मे बदल सकती है जो एक अनिर्धारित या अनिर्णीत स्थिति (indeterminate situation) होगी।

मान लीजिये एक दिये हुए अल्पाधिकारी उद्योग मे उत्पादक एक कार्टेल बना लेते हैं। कार्टेल व्यवस्था के अन्तर्गत एक उद्योग की फर्में एक इकाई के रूप में कार्य करती हैं, प्रत्येक का कीमत, उत्पत्ति और उद्योग-सम्बन्धी अन्य नीतियों के निर्धारण मे थोड़ा हाथ अवश्य होता है। जब समस्त फर्में एक इकाई के रूप मे कार्य करती हैं तो एक फर्म विभिन्न कीमतों पर कितना माल बेच सकती है यह प्रश्न निरर्थक हो जाता है। कार्टेल का सम्बन्ध तो इस बात मे होता है कि सम्पूर्ण उद्योग विभिन्न सम्भावित कीमतों पर कितना माल बेच सकता है। इस प्रकार कार्टेल भी लगभग उसी स्थिति म होता है जिसम एक शुद्ध एकाधिकारी होता है और उसके समक्ष बाजार का माँग-वक्र होता है। एक अकेली फर्म से सम्बन्धित माँग-वक्र पर कोई ध्यान नही दिया जाता।

ये दृष्टान्त एक अल्पाधिकारी के समक्ष पाई जाने वाली सम्भावित माँग की स्थितियो का एक छोटा-सा नमूना प्रस्तुत करते हैं। अतिरिक्त दृष्टान्त अध्याय 12 मे प्रस्तुत किये जायेंगे। यहाँ पर हमारा लक्ष्य यह बतलाना है कि जब एक विक्रेता के समक्ष पाया जाने वाला माँग-वक्र निश्चित (determinate) होता है तो इसकी स्थिति और शक्ल उसकी तरफ से किये गये कीमतों परिवर्तनो के फलस्वरूप प्रतियोगियों की प्रतिक्रियाओं पर निर्भर करेंगे।

फर्म का माँग, कीमत और उत्पत्ति पर प्रभाव

सामान्यतया एक अल्पाधिकारी कुछ अश मे अपने समक्ष होने वाले माँग-वक्र, अपनी कीमत व अपनी उत्पत्ति को प्रभावित करने मे समर्थ होता है। बिक्री बढ़ाने के प्रयत्नों के जरिए वह अपने माल के माँग-वक्र को दाहिनी ओर खिसकाने मे समर्थ हो सकता है—अर्थात तो वह इस किस्म की वस्तु के लिए उपभोक्ता की माँग मे वृद्धि करता है, लेकिन बहुधा वह उपभोक्ताओं को अपने प्रतियोगियों को छोड़ देने और उसका ब्राड खरीदने के लिए प्रेरित करता है। वह यह परिणाम विज्ञापन के जरिए अथवा डिजाइन व किस्म के परिवर्तनो के जरिये प्राप्त करने मे समर्थ हो सकता है बशर्ते कि ऐसे परिवर्तनों से उपभोक्ता उसके ब्राड के प्रति अधिक आकर्षित हो जाएँ। प्रतियोगी भी ऐसी दशाओं मे बैठे नही रहेंगे और अपने प्रचार प्रचार व आन्दोलन के जरिए बदला ले सकने हैं। सबसे अधिक सफल प्रचार व आन्दोलन करने वाली फर्में वे होंगी जो अपने ब्राड की माँग को बढाने मे सफल होंगी।

फर्म के समक्ष एक निश्चित माँग-वक्र हो अथवा न हो, वह यह अवश्य जानती है कि सामान्यतः इसका माँग-वक्र दायीं ओर नीचे की तरफ झुकेगा। जब तक बिक्री माँग वक्र के दायीं ओर गिसकने से न बढ़े तब तक बिक्री बढाने के लिए इसे साधारणतः कीमत कम करनी होगी। यदि ऊँची कीमतें माँग की वृद्धि के जरिये

अथवा इसके साथ प्राप्त नही की जाती तो ये बिक्री मे कमी करके ही प्राप्त की जा सकती हैं। सामान्यतया एक अल्पाधिकारी के समक्ष जो मांग-वक्र होता है वह काफी
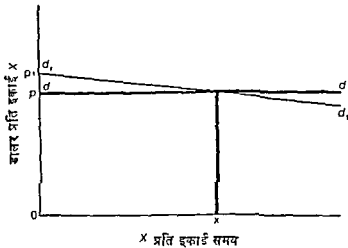
चित्र 7-4 फर्म के समक्ष मांग-वक्र—एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता

लोचदार होता है, क्योकि उद्योग मे अन्य फर्मो के द्वारा उत्पादित उत्तम स्थानापन्न पदार्थ पाये जाते है। लेकिन माँग की लोच व मांग-वक्र की स्थिति एक अकेले विक्रेता के कीमत व उत्पत्ति परिवर्तनो के प्रति होने वाली प्रतिद्वन्द्वियो की प्रतिक्रियाओ पर निर्भर करते है।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति है जिसमे वस्तु विशेष के अनेक विक्रेता होते है, लेकिन प्रत्येक विक्रेता की वस्तु किसी भी अन्य विक्रेता की वस्तु से उपभोक्ता के मस्तिष्क मे किसी-न किसी प्रकार से भिन्न (differentiated) होती है। शुद्ध प्रतियोगिता की भांति यहाँ भी काफी विक्रेता होते हैं और प्रत्येक विक्रेता सम्पूर्ण बाजार की तुलना मे इतना छोटा होता है कि एक की क्रियाओ का दूसरो पर कोई प्रभाव नही पडता। फर्मो मे आपसी सम्बन्ध अवैयक्तिक (impersonal) होते हैं। वस्तु-भेद (product differentiation) ब्रांड के नाम, ट्रेड-मार्क, गुण भेद, अथवा उपभोक्ताओ को प्रदान की जाने वाली सुविधाओ या सेवाओ के अन्तरो के रूप मे हो सकते हैं। वस्तुएँ एक दूसरे की उत्तम स्थानापन्न होती हैं–उनकी तिरछी लोचें (cross elasticities) ऊँची होती हैं। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के समीप पहुँचने वाले उद्योगो के उदाहरणो के रूप मे हम स्त्रियो के

लिए होजियरी (मोजे-बनियान वगैर) उद्योग, विभिन्न किस्म के वस्त्र एव बडे शहरो के सेवा-सम्बन्धी व्यवसायो को शामिल कर सकते हैं।

माँग-वक्र

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म के समक्ष पाये जाने वाले माँग-वक्र की आकृति वस्तु भेद से जन्म लेती है। वस्तु-भेद का प्रभाव आसानी से जानने के लिए हम शुरू मे इसे अनुपस्थित मानकर चलना होगा। इस मान्यता को स्वीकार करने पर हमारे समक्ष शुद्ध प्रतियोगिता की स्थिति और चित्र 7-4 जैसा क्षैतिज माँग-वक्र dd आता है। अब हम वस्तु-भेद के विचार का समावेश करके यह देखेंगे कि इसका dd पर क्या प्रभाव पडेगा। जब वस्तुओ मे अन्तर होता है तो उपभोक्ता प्राय विशिष्ट ब्राड-नामो से बध हो जाते हैं। X वस्तु की किसी भी दी हुई कीमत पर कुछ उपभोक्ता अन्य ब्राडो पर जाने की तैयारी मे होते हैं जबकि दूसरे उसी कीमत पर विभिन्न अशो मे दृढता से X के चिपटे रहते हैं।

मान लीजिए एक एकाधिरात्मक प्रतियोगी के लिए p कीमत पर x मात्रा ली जाती है। यदि यह फर्म अपनी कीमत बढा देती है तो जो उपभोक्ता दूसरे ब्राडो पर जाने को उद्यत थे वे उन पर चले जाते हैं, क्योकि अन्य ब्राडो की कीमत अब अपेक्षाकृत नीची होती है। फर्म अपनी कीमत जितनी ज्यादा बढाती है उतने ही अधिक ग्राहक अपेक्षाकृत नीची कीमत वाले ब्राडो की तरफ चले जाते हैं। चूँकि अन्य ब्राड प्राय विचाराधीन फर्म के माल के काफी उत्तम स्थानापन्न होते हैं, इसलिए सभी ग्राहक खो देने के लिए इस फर्म को कीमत मे वृद्धि (pp_1) ज्यादा मात्रा मे नही करनी होगी। p से ऊपर की कीमत-वृद्धि के लिए फर्म के समक्ष माग-वक्र रेखा एक हल्की रेखा होगी। इसी तरह यदि फर्म अपनी कीमत घटाकर p से नीची कर देती है, तो यह अन्य विक्रेताओ के सीमान्त ग्राहक आकर्षित कर सकेगी क्योकि अब इसकी कीमत अन्य फर्मो की कीमतो की तुलना से नीची हो जाएगी। इसे अपनी क्षमता के अनुरूप समस्त अतिरिक्त ग्राहक आकर्षित करने के लिए कीमत ज्यादा नही घटानी पडेगी। जैसे p से नीची वाली कीमत की कमियो के लिए रेखाचित्र मे हल्की रेखा एक फर्म के समक्ष पाई जाने वाली माँग की रेखा को सूचित करती है। एक एकाधिकारात्मक प्रतियोगी के समक्ष सम्पूर्ण माँग-वक्र d_1d_1 जैसा होता है।

वैसे तो यह प्रतीत होता है कि जब एक फर्म कीमत मे कमी करके उद्योग मे अन्य फर्मो के ग्राहक अपनी तरफ आकर्षित करती है तो अल्पाधिकार की भाँति अन्य फर्मे किसी-न-किसी प्रकार की बदले की भावना दिखलायेंगी। लेकिन ऐसा नही होगा क्योकि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता वाले उद्योग मे अनेक फर्मे पाई जाती हैं। कीमत घटाने वाली फर्म अन्य फर्मो मे से प्रत्येक के इतने कम ग्राहक आकर्षित करेगी

कि अन्य फर्में उस हानि पर ध्यान नही देंगी अथवा उसे महसूस ही नही करेंगी। लेकिन स्वय एक फर्म के लिए तो ग्राहको की सख्या मे कुल वृद्धि बहुत अधिक हो जायगी।

इसी तरह ऐसा लग सकता है कि एक फर्म के द्वारा कीमत की वृद्धि से जो ग्राहक इससे हट जाते हैं उससे अन्य फर्मों के माल की मांग बढ जाएगी। लेकिन अन्य फर्मों की तरफ जाने वाले ग्राहक उन फर्मों मे विस्तृत रूप से बिखर जायेंगे। किसी भी एक अकेली फर्म के पास इतने ग्राहक नही चले जायेंगे कि उसके माल की मांग म कोई उल्लेखनीय वृद्धि हो जाय, हालाकि कीमत बढाने वाली फम स्वय तो काफी ग्राहक खो बैठेगी।

फर्म का माग, कीमत व उत्पत्ति पर प्रभाव

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के उद्योग की दशाओ के अन्तर्गत एक व्यक्तिगत फर्म अपने माल की माग को विज्ञापन के जरिए कुछ अश तक प्रभावित कर सकती है। लेकिन अनेक उत्तम स्थानापन्न पदार्थों के पाए जाने के कारण इस दिशा मे अधिक सफलता नही मिल सकेगी।

फर्म पर काफी प्रतियोगी शक्तियो का प्रभाव पडता हैं, लेकिन कुछ अश मे यह एक तरह की एकाधिकारी भी होती है क्योकि कीमत व उत्पत्ति के निर्धारण मे इसका कुछ हाथ अवश्य होता है। लेकिन यदि फर्म अपनी कीमत बहुत ज्यादा बढा देती है तो यह अपने सारे ग्राहक खो बैठती है और अपनी क्षमता के अनुरूप सारे ग्राहक प्राप्त करने के लिए इसे अपनी कीमत बहुत ज्यादा घटाने की आवश्यकता नही होती। उस सीमित कीमत के दायरे मे फर्म को कीमत निर्धारित करने का अवसर मिलता है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के समक्ष जो माँग-वक्र होता है वह सम्बन्धित दायरे (relevant range) मे सारी दूर तक काफी लोचदार होता है। इसके कारण का पता लगाना कठिन नही है। उद्योग मे समस्त फर्मों की वस्तुएँ यद्यपि एक-दूसरे से भिन्न होती है, फिर भी एक-दूसरे की बहुत उत्तम स्थानापन्न होती हैं।

साराश

एक व्यक्तिगत व्यावसायिक फर्म के समक्ष पाई जाने वाली माँग की स्थिति का विश्लेषण बाज़ार के चार वर्गीकरणो के इर्द-गिर्द किया जाता है। एक व्यक्तिगत फर्म के समक्ष पाई जाने वाली माँग की दशाएँ विभिन्न वर्गीकरणो के लिए भिन्न भिन्न होती हैं। ये अन्तर दो स्रोतो से उत्पन्न होते है (1) उस बाज़ार मे व्यक्तिगत फर्म का महत्त्व जिसमे यह अपना माल बेचती है, और (2) वस्तु-भेद अथवा वस्तु-समरूपता।

शुद्ध प्रतियोगिता वर्गीकरण के एक छोर पर है और शुद्ध एकाधिकार दूसरे छोर पर। शुद्ध प्रतियोगी फर्में समरूप वस्तुएँ बेचती हैं और प्रत्येक फर्म सम्पूर्ण बाजार की तुलना म इतनी छोटी होती है कि यह अकेली बाजार-कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती। अत एक फर्म के समक्ष जो माग-वक्र होता है वह सन्तुलन बाजार-कीमत पर क्षैतिज होता है। एक एकाधिकारी ऐसी वस्तु का अकेला विक्रेता होता है जिसका किसी दूसरी वस्तु से निकट का सम्बन्ध नही होता। उसके समक्ष उसकी वस्तु के लिए बाजार मांग-वक्र होता है।

अल्पाधिकार एव एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता इन दोनो परिसीमाओं के बीच रिक्त स्थान को भरती है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता शुद्ध प्रतियोगिता से एक अर्थ म ही भिन्न होती है, और वह यह है कि विभिन्न विक्रेताओं की वस्तुएँ भिन्न भिन्न होती हैं। इसस एकाधिकारी प्रतियोगी का अपनी कीमत पर कुछ मात्रा म नियन्त्रण स्थापित करने का अवसर मिल जाता है, लेकिन प्रत्येक फर्म सम्पूर्ण बाजार की तुलना में इतनी छोटी होती है कि यह अकेली उद्योग में अन्य फर्मों को प्रभावित नहीं कर सकती। इसके सम्मुख नीचे की ओर झुकने वाला काफी लोचदार मांग वक्र होता है।

जहाँ तक उद्योग म फर्मों की सख्या का सम्बन्ध है अल्पाधिकार एक तरफ शुद्ध प्रतियोगिता एव एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता और दूसरी तरफ शुद्ध एकाधिकार की परिसीमाओं (extremes) के बीच में होता है। इसका प्रमुख लक्षण यह है कि उद्योग में इतनी थोड़ी सख्या म फर्में होती हैं कि एक फर्म की क्रियाओं का दूसरी फर्मों की कीमत व बिक्री पर प्रभाव पड़ता है। अत अल्पाधिकार के अन्तर्गत स्पर्धा पनपती है। एक अकेले विक्रेता के समक्ष पाया जाने वाला मांग-वक्र इस बात पर निर्भर करेगा कि उसकी बाजार-सम्बन्धी क्रियाओं की प्रतियोगियो पर क्या प्रतिक्रियाएँ होंगी। यदि प्रतियोगियों की प्रतिक्रियाएँ नहीं बतलाई जा सकतीं, तो एक फर्म के समक्ष पाया जाने वाला मांग-वक्र भी निश्चित नहीं किया जा सकता।

अध्ययन-सामग्री

Fellner, William, *Modern Economic Analysis* (New York : Mc-Graw Hill, Inc , 1960), Chap 17

Machlup, Fritz, "*Monopoly and Competition . A Classification of Market Positions*," American Economic Review, vol XXVII (September 1937), pp 445–451.

□ □ □

अध्याय 8

उत्पादन के सिद्धान्त

लागत, पूर्ति-वक्र, साधनों का कीमत-निर्धारण व रोजगार, साधन-आवंटन और अर्थव्यवस्था में वस्तु की उत्पत्ति के वितरण को समझने के लिए पहले उत्पादन के सिद्धान्तों को समझना चाहिए। उपभोक्ता के व्यवहार के सिद्धान्त की भाँति उत्पादन का सिद्धान्त भी मूलतया विकल्पों के बीच चुनाव का सिद्धात होता है। यहाँ आधारभूत आर्थिक इकाई व्यक्तिगत उपभोक्ता की बजाय एक व्यक्तिगत फर्म होती है। एक वैयक्तिक उपभोक्ता तो अपनी सन्तुष्टि को उस विधि से अधिकतम करने का प्रयास करता है जिसके द्वारा वह उपभोग्य वस्तुओं पर अपनी आय को व्यय करता है, जब कि एक वैयक्तिक फर्म एक दिये हुए लागत परिव्यय (cost ontlay) से वस्तु की जो उत्पत्ति प्राप्त कर सकती हैं उसे उस विधि से अधिकतम करने का प्रयास करती है जिसके द्वारा यह साधनों की इकाइयाँ प्राप्त करती है और इनका सम्मिश्रण करती है। दोनों सिद्धान्तो में मूलभूत अंतर यह है कि उपभोक्ता की क्रय-शक्ति लगभग स्थिर रहती है, जबकि फर्म के लिए सम्भावित परिव्यय की राशियाँ परिवर्तनशील होती हैं। इस अन्तर का इस अध्याय में तो विशेष महत्त्व नहीं होगा, लेकिन यह आगे चलकर महत्त्वपूर्ण हो जायगा।

इस अध्याय में पहले फर्म का उत्पादन-फलन समझाया जायगा, और तत्पश्चात् ह्रासमान प्रतिफल नियम (the law of diminishing returns) पर विचार किया जायगा। अन्त में साधनो के उत्पत्ति वक्रों व विभिन्न साधन-संयोगो की कार्य-कुशलताओं का विश्लेषण किया जायगा।

उत्पादन-फलन (The Production Function)

अवधारणा

उत्पादन-फलन शब्द उस भौतिक सम्बन्ध के लिए प्रयुक्त किया जाता है जो एक फर्म के साधनो की लगायी जाने वाली इकाइयों (inputs) और प्रति इकाई समयानुसार प्राप्त वस्तुओ अथवा सेवाओं की उत्पत्ति (output) के बीच पाया जाता है।

इसके लिए कीमतो को अलग रखा जाता है। सामान्यत गणितीय रूप मे यह इस प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है

$$X=f(a,b,c)$$

फर्म की उत्पत्ति X से सूचित की जाती है और आगतें (इन्पुट) a, b और c से सूचित की जाती हैं। इस समीकरण का विस्तार उन अनक भिन्न भिन्न साधनों को शामिल करने के लिए सुगमतापूर्वक किया जा सकता है जो एक दी हुई वस्तु के उत्पादन मे प्रयुक्त किये जाते हैं। यह साधनो की इकाइयो या वस्तु की उत्पत्ति से सम्बन्ध स्थापित करने का एक सुगम तरीका प्रस्तुत करता है।

फर्में प्राय उन अनुपातो को बदल सकती हैं जिनमें साधन उत्पादन की प्रक्रियाओ मे मिलाये जाते हैं, और यह लचीलापन आगतो (inputs) के बीच, आगतो व निर्गतो (inputs and outputs) के बीच और निर्गतो (outputs) के बीच कई प्रकार के सम्बन्ध उत्पन्न करता है। जब एक वस्तु के उत्पादन मे साधन परस्पर प्रतिस्थापित किये जा सकते हैं तो वस्तु की दी हुई मात्रा को उत्पन्न करने के लिए साधनो की मात्राओ के वैकल्पिक सयोग कई होंगे और फर्म को इनके बीच चुनाव करना पडता है। प्रयुक्त किये जाने वाले समस्त साधनो की मात्राओ मे वृद्धि या कमी करके फर्म अपने उत्पादन का स्तर बढा या घटा सकती है। अन्य साधनो की मात्राओ को स्थिर रखकर प्रयुक्त किये जाने वाले एक या अधिक साधनों की मात्राओ मे वृद्धि करके या कमी करके कुछ सीमाओ तक यह उत्पत्ति मे वृद्धि या कमी कर सकती है। और, उपलब्ध साधनों के समूह सहित, एक फर्म जो एक से अधिक माल की उत्पत्ति करती है, एक वस्तु की उत्पत्ति का स्तर कम करके दूसरी की उत्पत्ति का स्तर बढ़ा सकती है। इसके लिए वह खाली होने वाले साधनो का अन्तरण प्रथम वस्तु के उत्पादन मे कर देती है।

विभिन्न आगतों (input-input) के बीच, आगत-निर्गत (input-output) के बीच और विभिन्न निर्गतो (output-output) के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध जो एक फर्म के उत्पादन-फलन को सूचित करते हैं, वे काम मे ली जाने वाली उत्पादन की तकनीकों पर निर्भर करते हैं। उपलब्ध तकनीकों की परिधि मे मे हम मान लेते हैं कि फर्म उनका प्रयोग करेगी जो सबसे ज्यादा कार्यकुशल हैं, अर्थात् जो आगत (input) के दिए हुए मूल्य के लिए अधिकतम मूल्य की उत्पत्ति देंगी। जैसा ज्ञात था, तकनीकों मे सुधार होने से साधनों की दी हुई मात्राओ की सहायता से उत्पादित माल की मात्रा मे वृद्धि होगी।

उत्पादन-तल (The Production Surface)

कई तरह से एक फर्म का उत्पादन-फलन एक वैयक्तिक उपभोक्ता के अधिमान

फलन या उपयोगिता फलन के सदृश ही होता है, हालांकि दोनों में भ्रम न पैदा हो इसके लिए आवश्यक सावधानी बरतनी होगी। एक फर्म साधनों की इकाइयों का उपयोग करके वस्तु या सेवा की मात्राएँ उत्पन्न करती है। बहुधा ये मात्राएँ गणनावाचक (cardinal) किस्म की होती हैं, अर्थात् वस्तु की उत्पत्ति मापी जा सकती है, जोड़ी जा सकती है और, अधिकांश मामलों में, देखी जा सकती है। एक वैयक्तिक उपभोक्ता वस्तुओं व सेवाओं को खरीदता है और उनका उपयोग करके एक अधिक अस्पष्ट किस्म की उत्पत्ति का सृजन करता है जिसे सन्तुष्टि या उपयोगिता कहते हैं।
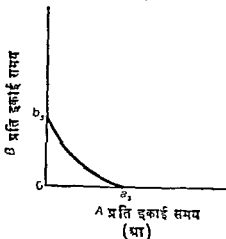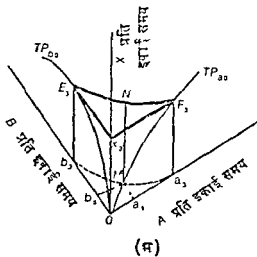
चित्र 8–1 एक उत्पादन-तल और एक समोत्पत्ति वक्र (A Production Surface and an Isoquant)

अब मान लीजिए कि एक फर्म दो साधनों—A और B—का उपयोग करके X-वस्तु का उत्पादन करती है। चित्र 8–1 (अ) के तीन आयाम वाले रेखाचित्र में क्षैतिज AB धरातल में निर्देशांक (coordinates) साधन-संयोगों (input combinations) को सूचित करते हैं। प्रत्येक साधन-संयोग से सम्बन्धित वस्तु की उत्पत्ति धरातल से ऊपर लम्बवत् रूप में मापी गई है।

यदि साधन A काम में नहीं लिया जाता तो प्रयुक्त साधन B की मात्रा में परिवर्तन करके कुल उत्पत्ति वक्र TP_{b0} का निर्माण होगा। केवल B की b_3 मात्रा के साथ b_3E_3 $(=OX_3)$ उत्पत्ति होगी। इसी प्रकार यदि साधन B काम में नहीं लिया जाता तो प्रयुक्त साधन A की मात्रा में परिवर्तन करके TP_{a0} का निर्माण होगा। A की a_3 मात्रा के साथ $a_3F_3(=OX_3)$ उत्पत्ति का सृजन होगा। B के b_1 व A के a_1 संयोग से MN उत्पत्ति प्राप्त होगी। साधन-संयोगों की सम्पूर्ण परिधि एक उल्टे प्याले की आकृति का उत्पादन-तल बनायेगी जो प्रत्येक सम्भव साधन-संयोग से सम्बन्धित उत्पत्ति को प्रदर्शित करेगी।

समोत्पत्ति वक्र (Isoquants)

चित्र 8–1 (अ) में उत्पत्ति के प्रत्येक सम्भव स्तर पर उत्पादन-तल के चारों तरफ कन्टूर रेखाएँ खींची जा सकती हैं। एक दी हुई कन्टूर रेखा पर सभी बिन्दु AB धरातल (plane) से समान दूरी पर हैं, अर्थात् कोई भी कन्टूर रेखा उत्पादन का एक स्थिर या दिया हुआ स्तर सूचित करती है। ये कन्टूर रेखाएँ नीचे AB धरातल पर प्रक्षिप्त (गिराई) की जा सकती हैं और ये समोत्पत्ति वक्रों या उत्पत्ति तटस्थता वक्रों (product indifference curves) का एक समूह (set) बनाती हैं। चित्र 8–1 में कोई भी एक समोत्पत्ति वक्र, जैसे b_3a_3, A और B के उन विभिन्न संयोगों को दर्शाता है जिनकी सहायता से फर्म X_3 उत्पत्ति प्राप्त कर सकती है। यदि उत्पादन-तल (production surface) एक उल्टे प्याले की आकृति का होता है तो ऊँची कन्टूर रेखाएँ AB धरातल पर गिराये जाने पर समोत्पत्ति वक्र बनाती हैं जो रेखाचित्र में मूलबिन्दु से दूर होते हैं। एक फर्म के लिए समोत्पत्ति वक्रों का सम्पूर्ण समूह इसका समोत्पत्ति मानचित्र (isoquant map) कहलाता है।[1]

---

1. $X=f(a, b)$ उत्पादन-फलन है
X का कोई मूल्य देने से एक दिया हुआ समोत्पत्ति वक्र परिभाषित हो जाता है, उदाहरण के लिए,
$$X_3=f(a, b)$$
X को विभिन्न मूल्य देकर कई समोत्पत्ति वक्र प्राप्त किये जा सकते हैं जिनसे समोत्पत्ति मानचित्र बनता है।

समोत्पत्ति वक्र के लक्षण—समोत्पत्ति वक्रो के सामान्य लक्षण वे ही हैं जो तटस्थता वक्रो के हैं। सर्वप्रथम, वे साधनो के उन सयोगो के लिए दायी ग्रोर नीचे झुकते हैं जिन्हे फर्म प्रयुक्त करना चाहती है। द्वितीय, वे एक दूसरे को काटते नही है। तृतीय, वे रेखाचित्र के मूलबिन्दु के उन्नतोदर (convex) होते है।

समोत्पत्ति वक्र उन साधनो के लिए दायी ग्रोर नीचे झुकते हैं जो उत्पादन की प्रक्रिया मे एक दूसरे के लिए प्रतिस्थापित किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, प्रयुक्त किए जाने वाले पूंजी-साधनो व श्रम-साधनो के बीच प्राय प्रतिस्थापन की सम्भावनाएँ पाई जाती है। यदि एक की कम मात्रा प्रयुक्त होती है तो इसकी कमी की पूर्ति के लिए दूसरे की अधिक मात्रा प्रयुक्त की जानी चाहिए ताकि उत्पत्ति का स्तर स्थिर रह सके। जहाँ उत्पादन की प्रक्रियाग्रो मे साधन परस्पर प्रतिस्थापित नही हो सकते वहाँ अपवाद होगे।[2] नीरोगित वस्तु (pasteurized product) के उत्पादन मे इन्पुट (आगत) के रूप मे दूध के लिए कोई स्थानापन्न पदार्थ नही होते। अन्य दशाग्रो मे, अल्पकाल मे एक साधन के स्थिर अनुपातो की आवश्यकता हो सकती है।

समोत्पत्ति वक्रो के कटान के पीछे कोई तार्किक आर्थिक व्याख्या नही है। कटान के बिन्दु का आशय यह होगा कि साधनो का कोई भी अकेला सयोग उत्पत्ति की दो भिन्न-भिन्न अधिकतम मात्राग्रो का उत्पादन कर सकता है जिसका तात्पर्य होगा कि प्रयुक्त किए जाने वाले किसी भी साधन की मात्रा मे वृद्धि किए बिना उत्पत्ति मे वृद्धि की जा सकती है। कटान बिन्दु के दायी ग्रोर का तात्पर्य यह होगा कि प्रयुक्त किए जाने वाले सभी साधनो की मात्राग्रो मे कमी करके वस्तु की उत्पत्ति बढाई जा सकती है। इस प्रकार समोत्पत्ति वक्रो के कटान आर्थिक दृष्टि से नासमझीपूर्ण या निरर्थक ही माने जाएँगे।

मूलबिन्दु के प्रति उन्नतोदरता (convexity) इस तथ्य को दर्शाती है कि विभिन्न साधन एक दूसरे के स्थानापन्न तो हो सकते हैं, लेकिन वे सामान्यतया पूर्ण स्थानापन्न नही होते। एक विशेष लम्बाई, चौडाई व गहराई की खाई खोदने मे प्रयुक्त श्रम व पूंजी पर विचार कीजिए। कुछ सीमा तक ये परस्पर प्रतिस्थापित हो सकते हैं। लेकिन खाई खोदने मे श्रम की जितनी अधिक व पूंजी की जितनी कम मात्रा का उपयोग किया जाएगा, पूंजी के लिए अतिरिक्त श्रम को बदल लेना उतना ही कठिन हो जाएगा। श्रम की अतिरिक्त इकाइयाँ छोडी गई पूंजी की उत्तरोत्तर कम मात्राग्रो की ही क्षति पूर्ति कर सकेंगी। यही तर्क अन्य साधनो पर भी लागू होता है।

---

2 अपवादो के विवेचन के लिए देखिए सिडनी वाइनट्रॉब **Intermediate Price Theory** (फिलाडेल्फिया : चिल्टन कम्पनी, बुक डिविजन, *1964*), पृ० *34*, *40–42*.

X वस्तु की स्थिर मात्रा का उत्पादन करने के लिए एक फर्म A साधन की जितनी अधिक मात्रा व B साधन की जितनी कम मात्रा का उपयोग करती है, B के लिए A की अतिरिक्त इकाइयों को प्रतिस्थापित करना उतना ही अधिक जटिल काम हो जाता है, अर्थात् A की अतिरिक्त इकाइयाँ त्यागी गई B की उत्तरोत्तर कम मात्राओं की ही क्षतिपूर्ति कर पाएँगी। यह सिद्धान्त <u>B</u> के लिए <u>A</u> के तक्नीकी प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर (**diminishing marginal rate of technical substitution**) ($MRTS_{ab}$) का सिद्धान्त कहलाता है। समोत्पत्ति वक्र के किसी भी बिन्दु पर $MRTS_{ab}$ उस बिन्दु पर समोत्पत्ति वक्र के ढाल (slope) से मापा जाता है। यह B की त्यागी गई वह मात्रा है जिसकी क्षतिपूर्ति उस बिन्दु पर A की एक अतिरिक्त इकाई से हो जाएगी।
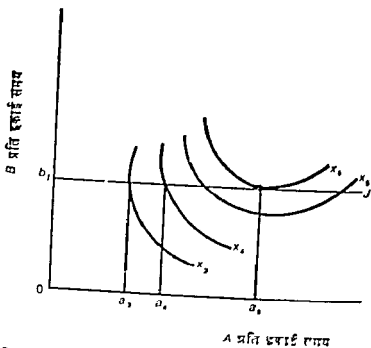
चित्र 8–2 एक साधन की मात्रा के परिवर्तनों से कुल उत्पत्ति पर प्रभाव

उत्पत्ति-वक्र (Product Curves)

फर्म की समोत्पत्ति वक्र प्रणाली से साधन A या साधन B के लिए उत्पत्ति प्रवृत्तियाँ और उत्पत्ति वक्र निकाले जा सकते हैं। चित्र 8–2 के सन्दर्भ में हम मान लेते हैं कि फर्म प्रति इकाई समयानुसार B की b_1 स्थिर मात्रा के साथ A की

वैकल्पिक मात्राओ के उपयोग पर विचार करती है। b_1 J रेखा पर दायी ओर चलने से A की अधिक मात्राओं का उपयोग दर्शाया जाता है। प्रत्येक समोत्पत्ति वक्र b_1 J रेखा के कटान पर A की प्रत्येक मात्रा के लिए उत्पत्ति को दर्शाता है। जैसे B की b_1 मात्रा के साथ A की a_4 मात्रा प्रयुक्त की जाती है तो कुल उत्पत्ति X_4 होगी। A की जितनी अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाता है, कुल उत्पत्ति भी उतनी ही अधिक होगी है और ऐसा उस समय तक होता है जब फर्म साधन की a_6 मात्रा प्रयोग करने लग जाती है। A की अधिक मात्राओ के साथ b_1 J रेखा उत्तरोत्तर नीचे समोत्पत्ति वक्रो को काटने लगती है जिससे यह प्रकट होता है कि कुल उत्पत्ति घटती है। इसलिए यदि A मुफ्त भी मिले तो भी B की b_1 मात्रा के साथ A की a_6 से ज्यादा मात्रा कभी भी प्रयुक्त नही की जाएगी। B की स्थिर मात्रा के साथ प्रयुक्त की जाने वाली A की उत्तरोत्तर अधिक मात्राओ के लिए कुल उत्पत्ति वक्र बढता है, A की a_6 मात्रा पर अधिकतम हो जाता है और तत्पश्चात् घटता है। यह वक्र चित्र 8-3 में दर्शाया गया है।
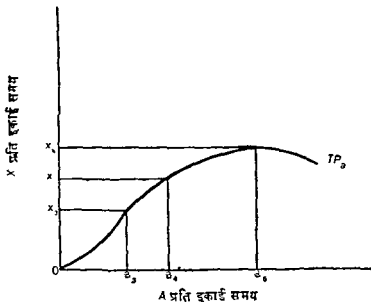
(B की b_1 मात्रा के साथ प्रयुक्त)

चित्र 8-3 एक साधन के लिए कुल उत्पत्ति वक्र

एक साधन के लिए औसत उत्पत्ति और सीमान्त भौतिक उत्पत्ति अनुसूचियाँ या वक्र इसकी कुल उत्पत्ति अनुसूची या वक्र से निकाले जाते हैं। मान जीजिए

एक फर्म पूंजी की एक इकाई के साथ प्रति इकाई समयानुसार श्रम की विभिन्न मात्राओं के उपयोग से कुल उत्पत्ति की मात्रा को निर्धारित करने के लिए यह प्रयोग करती है। इसके परिणाम सारणी 8–1 के कॉलम (3) म श्रम की कुल उत्पत्ति के रूप म प्रस्तुत किए गए हैं। जैसे-जैसे श्रम की मात्रा 7 इकाइयों तक बढाई जाती है, उत्पत्ति बढती है। श्रम की 7 व 8 इकाइयो पर पूंजी की एक इकाई से उत्पन्न की जाने वाली अधिकतम कुल उत्पत्ति प्राप्त की जाती है।

सारणी 8–1 श्रम की उत्पत्ति अनुसूचियाँ

(1) पूंजी	(2) श्रम	(3) कुल उत्पत्ति (श्रम)	(4) औसत उत्पत्ति (श्रम)	(5) सीमान्त भौतिक उत्पत्ति (श्रम)	
1	1	3	3	3	अवस्था I
1	2	7	$3\frac{1}{2}$	4	
1	3	12	4	5	
1	4	16	4	4	अवस्था II
1	5	19	$3\frac{4}{5}$	3	
1	6	21	$3\frac{1}{2}$	2	
1	7	22	$3\frac{1}{7}$	1	
1	8	22	$2\frac{3}{4}$	0	अवस्था III
1	9	21	$2\frac{1}{3}$	–1	
1	10	15	$1\frac{1}{2}$	–6	

श्रम की **औसत-उत्पत्ति** (average product) जो कॉलम (2) व (3) से निकाली गई है, रोजगार के प्रत्येक स्तर पर श्रम की कुल उत्पत्ति म श्रम की मात्रा का भाग देकर प्राप्त की गई है। ध्यान रहे कि कॉलम (4) मे श्रम की मात्रा के बढाये जाने पर औसत उत्पत्ति बढती है, पूंजी की एक इकाई के साथ श्रम की 3 और 4 इकाइयो पर यह अधिकतम हो जाती है, और तत्पश्चात् श्रम की मात्रा के और बढाये जाने पर यह घटती है।

पूंजी की मात्रा को स्थिर रख कर, प्रयुक्त किए जाने वाले श्रम की मात्रा मे एक इकाई के परिवर्तन से कुल उत्पत्ति मे जो परिवर्तन होता है वह श्रम की **सीमान्त भौतिक उत्पत्ति** (marginal physical product) कहलाता है। सारणी 8–1 मे श्रम की मात्रा मे 0 से 1 इकाई की वृद्धि से कुल उत्पत्ति 0 से बढ कर 3 हो जाती है, इस प्रकार एक इकाई रोजगार के स्तर पर श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति 3 इकाई होती है। एक की बजाय श्रम की दो इकाइयाँ लगाने से कुल उत्पत्ति बढकर 7 हो जाती है; और 2 इकाई रोजगार के स्तर पर श्रम की सीमात

भौतिक उत्पत्ति 4 इकाई हो जाती है। कॉलम (5) का शेष भाग इसी तरह से बनाया गया है।

कुल, औसत, और सीमान्त उत्पत्ति की धारणाएँ रेखाचित्रीय रूप में चित्र 8–4 में दर्शाई गई है। चित्र 8–4 (अ) का लम्बवत् अक्ष प्रति इकाई पूँजी (उत्पत्ति/पूँजी) के अनुसार उत्पत्ति को मापता है; और क्षैतिज अक्ष प्रति इकाई पूँजी के साथ प्रयुक्त श्रम (श्रम/पूँजी) को मापता है। कुल उत्पत्ति वक्र (TP*l*) सभी प्रकार से चित्र 8–3 के जैसा होता है।[3] जब एक इकाई पूँजी के साथ श्रम की l_1 इकाइयां प्रयुक्त की जाती हैं तो कुल उत्पत्ति अधिकतम हो जाती है। दृष्टांत में प्रति इकाई पूँजी के साथ श्रम की और अधिक इकाइयां काम में लेने से कुल उत्पत्ति घट जाती है।
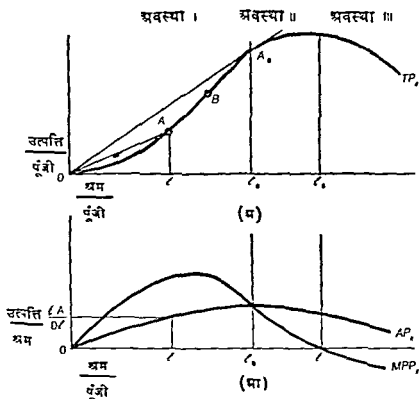
चित्र 8–4 श्रम के उत्पत्ति-वक्र

3 चित्र 8–4 का कुल उत्पत्ति वक्र रेखाचित्र के मूल बिन्दु से प्रारम्भ होता है, लेकिन ऐसा होना आवश्यक नहीं है। जो साधन वस्तु के उत्पादन के लिए पूर्णरूप से आवश्यक नहीं होते उनके लिए यह मूल बिन्दु के ऊपर से भी प्रारम्भ हो सकता है—इस सम्बन्ध में दूध का उत्पादन बढ़ाने

चित्र 8-4 (आ) मे खीचा गया श्रम का औसत उत्पत्ति (AP_l) चित्र 8-4 (अ) के कुल उत्पत्ति वक्र (TP_l) से निकाला गया है। चित्र 8-4 (आ) का लम्बवत् अक्ष प्रति इकाई श्रम की उत्पत्ति को मापता है (उत्पत्ति/श्रम)। क्षैतिज अक्ष वही है जो चित्र 8-4 (अ) म दिया गया है। चूंकि औसत उत्पत्ति कुल उत्पत्ति मे प्रयुक्त श्रम की इकाइयो की सख्या से विभाजित करने से प्राप्त परिणाम के बराबर होती है, इसलिए चित्र 8-4 (अ) मे श्रम की l' इकाइयो की औसत उत्पत्ति $l'A'/Ol'$ होती है जो OA' रेखा के ढाल को मापती है। यह अनुपात चित्र 8-4 (आ) म अकित किया गया है। जब श्रम की मात्रा शून्य से बढाकर l_0 कर दी जाती है तो इसके अनुरूप OA रेखाओ के ढाल बढते है; अर्थात् श्रम की औसत उत्पत्ति बढती है। श्रम की l_0 इकाइयो पर OA_0 रेखा का ढाल कुल उत्पत्ति वक्र के मूलबिन्दु से खीची जाने वाली किसी भी दूसरी OA रेखा के ढाल से अधिक होगा। इस प्रकार श्रम की औसत उत्पत्ति इस बिन्दु पर अधिकतम होती है। श्रम की l_0 इकाइया से परे औसत उत्पत्ति घटती है लेकिन जब तक कुल उत्पत्ति धनात्मक होती है तब तक यह भी धनात्मक ही रहती है। चित्र 8-4 (अ) मे श्रम की विभिन्न मात्राओ के अनुरूप OA रेखाओ के ढाल चित्र 8-4 (आ) मे AP_l वक्र के रूप म अकित किए गए है।

श्रम की किसी भी दी हुई मात्रा पर कुल उत्पत्ति वक्र का ढाल उस बिन्दु पर श्रम की सीमात भौतिक उत्पत्ति को मापता है। TP_l और श्रम की सीमात भौतिक उत्पत्ति (MPP_l) दोनो के ढाल, प्रयुक्त श्रम की मात्रा मे एक इकाई के परिवतन से कुल उत्पत्ति म होने वाले परिवर्तन के रूप मे पारिभाषित किये जाते हैं। सीमात भौतिक उत्पत्ति B बिन्दु पर अधिकतम हो जाती है जहा कुल उत्पत्ति वक्र ऊपर की ओर नतोदर (concave upward) से नीचे की ओर नतोदर (concave downward) हो जाता है। श्रम की l_1 मात्रा पर कुल उत्पत्ति अधिकतम होती है, इसलिए सीमात भौतिक उत्पत्ति शून्य हो जाती है। l_1 से परे श्रम की अतिरिक्त इकाइयाँ लगाने से कुल उत्पत्ति घटने लगती है जिसका अर्थ यह है कि सीमात भौतिक उत्पत्ति ऋणा-

---

के लिए गायो को खिलाए जाने वाले बिनौलो का उदाहरण लिया जा सकता है। अन्य मामलो मे जब तक एक परिवर्तनशील साधन की कई इकाइयाँ अन्य साधनो के एक स्थिर मिश्रण के साथ नही लगाई जाती, तब तक कोई उत्पत्ति प्राप्त नही हो सकती। उदाहरण के लिए, इस्पात की मिल मे एक व्यक्ति कुछ भी उत्पादन नही कर सकता। दो व्यक्ति भी क्या कर सकते हैं। उत्पादन प्रारम्भ कर सकने के लिए श्रम की एक न्यूनतम मात्रा की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति मे श्रम का कुल उत्पत्ति वक्र मूल बिन्दु के दायी ओर से प्रारम्भ होता है।

त्मक हो जाती है।[4] चित्र 8–4 (अ) में श्रम की विभिन्न मात्राओं पर TP_l के ढाल चित्र 8-4 (आ) में MPP_l के रूप में अंकित किये गए हैं।

सीमान भौतिक उत्पत्ति वक्र का ठीक से पता लगाने के लिए हमें अतिरिक्त जानकारी इसके औसत उत्पत्ति वक्र के सम्बन्ध में प्राप्त होती है। जब औसत उत्पत्ति बढ़ती है तो सीमान्त भौतिक उत्पत्ति औसत उत्पत्ति से अधिक होती है। जब औसत उत्पत्ति अधिकतम होती है तो सीमान्त भौतिक उत्पत्ति औसत उत्पत्ति के बराबर होती है। जब औसत उत्पत्ति घटती है तो सीमान्त भौतिक उत्पत्ति औसत उत्पत्ति से कम होती है।[5] इन सम्बन्धों की पुष्टि सारणी 8–1 के कॉलम (4) व (5) की

---

4. गणितीय रूप में, यदि श्रम की कुल उत्पत्ति निम्न से सूचित की जाती है

$$TP_l = X = f(l)$$

तो श्रम की औसत उत्पत्ति यह होगी :

$$AP_l = \frac{X}{l} = \frac{f(l)}{l}$$

और श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति यह होगी

$$MPP_l = \frac{dx}{dl} = f'(l)$$

5 इन सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए हम एक कमरे में एक के बाद एक प्रवेश करने वाले आदमियों का उदाहरण लेते हैं। इनमें प्रत्येक आदमी अपने से पहले वाले की तुलना में ज्यादा लम्बा होता है। जब प्रत्येक आदमी प्रवेश करता है तो कमरे में आदमियों की औसत ऊँचाई बढ़ जाती है, लेकिन प्रथम आदमी को छोड़कर, औसत ऊँचाई वर्तमान समय में प्रवेश करने वाले आदमी की तुलना में कम रहेगी। जब प्रत्येक आदमी प्रवेश करता है तो उसकी ऊँचाई सीमान्त ऊँचाई होती है और यह सीमान्त भौतिक उत्पत्ति के सदृश होती है। औसत ऊँचाई औसत उत्पत्ति के सदृश होती है। अतः औसत उत्पत्ति (ऊँचाई) के बढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि सीमान्त भौतिक उत्पत्ति (ऊँचाई) औसत से अधिक हो।

अब मान लीजिए कि अतिरिक्त आदमी प्रवेश करते हैं, प्रत्येक अपने से पूर्व वाले से छोटे कद का होता है और सब अपने प्रवेश से पूर्व की औसत ऊँचाई की तुलना में छोटे होते हैं। ऐसी स्थिति में औसत ऊँचाई घटेगी। लेकिन यह सीमान्त ऊँचाई जितनी नीची नहीं होगी। जब औसत ऊँचाई अधिकतम होती है, तो कहा जा सकता है कि प्रवेश करने वाले अन्तिम आदमी की ऊँचाई औसत ऊँचाई के बराबर रहती है, क्योंकि इसके प्रवेश से औसत ऊँचाई में न तो वृद्धि हुई और न ही गिरावट आई।

गणितीय रूप में, यदि AP_l बढ़ रही है तो

$$\frac{d(AP_l)}{dl} = \frac{d\left(\frac{f(l)}{l}\right)}{dl} > 0$$

सहायता से की जा सकती है।

ह्रासमान प्रतिफल नियम (The Law of Diminishing Returns)

सारणी 8–1 की उत्पत्ति-अनुसूचियाँ व चित्र 8–4 के उत्पत्ति-वक्र सुप्रसिद्ध ह्रासमान प्रतिफल नियम को दर्शाते हैं जो केवल एक साधन की मात्रा के परिवर्तन से फर्म की उत्पत्ति मे होने वाले परिवर्तन की दिशा व दर का वर्णन करता है। यह बतलाता है कि **यदि प्रति इकाई समयानुसार एक साधन की मात्रा मे समान इकाइयों मे वृद्धि की जाती है और अन्य साधनो की मात्राएँ यथास्थिर रखी जाती हैं, तो वस्तु की कुल उत्पत्ति मे वृद्धि होगी; लेकिन एक बिन्दु से परे, प्राप्त उत्पत्ति की वृद्धियाँ उत्तरोत्तर कम होती जाएँगी।**[6] यदि परिवर्तनशील साधन की मात्रा मे बहुत दूर तक वृद्धि की जाती है तो कुल उत्पत्ति एक अधिकतम सीमा पर पहुँच जाएगी, और उसके पश्चात् यह घटने लगेगी। यह नियम इन प्रेक्षणो (observations) के अनुरूप है कि यदि एक ही साधन की बढ़ती हुई मात्राएँ अन्य साधनो की स्थिर मात्राओं के साथ लागू की जाती हैं तो प्राप्त की जाने वाली उत्पत्ति की मात्रा पर सीमाएँ पायी जाती हैं।

यह सम्भव है कि ह्रासमान प्रतिफल नियम अन्य साधनो की स्थिर मात्राओं के साथ प्रयुक्त की जाने वाली परिवर्तनशील साधन की शुरू की कुछ इकाइयो के लिए लागू हो अथवा न हो। ह्रासमान प्रतिफल अथवा कुल उत्पत्ति मे ह्रासमान वृद्धियाँ

अत

$$\frac{l\,f'(l) - f(l)}{l^2} > 0$$

$$f'(l) - \frac{f(l)}{l} > 0$$

और

$$f'(l) > \frac{f(l)}{l};$$

अर्थात् $MPP_l > AP_l$ है। इसी प्रकार, यह भी दर्शाया जा सकता है कि $MPP_l = AP_l$ होने पर AP_l स्थिर रहती है; और $MPP_l < AP_l$ होने पर AP_l घटती है।

6 एक परिवर्तनशील साधन की विभिन्न इकाइयाँ अन्य साधनों की स्थिर मात्राओं के साथ प्रयुक्त होने वाली वैकल्पिक (alternative) मात्राओं को सूचित करती हैं न कि अतिरिक्त इकाइयों के कालक्रमानुसार (chronological) उपयोग को।

ऐसी सभी वृद्धियों के लिए प्रकट हो सकती हैं। ऐसा प्रायः उस समय होता है जबकि बीज, भूमि, श्रम और मशीनरी के एक दिये हुए मिश्रण (complexes) के साथ उर्वरक प्रयुक्त किया जाता है।

लेकिन ह्रासमान प्रतिफल के प्रारम्भ होने से पूर्व परिवर्तनशील साधन की प्रारम्भिक वृद्धियों से वर्द्धमान प्रतिफल की अवस्था भी पाई जा सकती है। यहाँ दृष्टान्त के रूप मे एक दिए हुए आकार की फैक्टरी के सचालन मे प्रयुक्त श्रम को लिया जा सकता है। फैक्टरी के आकार की तुलना मे श्रम की अपेक्षाकृत कम मात्राएँ लगाने से अकार्यकुशलता से काम होता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अनेक किस्म के कार्य करने होते है और एक कार्य से दूसरे कार्य पर जाने मे समय नष्ट होता है। प्रयुक्त श्रम की मात्रा मे समान वृद्धियों (equal increments) से एक सीमा तक कुल उत्पत्ति मे उत्तरोत्तर अधिक वृद्धियाँ देखने को मिलती हैं। सारणी 8–1 मे श्रम की तीन इकाइयों तक और चित्र 8–4 मे श्रम की l_0 इकाइयों तक हम वर्द्धमान प्रतिफल दर्शाते हैं।[7] इन बिन्दुओं से परे प्रयुक्त श्रम की मात्रा मे वृद्धि से ह्रासमान प्रतिफल प्राप्त होते है।

उत्पत्ति-वक्र और कार्यकुशलता

ऊपर जिन उत्पत्ति-वक्रो का वर्णन किया गया है वे इस बात को निर्धारित करने मे मदद देते है कि उत्पादन की प्रक्रिया मे साधनो के विभिन्न सयोग कितने कार्य-कुशल होंगे। प्रारम्भ मे हम मान लेते है कि उत्पादन-फलन रैखिक समरूप (linearly homogeneous) होता है, अथवा **पैमाने के समान प्रतिफल (Constant returns to scale)** मिलते है—अर्थात् प्रयुक्त किए जाने वाले समस्त साधनो की मात्राओं मे एक दिए हुए अनुपात मे परिवर्तन होने से उत्पत्ति मे भी उसी अनुपात मे परिवर्तन होते हैं। प्रयुक्त की जाने वाली मात्राओं के सम्बन्ध म पूंजी व श्रम दोनो पूर्णतया विभाजनीय (divisible) होते हैं और उत्पादन की तकनीके ऐसी है कि श्रम व पूंजी के किसी भी दिए हुए अनुपात के लिए वही तकनीकें प्रयुक्त की जायेंगी एव प्रयुक्त साधनो की निरपेक्ष मात्रा (absolute amount) से इसका कोई सम्बन्ध नही होगा। इसी को दूसरे रूप मे यो भी रख सकते हैं कि हम यह मान लेते है कि तकनीके वही रहती हैं चाहे 1 इकाई पूंजी के साथ 2 इकाई श्रम काम करे, अथवा $\frac{1}{2}$ इकाई पूंजी के साथ 1 इकाई श्रम काम करे अथवा 2 इकाई पूंजी के साथ 4 इकाई श्रम काम

7. इस बात का विशेष महत्व नही है कि हम यह मानकर चलें कि ह्रासमान प्रतिफल प्रारम्भ से ही मिलने लग जाते हैं। प्राय विवेचन की दृष्टि से, हम यह मान लेते हैं कि परिवर्तनशील साधन की मात्रा के बढाये जाने पर शुरू मे वर्द्धमान प्रतिफल मिलते हैं और बाद मे ह्रासमान प्रतिफल मिलते हैं।

करे। इस प्रकार की स्थिति पैमाने के समान प्रतिफल की स्थिति कहलाती है—प्रयुक्त किए जाने वाले समस्त साधनों की मात्राओं में आनुपातिक परिवर्तन उत्पत्ति की मात्रा को उसी अनुपात में परिवर्तित कर देते हैं।[8]

हमारा विशेष सम्बन्ध इस बात से है कि "परिवर्तनशील" साधन का "स्थिर" साधन के साथ क्या अनुपात होता है। उत्पत्ति-वक्रों पर पहुँचने के लिए हम वस्तुतः पूँजी की एक इकाई अथवा "स्थिर" साधन की किसी भी मात्रा से मर्यादित नहीं होते हैं। हम एक फर्म के बारे में ऐसी कल्पना कर सकते हैं कि वह अपनी इच्छानुसार पूँजी की मात्रा का प्रयोग कर रही है; लेकिन उत्पत्ति-वक्रों को स्थापित करते समय हम अपने प्रेक्षणों (observations) को "स्थिर" साधन की एक इकाई से प्राप्त उत्पत्ति में परिवर्तित कर लेते हैं। उदाहरण के लिए, यदि श्रम की 10 इकाइयाँ पूँजी की 2 इकाइयों के साथ काम करके प्रति इकाई समयानुसार माल की 38 इकाइयाँ उत्पन्न करती है तो उत्पत्ति-वक्रों को स्थापित करने के लिए हम इन आंकड़ों को पूँजी की एक इकाई के बराबर करके बदल लेंगे—अर्थात् हम यह कहेंगे कि श्रम की 5 इकाइयाँ 1 इकाई पूँजी के साथ काम करके प्रति इकाई समयानुसार माल की 19 इकाइयाँ उत्पन्न करती हैं। श्रम की मात्रा को यथास्थिर रखकर प्रयुक्त पूँजी की मात्रा में की जाने वाली वृद्धि, पूँजी की मात्रा को यथास्थिर रख कर श्रम की मात्रा में की जाने वाली कमी के समान ही हुआ करती है।

श्रम के लिए तीन अवस्थाएँ (The Three Stages for Labor)

सारणी 8–1 की उत्पत्ति-अनुसूचियाँ और चित्र 8–4 के उत्पत्ति-वक्र तीन अवस्थाओं में विभाजित किए जा सकते है। तीनों में से प्रत्येक अवस्था में श्रम का औसत उत्पत्ति-वक्र और कुल उत्पत्ति-वक्र इस सम्बन्ध में सूचना प्रदान करते हैं कि विभिन्न श्रम-पूँजी अनुपातों के लिए साधनों का उपयोग कितनी कार्यकुशलता के साथ किया जा रहा है। जब श्रम का पूँजी से अनुपात बढ़ाया जाता है, अर्थात् जब प्रति इकाई पूँजी के साथ उत्तरोत्तर अधिक श्रम का उपयोग किया जाता है, तो औसत उत्पत्ति-वक्र हमें विभिन्न अनुपातों के लिए प्रति इकाई श्रम से प्राप्त उत्पत्ति की मात्रा के सम्बन्ध में सूचना प्रदान करता है। कुल उत्पत्ति-वक्र प्रति इकाई पूँजी से प्राप्त उत्पत्ति की मात्रा के सम्बन्ध में सूचना प्रदान करता है।

---

8. गणितीय रूप में, उत्पादन-फलन एक डिग्री तक समरूप कहा जाता है जिसका आशय यह है कि:

$$X = f(a, b)$$

$$\lambda X = f(\lambda a, \lambda b).$$

अवस्था I मे यह बतलाया गया है कि जब प्रति इकाई पूँजी के साथ अधिक श्रम का प्रयोग किया जाता है, तो श्रम की औसत उत्पत्ति मे वृद्धि होनी है। इन वृद्धियो का आशय यह है कि श्रम की कार्यकुशलता–प्रति श्रमिक उत्पत्ति–बढनी है। जब प्रति इकाई पूँजी के साथ श्रम की अपेक्षाकृत बडी मात्राऐं लगाई जाती है तो प्राप्त कुल उत्पत्ति अवस्था I मे भी बढनी हैं। कुल उत्पत्ति की वृद्धि हमे यह बतलाती है कि अवस्था I मे पूँजी की कार्यकुशलता भी बढती है। इस प्रकार अवस्था I मे एक इकाई पूँजी के साथ प्रयुक्त की जाने वाली श्रम की मात्रा मे वृद्धि होने से श्रम और पूँजी दोनो की कार्यकुशलता मे वृद्धि होनी है।

अवस्था II मे श्रम की औसत उत्पत्ति और सीमान्त भौतिक उत्पत्ति दोनो मे कमी होती है। लेकिन सीमान्त भौतिक उत्पत्ति धनात्मक (positive) होनी है क्योकि कुल उत्पत्ति मे वृद्धि जारी रहती है। अवस्था II मे जब प्रति इकाई पूँजी के *साथ श्रम की अपेक्षाकृत अधिक मात्राओ का उपयोग किया जाता है तो श्रम की* कार्यकुशलता—प्रति श्रमिक उत्पत्ति—घटती है। लेकिन पूँजी की कार्यकुशलता—प्रति इकाई पूँजी की उत्पत्ति—बढनी जारी रहती है।

अवस्था III मे प्रति इकाई पूँजी के साथ श्रम की अपेक्षाकृत अधिक मात्राओ के प्रयोग से श्रम की औसत उत्पत्ति मे और भी अधिक गिरावट आती है। इसके अतिरिक्त, श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति ऋणात्मक होनी है और कुल उत्पत्ति घटनी है। जब फर्म अवस्था III के सयोगो मे प्रवेश करती है तो श्रम और पूँजी दोनो की कार्यकुशलताएँ घटती हैं।

तीनो अवस्थाओ पर दृष्टि डालने से दो बाते सामने आती हैं। श्रम और पूँजी का वह *सयोग जिस पर श्रम की कार्यकुशलता अधिकतम होती है, अवस्था I व अवस्था II* के बीच की सीमा-रेखा (boundary line) पर आता है। श्रम व पूँजी का वह सयोग जिस पर पूंजी की कार्यकुशलता होती है, अवस्था II व अवस्था III के बीच की सीमा रेखा पर आता है।

पूँजी के लिए तीन अवस्थाएँ (The Three Stages for Capital)

मान लीजिए हम सारणी 8–1 व चित्र 8–4 को पुन इस प्रकार से जचाते हैं कि हम श्रम की एक इकाई के साथ लगाई जाने वाली पूँजी की विभिन्न मात्राओ के लिए उत्पत्ति-अनुसूचियाँ व उत्पत्ति वक्र निर्धारित कर लेते है। इस प्रक्रिया से हमे यह दर्शाने मे मदद मिलती है कि श्रम के लिए अवस्था I पूँजी के लिए अवस्था III होती है। इसी प्रकार श्रम के लिए अवस्था III पूंजी के लिए अवस्था I, और श्रम की अवस्था II पूँजी की भी अवस्था II होती है। हम यह मान्यता जारी रखते है कि पैमाने के समान प्रतिफल मिलते हैं।

श्रम के उत्पत्ति-वक्रों की पूंजी के उत्पत्ति-वक्रों से तुलना कर सकने के लिए यह सुविधाजनक होगा कि सारणी 8–2 की उत्पत्ति-अनुसूचियां और चित्र 8–5 के उत्पत्ति-वक्र गैर-परम्परागत विधि से स्थापित किये जाएँ। सारणी 8–2, जो श्रम के साथ पूंजी के बढ़ते हुए अनुपात के प्रभावों को दिखाती है, नीचे से ऊपर की ओर पढ़ी जाय। चित्र 8–5 परम्परागत विधि (बायें से दायें) से पढ़े जाने पर पूंजी के साथ श्रम के बढ़ते हुए अनुपात के प्रभावों को दर्शाता है, लेकिन दायें से बायें पढ़े जाने पर श्रम के साथ पूंजी के बढ़ते हुए अनुपात को दर्शाता है।

उत्पत्ति-अनुसूचियां (The Product Schedules)

हम सारणी 8–1 को पुनः व्यवस्थित कर सारणी 8–2 में उसके परिणाम प्रस्तुत करते हैं। सारणी 8–1 के नीचे से प्रारम्भ करते हुए प्रति इकाई पूंजी के साथ श्रम की 10 इकाइयां प्रयुक्त की जाती हैं। अनुपात के अर्थ में इसका यही आशय है जो प्रति इकाई श्रम के साथ पूंजी की $\frac{1}{10}$ इकाई के प्रयोग करने का होता है। ये संख्याएँ सारणी 8–2 की अन्तिम पंक्ति के कालम (1) व (2) में दिखलाई गई हैं। इसी तरह अनुपातों के रूप में, प्रति इकाई पूंजी के साथ श्रम की 9 इकाइयों का वही अर्थ है जो प्रति इकाई श्रम के साथ पूंजी की $\frac{1}{9}$ इकाई का है, और यही क्रम सारणी में सारी दूर तक चलता रहेगा और अन्त में हम ऊपर तक पहुंच जाते हैं जहाँ श्रम की 1 इकाई के साथ पूंजी की 1 इकाई का प्रयोग किया जाता है। पूंजी व श्रम के अनुपात सारणी 8–1 व सारणी 8–2 में सर्वत्र समान हैं।

सारणी 8–2 पूंजी के लिए उत्पत्ति-अनुसूचियां

(1) पूंजी	(2) श्रम	(3) कुल उत्पत्ति (पूंजी)	(4) सीमान्त भौतिक उत्पत्ति (पूंजी)	(5) औसत उत्पत्ति (पूंजी)	
1	1	3	(–) 1	3	अवस्था III
$\frac{1}{2}$	1	$3\frac{1}{2}$	(–) 3	7	
$\frac{1}{3}$	1	4	0	12	
$\frac{1}{4}$	1	4	4	16	अवस्था II
$\frac{1}{5}$	1	$3\frac{4}{5}$	9	19	
$\frac{1}{6}$	1	$3\frac{1}{2}$	15	21	
$\frac{1}{7}$	1	$3\frac{1}{7}$	22	22	
$\frac{1}{8}$	1	$2\frac{3}{4}$	30	22	अवस्था I
$\frac{1}{9}$	1	$2\frac{1}{3}$	75	21	
$\frac{1}{10}$	1	$1\frac{1}{2}$	15	15	

श्रम की एक इकाई के साथ लगाई जाने वाली पूंजी की विभिन्न मात्राओं के लिए कुल उत्पत्ति-अनुसूची सारणी 8–1 के कॉलम (3) से निर्धारित की जा सकती है। 1 इकाई पूंजी पर श्रम की दस इकाइयाँ लगाने से माल की 15 इकाइयाँ उत्पादित होती हैं। यह स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में एक इकाई श्रम के साथ पूंजी की एक इकाई का $\frac{1}{10}$ भाग लगाने में कुल उत्पत्ति की मात्रा 15/10 या $1\frac{1}{2}$ इकाइयाँ होंगी। यह परिणाम सारणी 8–2 के कॉलम 3 की अन्तिम पंक्ति में दिखलाया गया है। चूंकि पूंजी की एक इकाई के साथ लगाइ जाने वाली श्रम की 9 इकाइयाँ माल की 21 इकाइयों का उत्पादन करती हैं, इसलिए श्रम की 1 इकाई के साथ पूंजी की एक इकाई का $\frac{1}{9}$ भाग लगान से कुल उत्पत्ति $2\frac{1}{3}$ इकाइयां की होगी। इसी तरह से 1 इकाई श्रम के साथ प्रयुक्त पूंजी की अपेक्षाकृत अधिक मात्राओं से प्राप्त होने वाली कुल उत्पत्ति कॉलम (3) को पूरा करने के लिए निर्धारित की जा सकती है।

पूंजी के लिए सीमान्त भौतिक उत्पत्ति-अनुसूची कुल उत्पत्ति की उन वृद्धियों को प्रदर्शित करती है जो प्रयुक्त किये जाने वाले पूंजी व श्रम के विभिन्न अनुपातों पर पूंजी में प्रत्येक पूर्ण इकाई की वृद्धि से प्राप्त होती है। पूंजी की एक इकाई के पहले $\frac{1}{10}$ भाग से कुल उत्पत्ति शून्य से बढ़कर $1\frac{1}{2}$ इकाई हो जाती है। इसलिए श्रम व पूंजी के इस अनुपात पर एक इकाई पूंजी की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति $1\frac{1}{2}—1/10=3/2\times10=15$ इकाइयाँ होती है। यह सारणी 8–2 के कॉलम (4) की अन्तिम पंक्ति में दिखलाई गई है।

पूंजी की मात्रा में एक इकाई के $\frac{1}{10}$ भाग में $\frac{1}{9}$ भाग तक की वृद्धि से कुल उत्पत्ति $1\frac{1}{2}$ से $2\frac{1}{3}$ तक बढ जाती है। उत्पत्ति में वृद्धि वस्तु की एक इकाई का $\frac{7}{3}-\frac{3}{2}=14/6-9/6=5/6$ होगी। पूंजी में वृद्धि पूंजी की एक इकाई का $\frac{1}{9}-\frac{1}{10}=10/90-9/90=1/90$ होगी। इस बिन्दु पर पूंजी की एक इकाई की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति $5/6—1/90=5/6\times90=75$ इकाइयाँ होगी। सारणी 8–2 के कॉलम (1) और (3) में ऊपर की तरफ इसी तरह से गणना करने से कॉलम (4) प्राप्त किया जा सकता है।

सारणी 8–2 के कॉलम (5) को नीचे से ऊपर की ओर देखने से पूंजी-श्रम के विभिन्न अनुपातों पर प्रति इकाई पूंजी के अनुसार औसत उत्पत्ति प्राप्त होती है। प्रत्येक अनुपात के लिए पूंजी की औसत उत्पत्ति पूंजी की कुल उत्पत्ति को प्रयुक्त पूंजी की मात्रा से विभाजित करने से प्राप्त होती है। चूंकि एक इकाई पूंजी का 1/10 भाग $1\frac{1}{2}$ इकाई माल उत्पन्न करता है, इसलिए इस बिन्दु पर पूंजी की औसत उत्पत्ति $1\frac{1}{2}—1/10=15$ होती है। इसी तरह वस्तु की $2\frac{1}{3}$ इकाइयों को एक

इकाई पूँजी के 1/9 भाग से विभाजित करने पर उस बिन्दु पर पूँजी की औसत उत्पत्ति 21 इकाइयाँ आती है। कॉलम (5) में दिये गये अन्य अंक भी इसी तरह की गणना से प्राप्त होते हैं।

सारणी 8–2 से सारणी 8–1 की तुलना करने पर सारणी 8–1 के दो कॉलम सारणी 8–2 में दिये गये दो कॉलमों के समान निकल आते हैं। सर्वप्रथम, 1 इकाई पूँजी पर लागू किये जाने वाले श्रम की कुल उत्पत्ति-अनुसूची [देखिए सारणी 8–1 का कॉलम (3)] 1 इकाई श्रम पर लागू की गई पूँजी की औसत उत्पत्ति-अनुसूची हो गई है [देखिए सारणी 8–2, कॉलम (5)]। द्वितीय, 1 इकाई पूँजी पर लागू किये गये श्रम की औसत उत्पत्ति-अनुसूची [देखिए सारणी 8–1, कॉलम (4)] 1 इकाई श्रम पर लागू की गई पूँजी की कुल उत्पत्ति-अनुसूची बन गयी है [देखिए सारणी 8–2, कॉलम (3)]। थोड़ा ध्यान देने से स्पष्ट होगा कि ये सम्बन्ध आशानुकूल ही हैं। एक इकाई पूँजी पर लागू अधिकाधिक श्रम की कुल उत्पत्ति, ज्यों-ज्यों श्रम-पूँजी का अनुपात बढ़ाया जाता है पूँजी की औसत उत्पत्ति (अथवा प्रति इकाई पूँजी की उत्पत्ति) के बराबर होती है। इसी तरह श्रम की औसत उत्पत्ति (श्रम की प्रति इकाई उत्पत्ति) प्रति इकाई श्रम पर लागू पूँजी की विभिन्न मात्राओं की कुल उत्पत्ति के अनिवार्यतः बराबर होती है।

एक बात और ध्यान देने योग्य है। सारणी 8–1 में श्रम के लिए अवस्थाएँ I, II व III निकटतम रूप से अंकित की गई हैं।[9] सारणी 8–2 में पूँजी के लिए अवस्थाएँ I, II और III निकटतम रूप से अंकित की गई हैं। सारणी 8–1 म श्रम के लिए जो अवस्था I है, वह सारणी 8–2 में पूँजी के लिए अवस्था III बन जाती है। सारणी 8–1 में श्रम के लिए जो अवस्था III है वह सारणी 8–2 म पूँजी के लिए अवस्था I बन जाती है। दोनों सारणियों में श्रम की अवस्था II पूँजी की भी अवस्था II ही रहती है।

उत्पत्ति-वक्र

चित्र 8-5 में प्रति इकाई श्रम के अनुसार पूँजी के उत्पत्ति-वक्र व प्रति इकाई पूँजी के अनुसार श्रम के उत्पत्ति-वक्र प्रदर्शित किये गये हैं। एक इकाई पूँजी पर लागू किये गये श्रम और एक इकाई श्रम पर लागू की गई पूँजी दोनों के उत्पत्ति-वक्र रेखाचित्र में खींचे गये हैं। क्षैतिज अक्षों को बायें से दायें देखने पर पूँजी से श्रम का

---

9. जब उत्पत्ति अनुसूचियाँ सारणी के रूप में स्थापित की जाती हैं तो अवस्थाओं के बीच की सीमा-रेखाएँ निकटतम ही मानी जाती हैं। केवल सतत रेखाचित्रों (continuous graphs) पर ही अवस्थाओं के बीच सुनिश्चित सीमाएँ स्थापित की जा सकती हैं।

अनुपात बढता है जिससे श्रम के तीन सुपरिचित उत्पत्ति-वक्र प्राप्त होते हैं (चित्र 8-5 (अ) मे TP_l , चित्र 8-5 (आ) मे AP_l और MPP_l)। क्षैतिज अक्षों को दायें से बायें देखने पर श्रम से पूंजी का अनुपात बढता है। जब पूंजी से श्रम का अनुपात बढाया जाता है तो श्रम का कुल उत्पत्ति-वक्र, श्रम से पूंजी का अनुपात
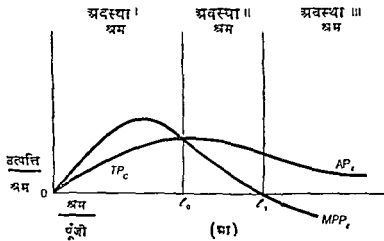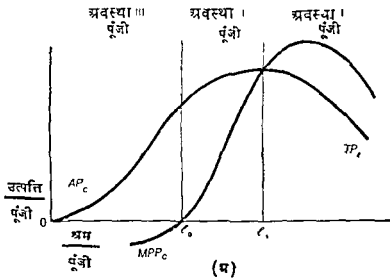
चित्र 8-5 पूंजी के लिए उत्पत्ति-वक्र

बढाये जाने पर पूंजी का औसत उत्पत्ति-वक्र बन जाता है। जब पूंजी से श्रम का अनुपात बढ़ाया जाता है तो श्रम का औसत उत्पत्ति-वक्र, श्रम से पूंजी का अनुपात

बढाये जाने पर पूँजी का कुल उत्पत्ति-वक्र बन जाता है। स्मरण रहे कि चित्र 8 5 (अ) म दायें से बायें चलने पर पूँजी का सीमान्त भौतिक उत्पत्ति-वक्र, औसत उत्पत्ति के बढने की स्थिति मे, पूँजी के औसत उत्पत्ति-वक्र से ऊपर होता है और यह औसत उत्पत्ति वक्र को इसके अधिकतम बिन्दु पर काटता है एव जब वह वक्र घटता है तो यह औसत उत्पत्ति-वक्र मे नीचे होता है। यह भी ध्यान रहे कि श्रम से पूँजी के उस अनुपात पर जहाँ पूँजी की कुल उत्पत्ति अधिकतम होती है, पूँजी का सीमान्त भौतिक उत्पत्ति-वक्र शून्य पर पहुँच जाता है। जब श्रम की एक इकाई के साथ पूँजी की मात्रा के बढने स पूँजी की कुल उत्पत्ति घटती है तो पूँजी की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति ऋणात्मक हो जाती है। पूँजी और श्रम दोनो के लिए तीनो अवस्थाएँ चित्र 8-5 म दिखलाई गई है।

अवस्था II के सयोग (Stage II Combinations)

अवस्था II मे जो पूँजी व श्रम दोनो के लिए है, फर्म के लिए श्रम व पूँजी के सभी सार्थक अनुपात समाहित हैं। सारणी 8-3 मे तीनो अवस्थाओ—उनके सम्बन्धो एव उनके लक्षणो का साराश प्रस्तुत किया गया है। श्रम के लिए अवस्था I म, पूँजी पर श्रम का बहुत ही सीमित मात्रा म प्रयोग किया जाता है और पूँजी से श्रम के अनुपात म वृद्धि होन से इसकी औसत उत्पत्ति मे वृद्धि होती है। इसके अलावा श्रम के लिए अवस्था I म (पूँजी के लिए अवस्था III म) पूँजी की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति ऋणात्मक होती है। एक इकाई पूँजी पर बहुत कम मात्रा मे श्रम के लगाने का ठीक वही आशय है जो एक इकाई श्रम के साथ बहुत ज्यादा पूँजी के लगाने का होता है। फर्म को प्रयुक्त पूँजी के साथ श्रम के अनुपात मे वृद्धि (अथवा प्रयुक्त श्रम के साथ पूँजी के अनुपात म कमी) कम-से-कम उस बिन्दु तक करनी चाहिए जहाँ से श्रम की औसत उत्पत्ति आगे नही बढेगी एव पूँजी की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति आगे ऋणात्मक नही होगी। इस तरह की वृद्धि से फर्म अवस्था II मे आ जायेगी।

श्रम की अवस्था III व पूँजी की अवस्था I मे श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति ऋणात्मक होती है जिसका आशय यह है कि प्रति इकाई पूँजी के साथ बहुत ज्यादा श्रम प्रयुक्त किया जाता है, अथवा प्रति इकाई श्रम के साथ बहुत कम पूँजी का प्रयोग किया जाता है। पूँजी के साथ श्रम का अनुपात कम-से-कम उस बिन्दु तक घटाया जाना चाहिए जहाँ से आगे श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति ऋणात्मक नही हो जाती। श्रम के प्रति पूँजी के अनुपात मे इस वृद्धि से पूँजी की औसत उत्पत्ति मे वृद्धि होगी। अब हमारे पास केवल अवस्था II के अनुपात रह जाते हैं।

सारणी 8-3 श्रम व पूंजी के लिए तीनों अवस्थाओं की समिति (Symmetry)

पूंजी से श्रम के अनुपात में वृद्धि करने पर श्रम की उत्पादकता	श्रम से पूंजी के अनुपात में वृद्धि करने पर पूंजी की उत्पादकता
अवस्था I बढ़ती हुई AP_l	ऋणात्मक MPP_c अवस्था III
अवस्था II घटती हुई AP_l और MPP_l लेकिन MPP_l धनात्मक	घटती हुई AP_c और MPP_c, लेकिन MPP_c धनात्मक अवस्था II
अवस्था III ऋणात्मक MPP_l	बढ़ती हुई AP_c अवस्था I

पूर्व विवेचन से जो मुख्य बातें सामने आती हैं उन पर आवश्यक बल दिया जाना चाहिए। श्रम और पूंजी का वह संयोग जिस पर श्रम की कार्यकुशलता अधिकतम होती है श्रम की अवस्था I व अवस्था II के बीच की सीमा-रेखा पर आता है (जो पूंजी के लिए अवस्था II व अवस्था के III के बीच में होती है)। जो संयोग पूंजी के लिए अधिकतम कार्यकुशलता सूचित करता है वह पूंजी के लिए अवस्था I व अवस्था II (श्रम के लिए अवस्था II व अवस्था III) के बीच की सीमा-रेखा पर आता है।

यहां पर साधन-लागतों का समावेश कर देने से फर्म के समक्ष जो आर्थिक प्रश्न होते हैं वे सही परिप्रेक्ष्य में उपस्थित हो जाते हैं। कल्पना कीजिए कि पूंजी तो इतनी पर्याप्त मात्रा में है कि इसकी कोई लागत नहीं होती, जबकि श्रम की मात्रा इतनी सीमित है कि इसके लिए कुछ कीमत देनी होती है। ऐसी स्थिति में फर्म को लागत पर जो भी व्यय करना होना है वह श्रम के लिए किया जाता है, इसलिए वह अधिकतम आर्थिक कार्यकुशलता (प्रति इकाई उत्पत्ति की न्यूनतम लागत) श्रम व पूंजी के उस अनुपात पर प्राप्त करेगी जहां प्रति इकाई श्रम की उत्पत्ति अधिकतम होती है। यह अनुपात अवस्था I और अवस्था II के बीच की सीमा पर आता है। अवस्था I में प्रति इकाई व्यय के अनुसार उत्पत्ति बढ़ेगी और अवस्था II और अवस्था III में घटेगी।

मान लीजिए कि केवल मांगने मात्र से ही श्रम तो उपलब्ध हो जाता है, और पूंजी एक सीमित साधन है जिसकी कीमत देनी होती है। इस स्थिति में सम्पूर्ण लागत परिव्यय (cost outlay) पूंजी के लिए होता है और आर्थिक कार्यकुशलता उस समय अधिकतम होती है जबकि पूंजी से श्रम का अनुपात ऐसा होता है कि जिस

पर प्रति इकाई पूंजी की उत्पत्ति अधिकतम होती है। अवस्था I पर पुनः ध्यान नहीं दिया जाता क्योंकि प्रति इकाई पूंजी की उत्पत्ति (और प्रति इकाई व्यय के अनुसार उत्पत्ति) श्रम व पूंजी का अनुपात उस अवस्था में जारी दूर बढ़ाये जाने पर बढ़ती है। पूंजी के लिए अवस्था I व II की सीमा पर (श्रम के लिए अवस्था III व II के बीच) प्रति इकाई पूंजी के अनुसार उत्पत्ति और प्रति इकाई व्यय के अनुसार उत्पत्ति अधिकतम हो जाते हैं।

अब मान लीजिए कि श्रम और पूंजी दोनों आर्थिक साधन हैं, अर्थात् दोनों इतने सीमित हैं कि इनके लिए कीमत देनी होती है। श्रम के लिए अवस्था I में पूंजी से श्रम का अनुपात बढ़ने से प्रति इकाई श्रम की उत्पत्ति और प्रति इकाई पूंजी की उत्पत्ति दोनों में वृद्धि होती है। इससे दोनों पर प्रति इकाई व्यय से प्राप्त उत्पत्ति भी बढ़ जाती है इसलिए फर्म कम-से-कम अवस्था I और अवस्था II के बीच की सीमा पर चली जायगी। यदि फर्म अवस्था II में प्रवेश करती है तो पूंजी से श्रम का अनुपात बढ़ने पर श्रम पर प्रति इकाई व्यय से प्राप्त उत्पत्ति की मात्रा घटती है और पूंजी पर प्रति इकाई व्यय से प्राप्त उत्पत्ति की मात्रा बढ़ती है। प्रश्न उठता है कि इनमें से किसका ज्यादा महत्त्व है—पूंजी की बढ़ती हुई कार्यकुशलता का अथवा श्रम की घटती हुई कार्यकुशलता का? हम शीघ्र ही इस प्रश्न पर वापस आयेंगे। यदि फर्म श्रम के लिए अवस्था III में प्रवेश करती है तो पूंजी और श्रम दोनों पर प्रति इकाई व्यय से प्राप्त उत्पत्ति की मात्रा घटती है। अतः जब दोनों साधनों की लागत लगती है तो फर्म को अवस्था II और अवस्था III के बीच की सीमा-रेखा से परे नहीं जाना चाहिए।

सभी परिस्थितियों में अवस्था I और अवस्था III के श्रम व पूंजी के अनुपातों पर फर्म ध्यान नहीं देगी। फर्म किसी भी साधन की अवस्था I में उत्पादन कार्य नहीं करेगी जबकि पूंजी निःशुल्क होती है और श्रम की लागत लगती है, अथवा जब श्रम निःशुल्क होता है और पूंजी की लागत लगती है, अथवा जब दोनों साधनों की कीमत देनी होती है। यही तर्क अवस्था III पर भी लागू होता है। केवल अवस्था II ही श्रम व पूंजी के सार्थक अनुपातों की सम्भावित सीमा रह जाती है।

प्रश्न उठता है कि फर्म अवस्था II के अन्तर्गत श्रम और पूंजी के किस अनुपात का उपयोग करेगी? इसका उत्तर सापेक्ष लागतों अथवा प्रति इकाई पूंजी व श्रम की कीमतों पर निर्भर करता है। हम पहले देख चुके हैं कि यदि पूंजी निःशुल्क है और श्रम का भुगतान किया जाता है तो फर्म उस अनुपात का उपयोग करेगी जहाँ से श्रम की अवस्था II प्रारम्भ होती है। यदि पूंजी का भुगतान किया जाता है और श्रम निःशुल्क होता है तो फर्म उस अनुपात का उपयोग करेगी जहाँ पर श्रम पर अवस्था II समाप्त होती है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि श्रम की कीमत की

तुलना मे पूंजी की कीमत जितनी कम होती है, अनुपात (ratio) श्रम की अवस्था II के प्रारम्भ के उतना ही समीप होता है। पूंजी की कीमत की तुलना म श्रम की कीमत जितनी कम होती है, अनुपात (ratios) श्रम की अवस्था II के अन्त के उतन ही समीप होते हैं। अतएव एक फर्म के द्वारा प्रयुक्त किसी भी साधन के सम्बन्ध मे हम सामान्यतया यह कह सकते हैं कि उसे अन्य साधनो की तुलना मे उस साधन का वह अनुपात काम मे लेना चाहिए जो उस साधन के लिए अवस्था II मे आता हो।

सामान्यीकृत अवस्था II (A Generalized Stage II)

समोत्पत्ति वक्र रेखाचित्र हम सामान्यीकृत अवस्था II को स्थापित करने मे मदद देते हैं जो रेखीय समरूप उत्पादन फलन तक सीमित नहीं रहती। चित्र 8–6 मे समोत्पत्ति मानचित्र पर विचार कीजिए। इससे हम उन साधन सयोगो को जान सकते हैं जो उत्पत्ति की एक दी हुई मात्रा का उत्पादन करेंगे। इसके अतिरिक्त हम साधन A के कुल उत्पत्ति वक्रो का भी पता लगा सकते हैं जिनमे से प्रत्येक वक्र साधन B के प्रत्येक भिन्न स्तर के साथ प्रयुक्त की जाने वाली A की वैकल्पिक मात्राओ के लिए भिन्न होगा। हम साधन B के कुल उत्पत्ति वक्रो का भी पता लगा सकते हैं—इनमे से प्रत्येक वक्र A की भिन्न मात्रा के साथ प्रयुक्त की जाने वाली B की वैकल्पिक मात्राओ के लिए भिन्न होगा।

किसी भी दिए हुए समोत्पत्ति वक्र पर, B के लिए A के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर B की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति से A की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति के अनुपात द्वारा मापी जाती है। चित्र 8–6 मे मान लीजिए कि A और B का M सयोग X की X_6 मात्रा के उत्पादन मे प्रयुक्त किया जाता है। सयोग M से सयोग Q पर जाने मे और उत्पत्ति को X_6 पर स्थिर रखते हुए, फर्म साधन B की MN मात्रा का त्याग साधन A की NQ मात्रा के लिए करती है। B की MN मात्रा का त्याग करने से उत्पत्ति $MN \times MPP_b$ घट जाती है। A की NQ मात्रा से उत्पत्ति मे $NQ \times MPP_a$ की वृद्धि हो जाती है। चूंकि B के त्याग से उत्पत्ति मे होने वाली गिरावट अतिरिक्त A से उत्पत्ति मे होने वाली वृद्धि के बराबर होनी चाहिए, अत

$$MN \times MPP_b = NQ \times MPP_a \qquad ....(8\ 2)$$

अथवा

$$\frac{MN}{NQ} = \frac{MPP_a}{MPP_b}$$

चूंकि

$$MRTS_{ab} = \frac{MN}{NQ}$$

अत

$$MRTS_{ab} = \frac{MPP_a}{MPP_b}$$
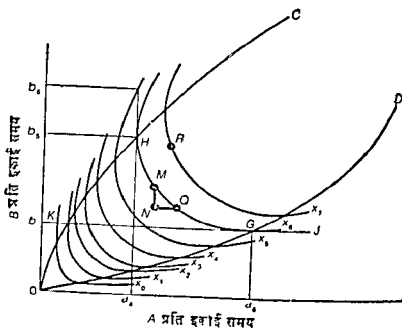
चित्र 8–6 समोत्पत्ति रेखाचित्र पर अवस्था II

यदि $MRTS_{ab}=2$ है तो MPP_a की मात्रा MPP_b से दुगुनी होगी, जिसका आशय यह है कि A की एक अतिरिक्त इकाई B की 2 इकाइयों की क्षतिपूर्ति करेगी।[10]

---

10 किसी भी दिए हुए समोत्पत्ति वक्र पर B के लिए A के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समोत्पत्ति वक्र के समीकरण का निम्नलिखित तरीके से अवकलन करके (differentiating) निकाली जा सकती है

$$X = f(a, b)$$

और

$$f_a d_a + f_b d_b = dx = 0$$

OD रेखा जो ऐसे बिन्दुओं को मिलाती है जिन पर समोत्पत्ति-वक्र क्षैतिज हो जाते हैं, परिधि-रेखा या सीमा-रेखा (ridge line) कहलाती है। समोत्पत्ति-वक्र X_6 पर G बिन्दु को लीजिए। चूंकि समोत्पत्ति-वक्र का ढाल, अथवा $MRTS_{ab}$ शून्य है, इसलिए यह स्पष्ट है कि इस बिन्दु पर MPP_a भी शून्य है। b_1d रेखा पर दाहिनी ओर चलने से A की कुल उत्पत्ति घटेगी, और इस प्रकार की गतिशीलता से MPP_a ऋणात्मक होता है। इस स्थिति का आशय यह है कि फर्म साधन A के लिए अवस्था III में चली जाती है। OD के प्रत्येक बिन्दु पर यही बात होती है। परिणामस्वरूप OD के दाहिनी तरफ A और B का कोई भी सयोग साधन A के लिए सामान्यीकृत (generalized) अवस्था III में होता है। समोत्पत्ति वक्रों के उन अंशों के ऊपर की ओर जाने वाले ढाल जो OD के दायीं ओर होते हैं, A के लिए अवस्था III में ऋणात्मक MPP_a को दर्शाते हैं।

OC रेखा भी परिधि-रेखा होती है जो उन बिन्दुओं को मिलाती है जिन पर समोत्पत्ति-वक्र लम्बवत् हो जाते हैं। H बिन्दु पर a_4H रेखा को आगे बढ़ाने पर B साधन में वृद्धि करने से B की कुल उत्पत्ति घटेगी, अर्थात् इस वृद्धि से MPP_b ऋणात्मक होती है। OC पर किसी भी बिन्दु में B में होने वाली किसी भी वृद्धि पर यही बात लागू होगी। परिणामस्वरूप, A और B का कोई भी सयोग जो OC से ऊपर होता है, साधन B के लिए अवस्था III में होता है।

इस प्रकार OD व OC परिधि-रेखाओं के बीच के क्षेत्र में पाए जाने वाले सयोग दोनों साधनों के लिए सामान्यीकृत अवस्था II का निर्माण करते हैं। ये ही वे सयोग हैं जो फर्म के उत्पादन-निर्णयों की दृष्टि से सार्थक होते हैं। हमें अपने विवेचन को केवल रेखीय समरूप उत्पादन-फलन तक अथवा उस उत्पादन-फलन तक जिसमें एक साधन की मात्रा स्थिर रहती है, सीमित करने की आवश्यकता नहीं। सामान्यीकृत अवस्था II के क्षेत्र में R जैसे एक सयोग से किसी भी साधन की मात्रा में परिवर्तन होने से उस साधन के लिए ह्रासमान प्रतिफल प्राप्त होते हैं।

अतएव :

$$-\frac{d_b}{d_a} = \frac{f_a}{f_b} = MRTS_{ab}.$$

आंशिक अवकलज (partial derivatives) f_a व f_b क्रमशः MPP_a व MPP_b होते हैं। अतः समोत्पत्ति-वक्र के लिए मूल बिन्दु से उन्नतोदर होने के लिए

$$\frac{d\left(\frac{f_a}{f_b}\right)}{d_a} < 0 \text{ होना चाहिए।}$$

न्यूनतम-लागत संयोग (The Least-cost Combination)

अब प्रश्न उठता है कि अपनी वस्तु के उत्पादन में फर्म अवस्था II के संयोगों में से किस संयोग का उपयोग करेगी ? हम यह मान लेते हैं कि फर्म का उद्देश्य ज्यादा से ज्यादा कार्यकुशलता से माल का उत्पादन करना है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने का आशय यह है कि फर्म भले ही उत्पत्ति की किसी भी मात्रा का चयन करे, लेकिन उस उत्पत्ति पर साधन-संयोग ऐसा होना चाहिए कि इसका लागत-परिव्यय नीचे से नीचा रखा जा सके। इसी बात को दूसरे रूप में यों रखा जा सकता है कि फर्म जो भी लागत-परिव्यय करे, उसे वह साधन-संयोग काम में लेना चाहिए ताकि उस लागत-परिव्यय से सर्वाधिक माल उत्पन्न किया जा सके।

इस फर्म के समक्ष समस्या अनिवार्यतः उसी तरह की होती है जैसी कि उपभोक्ता के समक्ष होती है। समोत्पत्ति-वक्र उत्पत्ति की उन मात्राओं को दर्शाते हैं जिन्हें फर्म साधनों के विभिन्न संयोगों का 'उपभोग करके' प्राप्त करती है। ये तटस्थता-वक्रों के सदृश होते हैं जो एक उपभोक्ता के द्वारा वस्तुओं व सेवाओं के विभिन्न संयोगों के उपभोग से प्राप्त सन्तोष की "उत्पत्ति" को दर्शाते हैं। इस तुलना को पूरा करने के लिए हमारे पास उपभोक्ता की बजट-रेखा के प्रतिरूप फर्म के लिए कोई धारणा होनी चाहिए।

यह प्रतिरूप सम-लागत (isocost) या "समान-लागत" ("equal-cost") वक्र कहलाता है। मान लीजिए साधन A व B पर फर्म का कुल लागत-परिव्यय T डालर होता है जब कि साधनों की कीमतें क्रमशः P_a व P_b होती हैं। चित्र 8–7 में यदि फर्म वस्तु A नहीं खरीदे तो वह B की $\frac{T}{P_b}$ मात्रा प्राप्त कर सकती है।

यदि फर्म वस्तु B न खरीदे तो A की $\frac{T}{P_a}$ मात्रा प्राप्त कर सकती है। इन दोनों बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा साधनों के उन समस्त संयोगों को दर्शाती है जो लागत-परिव्यय T पर खरीदे जा सकते हैं। यह रेखा सम-लागत वक्र (isocost curve) कहलाती है।[11]

---

[11] A और B दो साधनों का उपयोग करने वाली एक फर्म के समक्ष पाये जाने वाले सम-लागत वक्रों का सैट निम्न समीकरण से प्रगट किया जा सकता है

$$aP_a + bP_b = T$$

इसका ढाल इस प्रकार होता है :

$$\frac{T/P_b}{T/P_a} = \frac{T}{P_b} \times \frac{P_a}{T} = \frac{P_a}{P_b} \qquad ....(8.3)$$

एक दिए हुए लागत-परिव्यय से प्राप्य अधिकतम उत्पत्ति उस बिन्दु पर होती है जहाँ सर्वोच्च समोत्पत्ति-वक्र को समलागत वक्र छूता है। चित्र 8–7 में फर्म के
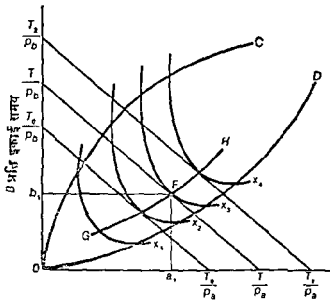
चित्र 8–7 लागत-न्यूनतमकरण

उत्पादन-फलन, साधन-कीमतों के P_a व P_b, और लागत-परिव्यय T के दिए हुए होने पर X की जो अधिकतम मात्रा प्राप्त की जा सकती है वह X_3 होती है। यह A की a_1 और B की b_1 मात्रा पर उत्पादित होती है। X_3 माल उत्पन्न करने वाला कोई भी दूसरा संयोग लागत-परिव्यय T से सम्बन्धित समलागत-वक्र पर ही आएगा, और जब तक P_a और P_b स्थिर रहते हैं तब तक अन्य संयोग लागत-परिव्यय को बढ़ाकर ही प्राप्त किए जा सकते हैं।

साधन A व B की कीमतों के दिये रहने पर, फर्म के लागत-परिव्यय में परिवर्तनों से समलागत वक्र समान्तर रूप से खिसक जायेंगे। यदि लागत-परिव्यय अपेक्षाकृत कम राशि T_0 होता है तो समलागत वक्र बायीं ओर खिसक जायगा। अतः चित्र 8–7 में X_3 मात्रा का उत्पादन करने के लिए T_0 न्यूनतम सम्भव लागत होगी।

यदि लागत-परिव्यय अपेक्षाकृत अधिक राशि T_2 हो तो समलागत-वक्र दायीं ओर खिसक जायेगा और X_4 माल की मात्रा का उत्पादन करने के लिए न्यूनतम सम्भव लागत T_2 होगी। प्रत्येक सम्भव लागत-परिव्यय के लिए GH रेखा जो सन्तुलन के सभी बिन्दुओं (न्यूनतम-लागत साधन संयोगों) को मिलाती है फर्म का विस्तारपथ (expansion-path) कहलाती है।

यदि फर्म उत्पत्ति के एक दिए हुये स्तर के लिए लागत न्यूनतम करना चाहती है तो $MRTS_{ab} = \frac{P_a}{P_b}$ की शर्त पूरी होनी चाहिए। चित्र 8–7 में X_3 समोत्पत्ति वक्र का ढाल समलागत के ढाल के बराबर F बिन्दु पर होता है जहाँ समलागत रेखा इसे स्पर्श करती है। इस प्रकार X_3 माल का उत्पादन करने के लिए लागत-परिव्यय T न्यूनतम सम्भव लागत का सूचक होता है। स्पर्शिता के बिन्दु पर (at the point of tangency) समलागत का ढाल $\frac{P_a}{P_b}$ होता है। इस बिन्दु पर समोत्पत्ति वक्र का ढाल $\frac{MPP_a}{MPP_b}$ होता है। अतएव, F बिन्दु पर X_3 मात्रा का उत्पादन करने के लिए न्यूनतम लागत साधन संयोग $\frac{MPP_a}{MPP_b} = \frac{P_a}{P_b}$ होगा। समीकरण को पुनः जमाते हुए हम इस प्रकार लिख सकते हैं $\frac{MPP_a}{P_a} = \frac{MPP_b}{P_b}$ अतः न्यूनतम सम्भव लागत पर दी हुई उत्पत्ति की मात्रा प्राप्त करने के लिए एक साधन के एक डालर मूल्य की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति प्रयुक्त किये जाने वाले प्रत्येक दूसरे साधन के एक डालर मूल्य की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति के बराबर होनी चाहिए।[12]

---

12. लागत न्यूनतम करने हेतु .

$$T = aP_a + bP_b \qquad ....(1)$$

उत्पत्ति के दिए हुए स्तर के लिए :

$$X_1 = f(a, b) \qquad ...(2)$$

(2) का अवकलन करके प्राप्त करते हैं

$$\frac{d_b}{d_a} = -\frac{f_a}{f_b} \qquad ...(3)$$

बहु-उत्पाद या कई प्रकार की वस्तुएँ (Multiple Products)

जब दो साधन, A और B, दो वस्तुओं, X व Y के उत्पादन मे प्रयुक्त किये जाते हैं तो दोनों उपयोगों के बीच साधनों के कुछ वितरण अन्य वितरणों से ज्यादा कार्यकुशल होंगे। नीचे के विवेचन मे इस बात से कोई अन्तर नही पडता कि वस्तुएँ एक ही फर्म द्वारा उत्पन्न की जाती हैं अथवा विभिन्न फर्मों द्वारा। हम मान लेते है कि साधन A और B की पूर्ति की मात्राएँ प्रति इकाई समयानुसार स्थिर होती हैं, अर्थात् साधनों के पूर्ति वक्र पूर्णतया बेलोच होते है।

चित्र 8–8 मे एजवर्थ बॉक्स यह निश्चित करने के लिए एक सुविधाजनक विधि प्रदान करता है कि कौन-से वितरण सबसे ज्यादा कार्यकुशल होते हैं। मान लीजिए साधन A की मात्रा $O_x\ a_5$ अथवा $O_y\ a'_5$, और साधन B की मात्रा $O_x\ b_5$ अथवा $O_y\ b'_5$ है। जो समोत्पत्ति वक्र X के उत्पादन-स्तर दिखाते हैं वे O_x मूलबिन्दु के

तब a के सन्दर्भ मे T का प्रथम आंशिक अवकलज (first partial derivative) लेने पर हम निम्न प्राप्त करते हैं

$$\frac{\delta T}{\delta a} = P_a - P_b \frac{d_b}{d_a} \qquad ....(4)$$

(3) को (4) मे प्रतिस्थापित करके और अवकलज को शून्य के बराबर करके, हम प्राप्त करते हैं

$$\frac{\delta T}{\delta a} = P_a - P_b \frac{f_a}{f_b} = 0 \qquad ...(5)$$

और आवश्यक न्यूनतम लागत शर्तें इस प्रकार हो जाती हैं

$$\frac{P_a}{P_b} = \frac{f_a}{f_b}, \qquad ....(6)$$

अर्थात्

$$MRTS_{ab} = \frac{P_a}{P_b}, \text{ अथवा } \frac{MPP_a}{P_a} = \frac{MPP_b}{P_b}$$

न्यूनतम लागत को पर्याप्त शर्त यह है कि समोत्पत्ति वक्र व समलागत रेखा के स्पर्शिता के बिन्दु पर, समोत्पत्ति वक्र मूलबिन्दु के उन्नतोदर होगा, अथवा

$$\frac{d^2b}{da^2} > 0 \qquad .(7)$$
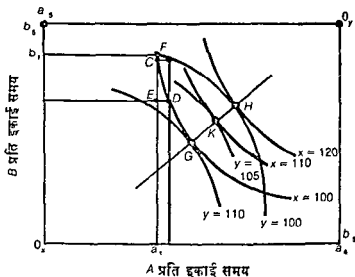
चित्र 8–8 साधनों के कार्यकुशल या दक्षतापूर्ण वितरण
(Efficient Resource Distributions)

उन्नतोदर होते हैं, और जो Y के उत्पादन-स्तर दिखाते हैं वे O_y मूलबिन्दु के उन्नतोदर होते हैं। मान लीजिए दो साधनों का प्रारम्भिक वितरण F बिन्दु से दर्शाया जाता है जहाँ X के उत्पादन में A की $O_x\, a_1$ मात्रा व B की $O_x\, b_1$ मात्रा काम में ली जाती है, और Y के उत्पादन में A की $a_1 a_5$ मात्रा और B की $b_1 b_5$ मात्रा काम में ली जाती है।

क्या X और Y के उत्पादन में उपलब्ध साधनों के ये सर्वश्रेष्ठ संयोग हैं ? प्रत्येक वस्तु के उत्पादन का स्तर 100 इकाई है। F बिन्दु पर X के उत्पादन में X=100 समोत्पत्ति-वक्र का ढाल, अथवा $\frac{MPP_a}{MPP_b}$, Y के उत्पादन में Y=100 समोत्पत्ति वक्र के ढाल, अथवा $\frac{MPP_a}{MPP_b}$ से ज्यादा है। इस सूचना का आशय यह है कि यदि A की एक इकाई Y के उत्पादन में X के उत्पादन में हस्तान्तरित कर दी जाती है और X की मात्रा 100 इकाई पर स्थिर रखी जाती है, तो X के उत्पादन से निकली हुई B की मात्रा Y के उत्पादन में A की एक इकाई के निकल जाने से हुई क्षति की पूर्ति करने के लिए काफी रहती है। उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि चित्र 8–8 में ED एक इकाई A को सूचित करती है जो Y के उत्पादन से X के उत्पादन में

हस्तान्तरित की गई है। यदि X का उत्पादन 100 इकाई के स्तर पर स्थिर रखा जाता है तो B की EF इकाइयाँ X के उत्पादन से निकाल (मुक्त कर) दी जाती है। लेकिन Y की उत्पत्ति को 100 इकाई के स्तर पर स्थिर रखने के लिए A की एक इकाई के हस्तान्तरण से होने वाली क्षति की पूर्ति के लिए B की केवल CF इकाइयों की आवश्यकता होती है। इसलिए यदि X और Y के उत्पादन को प्रारम्भिक स्तरो पर रखा जाता है तो हमारे पास B की EC इकाइयो का आधिक्य (surplus) रह जाता है।

B की मुक्त की गई इकाइयाँ (released units) एक या दोनो वस्तुओ की उत्पत्ति को बढाने मे प्रयुक्त की जा सकती है। यदि X की उत्पत्ति 100 इकाई पर स्थिर रखी जाती है और अतिरिक्त B की मात्रा Y के उत्पादन मे बदली जाती है तो इससे दायी ओर नीचे समोत्पत्ति-वक्र X=100 के आस-पास और 100 इकाई स्तर से ऊपर के Y समोत्पत्ति-वक्र की तरफ गति होती है। Y के उत्पादन से X के उत्पादन मे A के हस्तान्तरण और X के उत्पादन से Y के उत्पादन मे B के हस्तान्तरण को F बिन्दु से G बिन्दु तक करने से X की उत्पत्ति में कमी किये बिना Y की उत्पत्ति बढ कर 110 इकाइयाँ हो जाती है। यदि B की मुक्त हुई इकाइयाँ, Y की मात्रा को 100 इकाई पर स्थिर रख कर, X की मात्रा को बढाने मे प्रयुक्त की जाती हैं तो F से H तक की गति होती है जिससे X का उत्पादन बढ कर 120 इकाई हो जाता है। B की मुक्त की गई इकाइयाँ X और Y दोनो के उत्पादन को बढाने मे प्रयुक्त की जा सकती हैं जिससे G और H के बीच बिन्दु F से K जैसे किसी बिन्दु तक गति होती है जहाँ X समोत्पत्ति वक्र Y समोत्पत्ति-वक्र को स्पर्श करने लगता है। जैसा कि हमने अंकित किया है बिन्दु K, X की 110 इकाइयो और Y की 105 इकाइयो के उत्पादन को सूचित करता है। स्पष्ट है कि इन सभी दशाओ मे जिस कार्यकुशलता से साधनो का उपयोग किया जाता है उसमे वृद्धि हो जाती है।

G, H या K मे से कोई भी बिन्दु पैरेटो इष्टतम (Pereto optimal) माना जायगा। F बिन्दु से इनमे से किसी भी बिन्दु पर साधनो का पुनराबटन या पुर्नवितरण होने से किसी भी वस्तु की उत्पत्ति घटाये बिना कम से-कम एक वस्तु की उत्पत्ति अवश्य बढ जायगी। लेकिन एक बार साधन-वितरण के G, H या K हो जाने पर, और आगे **किसी भी किस्म** के ऐसे हस्तान्तरण नही किये जा सकते जिनमे कम-से कम एक वस्तु की उत्पत्ति न घटे (अर्थात् आगे के हस्तान्तरणो से कम-से कम एक वस्तु की उत्पत्ति अवश्य घटेगी)। अतएव साधनो का पैरेटो इष्टतम वितरण कार्यकुशल (efficient) वितरण कहलाता है।

कार्यकुशल साधन वितरण के लिए जो शर्त पूरी होनी चाहिए वह यह है कि $MPP_{ax}/MPP_{bx}=MPP_{ay}/MPP_{by}$, अर्थात्, जो बिन्दु एजवर्थ बॉक्स म कार्य कुशल वितरण को प्रकट करे वह एक वस्तु के समोत्पत्ति-वक्र व दूसरी वस्तु के समोत्पत्ति वक्र के बीच स्पर्शिता का बिन्दु (point of tangency) होना चाहिए। चित्र 8–8 म आगे बढाया गया GKH प्रसविदा वक्र (Contract curve) ऐसे तमाम बिन्दुओं का पथ (locus) होगा। इस पर कोई भी बिन्दु एक बार प्राप्त किये जाने पर पेरेटो इष्टतम होता है। हम इस विश्लेषण से और ज्यादा निष्कर्ष निकालने का प्रयास नहीं करना है। हमने सिर्फ यही सीखा है कि F जैसा साधनो का कोई भी वितरण जो प्रसविदा वक्र पर नहीं है वह अकार्यकुशल या अदक्ष होता है। दो उपयोगों के बीच साधनों के पुनर्वितरण से एक या दोनो वस्तुओं की उत्पत्ति म वृद्धि की जा सकती है। इससे हम ऐसे वितरण पर चले जाते हैं जो GH जैसे प्रसविदा वक्र के एक भाग पर आता है—यह F बिन्दु से गुजरने वाले समोत्पत्ति वक्रो के चापों (arcs) के बीच म होता है। यह विश्लेषण हमें इस बारे म कुछ नहीं कहता कि समाज X और Y की कितनी कितनी मात्राएँ उत्पन्न करना चाहता है। इस समस्या का हल निकालने के लिए अधिक सूचना का मिलना आवश्यक है।
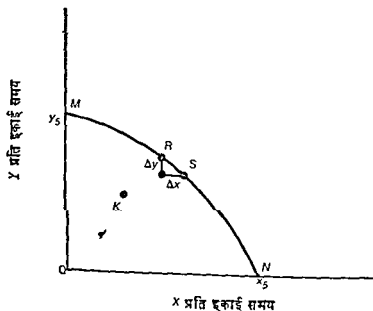
चित्र 8–9 दो वस्तुओं के लिए रूपान्तरण वक्र

(Transformation Curve for Two Products)

रूपान्तरण वक्र (Transformation Curves)

चित्र 8–8 मे प्रसविदा वक्र द्वारा दी जाने वाली सूचना प्राय दो वस्तुओ के लिए रूपान्तरण वक्र के रूप म दिखलाई जा सकती है। यह वक्र वस्तुओ के उन सयोगो को दर्शाता है, जो साधनो की पूर्ति व वस्तुओ को उत्पन्न करने के लिए उपलब्ध साधनो की तकनीको के दिये हुए होने पर, कार्यकुशलता से उत्पन्न किये जा सकते हैं। चित्र 8–8 म, यदि अर्थव्यवस्था म उपलब्ध सभी साधन Y के उत्पादन मे प्रयुक्त किये जाते है तो वस्तु की कुल उत्पत्ति की मात्रा उस Y समोत्पत्ति वक्र से दर्शाई जाती है जो O_x मे से गुजरता है। यदि Y की यह मात्रा Y_5 होती है तो हम चित्र 8–9 मे इस सयोग को M बिन्दु के रूप म अकित कर सकते हैं। Y वस्तु की कुछ मात्रा का त्याग करके ही X वस्तु उत्पादित की जा सकती है और इसके लिए साधनों को Y के उत्पादन से X के उत्पादन म हस्तान्तरित करना होगा। चित्र 8–8 मे उत्तरोत्तर अधिक Y का त्याग करके उत्तरात्तर अधिक X का उत्पादन करने की प्रक्रिया प्रसविदा वक्र पर O_x से O_y की तरफ होन वाली गतिमानता से सूचित की जाती है। परस्पर स्पर्श करने वाले समोत्पत्ति-वक्रो का प्रत्येक जोडा X और Y वस्तुओ के उन सयोगो को बतलाता है जो चित्र 8–9 म रूपान्तरण-वक्र के रूप मे अकित किये गये हैं। X की उत्पत्ति जितनी ज्यादा होगी, Y के उत्पादन की मात्रा उतनी ही कम होगी, अत रूपान्तरण वक्र नीचे दाहिनी तरफ झुकेगा। यदि उपलब्ध साधनो की सम्पूर्ण मात्राएँ X के उत्पादन मे प्रयुक्त की जाती हैं तो प्रति इकाई समयानुसार कुल उत्पत्ति X_5 होगी, जो चित्र 8–9 मे N बिन्दु के द्वारा दर्शाई गई है।

R व S जैसे दो समीप के बिन्दुओ के बीच रूपान्तरण वक्र का निकटतम ढाल $\frac{\Delta Y}{\Delta X}$, X और Y के रूपान्तरण की सीमान्त दर (marginal rate of transformation of X and Y), अथवा MRT_{xy} मापता है।[13] यह Y की उस मात्रा के रूप मे परिभाषित किया जाता है जो X की एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने के लिए त्यागी जानी चाहिए। चित्र 8–9 मे MRT_{xy} को बढता हुआ दिखलाया गया है जिसका आशय यह है कि अर्थव्यवस्था Y की जितनी कम मात्रा व X की जितनी अधिक मात्रा का उत्पादन करने का निर्णय करती है, उसे X की एक अतिरिक्त इकाई उत्पन्न करने के लिए Y की उतनी ही अधिक मात्रा का त्याग करना पडेगा।

---

13 कलन की भाषा मे, रूपातरण वक्र के किसी भी दिये हुए बिन्दु पर MRT_{xy} उस बिन्दु पर वक्र का ढाल होता है, अर्थात् dy / dx होता है।

इस सम्बन्ध का मुख्य स्पष्टीकरण यह है कि अर्थव्यवस्था के साधनो का कुछ अश X के उत्पादन म अधिक विशिष्टीकरण रखता है जबकि अन्य साधन Y के उत्पादन म ज्यादा उपयोगी होते है । जब अर्थव्यवस्था के समस्त साधन Y के उत्पादन म प्रयुक्त हो जाते है, तो X की एक इकाई के उत्पादन म ज्यादा Y का त्याग नही करना पडेगा, चूंकि जो साधन X के उत्पादन म अधिक विशिष्टीकृत होते है उन्ही का हस्तान्तरण किया जाता है । लेकिन X की उत्पत्ति जितनी ज्यादा होती है और Y की उत्पत्ति जितनी कम होती है, उतना ही अधिक यह आवश्यक होगा कि Y के उत्पादन म अधिक विशिष्टीकृत साधन अतिरिक्त X के उत्पादन मे हस्तान्तरित किये जाएँ । परिणामस्वरूप, Y की उत्तरोत्तर अधिक मात्राएँ X की उत्पत्ति मे एक इकाई की वृद्धियो के लिए त्यागी जानी चाहिएँ ।

रूपान्तरण मॉडल समाज को उपलब्ध होने वाले उत्पादन सम्बन्धी चुनावो का एक सुन्दर साराश प्रस्तुत करता है । यदि इसके कुछ साधन बेकार पडे रहते हैं तो वस्तुओ का सयोग K जैसा होगा जो रूपान्तरण वक्र के नीचे होगा । एक या दोनो वस्तुओ की उत्पत्ति किसी भी अन्य वस्तु की उत्पत्ति को घटाये बिना बढायी जा सकती है । साधनो के अकार्यकुशल वितरण से भी यही परिणाम आता है । वक्र के सयोग उन उत्पादन सम्भावनाओ या विकल्पो का दर्शन है जो साधनो के पूर्ण सयोग और कार्यकुशल वितरण अथवा आवटन की स्थिति म पाये जाते हैं । ये पेरेटो इष्टतम उत्पादन की सम्भावनाए होती है ।

साराश

उत्पादन के सिद्धान्त लागत पूर्ति, साधन कीमत निर्धारण व उनके उपयोग साधन आवटन और वस्तु वितरण के विश्लेषण की आधारशिला रखते है । इन विषयो पर आगे के अध्यायो म विचार किया जायगा ।

उत्पादन-फलन शब्द लगाये जाने वाले साधनो और फर्म की उत्पत्ति के बीच भौतिक सम्बन्ध को व्यक्त करता है । उत्पत्ति की मात्रा अशत साधनो की मात्राओ व अशत फर्म के द्वारा प्रयुक्त उत्पादन की तकनीको से निर्धारित होती है । उत्पादन फलन का साराश ग्राफ पर उत्पादन-तल (production surface) के रूप मे दिया जा सकता है और यह दो आयामो म समोत्पत्ति मानचित्र के रूप म दर्शाया जा सकता है ।

अन्य सभी साधनो की मात्राओ को स्थिर रखकर, किसी भी एक साधन की मात्रा का परिवर्तन करके उत्पत्ति पर उसका प्रभाव देखे जा सकते है । जब एक परिवर्ती साधन की मात्रा बढायी जाती है तो ह्रासमान प्रतिफल का नियम क्रियाशील हो जायगा । हमने एक परिवर्तनशील साधन की कुल उत्पत्ति, सीमान्त भौतिक उत्पत्ति

व औसत उत्पत्ति के बीच भेद किया है। परिवर्तनशील साधन की उत्पत्ति अनुसूचियों या उत्पत्ति-वक्रों को तीन अवस्थाओं में विभाजित किया गया है। अवस्था I में वर्द्धमान औसत उत्पत्ति होती है। अवस्था II में परिवर्ती साधन की औसत व सीमान्त भौतिक उत्पत्ति घटती है, लेकिन इसकी सीमान्त भौतिक उत्पत्ति अब भी धनात्मक होती है। अवस्था III में परिवर्ती साधन की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति ऋणात्मक होती है। हमने यह निष्कर्ष निकाला कि एक फर्म के लिए अन्य साधनों के साथ परिवर्ती साधन के केवल उन अनुपातों को काम में लेना आर्थिक दृष्टि से कार्यकुशल होगा जो अवस्था II में होते हैं।

एक फर्म को परिवर्ती साधनों के जिस सुनिश्चित संयोग का उपयोग करना चाहिए, वह उन साधनों के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर व उनकी कीमतों पर निर्भर करेगा। एक दिये हुए लागत परिव्यय के लिए उत्पत्ति को अधिकतम करने के लिए, अथवा उत्पत्ति की एक दी हुई मात्रा की लागत न्यूनतम करने के लिए, साधनों को ऐसे अनुपातों में मिलाया जाना चाहिए ताकि $MRTS_{ab} = \frac{P_a}{P_b}$ हो, अर्थात् एक डालर मूल्य के साधन से प्राप्त सीमान्त भौतिक उत्पत्ति प्रत्येक अन्य साधन पर एक डालर के व्यय से प्राप्त सीमान्त भौतिक उत्पत्ति के बराबर हो।

वस्तुओं के बीच साधनों के उन वितरणों को दर्शाने के लिए जो परेटो इष्टतम अर्थ में कार्यकुशल होते हैं, एजवर्थ बॉक्स का उपयोग उचित होगा। प्राप्त प्रसविदा वक्र रूपान्तरण वक्र को स्थापित करने के लिए आवश्यक सूचना देता है जो अर्थ-व्यवस्था के लिए इष्टतम (optimal) उत्पादन सम्भावनाएँ व्यक्त करता है।

अध्ययन सामग्री

Cassels, John M , "On the Law of Variable Proportions," *Explorations in Economics* (New York McGraw-Hill, Inc., 1936), pp 223–236 Reprinted in *Readings in the Theory of Income Distribution* (Philadelphia : P,Blakiston's Sons & Company, 1946), pp-103—118

Heady, Earl O , *Economics of Agricultural Production and Resource Use* (Englewood Cliffs, N J Prentice-Hall, Inc., 1952), Chap. 2.

Knight, Frank H , *Risk, Uncertainty, and Profit* (Boston : Houghton Mifflin Company, 1921), pp. 94–104.

Tangri, O. P., "Omissions in the Treatment of the Law of Variable Proportions", *American Economic Review*, vol. LVI (June 1966), pp. 484–493.

Weintraub, Sidney, Intermediate Price Theory (Philadelphia : Chilton Company, Book Division, 1964), Chap. 3.

अध्याय 9

उत्पादन लागतें

विशेष वस्तुओ की पूर्ति उनकी उत्पादन-लागतो से निर्धारित होती है। अतएव, पूर्ति को समझने के लिए हमे लागतो को समझना चाहिए। लागत-विश्लेषण की जडें उत्पादन के सिद्धान्तो मे ही पाई जाती हैं। हम इस विवेचन को लागत के अर्थ से प्रारम्भ करेंगे और बाद मे एक वैयक्तिक फर्म के अल्पकालीन और दीर्घकालीन लागत-वक्रो का उल्लेख करेंगे।

लागतों का विचार (The Concept of Costs)

आर्थिक विश्लेषण मे प्रयुक्त उत्पादन की लागतो का विचार इस शब्द के सामान्य अर्थ से थोडा भिन्न होता है। आर्थिक विचार ज्यादा सुनिश्चित और सगत है। सामान्य अर्थ साधारणतया वस्तु के उत्पादन मे लगी मुद्रा के विचार को प्रगट करता है और यह सदैव स्पष्ट नही होता कि व्यय की किन श्रेणियो (categories) को शामिल किया जाय और किनको बाहर रखा जाय। लागत की धारणा जिस रूप मे अर्थशास्त्र मे प्रयुक्त की जाती है, उसका निर्माण कर सकने के लिए हम प्रारम्भ मे वैकल्पिक लागत सिद्धान्त की चर्चा करेंगे और बाद मे लागतो के अव्यक्त या अन्तर्निहित (implicit) और व्यक्त (explicit) पहलुओ पर विचार करेंगे।

वैकल्पिक लागत का सिद्धान्त (The Alternative Cost Principle)

वैकल्पिक लागत सिद्धान्त का मूलभूत विचार पिछले अध्याय मे वर्णित रूपान्तरण वक्र मे शामिल हो चुका है। साधनो के पूर्ण उपयोग की दशाओ मे एव जब साधनो का वस्तुओ व सेवाओ मे कार्यकुशल आवटन होता है तो एक वस्तु की उत्पत्ति मे वृद्धि के लिए यह आवश्यक होता है कि वैकल्पिक वस्तुओ की कुछ मात्राओ का परित्याग किया जाय। यदि एक विशेष किस्म का श्रम कपडा धोने की मशीनो व रेफरीजरेटरो दोनो मे प्रयुक्त होता है तो रेफरीजरेटरो की उत्पत्ति मे वृद्धि करने से कपडा धोने की मशीनो की उपलब्ध मात्रा मे कमी हो जायगी, चूंकि श्रम को उस उपयोग मे से हटाया जायगा। यदि इस्पात का उपयोग गाडियो व फुटबाल के मैदानो (stadiums) के बनाने मे किया जाता है तो फुटबाल के मैदानो को बढाने

से गाडियो के निर्माण के लिए कम इस्पात बच रहता है, जिससे निर्मित गाडियो की सख्या कम हो जाती है। अतएव एक वस्तु की उत्पत्ति के लिए यह आवश्यक है कि वैकल्पिक वस्तुओ के कुछ मूल्य का परित्याग किया जाय।

अर्थशास्त्री एक वस्तु विशेष के उत्पादन-लागत की परिभाषा इस प्रकार करते हैं कि यह उन परित्यक्त वैकल्पिक पदार्थों (foregone alternative products) का मूल्य होती है जिन्हे इस वस्तु के उत्पादन मे प्रयुक्त साधनो के द्वारा उत्पन्न किया जा सकता था। इसे **वैकल्पिक लागत सिद्धान्त**, अथवा **अवसर लागत सिद्धात (opportunity cost principle)** कहा जाता है। एक फर्म के लिए साधनो की लागतें उनके सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक उपयोगो मे होने वाले मूल्यो के बराबर होती हैं। फर्म को साधनो की सेवाएँ प्राप्त करने के लिए इतनी धनराशि अवश्य देनी होगी जो इनके द्वारा वैकल्पिक उपयोगो म अर्जित की जा सकने वाली राशि के बराबर होगी। श्रम से सम्बन्धित पूर्व उदाहरण म कपडा धोने की मशीनो के निर्माण मे श्रम की लागत उन रेफरीजरेटरो के मूल्य के बराबर होगी जो श्रम के द्वारा उत्पन्न किये जा सकते थे। यदि कपडा धोने की मशीनो का उत्पादक श्रम के लिए उतनी राशि नही देता है तो श्रम रेफ्रीजरेटर के उत्पादन म चला जाएगा अथवा इसी मे बना रहेगा। इस्पात का दृष्टान्त भी वैसा ही है। गाडियो के उत्पादको को इस्पात के वैकल्पिक उद्योगो की तरफ से इसे आकर्षित करने के लिए अथवा इच्छित मात्रा मे इसे अपने पास बनाये रखने के लिए, पर्याप्त राशि देनी होगी और अर्थशास्त्री के दृष्टिकोण से गाडी का निर्माण करने वाली फर्म के लिए यही राशि इसकी लागत होगी।

व्यक्त और अव्यक्त या अन्तर्निहित लागतें (Explicit and Implicit Costs)

उत्पादन की **व्यक्त या सुनिश्चित लागतें** फर्म के द्वारा किये जाने वाले वे परिव्यय हैं जिन्हे हम बहुधा इसके खर्चे कह कर पुकारते हैं। इसम फर्म के द्वारा सीधे खरीदे जाने वाले अथवा किराय पर लिये जान वाले साधनो के सुनिश्चित भुगतान आते हैं। फर्म की मजदूरी की लिस्ट (payroll), कच्चे व अर्धनिर्मित माल के भुगतान, विभिन्न किस्म की ऊपरी लागतो (overhead costs) के भुगतान एव ऋण परिशोध कोष (sinking funds) व मूल्य ह्रास खातो म किय जान वाले भुगतान व्यक्त या सुनिश्चित लागतो के दृष्टान्त हैं। ये वे लागतें हैं जिन्हे लेखाकार फर्म के खर्चों की सूची म रखते हैं।

उत्पादन की **अव्यक्त या अन्तर्निहित लागतें** स्वय के स्वामित्व एव स्वय के द्वारा प्रयुक्त साधनो की वे लागतें हैं जिन्हे फर्म के खर्चों का हिसाब लगाने मे प्राय छोड

दिया जाता है। एक अकेले स्वामी का वेतन, जो अपने लिए अलग से कोई वेतन नहीं लगाता है, लेकिन जो अपनी सेवाओं के प्रतिफल के रूप में फर्म के "लाभ" ले लेता है। इसका एक सुन्दर दृष्टान्त है। एक और भी सामान्य किस्म की अव्यक्त लागत एक फर्म के स्वामियों का वह प्रतिफल है जो संयत्र (plant), उपकरण और माल-सूची (inventory) में किये गये विनियोग या निवेश पर प्राप्त होता है।

फर्म के स्वामी के वेतन को लागत के रूप में मानना आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है। वैकल्पिक लागत सिद्धान्त के अनुसार अपनी वस्तु को उत्पन्न करने में एक अकेले स्वामी की सेवाओं की लागत त्यागी गई वैकल्पिक वस्तु का मूल्य है जो इसी स्थिति में किसी दूसरे के लिए काम करके उत्पादित की जा सकती थी। अब हम एक स्वामी के वेतन को फर्म की लागत के अंश के रूप में सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक रोजगार में उसकी सेवाओं के मूल्य के बराबर मानते हैं। यह लागत अव्यक्त लागत है जो "खर्च" परिव्यय का रूप नहीं लेती।

उत्पादन की लागत के रूप में विनियोग या निवेश पर मिलने वाला प्रतिफल अधिक विचित्र किस्म का होता है। विनियोग के प्रतिफल के विषय में प्राय यह सोचा जाता है कि यह उत्पादन की एक लागत होने की बजाय फर्म के लाभ में से उत्पन्न होता है। सबसे सरल स्थिति के रूप में उस अकेले मालिक को लीजिये जिसने अपने व्यवसाय की स्थापना के लिए भूमि इमारत और उपकरण में पूंजी का विनियोग किया है (इनको खरीदा है)। उसके विनियोग का प्रतिफल, जो उस राशि के बराबर होता है जिसे वह उतनी ही मात्रा में अर्थव्यवस्था में अन्यत्र विनियोग करके प्राप्त कर सकता था, उत्पादन की अव्यक्त लागत कहलाता है। यदि वह अपनी पूंजी का विनियोग और कहीं करता तो अपने विनियोग से अन्य वस्तुओं के उत्पादन के लिए साधन खरीद सकता था। वे विनियोग उन वैकल्पिक उपयोगों में जो कुछ प्राप्त कर सकते थे उससे विनियोग का वह प्रतिफल निर्धारित होता है जिसे वहाँ पूंजी का विनियोजन करके अर्जित किया जा सकता था।

बड़े पैमाने पर यही सिद्धान्त एक निगम (corporation) पर भी लागू होता है। स्टॉक होल्डर निगम की भूमि, संयत्र, उपकरण और माल-सूचियों[1] के वास्तविक स्वामी होते हैं। उन्होंने निगम के द्वारा प्रयुक्त साधनों में मुद्रा लगाई है। स्टॉक

1. इसके अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि उन्होंने संयत्र व उपकरण में वृद्धि के लिए ऋण-पत्र (बांड) बेचकर मुद्रा उधार ली हो। इस प्रकार ऋण-पत्रधारियों (बांड होल्डरों) ने भी निगम में अपनी मुद्रा का विनियोजन किया है लेकिन ऋण पत्रों पर ब्याज के भुगतान—ऋण-पत्रधारियों के विनियोगों पर प्रतिफल—व्यक्त या सुनिश्चित भुगतान होते हैं और इसीलिए वे निगम और अर्थशास्त्री के द्वारा लागतों के रूप में दर्ज किए जाते हैं।

होल्डर अर्थव्यवस्था में अन्यत्र विनियोजन करके जो कुछ अर्जित कर सकते थे उसी बराबर के लाभांश अर्थशास्त्री के दृष्टिकोण से उत्पादन की अव्यक्त लागत मान जा हैं। वैकल्पिक लागत-सिद्धान्त के अनुसार, फर्म के द्वारा स्टॉकहोल्डरों के विनियो से प्राप्त साधनों की लागत उन वैकल्पिक पदार्थों का मूल्य होती हैं जिनका परित्या विनियोग को जहाँ का तहाँ रखकर किया गया है। विनियोग को जहाँ का तहाँ रख के लिए निगम को स्टॉकहोल्डरों को उतना प्रतिफल अवश्य देना होगा जो उस राशि के बराबर हो जिसे वे अर्थव्यवस्था में अन्यत्र विनियोजन करके अर्जित कर सकते हैं।

लागतें साधनों की कीमतें एवं कार्यकुशलता

फर्म की उत्पादन-लागतों में साधनों के स्वामियों के व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों प्रकार के दायित्व भी आते हैं। ये दायित्व केवल इतने बड़े होते हैं कि फर्म अपने काम के लिए साधन प्राप्त कर सके और उनको रोके रख सके। प्राय फर्म के 'खर्चों' में केवल व्यक्त या सुनिश्चित दायित्व ही शामिल किये जाते हैं। इस प्रकार अर्थशास्त्री के दृष्टिकोण के अनुसार उत्पादन की लागतें फर्म के लेखे के 'खर्चों' से कुछ भिन्न होती हैं (ये प्राय उनसे अधिक ही होती हैं)।

हमारा लागतों का विवेचन कुछ सीमा तक अत्यधिक सरल होगा। हम उत्पत्ति की विभिन्न वैकल्पिक मात्राओं पर फर्म की उत्पादन लागतों का अध्ययन करेंगे। उत्पत्ति की प्रत्येक मात्रा पर लागतें दो बातों पर निर्भर करती हैं-(1) फर्म को साधनों के लिए कितना भुगतान करना होता है, अर्थात्, साधनों की कीमतें और (2) उत्पादन के लिए साधनों का संयोग करने के लिए उपलब्ध तकनीकें। हम साधनों की कीमत निर्धारण की समस्या को यह मानकर छोड़ देते हैं कि फर्म साधनों की खरीद के सम्बन्ध में शुद्ध रूप से प्रतियोगी होती है। अकेली फर्म एक दिए हुए चालू साधन की कुल मात्रा का इतना छोटा-सा अंश लेती है कि वह स्वयं साधन की कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती। फर्म एक साधन की सम्पूर्ण इच्छित मात्रा प्रति इकाई स्थिर कीमत पर प्राप्त कर सकती है। इस प्रकार उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओं पर लागतों का अन्तर उत्पत्ति की प्रत्येक मात्रा पर फर्म के द्वारा काम में ली जाने वाली तकनीकों की कार्यकुशलता के अन्तरों पर निर्भर करते हैं। फर्म के द्वारा किये गये उत्पत्ति की मात्रा के परिवर्तनों के फलस्वरूप साधनों की कीमतों में उत्पन्न सम्भावित परिवर्तनों से लागतों पर जो प्रभाव पड़ते हैं उन पर आगे चलकर साधनों की कीमत निर्धारण के विवेचन के पश्चात् विचार किया जायगा।

अल्पकालीन व दीर्घकालीन दृष्टिकोण

फर्म के उत्पादन-लागत के विश्लेषण में अल्पकाल व दीर्घकाल के दृष्टिकोणों

अन्तर किया जाता है। ये वस्तुत कालक्रम (calender) के अनुसार अवधि की धारणाएँ न होकर नियोजन (planning) के अनुसार होती हैं, ये उस समयावधि से सम्बन्ध रखती हैं जिस तक फर्म का नियोजन फैला रहता है। हम इनकी क्रमश. जाँच करेंगे।

अल्पकाल

अल्पकाल एक नियोजन अवधि है जो इतनी कम होती है कि फर्म प्रयुक्त किए जाने वाले साधनो मे से कुछ की मात्राओ को परिवर्तित करने मे असमर्थ रहती है। हम चाहे तो एक इतनी छोटी समयावधि की भी कल्पना कर सकते हैं जिसमे किसी भी साधन की मात्रा परिवर्तित न की जा सके। इसके बाद जब हम नियोजन अवधि को बढाते जाते हैं तो किसी साधन की मात्रा मे परिवर्तन करना सम्भव हो जाता है। ज्यो-ज्यो समयावधि मे उत्तरोत्तर वृद्धि की जाती है, अधिकाधिक साधनो की मात्राएँ परिवर्तशील होने लगती हैं और अन्त मे वे सब परिवर्तनशील साधनो की श्रेणी मे आ जाते हैं। वह अवधि जिसमे किसी भी साधन की मात्रा परिवर्तित नही की जा सकती और वह जिसमे एक को छोडकर बाकी सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं—इन दोनो के बीच की समयावधि को अल्पकाल कहा जा सकता है। लेकिन विवेचन की सुविधा की दृष्टि से हम एक अधिक सीमित परिभाषा का ही उपयोग करेंगे।

विभिन्न साधनो की मात्राओ मे परिवर्तन की सम्भावनाएँ उनकी प्रकृति और उनको किराये पर लेने अथवा उनको खरीदने की शर्तों पर निर्भर करती है। भूमि व इमारत जैसे कुछ साधन तो कुछ समय के लिए फर्म के द्वारा पट्टे पर लिये जा सकते हैं, अथवा, यदि इन पर प्रारम्भ से ही स्वामित्व होता है तो अतिरिक्त मात्राओ को प्राप्त करने अथवा कुछ मात्राओ को हटाने मे कुछ समय लग सकता है। चोटी के प्रबन्ध की मात्रा साधारणत शीघ्रतापूर्वक परिवर्तित नही की जा सकती। भारी मशीनरी की मात्रा जो विशेष रूप से फर्म के उपयोग के लिए बनाई गई है, शीघ्रता से बढाई या घटाई नही जा सकती। यह एक विशेष बात है कि शक्ति, श्रम, परिवहन, कच्चा माल और अर्द्धनिर्मित माल जैसे साधनो की मात्राओ मे परिवर्तन के लिए जिस समयावधि की आवश्यकता होनी है वह भूमि, इमारत, भारी मशीनरी और चोटी के प्रबन्ध की मात्राओ मे परिवर्तन के लिए आवश्यक समयावधि से कम होगी।

हम अल्पकाल की जिस धारणा का उपयोग करेंगे वह नियोजन अवधि इतनी छोटी होगी कि उसमे फर्म के पास भूमि, इमारत, भारी मशीनरी और चोटी के प्रबन्ध जैसे साधनो की मात्रा मे परिवर्तन करने का समय नही होगा। ये फर्म के अल्पकालीन "स्थिर साधन" ("fixed resources") होते हैं। हमारी अल्पकाल की धारणाओ मे

श्रम, कच्चा माल और ऐसे ही अन्य साधनों की मात्राओं में परिवर्तन की सम्भावना होती है। ये फर्म के 'परिवर्तनशील साधन" ("variable resources") कहलाते हैं।[2]

जिस काल क्रम (calendar time) को हम अल्पकाल कहते हैं वह अलग अलग उद्योगों में भिन्न भिन्न होता है। कुछ उद्योगों के लिए अल्पकाल वस्तुतः बहुत छोटा होता है। ऐसा उस स्थिति में होता है जब कि उद्योग में एक फर्म के द्वारा प्रयुक्त स्थिर साधनों की मात्राएँ विशेष रूप से छोटी होती हैं अथवा थोड़े समय में बढ़ाई या घटाई जा सकती हैं। इस सम्बन्ध में विभिन्न वस्त्र-उद्योगों व अनेक सेवा उद्योगों के दृष्टान्त लिए जा सकते हैं। अन्य उद्योगों के लिए अल्पकाल कई वर्षों का भी हो सकता है। एक गाड़ी का निर्माण करने वाली फर्म अथवा आधारभूत इस्पात-फर्म की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने में समय लगता है।

प्रयुक्त किए जाने वाले स्थिर साधनों की मात्राएँ फर्म के संयंत्र का आकार (size of the firm's plant) निर्धारित करती हैं।[3] संयंत्र का आकार प्रति इकाई समयानुसार उत्पत्ति की मात्रा की वह ऊपरी सीमा निर्धारित करता है जहाँ तक फर्म उत्पादन करने में समर्थ होती है। लेकिन फर्म उस सीमा तक अपनी उत्पत्ति की मात्रा में संयंत्र के स्थिर आकार में प्रयुक्त किए जाने वाले परिवर्तनशील साधनों की मात्राओं को बढ़ा या घटा कर परिवर्तन कर सकती है।

स्थिर साधनों अथवा संयंत्र की तुलना एक मांस कुचलने की मशीन से की जा सकती है। परिवर्तनशील साधन उस मांस के सदृश होंगे जो उसमें डाला जाता है। प्रति इकाई समयानुसार कुचले हुए मांस की उत्पत्ति बिना कुचले हुए मांस की मात्रा में परिवर्तन करके बदली जा सकती है। लेकिन एक ऊपरी सीमा अवश्य होगी जिसके आगे उत्पत्ति में वृद्धि नहीं की जा सकती, चाहे मशीन में डालने के लिए बिना कुचले हुए मांस की मात्रा कुछ भी क्यों न हो।

पिछले अध्याय के पूंजी व श्रम के दृष्टान्त को अल्पकाल के सन्दर्भ में भी देखा

---

2 स्थिर और परिवर्तनशील साधनों के बीच की विभाजन-रेखा सदैव स्पष्ट नहीं होती है। विभिन्न परिस्थितियों में कुछ साधनों को, जो ऊपर "परिवर्तनशील" माने गए हैं, मात्रा में परिवर्तनों के लिए "स्थिर" कहे जाने वाले कुछ साधनों की तुलना में अधिक समय लग सकता है। उदाहरणार्थ श्रमिक अथवा श्रम की खरीद के लिए संविदा-व्यवस्थाएँ (contractual arrangements) ऐसी हो सकती हैं कि उनकी मात्राओं में शीघ्रतापूर्वक परिवर्तन नहीं किया जा सकता। फिर भी यह सम्भव हो सकता है कि फर्म थोड़े समय पर अपने "स्थिर" साधनों का कुछ अंश पट्टे पर दे सके, अथवा उधार पर दे सके, अथवा बेच सके।

3 संयंत्र शब्द का प्रयोग यहाँ एक व्यापक सन्दर्भ में किया गया है और इसमें फर्म के कार्यकलापों का सारा क्षेत्र शामिल हो जाता है। एक फर्म विभिन्न स्थानों पर कई कारखाने चला सकती है, लेकिन हम इन सबको एक साथ फर्म का 'संयंत्र' ही कहेंगे।

जा सकता है। हम पूंजी की स्थिर मात्रा को सयत्र का स्थिर आधार मान सकते हैं और श्रम की परिवर्तनशील मात्राओं को इसके साथ प्रयुक्त किए गए परिवर्तनशील साधन मान सकते हैं।

दीर्घकाल

दीर्घकाल मे कोई पारिभाषिक कठिनाइयाँ नही आती। फर्म के लिए यह नियोजन अवधि इतनी लम्बी होती है कि वह इसमे प्रयुक्त किए जाने वाले सभी साधनो की मात्राओ मे प्रति इकाई समयानुसार परिवर्तन करने मे समर्थ होती हैं। इस प्रकार सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं। साधनों को स्थिर अथवा परिवर्तनशील नामक वर्गों मे बाँटने की कोई समस्या नही रहती है। फर्म अपने सयत्र के आकार को अपनी इच्छानुसार, बहुत छोटे स्तर से बडे स्तर तक अथवा इसके विपरीत, परिवर्तित कर सकती है। प्राय आकार मे अत्यधिक सूक्ष्म परिवर्तन भी सम्भव होते हैं।

अल्पकालीन लागत-वक्र

अल्पकाल मे साधनो का स्थिर और परिवर्तनशील साधनो के रूप मे वर्गीकरण हमे उनकी लागतो को स्थिर और परिवर्तनशील लागतो मे विभाजित करने मे सहायता देता है। स्थिर लागतें स्थिर साधनो की लागतें होती हैं। परिवर्तनशील लागतें परिवर्तनशील साधनो की लागतें होती हैं। स्थिर और परिवर्तनशील लागतो का अन्तर कुल लागतो, औसत लागतो एव सीमान्त लागतो के विवेचन का आधार होता है जो नीचे प्रस्तुत किया गया है।

कुल लागत-वक्र

अल्पकाल मे फर्म की कुल लागतें अशत उत्पादित माल की मात्रा पर निर्भर करती हैं। कुल लागतो के मुख्य अग कुल स्थिर लागतें व कुल परिवर्तशील लागतें होती हैं। इन पर क्रमश विचार किया जाएगा। कुल स्थिर लागतें—कुल स्थिर लागतें प्रति इकाई समयानुसार फर्म के स्थिर साधनो के प्रति सम्पूर्ण दायित्व को सूचित करती हैं। चूंकि फर्म के पास प्रति इकाई समयानुसार प्रयुक्त किए जाने वाले स्थिर साधनो की मात्राओ को परिवर्तित करने का समय नही रहता है, इसलिए कुल स्थिर लागत एक स्थिर स्तर पर बनी रहती है, चाहे प्रति इकाई समयानुसार उत्पादित माल की मात्रा कुछ भी हो।

उदाहरण के लिए मान लीजिए कि फर्म के अधिकार मे भूमि की कुछ मात्रा होती है। यदि इसका भूमि पर प्रत्यक्ष रूप से स्वामित्व होता है तो यह आवश्यक है कि इसकी लागत फर्म की प्रत्याशित जीवनावधि (expected life) मे परिशोधित (amortize) की जानी चाहिए। परिशोधन लागतें या चुकाने से सम्बन्धित लागतें (amortization

सारणी 9–1 एक फर्म की कुल लागत-अनुसूचियाँ

X की मात्रा	कुल स्थिर लागत	कुल परिवर्तनशील लागत	कुल लागत
1	$ 100	$ 40	$ 140
2	100	70	170
3	100	85	185
4	100	96	196
5	100	104	204
6	100	110	210
7	100	115	215
8	100	120	220
9	100	126	226
10	100	134	234
11	100	145	245
12	100	160	260
13	100	180	280
14	100	206	306
15	100	239	339
16	100	280	380
17	100	330	430
18	100	390	490
19	100	461	561
20	100	544	644

costs) प्रति इकाई समयानुसार स्थिर राशि के रूप में होती हैं और ये फर्म की उत्पत्ति से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। यही सिद्धान्त इमारतों एवं भारी मशीनों पर लागू होता है। छोटी के प्रबन्धकों के वेतन भी अल्पकाल के लिए प्राय. संविदे के द्वारा निश्चित होते हैं और उनका भी फर्म की उत्पत्ति से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

सारणी 9–1 में एक काल्पनिक कुल स्थिर लागत-अनुसूची प्रस्तुत की गई है, और तदनुरूप कुल स्थिर लागत-वक्र चित्र 9–1 में अंकित किया गया है। स्मरण रहे कि कुल स्थिर लागत-वक्र मात्रा-अक्ष (quantity axis) के समान्तर (parallel) होता है और कुल स्थिर लागत के बराबर मात्रा तक यह इससे ऊपर पाया जाता है।

कुल परिवर्तनशील लागतें—कुल परिवर्तनशील लागतें परिवर्तनशील साधनों के सम्बन्ध में दायित्व होते हैं। ये उत्पत्ति की मात्रा पर निर्भर करते हैं और फर्म की उत्पत्ति में वृद्धि होने से इनमें अनिवार्यतः वृद्धि होती है। अधिक मात्रा में उत्पत्ति करने के लिए परिवर्तनशील साधनों की अधिक मात्राओं की आवश्यकता होती है,
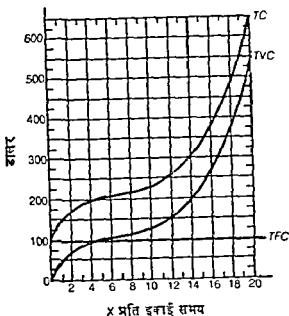
चित्र 9–1 एक फर्म के कुल लागत-वक्र

और इसी वजह से लागत के दायित्व भी अपेक्षाकृत बड़े होते हैं। उदाहरणार्थ, एक तेल शोधक कारखाने की उत्पत्ति जितनी अधिक होती है इसे बिना साफ किए हुए या क्रूड तेल की उतनी ही अधिक मात्रा खरीदनी पड़ती है, और परिणामस्वरूप बिना साफ किए हुए तेल की लागत उतनी ही अधिक होती है। सारणी 9–1 में एक काल्पनिक कुल परिवर्तनशील लागत अनुसूची दिखलाई गई है। चित्र 9–1 में TVC उसके अनुरूप कुल परिवर्तनशील लागत-वक्र है। ये फर्म की कुल परिवर्तनशील लागतों के उस लक्षण को दिखलाते हैं जो उनमें प्रायः विशेष रूप से पाया जाता है। उत्पादन के एक विशेष स्तर तक फर्म की उत्पत्ति की मात्रा और परिवर्तनशील साधनों की इकाइयों में वृद्धि के साथ-साथ इनमें होने वाली वृद्धि की दरें घटती जाती

हैं। उत्पादन के उस स्तर से आगे कुल परिवर्तनशील लागत में वृद्धि की दर बढ़ती जाती है। सारणी 9-1 में और चित्र 9-1 में उत्पत्ति की 7 इकाइयों तक कुल परिवर्तनशील लागत में अधिक वृद्धियाँ उत्तरोत्तर घटती जाती हैं। उत्पत्ति की 8 इकाइयों के बाद अधिक वृद्धियाँ निरन्तर अधिक होती जाती हैं।

सारणी 9-1 में प्रदर्शित कुल परिवर्तनशील लागत में परिवर्तन और चित्र 9-1 के कुल परिवर्तनशील लागत-वक्र की आकृति परिवर्तनशील साधनों के वर्द्धमान व ह्रासमान प्रतिफलों को सूचित करते हैं। ये प्रतिफल फर्म के दिए हुए आकार के संयत्र के साथ स्थिर साधनों के सहित परिवर्तनशील साधनों की उत्तरोत्तर अधिक मात्राएँ प्रयुक्त करने में प्राप्त होते हैं। एक सरल स्थिति पर विचार करें जिसमें फर्म केवल एक परिवर्तनशील साधन, साधन A, का उपयोग करती है। चित्र 9-2 के दाहिनी तरफ A के लिए एक परम्परागत कुल उत्पत्ति वक्र खींचा गया है जो a_3 मात्राओं तक A साधन के लिए वर्द्धमान प्रतिफल और अधिक मात्राओं के लिए ह्रासमान प्रतिफल दिखलाता है। TP_a वक्र पर वक्राकृति के परिवर्तन का बिन्दु (point of inflection) F पर होता है।

परिवर्तनशील साधन A की कीमत का पता लगते ही TP_a वक्र आसानी से फर्म के कुल परिवर्तनशील लागत वक्र में परिवर्तित किया जा सकता है। मान लीजिए A की कीमत Pa_1 है, ताकि A की दी हुई मात्रा (input) के लिए कुल परिवर्तनशील लागत A की मात्रा को इसकी कीमत से गुणा करके प्राप्त की जाती है। कुल परिवर्तनशील लागत (A का डालर मूल्य) को क्षैतिज अक्ष पर मापिए जो मूलबिन्दु के बायीं ओर फैला हुआ है। जब A की a_1 मात्रा का प्रयोग किया जाता है तो कुल परिवर्तनशील लागत $a_1 \times P_1$ होती है, और तदनुरूप उत्पत्ति की मात्रा X_1 होती है। बायें रेखाचित्र पर ये निर्देशांक (coordinates) फर्म के कुल परिवर्तनशील लागत वक्र पर D' बिन्दु स्थापित करते हैं। E^1, F^1, व G^1 बिन्दु इसी विधि से स्थापित किए जाते हैं और ऐसे सभी बिन्दु मिलकर फर्म के कुल परिवर्तनशील लागत वक्र का निर्माण करते हैं।

बायें रेखाचित्र में TVC वक्र दायें रेखाचित्र के TP_a वक्र का प्रतिबिम्ब है। उदाहरण के लिए, यदि $Pa_1 = \$1$ हो तो क्षैतिज अक्ष की जो दूरी मूलबिन्दु के दाहिनी ओर A की एक इकाई को मापती है उसको मूलबिन्दु के बायीं तरफ A की $1 मूल्य की मात्रा को मापने वाली दूरी के बराबर कर लेने पर प्रतिबिम्ब सही पड़ता है। TVC पर वक्राकृति के मोड़-बिन्दु (point of inflection) F^1, TP_a पर F का सुनिश्चित प्रतिरूप होता है। दोनों वक्र मूलबिन्दु से अपनी आकृति के मोड़ बिन्दुओं (inflection points) तक ऊपर की ओर नतोदर होते हैं और

इन बिन्दुओ से परे नीचे की ओर नतोदर होत है, क्योंकि a_3 मात्राओ तक A पर वर्द्धमान प्रतिफल मिलते हैं और इससे अधिक की मात्राओ पर ह्रासमान प्रतिफल मिलते हैं। यदि हम रेखाचित्र की बायी दिशा को 90° घडी क क्रम म घुमाते हैं और वस्तु अक्ष को क्षैतिज अक्ष हो जाने देते है तो TVC वक्र चित्र 9–1 के जैसी आकृति ही ले लेता है। यह वक्र की आकृति क माड-बिन्दु तक नीचे की ओर नतोदर होता है और उस बिन्दु से परे ऊपर की ओर नतोदर होना है।

व्यवहार मे एक फर्म एक की बजाय कई परिवर्तनशील साधनो का उपयोग करती है, लेकिन कार्यशील सिद्धान्त वही होन हैं जो एक साधन के दृष्टान्त मे पाये जाते हैं। सयत्र के दिये हुए आकार के साथ हम प्रयुक्त किये जाने वाले परिवर्तनशील साधनो के बढते हुए सम्मिश्रण (complex) की भाषा म सोच सकते है। यदि हम बहुत छोटे सम्मिश्रण से प्रारम्भ करत हैं तो परिवतनशील साधनो से वद्धमान प्रतिफल मिल सकत हैं। पूरे सम्मिश्रण पर परिव्यया म समान वृद्धिया से उत्पत्ति मे उत्तरोत्तर अधिक वृद्धियाँ हो सकती हैं-और परिणामस्वरूप TVC वक्र नीचे की ओर उन्नतोदर होगा। लेकिन ज्यो ज्यो अधिक परिव्यय किय जात हैं, सम्मिश्रण (complex) से ह्रासमान प्रतिफल लागू हो जाते है-TVC म समान वृद्धियो से उत्पत्ति मे उत्तरोत्तर कम वृद्धिया होती हैं-और TVC वक्र ऊपर की ओर नतोदर
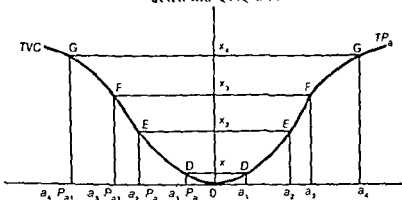
चित्र 9–2 TVC वक्र और परिवर्ती साधनो के कुल उत्पत्ति वक्र के बीच सम्बन्ध

हो जाता है। उत्पत्ति की किसी मात्रा पर सयत्र का स्थिर आकार उत्पादन की अधिकतम निरपेक्ष (absolute) क्षमता प्राप्त कर लेगा। अब कुल परिवर्तनशील

लागत-वक्र सीधा ऊपर की ओर जाता है। परिवर्तनशील साधनों की अन्य और प्रति मात्राओं के लिए बढ़े हुए दायित्वों से उत्पत्ति में तनिक-भी वृद्धि नहीं होती है।

कुल लागतें उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओं के लिए फर्म की कुल लागतें उन मात्राओं के लिए कुल स्थिर लागतों और कुल परिवर्तनशील साधनों का योग होती हैं। सारणी 9–1 में कुल लागत का कॉलम उत्पत्ति की प्रत्येक मात्रा पर कुल स्थिर लागत और कुल परिवर्तनशील लागत को जोड़कर प्राप्त किया गया है। इसी प्रकार चित्र 9–1 में कुल लागत-वक्र, TFC वक्र और TVC वक्र को लम्बवत जोड़कर प्राप्त किया गया है। TC वक्र और TVC वक्र दोनों की आकृति अनिवार्यतः एक-सी होती है, इसका कारण यह है कि प्रति इकाई समयानुसार उत्पत्ति में होने वाली प्रत्येक वृद्धि से कुल लागत और कुल परिवर्तनशील लागत में एक-सी मात्रा में ही वृद्धि होती है। उत्पत्ति की वृद्धि कुल स्थिर लागत को प्रभावित नहीं करती। TC वक्र उत्पत्ति की समस्त मात्राओं पर TFC के बराबर राशि तक TVC वक्र से ऊपर बना रहता है।[4]

प्रति इकाई लागत-वक्र

कीमत और उत्पत्ति-विश्लेषण में प्रति इकाई लागत-वक्र विस्तृत रूप से प्रयुक्त होते हैं—ये कुल लागत-वक्र से ज्यादा प्रयुक्त होते हैं। प्रति इकाई लागत-वक्र मूलतः वही सूचना प्रदान करते हैं जो कुल लागत-वक्रों के द्वारा प्रदान की जाती हैं, लेकिन ये उसे एक भिन्न रूप में प्रदान करते हैं। प्रति इकाई लागत-वक्र इस प्रकार होते हैं : औसत स्थिर लागत-वक्र, औसत परिवर्तनशील लागत-वक्र, औसत लागत-वक्र, और सीमान्त लागत-वक्र।

औसत स्थिर लागतें—औसत स्थिर लागतें अथवा उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओं पर प्रति इकाई उत्पत्ति के अनुसार स्थिर लागतें कुल स्थिर लागत को उत्पत्ति की उन मात्राओं से विभाजित करने में प्राप्त होती है। इस प्रकार सारणी 9–2 का औसत स्थिर लागत कॉलम सारणी 9–1 के कुल स्थिर लागत कॉलम को X की विभिन्न मात्राओं में विभाजित करके प्राप्त किया गया है। चित्र 9–3 में औसत स्थिर लागत-अनुसूची AFC वक्र के रूप में अंकित की गई है।

---

4 कुल लागत-फलन गणितीय रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है
जिसमें :

$$C = K + f(X)$$

$$TC = C$$

$$TFC = K$$

$$TVC = f(X)$$

सारणी 9–2 एक फर्म की प्रति इकाई लागत अनुसूचियाँ

X की मात्रा	औसत स्थिर लागत AFC	औसत परिवर्तनशील लागत AVC	औसत लागत AC	सीमान्त लागत MC
1	$ 100 00	$ 40 00	$ 140 00	—
2	50 00	35 00	85 00	30
3	33 33	28 33	61 66	15
4	25 00	24 00	49 00	11
5	20 00	20 80	40 80	8
6	16 67	18 33	35 00	6
7	14 29	16 43	30 72	5
8	12 50	15 00	27.50	5
9	11 11	14 00	25 11	6
10	10 00	13 40	23 40	8
11	9 09	13 18	22 27	11
12	8 33	13 33	21 66	15
13	7 69	13 85	21 54	20
14	7 14	14 72	21 86	26
15	6 67	15 93	22 60	33
16	6 25	17 50	23 75	41
17	5 88	19 41	25 29	50
18	5 55	21 67	27 22	60
19	5 26	24 27	29 53	71
20	5 00	27 20	32 20	83

फर्म की उत्पत्ति जितनी अधिक होगी औसत स्थिर लागत अपेक्षाकृत उतनी ही कम होगी। चूँकि कुल स्थिर लागत उतनी ही रहती है चाहे उत्पत्ति कितनी भी हो, इसलिए स्थिर लागतें उत्पत्ति की अधिक इकाइयों पर फैला दी जाती हैं और परिणामस्वरूप उत्पत्ति की प्रत्येक इकाई का अंश अपेक्षाकृत कम होता है। इसलिए औसत स्थिर लागत वक्र अपनी सम्पूर्ण दूरी तक दाहिनी तरफ नीचे की ओर झुकता है। ज्यों-ज्यों उत्पत्ति समय की प्रति इकाई के अनुसार बढती जाती है, यह मात्रा-अक्ष के समीप तो जाती है लेकिन कभी भी उस तक पहुँच नहीं पाती। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन फर्मों की स्थिर लागत अधिक होती हैं—उदाहरणार्थ, रेलवे (railroads) जिसे मार्ग एवं रोलिंग स्टॉक पर भारी मात्रा में स्थिर व्यय
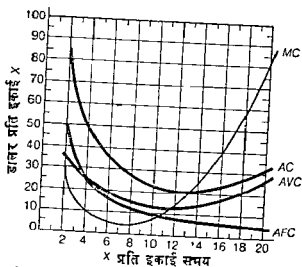
चित्र 9–3 एक फर्म के प्रति इकाई लागत-वक्र

करना होता है–अधिक मात्रा में उत्पत्ति करके प्रति इकाई उत्पत्ति स्थिर लागतों में काफी कमी कर सकती है।

औसत परिवर्तनशील लागतें जिस प्रकार प्रति इकाई उत्पत्ति पर स्थिर लागतें आकी जाती है उसी प्रकार प्रति इकाई उत्पत्ति पर परिवर्तनशील लागतें भी आंकी जा सकती हैं। सारणी 9–2 का **औसत परिवतनशील लागत** का कॉलम सारणी 9–1 की विभिन्न उत्पत्ति की मात्राओं पर कुल परिवर्तनशील लागत को उत्पत्ति की उन मात्राओं से विभाजित करके प्राप्त किया गया है। रेखाचित्र पर अंकित किये जाने से सारणी 9–2 का औसत परिवर्तनशील लागत-कॉलम चित्र 9–3 का AVC वक्र बन जाता है।

औसत परिवर्तनशील लागत-वक्र प्राय U आकृति का होता है। इसकी U आकृति उत्पादन के सिद्धान्तों की सहायता से समझाई जा सकती है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि एक कारखाना लगभग सौ श्रमिकों को काम दे सकता है। संयत्र का आकार स्थिर है और केवल श्रम ही एक परिवर्तनशील साधन है। यदि केवल एक ही व्यक्ति को काम पर लगाया जाता है तो उत्पादित माल की मात्रा बहुत कम होगी, लेकिन यदि एक अतिरिक्त व्यक्ति को काम पर और लगाया जाता है तो दोनों किये जाने वाले कामों को बांट लेते हैं, और एक व्यक्ति की उत्पत्ति के दुगुने से भी अधिक मात्रा में माल उत्पन्न कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, अतिरिक्त व्यक्ति को रोजगार देने से श्रम की औसत उत्पत्ति में वृद्धि होती है। यदि श्रम-सम्बन्धी (परिवर्तनशील) लागतों को दुगुना करने से उत्पत्ति दुगुने से अधिक हो जाती है, तो प्रति इकाई उत्पत्ति के अनुसार श्रम-सम्बन्धी लागतें (औसत

परिवर्तनशील लागतें) घट जायेंगी । इस प्रकार श्रम के लिए अवस्था I मे सर्वत्र प्रति श्रमिक औसत उत्पत्ति बढती है और औसत परिवर्तनशील लागते घटती है। जब अवस्था II मे प्रवेश करने के लायक पर्याप्त व्यक्ति काम पर लगा दिये जाते है, तो श्रम की औसत उत्पत्ति घटती है, अथवा, इसे हम यो भी कह सकते है कि औसत परिवर्तनशील लागतें बढती है । इस प्रकार इस स्थिति मे औसत परिवर्तनशील लागत-वक्र श्रम के औसत उत्पत्ति-वक्र का एक तरह का मुद्रारूपी दर्पण-प्रतिविम्ब ही होगा ।

जब एक फर्म कई परिवर्तनशील साधनो का सम्मिश्रण (complex) प्रयोग मे लाती है तब भी वे ही सामान्य सिद्धान्त लागू होते है । सम्मिश्रण मे लगाई जाने वाली छोटी इकाइयो के लिए प्रति इकाई लागत परिव्यय के अनुसार उत्पत्ति या सम्मिश्रण की "औसत उत्पत्ति" बढेगी, जिसका आशय यह है कि औसत परिवर्तनशील लागतें घटेगी । जब साधनो की इकाइयां और बढायी जाती है तो "औसत उत्पत्ति" एक अधिकतम विन्दु पर पहुँच जाती है और उसके बाद घटती है । इसी के अनुरूप औसत परिवर्तनशील लागतें एक न्यूनतम विन्दु पर पहुँच जाती है और उसके बाद बढती हैं ।

जब एक फर्म के द्वारा परिवर्तनशील साधनो का एक सम्मिश्रण प्रयुक्त किया जाता है तो इन साधनो के पारस्परिक सयोगो अथवा अनुपातो पर भी विचार किया जाना चाहिये । मान लीजिए एक फर्म जिसके लागत-वक्र चित्र 9–3 मे खीचे गये हैं, तीन परिवर्तनशील साधनो–A,B, और C– का उपयोग सयन के दिये हुए आकार के साथ करती है । साधनो की कीमतें क्रमश P_a , P_b और P_c हैं । यदि फर्म की उत्पत्ति छः इकाई होनी है और इस उत्पत्ति पर इसकी औसत परिवर्तनशील लागत कम से कम ($ 18.33) की जानी है तो परिवर्तनशील साधनो को निम्न अनुपातो मे मिलाया जाना चाहिये :

$$\frac{MPP_a}{P_a} = \frac{MPP_b}{P_b} = \frac{MPP_c}{P_c}$$

यदि वे इन अनुपातो मे नही मिलाये जाते है तो उस उत्पत्ति पर औसत परिवर्तनशील लागत $ 18.33 से अधिक होगी । इसी तरह औसत परिवर्तनशील लागत-वक्र पर प्रत्येक विन्दु तभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि फर्म, उत्पत्ति की प्रत्येक मात्रा के लिए जिस पर ये विन्दु स्थित होते हैं, परिवर्तनशील साधनो को उचित अनुपातो मे मिलाये । यदि फर्म ऐसा करने मे विफल रही तो लागतें ऊँची होगी ।

औसत लागतें–औसत लागतें अथवा प्रति इकाई उत्पत्ति के अनुसार समस्त

लागतें दो तरह से निकाली जा सकती हैं। सारणी 9–1 में उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओं पर कुल लागतों को सम्बन्धित उत्पत्ति की मात्राओं से विभाजित करके सारणी 9–2 का औसत लागत कॉलम प्राप्त किया जाता है। वैकल्पिक रूप में सारणी 9–2 में उत्पत्ति की प्रत्येक मात्रा पर औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्तनशील लागत को जोड़कर औसत लागत का कालम प्राप्त किया जाता है। रेखाचित्र के रूप में चित्र 9–3 में AC वक्र सारणी 9–2 के औसत लागत कॉलम को सूचित करता है जो उत्पत्ति की मात्राओं के अनुसार अंकित किया गया है। AC वक्र, AFC वक्र और AVC वक्र का लम्बवत् जोड़ (vertical summation) भी होता है।

औसत लागत-वक्र भी प्रायः U-आकृति का वक्र ही समझा जाता है। इसकी U-आकृति उस कार्यकुशलता पर निर्भर करती है जिससे द्वारा स्थिर और परिवर्तनशील साधनों का उपयोग किया जाता है। संयन्त्र के आकार के दिये हुए होने पर फर्म की उत्पत्ति जितनी अधिक होती है, स्थिर साधनों की सामूहिक रूप से कार्यकुशलता उतनी ही अधिक होती है, अर्थात्, औसत स्थिर लागत कम हो जाती है। चित्र 9–3 में उत्पत्ति की 11 इकाइयों तक परिवर्तनशील साधन उत्तरोत्तर अधिक कार्यकुशलता से प्रयुक्त किये जाते हैं। उत्पत्ति की इस मात्रा तक औसत लागत घटती जाती है, क्योंकि स्थिर और परिवर्तनशील दोनों साधनों की कार्यकुशलता बढ़ती जाती है। 11 और 13 इकाइयों के बीच औसत स्थिर लागत तो घटती है, लेकिन परिवर्तनशील साधनों के कम कार्यकुशल हो जाने से औसत परिवर्तनशील लागत बढ़ती है। लेकिन औसत स्थिर लागत की कमियाँ औसत परिवर्तनशील लागत की वृद्धियों से अधिक बनी रहती हैं जिससे औसत लागत की गिरावट जारी रहती है। प्रति इकाई समयानुसार उत्पत्ति की 13 इकाइयों से परे परिवर्तनशील साधनों की कार्यकुशलता में ह्रास वाली कमियाँ स्थिर साधनों की कार्यकुशलता की वृद्धियों से आगे निकल जाती हैं जिससे औसत लागत बढ़ती है। यहाँ हमें प्रसंगवश इस स्पष्ट बात पर ध्यान देना है कि औसत परिवर्तनशील लागत-वक्र पर न्यूनतम बिन्दु औसत लागत-वक्र के न्यूनतम बिन्दु की तुलना में ज्यादा नीचे उत्पत्ति के स्तर पर आता है।[5]

---

5. औसत लागत फलन फुटनोट 4 से कुल लागत फलन को उत्पत्ति से विभाजित करके प्राप्त किया जाता है

$$\frac{C}{X}=\frac{K}{X}+\frac{f(X)}{X}$$

सीमान्त लागत–उत्पत्ति मे एक इकाई के परिवर्तन से कुल लागतो मे जो परिवर्तन होता है वह सीमान्त लागत कहलाता है। इसको इतने ही सही रूप म हम यो भी परिभाषित कर सकते है कि यह कुल परिवर्तनशील लागतो का वह परिवर्तन है जो उत्पत्ति म एक इकाई के परिवर्तन से उत्पन्न होता है क्योकि उत्पत्ति की मात्रा मे परिवर्तन होने से कुल परिवर्तनशील लागतो और कुल लागतो मे एक सी मात्रा मे परिवर्तन होते हैं। सीमान्त लागत किसी भी रूप मे स्थिर लागतो पर निर्भर नही करती है। सारणी 9–2 का सीमान्त लागत कॉलम सारणी 9–1 के कुल परिवर्तनशील लागत कॉलम अथवा कुल लागत कॉलम से बनाया जा सकता है। यह चित्र 9–3 मे MC के रूप मे ग्राफ पर अंकित किया गया है।
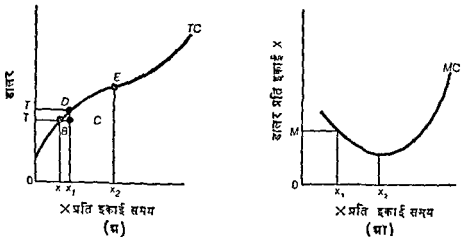
चित्र 9-4 MC और TC का सम्बन्ध

चित्र 9–4 सीमान्त लागत-वक्र व कुल लागत-वक्र जिससे यह निकाला गया है, के सम्बन्ध को दर्शाता है। चित्र 9–4 (अ) के कुल लागत चित्र पर X उत्पत्ति को लीजिए। इस उत्पत्ति पर कुल लागत T है। अब उत्पत्ति मे एक इकाई की वृद्धि

जहाँ $$AC=\frac{C}{X}$$

$$AFC=\frac{K}{X}$$

$$AVC=\frac{f(X)}{X}$$

है। चित्र 9–4 (अ) में TC वक्र का ढाल शून्य और उत्पत्ति X_2 के बीच में घटता है (यद्यपि TC बढ़ती जाती है) और X_2 से आगे यह ढाल बढ़ता है। इस प्रकार उत्पत्ति के बढ़ने पर सीमान्त लागत शुरू में घटती है और इसके बाद बढ़ती है।

MC का AC और AVC से सम्बन्ध

सीमान्त लागत-वक्र का औसत लागत-वक्र से, जो उसी कुल लागत-वक्र से निकाला जाता है, एक विशेष ढंग का सम्बन्ध होता है। जब उत्पत्ति के बढ़ने से AC घटती है तो MC रेखा AC से कम होती है। जब उत्पत्ति के बढ़ने से AC बढ़ती है तो MC रेखा AC से ऊँची होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उत्पत्ति की जिस मात्रा पर AC न्यूनतम होती है वहां MC भी AC के बराबर होती है। ये सम्बन्ध चित्र 9–5 में दर्शाये गए हैं।

उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि फर्म की उत्पत्ति x है। इसकी औसत लागत OC है। हम जानते हैं कि उत्पत्ति की किसी भी मात्रा पर औसत लागत उस उत्पत्ति की कुल लागत में उत्पत्ति की मात्रा से विभाजित करने से प्राप्त परिणाम के बराबर होती है; इसलिए x उत्पत्ति की मात्रा पर OC=TC/x होती है। मान लीजिए अब उत्पत्ति में एक इकाई की वृद्धि करके यह x_1 कर दी जाती है और कुल लागत में वृद्धि OM_1 के बराबर होती है जो x_1 इकाई की सीमान्त लागत होती है। आगे
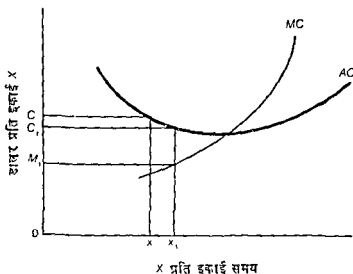
चित्र 9–5 MC और AC का सम्बन्ध

मान लीजिए, जैसा चित्र 9–5 में बतलाया गया है कि x_1 इकाई की सीमान्त लागत x इकाइयों की औसत लागत OC से कम होती है। चूँकि प्रति इकाई समयानुसार

उत्पत्ति की अतिरिक्त इकाई कुल लागत मे x इकाइयो की औसत लागत की अपेक्षा कम मात्रा म वृद्धि करती है, इसलिए x_1 इकाइयो की औसत लागत x इकाइयों की औसत लागत से अवश्यमेव कम होगी । लेकिन x_1 इकाइयो की औसत लागत x_1 इकाई की सीमान्त लागत के जितनी नीची नही आ जाएगी । इस प्रकार $OC_1 < OC$, लेकिन $OC_1 > OM_1$ होगी अथवा, जब औसत लागत घटती है तो सीमान्त लागत अनिवार्यत औसत लागत से कम होती है । इसी तरह जब उत्पत्ति की एक अतिरिक्त इकाई से कुल लागत मे होने वाली वृद्धि पुरानी औसत लागत के बराबर होती है, तो नई औसत लागत पुरानी के बराबर होगी और यह उत्पत्ति की अतिरिक्त इकाई की सीमान्त लागत के भी बराबर होगी । यह भी सही है कि जब उत्पत्ति की एक अतिरिक्त इकाई से कुल लागत मे प्रारम्भिक औसत लागत से ज्यादा वृद्धि होती है, तो नई औसत लागत प्रारम्भिक औसत लागत से तो अधिक होगी, लेकिन यह अतिरिक्त इकाई की सीमान्त लागत से कम होगी । इन सम्बन्धो की सत्यता सारणी 9–2 व चित्र 9–3 की सहायता से प्रमाणित की जा सकती है ।

सीमान्त लागत और औसत परिवर्तनशील लागत के सम्बन्ध ठीक वैसे ही होंगे जैसे कि सीमान्त लागत और औसत लागत के होते हैं और इसके लिए कारण भी वही होंगे । जब औसत परिवर्तनशील लागत घटती है तो सीमान्त लागत औसत परिवर्तनशील लागत से कम होगी । औसत परिवर्तनशील लागत के न्यूनतम होने पर, सीमान्त लागत और औसत परिवर्तनशील लागत बराबर होती हैं । औसत परिवर्तनशील लागत के बढने पर सीमान्त लागत औसत परिवर्तनशील लागत से अधिक होती है । इन सम्बन्धो की सत्यता भी सारणी 9–2 और चित्र 9–3 की सहायता से प्रमाणित की जा सकती है ।

प्रति इकाई अल्पकालीन लागत-वक्रो का सम्पूर्ण समूह चित्र 9–3 मे प्रस्तुत किया गया है । सीमान्त लागत-वक्र औसत परिवर्तनशील लागत-वक्र और औसत लागत-वक्र को उनके न्यूनतम बिन्दुओ पर काटता है । स्थिर लागतो मे वृद्धि होने से औसत लागत वक्र ऊपर की ओर दाहिनी तरफ इस तरह से खिसक जाएगा कि सीमान्त लागत-वक्र फिर भी इसे इसके न्यूनतम बिन्दु पर ही काटेगा । सीमान्त लागत-वक्र म कोई परिवर्तन नही होगा क्योकि सीमान्त लागत स्थिर लागत से स्वतन्त्र होती है ।[6]

6. कुल लागत फलन से प्रारम्भ करके

$$C = K + f(x)$$

सीमान्त लागत-फलन इस प्रकार हो जाता है

$$\frac{dC}{dx} = f'(x)$$

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, जब एक फर्म अपनी उत्पत्ति मे परिवर्तन करती है तो अल्पकालीन लागतो के प्रमुख अगो म होने वाले परिवतन, फर्म के द्वारा प्रयुक्त किए जाने वाले विभिन्न साधना म से प्रत्येक के लिए दी जाने वाली प्रति इकाई कीमत के परिवर्तनो पर तनिक भी निर्भर नही करते । हमने प्रारम्भ मे ही यह मान लिया था कि फर्म किसी भी साधन की सारी इच्छित मात्रा प्रति इकाई स्थिर कीमत पर प्राप्त कर सकती है, अर्थात्, यह उनको शुद्ध प्रतिस्पर्धा की दशाओ म खरीदती है। यहाँ प्रस्तुत की गई अल्पकालीन वक्रो की आकृतियाँ एकमात्र उस कार्यकुशलता की सूचक होती हैं जिसके द्वारा इन साधनो का उपयोग सयत्र के एक दिए हुए आकार के साथ प्राप्य वैकल्पिक उत्पत्ति की मात्राओ पर किया जा सकता है।

फिर भी वास्तविक जगत् मे हमे ऐसी बातें देखने को मिलती है जैसे फर्म के द्वारा बडी मात्रा मे खरीदे जाने वाले साधनो पर मात्रा के अनुसार बट्टा काटा जाता है। यह साधनो की खरीद मे शुद्ध प्रतिस्पर्धा से दूर जाने अथवा उन मान्यताओं से दूर जाने का सूचक होता है जिन पर हमारे लागत-वक्र टिके हुए है। मात्रा के अनुसार बट्टा काटे जाने पर कुल परिवर्तनशील लागत वक्र और कुल लागत-वक्र उत्पत्ति के बढाए जाने पर उस स्थिति की अपेक्षा कम बढेंगे जबकि ऐसा नही होता । इसी प्रकार मात्रा के अनुसार बट्टा काटने से औसत परिवर्तनशील लागत वक्र और औसत लागत-वक्र, उत्पत्ति के बढाए जाने पर उस स्थिति की अपेक्षा अधिक गिरावटें और बाद मे

अत यह K पर किसी भी तरह निर्भर नहीं करता । यदि औसत लागत घटती है तो

$$\frac{d\left(\frac{C}{X}\right)}{dx} = \frac{X\frac{dC}{dx} - C}{x^2} < 0,$$

अथवा

$$\frac{dC}{dx} - \frac{C}{x} < 0,$$

जिसका आशय यह है कि MC, AC से कम है। इसी प्रकार यह दर्शाया जा सकता है कि MC, AC से ज्यादा होती है, बशर्ते कि :

$$\frac{d\left(\frac{C}{x}\right)}{dx} > 0$$

और MC, AC के बराबर होती है, बशर्ते कि

$$\frac{d\left(\frac{C}{X}\right)}{dx} = 0$$

अपेक्षाकृत कम वृद्धियाँ दिखलायेंगे जबकि बट्टा नहीं काटा जाता। अल्पकालीन लागत विश्लेषण मे और सशोधन आगे चलकर अध्याय 14 और 15 मे किए जायेंगे।

उत्पत्ति की अनुकूलतम दर (The Optimum Rate of Output)

उत्पत्ति की जिस मात्रा पर अल्पकालीन औसत लागत न्यूनतम होती है उस पर सयत्र का एक दिया हुआ आकार सबसे ज्यादा कार्यकुशल होता है। यहाँ प्रति इकाई उत्पत्ति के अनुसार साधनो की लगाई जाने वाली मात्राओ का मूल्य न्यूनतम होता है। उत्पत्ति की यह मात्रा उत्पत्ति की अनुकूलतम या इष्टतम दर कहलाती है। अनुकूलतम शब्द को हम "सबसे अधिक कार्यकुशल" के अर्थ मे प्रयुक्त करते हैं। फर्म के द्वारा निर्मित सयत्र का आकार चाहे जो हो, न्यूनतम औसत लागत की उत्पत्ति उस सयत्र के लिए उत्पत्ति की अनुकूलतम दर होती है। हम आगे चलकर देखेंगे कि सयत्र के एक दिए हुए आकार के लिए उत्पत्ति की अनुकूलतम दर अनिवार्यत उत्पत्ति की वह मात्रा नहीं होती जिस पर फर्म को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। लाभ तो आय (revenue) और लागत (costs) दोनो पर निर्भर करता है।

दीर्घकालीन लागत-वक्र

दीर्घकाल की नियोजन अवधि मे फर्म के लिए सयत्र का कोई भी आकार सम्भव हो सकता है। सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं। फर्म प्रति इकाई समयानुसार प्रयुक्त की जाने वाली भूमि, इमारत, मशीनरी, प्रबन्ध व अन्य सभी साधनो की मात्राओ मे परिवर्तन कर सकती है। यहाँ कोई औसत स्थिर लागत-वक्र नहीं होता। हमारा सम्बन्ध केवल दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र, दीर्घकालीन कुल लागत-वक्र और दीर्घकालीन सीमान्त लागत-वक्र से ही होता है।

दीर्घकाल को वैकल्पिक अल्पकालीन स्थितियो, जिनमे से किसी मे भी एक फर्म प्रवेश कर सकती है, के समूह के रूप मे देखना ज्यादा उपयोगी होगा। एक दिए हुए समय मे हम अल्पकालीन दृष्टिकोण अपना सकते हैं जिसमे उस समय विद्यमान सयत्र के आकार के साथ उत्पादित की जाने वाली वैकल्पिक उत्पत्ति की मात्राओ पर विचार किया जाता है। लेकिन दीर्घकालीन नियोजन अवधि के दृष्टिकोण से देखे जाने पर फर्म के लिए अल्पकालीन चित्र को बदलने का अवसर रहता है। दीर्घकाल की तुलना चलचित्र के क्रिया-अनुक्रम (action sequence) से की जा सकती है। यदि हम फिल्म को रोक कर केवल एक चित्र को देखते हैं तो हमारे समक्ष अल्पकाल की धारणा होती है।

दीर्घकालीन औसत लागत

मान लीजिए कि एक फर्म सयत्र के केवल तीन वैकल्पिक आकार ही बना सकती

है। ये चित्र 9–6 मे SAC_1, SAC_2, व SAC_3 से सूचित किए गए हैं। प्रत्येक SAC वक्र संयत्र के एक दिए हुए आकार के लिए एक अल्पकालीन औसत लागत-वक्र होता है। दीर्घकाल मे फर्म इनमे से कोई भी आकार बना सकती है अथवा वह एक आकार से दूसरे पर जा सकती है।

प्रश्न उठता है कि फर्म को संयत्र का कौन-सा आकार बनाना चाहिए ? इसका उत्तर प्रति इकाई समयानुसार उत्पादित की जाने वाली दीर्घकालीन उत्पत्ति पर निर्भर करेगा और उसी के अनुसार बदलेगा। उत्पत्ति की मात्रा चाहे जो हो, फर्म उस उत्पत्ति को यथासम्भव न्यूनतम औसत लागत पर उत्पन्न करना चाहेगी।

मान लीजिए, X उत्पत्ति की जाती है। फर्म को SAC_1 के द्वारा सूचित संयत्र का निर्माण करना चाहिए क्योंकि यह अन्य दो की अपेक्षा X उत्पत्ति को प्रति इकाई अपेक्षाकृत कम लागत (xA) पर उत्पन्न कर सकेगा। यदि SAC_2 पैमाना प्रयुक्त किया जाता है तो प्रति इकाई लागत xB होगी। X' उत्पत्ति के सम्बन्ध मे फर्म SAC_1 और SAC_2 के बीच तटस्थ रहेगी, लेकिन X_1 उत्पत्ति के लिए यह SAC_2 का उपयोग पसन्द करेगी। X_3 उत्पत्ति के लिए फर्म SAC_3 के द्वारा सूचित संयत्र
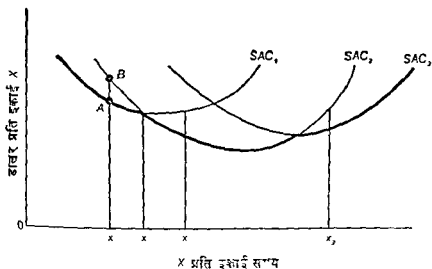
चित्र 9–6 दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र, तीन वैकल्पिक संयत्र के आकार

बनाना व प्रयुक्त करना चाहेगी। अब हम दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की परिभाषा करने की स्थिति मे हैं। यह उस स्थिति मे उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओ को उत्पन्न करने की प्रति इकाई न्यूनतम सम्भव लागत बतलाता है जबकि फर्म संयत्र का इच्छित आकार बनाने की योजना कर सकती है। चित्र 9–6 मे SAC वक्रो के हल्के अंश

व्यर्थ होते हैं। दीर्घकाल में फर्म कभी भी हल्के अशो पर कार्य नहीं करेगी, क्योंकि यह सयत्र का आकार बदल कर लागतों में कमी कर सकेगी।

फर्म दीर्घकाल में सयत्र के जिन सम्भव आकारो का निर्माण कर सकती है उनकी सख्या प्राय असीमित होती है। सयत्र के प्रत्येक विचारणीय आकार के लिए कोई दूसरा ऐसा आकार अवश्य होगा जो इससे अत्यल्प मात्रा में बडा अथवा अत्यल्प मात्रा में छोटा हो। SAC वक्रो की एक शृखला, जैसा कि चित्र 9-7 में दिखलाई गई है, उत्पन्न होती है और यहाँ भी रेखाचित्र में कोई भी दो वक्रो के बीच में चाहे जितने अतिरिक्त SAC वक्र खीचे जा सकते हैं। SAC वक्रो के बाहरी हिस्सों से एक गहरी रेखा बनती है जो दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र कहलाती है। चूंकि एक दीर्घकालीन औसत लागत वक्र विभिन्न SAC वक्रो के बहुत छोटे अशो से बनता है, इसलिए यह सभी सम्भव SAC वक्रो, जो फर्म के द्वारा बनाए जा सकने वाले सयत्र के विभिन्न आकारो को सूचित करते है, को केवल स्पर्शमात्र करने वाली रेखा के रूप में माना जा सकता है। गणितीय भाषा में, यह SAC वक्रो का परिवेष्टन-वक्र या लपेटने वाला वक्र (envelope curve) कहलाता है।
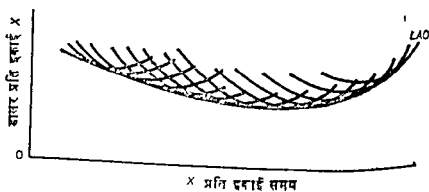
चित्र 9-7 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र, सयत्रो के असीमित वैकल्पिक आकार

दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र के प्रत्येक बिन्दु के लिए यह आवश्यक है कि फर्म साधनों के न्यूनतम लागत वाले सयोग का उपयोग करे। उत्पत्ति की किसी भी दी हुई मात्रा के लिए दीर्घकालीन कुल लागत और दीर्घकालीन औसत लागत उस समय न्यूनतम होते हैं जबकि समस्त साधन इस अनुपातों में मिलाये जाते हैं कि एक साधन पर एक डालर के व्यय से प्राप्त सीमान्त भौतिक उत्पत्ति, प्रयुक्त किए जाने वाले प्रत्येक दूसरे साधन पर एक डालर के व्यय से प्राप्त सीमान्त भौतिक उत्पत्ति के बराबर हो। इसका आशय यह है कि प्रबन्ध पर एक डालर के व्यय से कुल उत्पत्ति में उतनी ही वृद्धि होनी चाहिए जितनी पूंजी मात्र पर एक डालर के व्यय से होती है। श्रम पर व्यय किए

गए एक डालर से एव मशीनो पर व्यय किए गए एक डालर से कुल उत्पत्ति मे एक-सी वृद्धि होनी चाहिए, और ऐसा ही सभी साधनो के लिए होना चाहिए। यदि ये शर्तें पूरी नही की जाती है—अर्थात् यदि प्रबन्ध पर व्यय किए गए एक डालर से मशीनो पर व्यय किए गए एक डालर की अपेक्षा कुल उत्पत्ति मे कम वृद्धि की जाती है—तो कुछ मात्रा मे प्रबन्ध से मशीनो की तरफ किए गए व्यय के परिवर्तना से कुल लागत मे वृद्धि किए बिना ही कुल उत्पत्ति मे वृद्धि की जा सकेगी, अथवा, दूसरे शब्दो मे इन परिवर्तनो से कुल उत्पत्ति के यथास्थिर रहने पर कुल लागत म कमी अथवा औसत लागत मे कमी हो जायगी। इस प्रकार उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओ के लिए दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के द्वारा प्रदर्शित लागत के स्तर फर्म के द्वारा तभी प्राप्त किए जा सकते हैं जबकि उत्पत्ति की प्रत्येक मात्रा के लिए न्यूनतम लागत वाला साधन सयोग ही प्रयुक्त किया जाय।

आकार की मितव्ययिताएँ या किफायतें (Economies of Size)

दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र को प्राय· U–आकृति का वक्र माना जाता है। ऐसा उस स्थिति मे होना है जबकि फर्में किसी विशेष आकार या आकारो की सीमा (range of sizes) तक उत्तरोत्तर अधिक कार्यकुशल होती जाती हैं, और उसके बाद यदि सयत्र के आकारो की सीमा पर बहुत छोटी मात्रा से लेकर बहुत बडी मात्रा तक विचार किया जाता है, तो वे उत्तरोत्तर कम कार्यकुशल हो जाती है। सयत्र के उत्तरोत्तर बडे आकारो से सम्बद्ध बढती हुई कार्यकुशलता इस बात से प्रगट या परिलक्षित होती है कि SAC वक्र उत्तरोत्तर नीचे के स्तरो पर एव दायी तरफ आते जाते हैं। चित्र 9–8 मे SAC_1, SAC_2 और SAC_3 उदाहरण के तौर पर दिए गए हैं। सयत्र के और भी बडे आकारो से सम्बद्ध घटती हुई कार्यकुशलता उन SAC
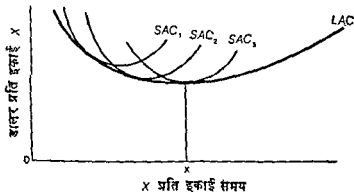
चित्र 9–8 आकार की मितव्ययिताएँ व अमितव्ययिताएँ

वक्रों से प्रदर्शित होगी जो उत्तरोत्तर ऊँचे स्तरों पर एवं दायीं तरफ दूर पर स्थित होते हैं। इसीलिए इनसे प्राप्त होने वाला LAC वक्र सामान्यतया U-आकृति का होगा।

LAC वक्र जिन तत्त्वों के कारण अधिक उत्पत्ति की मात्राओं व सयन्त्र के बड़े आकारों की स्थिति में घटता है, वे आकार की मितव्ययिताएँ (economies) कहलाती हैं। आकार की दो महत्त्वपूर्ण मितव्ययिताएँ इस प्रकार होती हैं : (1) श्रम विभाजन एवं श्रम के विशिष्टीकरण की बढ़ती हुई सम्भावनाएँ और (2) उच्चतर प्रौद्योगिक विकास और/अथवा अपेक्षाकृत बड़ी मशीनों के उपयोग की बढ़ती हुई सम्भावनाएँ। इन मितव्ययिताओं पर क्रमश विचार किया जायगा।

श्रम-विभाजन एवं श्रम का विशिष्टीकरण—श्रम-विभाजन एवं श्रम के विशिष्टीकरण के लाभों की जानकारी अर्थशास्त्रियों व सर्वसाधारण को बहुत समय से रही है।[7] बड़ी मात्रा में श्रम-शक्ति का उपयोग करने वाले अपेक्षाकृत बड़े सयन्त्र में जितनी शीघ्रता से विशिष्ट क्रियाओं में व्यक्ति विशिष्टीकरण प्राप्त कर लेते हैं उतनी शीघ्रता से थोड़े व्यक्तियों को काम पर लगाने वाले छोटे सयन्त्र पर ऐसा नहीं हो पाता है। छोटे सयन्त्र पर एक साधारण श्रमिक वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया में कई विभिन्न किस्म के कार्य सम्पादित करता है। हो सकता है कि वह इनमें से कुछ कार्यों में विशेष रूप से निपुण न हो। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्रियाओं को सम्पन्न करने में औजारों के एक समूह से दूसरे समूह पर जाने में समय नष्ट हो सकता है।

लेकिन अपेक्षाकृत बड़े सयन्त्र पर अधिक विशिष्टीकरण सम्भव हो सकता है, जिससे श्रमिक उसी प्रक्रिया को सम्पादित कर सकता है जिसमें वह सर्वाधिक दक्ष हो। एक विशेष प्रक्रिया में विशिष्टीकरण करने से औजारों के एक समूह से दूसरे समूह पर जाने में नष्ट होने वाला समय बच जाता है। यह भी देखा जाता है कि जो श्रमिक एक ही किस्म का कार्य करता रहता है वह इसको सम्पन्न करने में संक्षिप्त उपाय व गति विकसित कर ले। इस प्रकार जहाँ श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण सम्भव होते हैं, वहाँ श्रमिक की कार्यकुशलता के अधिक होने की सम्भावना होती है और इसी वजह से प्रति इकाई उत्पत्ति की लागत भी कम होती है। लेकिन यहाँ एक चेतावनी देना आवश्यक है। कुछ परिस्थितियों में विशिष्टीकरण एक ऐसे बिन्दु तक पहुँचाया जा सकता है जहाँ पर कार्य की नीरसता व्यक्ति की कार्यकुशलता में होने वाली वृद्धि के मार्ग में रुकावट बन जाती है। प्रौद्योगिक तत्त्व (Technological Factors)—जब सयन्त्र का आकार बढ़ाया जाता है तो प्रौद्योगिक विधियों के द्वारा

7. देखिए एडम स्मिथ, The Wealth of Nations, Edwin Cannan, ed. (New-York : Modern Library, Inc., 1937), पुस्तक I, अध्याय I–III.

प्रति इकाई उत्पत्ति की लागतो को कम करने की सम्भावना बढ़ जाती है। सर्वप्रथम, थोडी मात्रा मे उत्पत्ति करने का सबसे सस्ता तरीका वह नहीं होगा जिसमे सबसे अधिक विकसित प्रौद्योगिक विधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं। उदाहरण के लिए, गाडी के छज्जो (hoods) के उत्पादन को लीजिये। यदि उत्पत्ति प्रति सप्ताह केवल दो या तीन हुड करनी है तो यह निश्चय है कि दबान के बडे स्वचालित यत्र प्रयुक्त नही किए जाएँगे। ऐसी स्थिति मे हुड की उत्पत्ति का सबसे सस्ता तरीका उनको हाथ से बनाना ही होगा। लेकिन प्रति इकाई लागत फिर भी तुलनात्मक दृष्टि से ऊँची ही होगी। थोडी मात्रा मे उत्पत्ति करने का अथवा थोडी मात्रा मे उत्पादन के लिए छोटे सयत्र को काम मे लेने का कोई सस्ता तरीका नही होगा।

बडी मात्रा मे उत्पत्ति एव बडे आकार के सयत्रो के लिए वृहत् उत्पादन की प्रौद्योगिक विधियो का प्रयोग करके प्रति इकाई लागत मे कमी की जा सकती है। इस उदाहरण मे यदि उत्पत्ति प्रति सप्ताह कई हजार इकाइयो की होती है तो दबाने के स्वचालित यत्रो के साथ अपेक्षाकृत बडा सयत्र स्थापित किया जा सकता है, और उस स्थिति मे प्रति इकाई लागतें छोटे सयत्र की तुलना मे काफी कम होती है।

दूसरी बात यह है कि प्रौद्योगिक परिस्थितियाँ प्राय ऐसी होती है कि उत्पादन के वास्ते मशीन की क्षमता को दुगुना करने के लिए सामग्री, भवन-निर्माण और मशीन की सचालन लागतो को दुगुना करना आवश्यक नही होता। उदाहरण के लिए, 300-हॉर्सपावर के दो डीजल मोटरो का निर्माण करने और उनको सचालित करने की अपेक्षा एक 600-हॉर्सपावर के डीजल मोटर का निर्माण करना और उसको सचालित करना ज्यादा सस्ता होता है। एक 600-हॉर्सपावर के मोटर मे एक अकेले 300-हॉर्सपावर मोटर की अपेक्षा ज्यादा कार्यशील पुर्जे नही होते। इसके अतिरिक्त, 600-हॉर्सपावर वाले मोटर के लिए एक 300-हॉर्सपावर वाले मोटर के निर्माण मे प्रयुक्त सामग्री से दुगुनी मात्रा की आवश्यकता नही होगी। लगभग प्रत्येक मशीन के लिए इसी किस्म का उदाहरण लिया जा सकता है। प्रौद्योगिक सम्भावनाएँ कुछ सीमा तक सयत्र के उत्तरोत्तर बडे आकारो की बढती हुई कार्यकुशलता की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करती हैं।

आकार की अमितव्ययिताएँ (Disecomomies of size)

अब प्रश्न यह उठता है कि जब एक बार सयत्र, आकार की समस्त मितव्ययिताओ का लाभ उठाने दृष्टि से काफी बडा हो जाता है, तो सयत्र के और भी बडे आकारों से कार्यकुशलता मे कमी क्यो उत्पन्न होने लगती है। तात्कालिक रूप से तो ऐसा प्रतीत होगा कि फर्म कम-से-कम आकार की मितव्ययिताओ को तो बनाए रखने मे अवश्य समर्थ होगी। इस प्रश्न के लिए प्राय. यह उत्तर दिया जाता है कि

एक अकेली फर्म को नियन्त्रित करने एवं समन्वित करने में प्रबन्ध की कार्यकुशलता की अपनी सीमाएँ होती हैं। ये सीमाएँ आकार की अमितव्ययिताएँ कहलाती हैं।

ज्यों-ज्यों संयन्त्र के आकार में वृद्धि की जाती है, त्यों-त्यों श्रम की निचली श्रेणियों की भाँति प्रबन्ध भी कार्यों के विभाजन एवं विशेष कार्यों में विशिष्टीकरण के कारण अधिक कार्यकुशल हो जाता है, लेकिन सामान्यतया यह तर्क दिया जाता है कि एक निश्चित आकार से आगे फर्म का समन्वय व नियन्त्रण करने की कठिनाइयाँ तीव्र गति से बढ़ने लगती हैं। कार्यों के प्रबन्ध के सम्पर्क, व्यवसाय के रोजमर्रा के कार्यों से और दूर हो जाते हैं जिससे उत्पादन विभागों के संचालन की कार्यकुशलता कम होने लगती है। निर्णय करने की जिम्मेदारी अन्य व्यक्तियों को सौंपनी पड़ती है और निर्णय करने वाले अधीनस्थ कर्मचारियों के बीच समन्वय स्थापित करना होता है। कागजी कार्यवाही बढ़ जाती है, स्वीकृति लेने एवं समन्वय के लिए आवश्यक अतिरिक्त कर्मचारी एकत्र होने लगते हैं। कभी-कभी विभिन्न निर्णय करने वाले अधीनस्थ कर्मचारियों की योजनाओं में परस्पर समन्वय नहीं हो पाता और मन्दगति की स्थिति आ जाती है जो खर्चीली होती है। जिस सीमा तक संयन्त्र के आकार के बढ़ाए जाने पर समन्वय व नियन्त्रण की बढ़ती हुई कठिनाइयों से प्रबन्ध पर व्यय किए जाने वाले प्रत्येक डालर की कार्यकुशलता घट जाती है, वहीं तक उत्पादन की प्रति इकाई लागतों में वृद्धि होगी।

अब तक के विवेचन से यह आशय लगाया जा सकता है कि जब संयन्त्र का आकार बढ़ाया जाता है तो आकार की मितव्ययिताओं के कारण दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र घटने लगता है, और इसके बाद जब आकार की सारी मितव्ययिताएँ प्राप्त कर ली जाती हैं तो आकार की अमितव्ययिताएँ प्रत्यक्षतया प्रारम्भ हो जाती हैं। लेकिन ऐसा अनिवार्य रूप से नहीं होता। जब संयन्त्र (plant) इतना बड़ा हो जाता है कि इससे आकार की सारी मितव्ययिताओं के लाभ प्राप्त होने लगते हैं, तब भी संयन्त्र के अपेक्षाकृत बड़े आकारों की एक ऐसी सीमा हो सकती है जिस पर अभी तक अमितव्ययिताएँ प्रकट नहीं हुई हैं। इस स्थिति में दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र के लिए एक परम्परागत दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र के एक ही न्यूनतम बिन्दु की अपेक्षा न्यूनतम बिन्दुओं की एक लम्बी क्षैतिज शृंखला (series) होगी। जब संयन्त्र का आकार इतना बड़ा हो जाता है कि आकार की अमितव्ययिताएँ प्रकट हो जाती हैं तो दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र दाहिनी ओर ऊपर की तरफ उठता है। दूसरी सम्भावना यह है कि कुछ अमितव्ययिताएँ संयन्त्र के उस आकार में उत्पन्न होनी चालू हो जाती हैं जो आकार की सारी मितव्ययिताओं को प्राप्त करने की दृष्टि से बहुत छोटा होता है। यदि अपेक्षाकृत बड़े संयन्त्रों के लिए आकार की मितव्ययिताएँ,

अमितव्ययिताओं से अधिक होती है तो दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र दाहिनी तरफ नीचे की ओर झुकता है। जहाँ आकार की अमितव्ययिताएँ आकार की मितव्ययिताओं से अधिक होती हैं, वहाँ दीर्घकालीन औसत लागत वक्र दाहिनी तरफ ऊपर की ओर जाता है।

संयत्र का अनुकूलतम आकार (The Optimum Size of Plant)

संयंत्र का अनुकूलतम आकार एक फर्म के द्वारा बनाए जा सकने वाले संयत्र के सभी आकारों में सबसे ज्यादा कार्यकुशल होता है। संयत्र का अनुकूलतम आकार वह होता है जिस पर अल्पकालीन औसत लागत-वक्र दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र का न्यूनतम बिन्दु बनाता है। यह संयत्र का वह आकार भी माना जा सकता है जिसका अल्पकालीन औसत लागत-वक्र दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र को इन दोनों के न्यूनतम बिन्दुओं पर स्पर्श करे। चित्र 9–9 में SAC संयत्र के अनुकूलतम आकार का अल्पकालीन औसत लागत वक्र है।
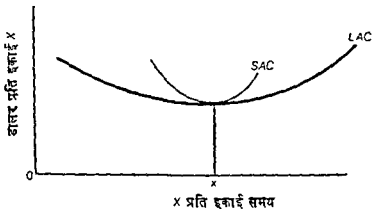
चित्र 9–9 संयत्र का अनुकूलतम आकार

फर्मों के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वे अनुकूलतम आकार के संयत्र ही बनाये और उन्हें उत्पत्ति की अनुकूलतम दरों पर ही सचालित करें। हम आगे चलकर देखेंगे कि ऐसा वे दीर्घकाल में शुद्ध प्रतिस्पर्धा की दशाओं में तो करती हैं, लेकिन शुद्ध एकाधिकार, अल्पाधिकार और एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धा की दशाओं में नहीं करती हैं। संयत्र का जो आकार उत्पत्ति की दी हुई मात्राओं के लिए प्रति इकाई न्यूनतम लागत पर कार्य करेगा वह उत्पादित माल की मात्रा के अनुसार परिवर्तित होगा। उदाहरणार्थ, चित्र 9–9 में SAC संयत्र किसी भी अन्य आकार के संयत्र की अपेक्षा **x** उत्पत्ति की मात्रा को अधिक सस्ता बनायेगा, और x उत्पत्ति किसी भी अन्य उत्पत्ति की मात्रा की अपेक्षा प्रति इकाई कम लागत पर उत्पादित की जा सकती है। लेकिन

x से अधिक या कम उत्पत्ति की मात्राओं के लिए प्रति इकाई लागतें अनिवार्य अधिक होगी। उत्पत्ति की ऐसी मात्राओं को संयत्र के अनुकूलतम आकार की बजाए संयत्र के अन्य आकार अपेक्षाकृत कम प्रति इकाई लागत पर उत्पन्न कर सकेंगे।

उत्पत्ति की किसी विशिष्ट मात्रा के लिए बनाए जाने वाले संयत्र के आकार को कैसे निर्धारित कर सकते हैं ? इसके लिए चित्र 9–10 पर विचार कीजिए। मान लीजिए फर्म X_1 उत्पत्ति की मात्रा SAC_1 संयत्र की सहायता से उत्पन्न करती है।
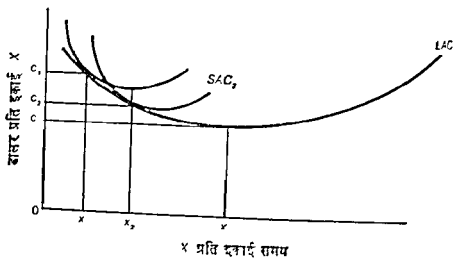
चित्र 9–10 एक दी हुई उत्पत्ति के लिए संयत्र का उपयुक्त आकार (Appropriate Plant Size)

SAC_1 संयत्र उत्पत्ति की अनुकूलतम दर से कम पर चलाया किया जाता है। अब उत्पत्ति को बढ़ाकर x_2 किया जाता है। यह वृद्धि निम्न दो में से किसी भी तरीके से प्राप्त की जा सकती है (1) SAC_1 संयत्र से ही उत्पत्ति की दर को बढ़ा कर, अथवा (2) संयत्र के अपेक्षाकृत बड़े आकार पर जाकर। प्रश्न उठता है कि फर्म कौन-सी विधि का उपयोग करेगी ? दोनों ही विधियों से फर्म प्रति इकाई लागत कम कर सकेगी। विधि 1 में SAC_1 उत्पत्ति की अनुकूलतम दर पर प्रयुक्त किया जाएगा। इससे लागतें c_1 से नीची होंगी। लेकिन यदि फर्म विधि 2 का प्रयोग करती है, तो अपेक्षाकृत बड़े संयत्र के आकार की मितव्ययिताओं से विधि 1 की बनिस्बत x_2 उत्पत्ति के लिए प्रति इकाई लागत में अधिक कमी कर सकना भी सम्भव हो सकेगा। SAC_2 संयत्र पर प्रति इकाई लागतें c_2 होगी और यही वह न्यूनतम लागत है जिस पर उत्पत्ति की जा सकती है। शून्य से x तक की उत्पत्ति के लिए फर्म उत्पत्ति की किसी भी दी हुई मात्रा को, अनुकूलतम से कम आकार के संयत्र का

उपयोग उत्पत्ति की अनुकूलतम दर से कम पर करके प्रति इकाई न्यूनतम लागत पर उत्पन्न कर सकती है। इसी प्रकार x से अधिक किसी भी दी हुई उत्पत्ति के लिए, यदि फर्म अनुकूलतम आकार से बडे सयत्र का उपयोग उत्पत्ति की अनुकूलतम दर से अधिक पर करती है, तो वह प्रति इकाई न्यूनतम लागत प्राप्त कर सकती है। व्यवहार मे लागू होने वाला सामान्य सिद्धान्त यह होगा किसी भी दी हुई उत्पत्ति की मात्रा पर लागत को न्यूनतम करने के लिए फर्म को सयत्र का वह आकार काम मे लेना चाहिए जिसका अल्पकालीन औसत लागत-वक्र उत्पत्ति की उस मात्रा पर दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र को स्पर्श करे।

दीर्घकालीन कुल लागत और दीर्घकालीन सीमान्त लागत

एक फर्म के दीर्घकालीन लागतो का कोई भी विवेचन इसके दीर्घकालीन कुल लागत-वक्र (LTC) का उल्लेख किए बिना पूरा नही माना जाएगा। यद्यपि LTC वक्र LAC व LMC वक्रो के द्वारा प्रदान की जाने वाली सूचना से अधिक सूचना नही देता है, फिर भी यह दीर्घकालीन लागतो के सम्बन्ध मे एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जो समय-समय पर लाभकारी सिद्ध होता है।

फर्म का LTC वक्र इसके LAC वक्र से काफी सुगमता से बनाया जा सकता है। मान लीजिए फर्म का LAC वक्र चित्र 9–10 मे दिया गया है। उत्पादन के x_1, x_2 और x स्तरो पर दीर्घकालीन कुल लागतें क्रमश $x_1 \times c_1$, $x_2 \times c_2$, और $x \times c$, होगी। उत्पत्ति के अन्य स्तरो के लिए भी दीर्घकालीन कुल लागतो का इसी तरह से अनुमान लगाया जा सकता है। हम यह आशा कर सकते हैं कि प्राप्त होने वाला LTC वक्र चित्र 9–11 (आ) के जैसा लगेगा, जो रेखाचित्र के मूलबिन्दु से प्रारम्भ होकर कुल परिवर्तशील लागत-वक्र की भाँति ही दाहिनी ओर ऊपर की तरफ जाएगा। हमने जो LTC वक्र खीचा है वह शुरू मे घटती हुई दीर्घकालीन औसत लागतें और बाद मे बढती हुई दीर्घकालीन औसत लागतें प्रदर्शित करता है।

LTC वक्र समोत्पत्ति-वक्र-समलागत विश्लेषण का प्रयोग करके भी बनाया जा सकता है। चित्र 9–11 (अ) मे समोत्पत्ति मानचित्र द्वारा सूचित उत्पादन-फलन फर्म के लिए एक विशिष्ट दीर्घकालीन लागत-वक्र उत्पन्न करता है। प्रत्येक समोत्पत्ति वक्र पर जो सख्या दी गई है वह उत्पत्ति के उस स्तर को सूचित करती है जिसे वह समोत्पत्ति वक्र प्रदर्शित करता है। A और B साधनो की कीमते क्रमश P_{a1} व P_{b1} पर स्थिर हैं और ये समलागत वक्र-परिवार के ढाल $(-P_{a1}/P_{b1})$ को निर्धारित करती हैं। B और A दोनो अक्षो पर वैकल्पिक सम्भव कुल लागत परिव्यय विभिन्न भिन्नो (various fractions) '(TCO/P_b और TCO/P_a) के अशो (numerators) के रूप मे दर्शाए गए हैं। इस बात पर ध्यान दें कि कुल लागत परिव्यय मे

$600/P_b$, $500/P_b$, $450/P_b$, $410/P_b$, $400/P_b$, $385/P_b$, $375/P_b$, $340/P_b$, $300/P_b$, $240/P_b$, $200/P_b$, $165/P_b$, $100/P_b$

B प्रति इकाई समय

P H E 0

100 90 80 70 60 50 40 30 20 10

$100/P_a$ $200/P_a$ $300/P_a$ $400/P_a$ $500/P_a$ $600/P_a$

A प्रति इकाई समय

(अ)
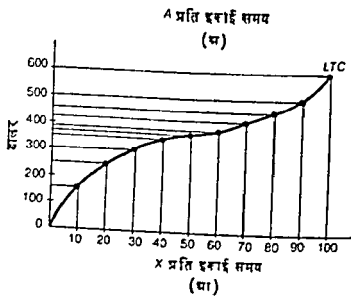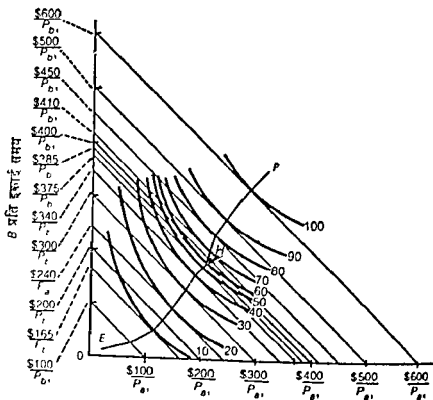
चित्र 9–11 समोत्पत्ति वक्रों से LTC वक्र की ओर

$100 की वृद्धियाँ दर्शाने वाली समलागतें (isocosts) एक दूसरे से समान दूरी पर हैं।

समोत्पत्ति वक्र की परस्पर दूरी इस प्रकार रखी गई है कि फर्म के संयत्र के आकार में वृद्धि करने पर शुरू में आकार की मितव्ययिताएँ और बाद में आकार की अमितव्ययिताएँ प्राप्त होती हैं। इसी बात को दूसरे रूप में इस प्रकार रख सकते हैं कि संयत्र के आकार के बढ़ाये जाने पर, वक्रों की परस्पर दूरी (spacing) साधनों के उपयोग में शुरू में बढ़ती हुई कार्यकुशलता और बाद में घटती हुई कार्यकुशलता दिखलाती है। जैसे-जैसे हम विस्तार-पथ पर आगे बढ़ते हैं, फर्म की उत्पत्ति में समान वृद्धियों के लिए कुल लागत परिव्यय में घटती हुई वृद्धियों की आवश्यकता होती है और यह क्रम H बिन्दु तक चलता है। H बिन्दु से परे उत्पत्ति में समान वृद्धियों के लिए लागत परिव्यय में बढ़ती हुई वृद्धियों की आवश्यकता होती है। प्राप्त होने वाला कुल लागत-वक्र चित्र 9-11 (आ) में दिखलाया गया है।

दीर्घकालीन सीमान्त लागत-वक्र फर्म की उत्पत्ति में एक इकाई के परिवर्तन से दीर्घकालीन कुल लागत में होने वाले परिवर्तन को दर्शाता है, ऐसा उस स्थिति के सम्बन्ध में होना है जबकि फर्म के पास प्रयुक्त होने वाले समस्त साधनों (इसके संयत्र को शामिल करते हुए) की मात्राओं में आवश्यक समायोजन करके उत्पत्ति में परिवर्तन करने के लिए काफी समय होता है। अथवा, हम LMC वक्र के बारे में यों भी सोच सकते हैं कि यह उत्पत्ति के विभिन्न स्तरों पर LTC वक्र के ढलानों को मापता है।
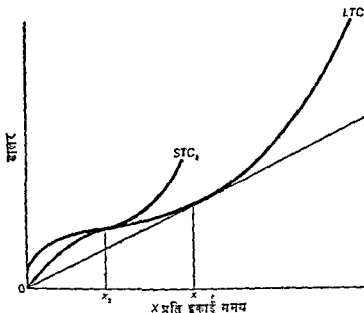
चित्र 9-12 अल्पकालीन व दीर्घकालीन कुल लागतों के बीच सम्बन्ध

चित्र 9–12 के LTC वक्र से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जहाँ LAC घटती है—अर्थात्, शून्य से x उत्पत्ति तक—वहाँ LMC की मात्रा LAC से कम होगी, और x उत्पत्ति से आगे जहाँ LAC बढ़ती है वहाँ यह LAC से अधिक होगी। x उत्पत्ति पर LMC और LAC समान होती हैं। चित्र 9–13 में ये सम्बन्ध LAC और LMC वक्रों के द्वारा प्रदर्शित किए गए हैं। LMC वक्र का इसके LAC वक्र से उसी प्रकार का सम्बन्ध होता है जैसा कि एक दिए हुए SMC वक्र का इसके SAC वक्र से होता है।
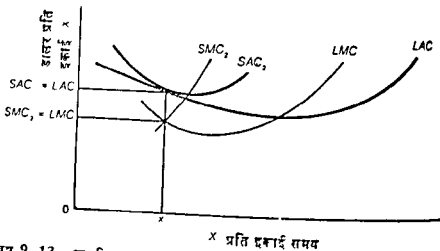
चित्र 9–13 एक दिए हुए SAC व LAC के लिए SMC व LMC के बीच सम्बन्ध

LMC और SMC के बीच सम्बन्ध

जब फर्म माल की दी हुई मात्रा के उत्पादन के लिए संयत्र का एक उचित आकार बना लेती है तो उस उत्पत्ति पर अल्पकालीन सीमान्त लागत दीर्घकालीन सीमान्त लागत के बराबर होती है। उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि माल की दी हुई मात्रा चित्र 9–13 में X_2 है। फर्म SAC_2 के द्वारा सूचित संयत्र प्रयुक्त करेगी जो उस उत्पत्ति पर LAC वक्र को स्पर्श करेगा। चित्र 9–12 में सम्बन्धित कुल लागत-वक्र STC_2 और LTC होंगे। हम इस बात की जाँच कर सकते हैं कि X_2 से नीचे के उत्पत्ति के स्तरों पर STC_2, LTC से ऊपर होगा क्योंकि उत्पत्ति के उन स्तरों पर SAC_2, LAC से अधिक होगा। X_2 उत्पत्ति पर STC_2 और LTC एक-दूसरे के बराबर होंगे क्योंकि SAC_2 और LAC बराबर हैं। X_2 से अधिक उत्पत्ति की मात्रा के लिए STC_2 पुनः LTC से अधिक होगा क्योंकि उत्पत्ति की उन मात्राओं के लिए SAC_2 पुनः LAC से ऊपर होता है। X_2 उत्पत्ति पर जहाँ SAC_2, LAC को स्पर्श करता है वहाँ STC_2 भी LTC को स्पर्श करेगा। X_2 के समीप, लेकिन

इसके नीचे की उत्पत्ति की मात्राओ के लिए, STC_2 वक्र का ढाल LTC वक्र से कम होगा । X_2 से ऊपर उत्पत्ति की मात्राओ के लिए STC_2 वक्र का ढाल LTC वक्र से अधिक होगा । X_2 पर जहां STC_2, LTC को स्पर्श करता है, दोनो वक्रो का ढाल एक ही होता है ।

चूंकि STC_2 वक्र का ढाल सयन्त्र के उस आकार के लिए अल्पकालीन सीमान्त लागत होता है और चूंकि LTC का ढाल दीर्घकालीन सीमान्त लागत होता है, इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि X_2 से जरा कम उत्पत्ति की मात्राओ के लिए $SMC_2 < LMC$ होता है, X_2 से थोडी ज्यादा मात्राओ के लिए $SMC_2 > LMC$ होता है, और X_2 उत्पत्ति पर SMC_2 और LMC बराबर होते हैं । ये सम्बन्ध चित्र 9-13 मे प्रदर्शित किये गये हैं ।

सारांश

उत्पादन की लागतें वे दायित्व हैं जो एक फर्म के द्वारा माल के उत्पादन मे प्रयुक्त साधनो के लिए वहन किये जाते है । किसी भी दिये हुए साधन की लागत इसके सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक उपयोग के मूल्य से निर्धारित होती है । यह वैकल्पिक-लागत-सिद्धान्त कहलाता है । उत्पादन की लागतो का विचार फर्म के "खर्चों" के प्रचलित विचार से भिन्न होता है । फर्म के "खर्चे" प्राय साधनो की व्यक्त या सुनिश्चित लागतो के बराबर होते हैं । उत्पादन लागत निर्धारित करने के लिए साधनो की अव्यक्त लागते भी शामिल की जानी चाहिएँ । इस अध्याय मे प्रस्तुत किये गये लागतो के विश्लेषण मे यह मान लिया गया है कि फर्म स्वय अपने द्वारा खरीदे जाने वाले किसी भी साधन की कीमत को प्रभावित नही कर सकती ।

अल्पकाल मे फर्म के द्वारा प्रयुक्त साधन स्थिर और परिवर्तनशील श्रेणियो मे बाटे जाते हैं । उनके प्रति किये गये दायित्व स्थिर लागत और परिवर्तनशील लागत कहलाते हैं । उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओ के लिए कुल स्थिर लागतें व कुल परिवर्तन-शील लागते कुल लागतो का मुख्य अग मानी जाती हैं । तीन कुल लागत वक्रो से हमने सम्बन्धित प्रति इकाई लागत वक्र —औसत स्थिर लागत, औसत परिवर्तनशील लागत, और औसत लागत—निकाले हैं । अल्पकालीन औसत लागत वक्र सयन्त्र के दिये हुए आकार पर माल की विभिन्न मात्राओ को उत्पादित करने की प्रति इकाई न्यूनतम लागत दर्शाता है और यह U-आकृति का वक्र होता है । इसके अतिरिक्त हमने सीमान्त लागत वक्र निकाला है । वह उत्पत्ति जिस पर सयन्त्र के दिये हुए आकार की स्थिति मे अल्पकालीन औसत लागत न्यूनतम होती है, उत्पत्ति की अनुकूलतम दर कहलाती है ।

दीर्घकाल मे फर्म के द्वारा सभी साधनो की मात्राएँ परिवर्तित की जा सकती हैं,

परिणामस्वरूप, सभी लागतें परिवर्तनशील होती हैं। दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र उस स्थिति में उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओं को उत्पन्न करने की प्रति इकाई न्यूनतम लागत दर्शाता है जबकि फर्म संयंत्र को वांछित आकार में बदलने के लिए स्वतन्त्र होती है। यह संयंत्र के सभी आकारों के अल्पकालीन औसत वक्रों के लिए परिवेष्टन वक्र (envelope curve) होता है और प्रायः U-आकृति का होता है। इसकी U-आकृति के लिए जो तत्त्व जिम्मेदार होते हैं उनमें आकार की मितव्ययिताएँ व आकार की अमितव्ययिताएँ कहते हैं। दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र कुल लागत के उस परिवर्तन को दर्शाता है जो उत्पत्ति में एक इकाई के परिवर्तन से उस स्थिति में उत्पन्न होता है जबकि फर्म प्रयुक्त किये जाने वाले समस्त साधनों की मात्राओं को बदलने के लिए स्वतन्त्र होती है। संयंत्र का जो आकार सबसे ज्यादा कार्यकुशल होता है वह संयंत्र का अनुकूलतम आकार कहलाता है।

दीर्घकाल में फर्म जितनी भी मात्रा में माल का उत्पादन करती है, यदि उस मात्रा के लिए उसे प्रति इकाई न्यूनतम लागत प्राप्त करनी है तो संयंत्र का आकार ऐसा होना चाहिए जिस पर अल्पकालीन औसत लागत-वक्र उत्पत्ति की उस मात्रा पर दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र को स्पर्श करे। संयंत्र के ऐसे आकार के लिए स्पर्शिता बिन्दु की उत्पत्ति पर अल्पकालीन सीमान्त लागत दीर्घकालीन सीमान्त लागत के बराबर होगी।

अध्ययन सामग्री

Stigler, George J *The Theory of Price*, 3rd ed. (New York: Crowell Collier and Macmillan, Inc, 1966) Chaps 6 & 9

Viner, Jacob, ' Cost Curves and Supply Curves", Zeitschrift fur NationalOkonomie, vol III, (1931), pp 23 46, reprinted in American Economic Association, *Readings in Price Theory*, George J Stigler and Kenneth E Boulding, eds (Homewood, Ill . Richard D Irwin, Inc, 1952), pp 198–232

अल्पकालीन प्रति-इकाई लागत-वक्रों की ज्यामिति

कुल लागत-वक्रो और प्रति इकाई लागत-वक्रो का सम्बन्ध ज्यामितीय रूप मे दर्शाया जा सकता है। तीनो कुल लागत वक्रो से प्रारम्भ करके हम उनसे सम्बन्धित प्रति इकाई लागत-वक्र निकालेंगे। उसके पश्चात् हम ज्यामितीय रूप मे औसत लागत-वक्र और सीमान्त लागत-वक्र का सम्बन्ध स्पष्ट करेंगे।

औसत स्थिर लागत-वक्र

चित्र 9–14 (आ) का औसत स्थिर लागत-वक्र चित्र 9–14 (अ) के कुल स्थिर लागत-वक्र से निकाला गया है। दोनो रेखाचित्रो के मात्रा-सूचक पैमाने एक-से है। चित्र 9–14 (अ) के लम्बवत् अक्ष पर कुल स्थिर लागतें मापी गई हैं और चित्र 9–14 (आ) पर प्रति इकाई स्थिर लागत मापी गई है।

चित्र 9–14 (अ) मे x उत्पत्ति को लीजिए। इस उत्पत्ति की मात्रा पर कुल स्थिर लागत xA से मापी गई है। अब OA सरल रेखा को लीजिए। OA का ढाल xA/O_x के बराबर है जो x उत्पत्ति पर अकीय दृष्टि से चित्र 9–14 (आ) मे औसत स्थिर लागत OR के समान है। इसी प्रकार x_1 उत्पत्ति पर चित्र 9–14 (आ) मे OR_1 औसत स्थिर लागत OA_1 के ढाल अथवा x_1A_1/O_{x1} के बराबर है।

उत्पत्ति की उत्तरोत्तर अधिक मात्राओ पर सम्बन्धित OA रेखाओ के ढाल कम होते जाते है जिससे यह प्रकट होता है कि उत्पत्ति के बढने पर औसत स्थिर लागत घटती है, लेकिन यह कभी भी शून्य नही हो सकती। OA रेखाओ के अकीय ढाल, जो सम्बन्धित उत्पत्ति की मात्राओ के लिए अकित किए गए है, चित्र 9–14 (आ) के औसत स्थिर लागत वक्र को बनाते है।

ज्यामितीय रूप मे, AFC वक्र एक आयताकार अतिपरवलय (rectangular byperbola) होता है। यह डालर अक्ष और माना अक्ष दोनो के समीप तो जाता है लेकिन उन तक कभी पहुँच नही पाता। यह रेखाचित्र के मूलबिन्दु के उन्नतोदर होता है। आयताकार अतिपरवलय का मुख्य लक्षण यह होता है कि वक्र के किसी भी बिन्दु जैसे L पर, प्रत्येक अक्ष के द्वारा सूचित मूल्यो को गुणा करने से वही गणितीय

परिणाम प्राप्त होता है जो वक्र के किसी भी दूसरे बिन्दु जैसे M पर, सम्बंद्ध मूल्यों को गुणा करने से प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में, $Ox \times OR = Ox_1 \times OR_1$ होगा।

औसत स्थिर लागत-वक्र के सम्बन्ध में अनिवार्यतः यही स्थिति होती है। चूँकि कुल स्थिर लागतें यथास्थिर बनी रहती हैं, और चूँकि किसी भी उत्पत्ति पर औसत स्थिर लागत को उत्पत्ति की उस मात्रा से गुणा करने पर परिणाम कुल स्थिर लागत के बराबर होता है, इसलिए उत्पत्ति की किसी भी मात्रा को इसकी औसत स्थिर लागत से गुणा करने का परिणाम उत्पत्ति की किसी भी अन्य मात्रा को इसकी औसत स्थिर लागत से गुणा करने का परिणाम उत्पत्ति की किसी भी अन्य मात्रा को इसकी औसत स्थिर लागत से गुणा करने से प्राप्त परिणाम के बराबर होगा।
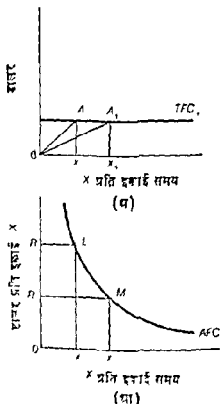
चित्र 9-14 TFC और AFC की ज्यामिति

औसत परिवर्तनशील लागत-वक्र

चित्र 9-15 (आ) में औसत परिवर्तनशील लागत-वक्र चित्र 9-15 (अ) के

कुल परिवर्तनशील लागत-वक्र से निकाला गया है। निकालने की प्रक्रिया वही है जो AFC वक्र को प्राप्त करने मे प्रयुक्त की गई है। x उत्पत्ति पर, TVC बराबर है xB के, इसलिए x उत्पत्ति पर AVC बराबर है xB/O_x के, जो OB रेखा के ढाल के समान है। x_1 पर, AVC बराबर है x_1B_1/O_{x1} के, जो OB_1 के ढाल के समान है। x_3 पर, AVC बराबर है x_3B_3/O_{x3} के, जो OB_3 के ढाल के समान है। x_4 पर, AVC x_4B_4/O_{x4} के बराबर है जो OB_4 के ढाल के समान है। OB रेखाओ के अकीय ढाल जो सम्बन्धित उत्पत्ति की मात्राओ के सामने अकित किए गए हैं, चित्र 9–15 (आ) का AVC वक्र बनाते हैं।
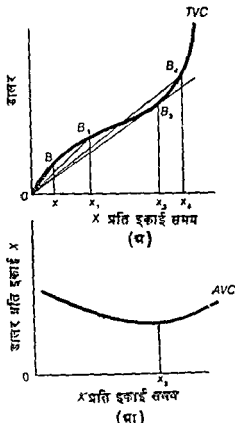
चित्र 9–15 TVC और AVC की ज्यामिति

AVC वक्र की ज्यामितीय व्युत्पत्ति इस बात को स्पष्ट करती है कि यह अपनी आकृति TVC वक्र से लेता है। O से x_3 उत्पत्ति के बीच मे प्रत्येक उत्तरोत्तर अधिक उत्पत्ति की मात्रा के लिए ढाल पिछली उत्पत्ति की अपेक्षा कम होता है। अत O और x_3 के बीच मे AVC वक्र घटता हुआ होता है। x_3 उत्पत्ति पर OB_3 रेखा

TVC वक्र को स्पर्श करती है, इसलिए किसी भी दूसरी OB रेखा की तुलना में इसका ढाल कम होता है। x_3 पर AVC जितनी नीची हो सकती है उतनी नीची हो जाती है। x_3 से अधिक उत्पत्ति की मात्राओं पर OB रेखाओं का ढाल बढ़ा जिसका आशय यह है कि AVC वक्र बढ़ता हुआ होगा। यदि हमने TVC वक्र की आकृति ठीक से स्थापित कर ली है तो AVC वक्र की आकृति V–किस्म की होगी।

औसत लागत-वक्र

चित्र 9–16 (अ) में औसत लागत वक्र कुल लागत-वक्र से उसी तरह से निकाला गया है जिस तरह से AVC वक्र TVC वक्र से निकाला गया है। x उत्पत्ति पर TC बराबर है xC के, इसलिए AC बराबर है xC/O_x के जो OC रेखा के ढाल के बराबर है। x_1 उत्पत्ति पर AC बराबर है x_1C_1/O_{x1} के, जो OC_1 के ढाल के बराबर है। x_4 उत्पत्ति पर AC बराबर है x_4C_4/O_{x4} के, जो OC_4 के ढाल के बराबर है। x_5 उत्पत्ति पर AC बराबर है x_5C_5/O_{x5} के, जो OC_5 के ढाल के
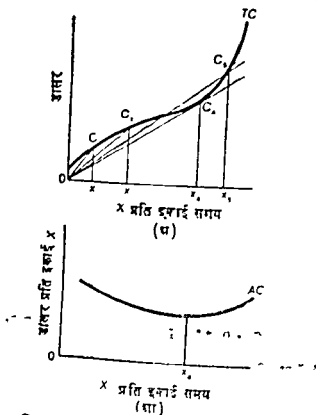
चित्र 9–16 TC और AC की ज्यामिति

बराबर है। OC रेखाओं के ढाल जो सम्बन्धित उत्पत्ति की मात्राओं के सामने अंकित किए गए हैं, चित्र 9–16 (आ) में AC वक्र को बनाते हैं।

यदि TC वक्र की आकृति सही है तो AC वक्र V–आकृति वाला वक्र होगा। उत्पत्ति के x_4 तक बढ़ते जाने पर OC रेखाओं का ढाल घटता जाता है। x_4 उत्पत्ति पर OC_4, TC वक्र को स्पर्श करता है और परिणामस्वरूप इसका ढाल न्यूनतम होता है। यहाँ AC न्यूनतम होती है। इससे अधिक उत्पत्ति की मात्राओं पर OC रेखाओं के ढाल बढ़ते हुए होते हैं,, अर्थात् AC बढ़ती हुई होती है।
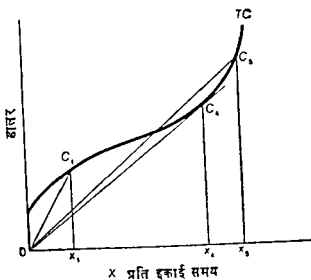
चित्र 9–17 AC और MC की ज्यामिति

AC और MC का सम्बन्ध

AC और MC का सम्बन्ध ज्यामितीय रूप में चित्र 9–17 के TC वक्र की सहायता से दिखलाया जा सकता है। x_1 उत्पत्ति को ही लीजिए। x_1 पर औसत लागत OC_1 रेखा के ढाल के बराबर है। x_1 उत्पत्ति की मात्रा पर सीमान्त लागत TC वक्र के इस उत्पत्ति पर पाए जाने वाले ढाल के बराबर होती है। x_1 उत्पत्ति पर TC वक्र की अपेक्षा OC_1 रेखा का ढाल अधिक है, इसलिए x_1 पर औसत लागत इसी उत्पत्ति पर सीमान्त लागत से अधिक होती है। x_4 उत्पत्ति की मात्रा तक यही स्थिति रहेगी। x_4 उत्पत्ति पर OC_4 रेखा का ढाल उस उत्पत्ति पर कुल लागत-वक्र के ढाल के बराबर होगा, जिसका आशय यह है कि औसत लागत और सीमान्त लागत उस उत्पत्ति पर समान होते है। हम पहले देख चुके हैं कि x_4 उत्पत्ति

पर औसत लागत न्यूनतम होती है। x_8 उत्पत्ति पर OC_8 रेखा का ढाल TC वक्र के ढाल से कम होता है जिसका आशय यह है कि उस उत्पत्ति पर सीमान्त लागत औसत लागत से अधिक होती है। यह सम्बन्ध x_8 से ऊपर उत्पत्ति की किसी भी मात्रा पर कायम रहेगा, अर्थात् उत्पत्ति की उन मात्राओं पर कायम रहेगा जहाँ औसत लागत बढ़ती हुई होती है। इस प्रकार जब औसत लागत घटती है तो सीमान्त लागत औसत लागत से कम होती है। जब औसत लागत न्यूनतम होती है तो सीमान्त लागत औसत लागत के बराबर होती है। जब औसत लागत बढ़ती है तो सीमान्त लागत औसत लागत से अधिक होती है।

□□□

शुद्ध प्रतिस्पर्धा के अन्तर्गत कीमत एवं उत्पत्ति-निर्धारण

इस अध्याय मे माग, उत्पादन एव लागत-विश्लेषण बाजार मे शुद्ध प्रतिस्पर्धा की दशाओ के अन्तर्गत कीमत एव उत्पत्ति निर्धारण की जांच करने के लिए एक साथ प्रस्तुत किये गये हैं। यहाँ जिस मॉडल को विकसित किया जायगा वह इस बात का एक शुद्ध या घर्षणरहित (pure or frictionless) चित्र प्रस्तुत करेगा कि एक स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था मे उत्पादन किस प्रकार से सगठित किया जाता है। इस व्यवस्था के सचालन व परिणामो को एकाधिकार के तत्व जिस प्रकार सशोधित करते हैं उन पर आगामी तीन अध्यायो मे विचार किया जायगा।

अध्याय 3 मे शुद्ध प्रतिस्पर्धा की परिभाषा दी गई थी। इसके प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं—(1) एक उद्योग के विक्रेताओ मे वस्तु समरूपता, (2) वस्तु के अनेक क्रेता और विक्रेता—अर्थात् दोनो इतने ज्यादा कि उनमे से कोई भी एक सम्पूर्ण बाजार की तुलना म इतना बडा नही होता कि वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सके—(3) माँग, पूर्ति व वस्तु-कीमत पर कृत्रिम प्रतिबन्धो की अनुपस्थिति, और (4) वस्तुओ व साधनो की गतिशीलता।

अति अल्पकाल

अति अल्पकाल, अथवा बाजार अवधि उन दशाओं को सूचित करती है जिनमे वस्तु की पूर्ति पहले से विद्यमान होती है। उदाहरणार्थ, एक वस्तु की माग मौसमी हो सकती है और उत्पादन उस मौसम से पहले किया जा सकता है जिसमे कि वस्तु की बिक्री की जाती है। इस सम्बन्ध मे दृष्टान्त वस्त्र उद्योगो से लिये जा सकते हैं। वसन्त, ग्रीष्म, पतझड एव शीत ऋतुओ के उत्पादन अनुमानित मौसमी मांगो पर आधारित होते हैं और बिक्री का मौसम आने से काफी पहले ही कर लिए जाते हैं। दूसरे दृष्टान्त ताजा फलो व सब्जियो के खुदरा बाजारो के होते हैं। खुदरा व्यापारी खराब होने वाली वस्तुओ का स्टॉक खरीदते हैं। ज्योही स्टॉक हाथ मे आते हैं उन्हे खराब होने से पहले ही निकालना होता है। एक और उदाहरण उस वस्तु का लिया जा सकता है जिसका उत्पादन तो मौसमी होता है लेकिन जिसकी माँग वर्ष भर

रहती है। गेहूँ व अन्य फसलों का उत्पादन इस किस्म की स्थिति को सूचित करता है। अर्थव्यवस्था को अति अल्पकाल में दो आधारभूत समस्याओं को हल करना होता है—(1) वस्तुओं की वर्तमान पूर्ति का अनेक उपभोक्ताओं के बीच जो इनकी माँग करते हैं, किस प्रकार से आवंटन या राशन किया जाय, और (2) पूर्ति की दी हुई मात्राओं को सम्पूर्ण अति अल्पकालीन अवधियों में किस प्रकार से वितरित किया जाय ?
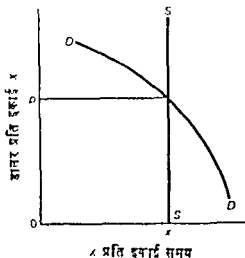
चित्र 10–1 उपभोक्ताओं के बीच अति अल्पकाल में राशनिंग

उपभोक्ताओं के बीच राशन

कीमत वह यंत्र है जिसके माध्यम से स्थिर पूर्ति का उन उपभोक्ताओं के बीच जो इसकी माँग करते हैं, राशन या आवंटन किया जाता है। मान लीजिए, स्थिर पूर्ति की अवधि एक दिन है और हम चित्र 10–1 में एक माँग-वक्र बनाते हैं जो प्रतिदिन के अनुसार वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं को दर्शाता है जिन्हें उपभोक्ता विभिन्न संभावित कीमतों पर बाजार में खरीदेंगे। पूर्ति-वक्र लम्बवत् होता है क्योंकि एक दिन के लिए पूर्ति स्थिर होती है। p कीमत पर बाजार में वस्तु बिक जायगी। प्रत्येक व्यक्ति जो उस कीमत पर वस्तु की माँग करता है, वाञ्छित मात्रा में इसे प्राप्त कर सकेगा। p से नीचे की कीमत पर वस्तु के अभाव की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी और उपभोक्ता कीमत को बढ़ा देंगे। p से ऊपर की कीमत पर वस्तु का आधिक्य हो जायगा और विक्रेता अपने हाथों से वस्तु को निकाल सकने के लिए इसकी कीमत गिरा देंगे। p कीमत पर उपभोक्ता ऐच्छिक रूप से अपने आपको स्थिर पूर्ति तक सीमित कर लेंगे।
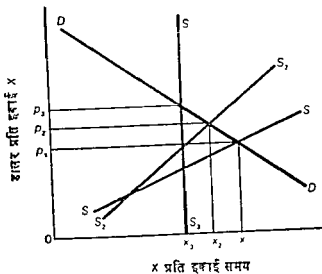
चित्र 10–2 एक अवधि-विशेष मे अति अल्पकालीन राशनिंग (Very Short Run Rationing over Time)

एक अवधि-विशेष के बीच राशन (Rationing over Time)

कीमतें स्थिर पूर्ति को एक अवधि-विशेष के बीच राशन करने का भी काम करती हैं, लेकिन यहाँ राशन की प्रक्रिया अधिक जटिल होती है। मान लीजिए, अति अल्पकाल एक वर्ष का है। लेकिन कल्पना कीजिये कि चित्र 10–2 का माँग-वक्र केवल चार माह की अवधि पर ही लागू होता है। स्थिति को सरल बनाये रखने के लिए हम यह भी मान लेते हैं कि वर्ष की तीन-चार माह की अवधियो मे से प्रत्येक के लिए माँग-वक्र एक-सा होता है। मान लीजिए, विक्रेता प्रत्येक चार माह की अवधि के लिए बाजार का सही अनुमान लगाते हैं और उसी के अनुसार अपना माल बेचते अथवा अपने पास रखते हैं।

चूंकि रेखाचित्र चार-माह की अवधि पर ही लागू होता है, इसलिए प्रथम चार माह की अवधि के लिए पूर्ति-वक्र लम्बवत् नहीं होगा। विक्रेताओ को इन तीन-चार माह की अवधियो मे से किसी मे भी बेच सकने का अवसर होगा। प्रथम अवधि मे जितनी ऊँची कीमत दी जायगी, उस अवधि मे विक्रेता उतनी ही अधिक मात्रा बाजार मे प्रस्तुत करेंगे। इस प्रकार प्रथम चार माह की अवधि के लिए पूर्ति-वक्र ऊपर की ओर जाने वाला वक्र होगा जैसे S_1S_1 है। बाजार-कीमत p_1 और विक्रय की मात्रा x_1 होगी।

यह आशा की जा सकती है कि द्वितीय चार माह की अवधि मे पूर्ति-वक्र, केवल

नीची कीमतों को छोड़कर S_1S_1 से ऊपर एव कम लोचदार होगा। यह S_1S_1 से ऊपर इसलिए होगा कि विक्रेताओं को इस बात के लिए प्रेरित करने के लिए कि वे वस्तु को रोके रख सकें उन्हें विभिन्न मात्राओं के लिए काफी ऊँची कीमतें देना आवश्यक होगा, ताकि वे संग्रह की लागतें निकाल सकें और आगे ले जायी जाने वाली वस्तुओं म किये गये विनियोग पर प्रतिफल की एक सामान्य दर प्राप्त कर सकें। लेकिन काफी नीची कीमतों पर द्वितीय चार माह की अवधि का पूर्ति-वक्र S_1S_1 के दायी ओर हो जाता है। द्वितीय अवधि में नीची कीमतों की सम्भावना प्रथम अवधि म ऐसी ही सम्भावना की अपेक्षा ज्यादा गम्भीर होगी, क्योंकि रोकी गई पूर्ति को बेचने के अवसर सीमित हो जाते हैं। परिणामस्वरूप विक्रेता द्वितीय अवधि म अधिक माल प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित हो सकते हैं, बनिस्बत उस मात्रा के जिसे वे प्रथम अवधि म उन्हीं भावों पर बाजार में प्रस्तुत करने के लिए उद्यत होते। विभिन्न कीमतों पर पाई जाने वाली नीची लोच भी रोकी गई पूर्ति के सम्बन्ध मे बिक्री के अवसरो के सीमित होने का ही परिणाम मानी जा सकती है। जिन अवधियों के बीच में पूर्ति को बेचा जा सकता है वे अब घटकर दो रह गई हैं। द्वितीय अवधि का पूर्ति-वक्र बहुत कुछ S_2S_2 के जैसा प्रतीत होगा। कीमत p_2 और विक्रय की मात्रा x_2 होगी।

तृतीय चार माह की अवधि चित्र 10–1 मे प्रदर्शित स्थिति के जैसी होगी। बची हुई पूर्ति को तृतीय अवधि म समाप्त करना होगा, परिणामस्वरूप चित्र 10–2 मे पूर्ति वक्र S_3S_3 होगा। ध्यान रहे कि S_3S_3, केवल नीचे भावों को छोड़कर, S_2S_2 से ऊपर रहेगा और यह S_2S_2 से कम लोचदार होगा। वास्तव मे S_3S_3 पूर्णतया बेलोच होता है। कीमत p_3 और विक्रय की मात्रा x_3 होती है।

चार माह की अवधियो के लिए उत्तरोत्तर ऊँची कीमतें तभी पाई जायेंगी जबकि विक्रेता माँग का एव रोकी जाने वाली वस्तु की मात्राओं का सही अनुमान लगा पाते हैं। यदि विक्रेता भावी बाजार के बारे में गलत अन्दाज लगा लेते हैं और द्वितीय व तृतीय अवधियो मे अधिक मात्राएँ रख लेते हैं तो उन अवधियो मे कीमतें प्रथम अवधि की तुलना मे नीची गिर सकती है। यदि विक्रेताओं के अनुमान सही निकलते हैं तो प्रत्येक अगली अवधि मे कीमत पूर्व अवधियो की तुलना में इतनी ऊँची पाई जाती है ताकि संग्रह-लागत, रोकी गई पूर्ति मे किये गये विनियोग पर प्रतिफल की सामान्य दर और उत्तरोत्तर अगली अवधियो के लिए रोकी गई पूर्ति की मात्राओ मे निहित जोखिमो की क्षतिपूर्ति के लिए धनराशि प्राप्त हो सके।

इस प्रकार कीमत एक अवधि-विशेष मे स्थिर पूर्ति का राशन करने का कार्य करती है। विक्रेता अथवा सटोरिये, इनमे से जो भी हो, अति अल्पकाल के प्रारम्भिक

भाग मे बाजार मे माल की पूर्ति को रोककर उस अवधि मे कीमत उस स्तर से ऊपर ला देते हैं जो अन्यथा पाई जाती । इस प्रकार अपनी सट्टे की क्रिया के द्वारा वे सम्पूर्ण अवधि मे कीमतो व बेची जाने वाली मात्राओ मे समानता स्थापित करते हैं । सट्टे की क्रिया के अभाव मे अवधि के प्रारम्भ मे बाजार मे माल की अधिक मात्रायें प्रस्तुत की जायेंगी जिससे कीमत गिर जायेगी । अवधि के बाद के भाग म थोडी मात्राओ के उपलब्ध होने से कीमत बढ जायेगी । ऊपर वर्णित सट्टे की क्रिया एक अवधि विशेष मे कीमत मे चढाव की प्रवृत्ति को मिटा तो नही सकती लेकिन यह अवधि के प्रारम्भिक और बाद के भागो के बीच पाये जाने वाले कीमतो के अन्तर को कम करने मे काफी मदद करती है । इस प्रकार की क्रिया उन सग्रहणीय फार्म-वस्तुओ के बाजारो मे नियमित रूप से होती रहती है जो कीमत-समर्थन कार्यक्रम (price-support program) से बाहर होती है ।

एक स्वाभाविक निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन का एक स्वाभाविक परिणाम यह निकलता है कि जब बाजार में एक वस्तु की मात्रा स्थिर होती है तो इसकी कीमत के निर्धारण मे उत्पादन लागत का कोई स्थान नही होता है । कीमत वस्तु की मांग के साथ केवल इसकी स्थिर पूर्ति से ही निर्धारित होती है ।[1] ऐसी वस्तु के विक्रेताओ के लिए उत्पादन लागतो को निकालने का प्रयत्न करना व्यर्थ होगा । एक शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक विक्रेता जो स्वय अपने माल का उपभोग नही कर सकता, वह इसे अनिश्चित समय तक अपने पास रखने की बजाय शून्य से ऊपर किसी भी कीमत पर बेचना पसन्द करेगा । बासी रोटी और ज्यादा पके हुए केले इसके दृष्टान्त के रूप मे लिये जा सकते है । उत्पादन की लागतें तो तभी सामने आती हैं जबकि विचाराधीन अवधि मे उत्पादित पूर्ति मे परिवर्तन करने की कुछ सम्भावना पाई जाती है । ऐसी सम्भावना अल्पकाल व दीर्घकाल दोनो मे पाई जाती है जिन पर हमे अभी विचार करना है ।

अल्पकाल

अल्पकाल वह समयावधि होती है जिसमे फर्म अपनी उत्पत्ति मे तो परिवर्तन कर सकती है लेकिन उसके पास अपने सयत्र के आकार को बदलने का समय नही होता । उद्योग मे फर्मों की सख्या भी स्थिर रहती है, क्योंकि न तो नई फर्मों के लिए प्रवेश का समय होता है और न चालू फर्मों के लिए छोडने का । उद्योग की उत्पत्ति के परिवर्तन चालू फर्मो की स्थिर सयत्र क्षमता से ही उत्पन्न हो सकते हैं । चूंकि प्रत्येक

1 ध्यान रहे कि चित्र 10-2 के दृष्टात मे बाजार पूर्ति केवल तृतीय अवधि के लिए ही निरपेक्ष मात्रा के रूप में स्थिर रहती है ।

फर्म जिस बाजार में माल बेचती है उसकी तुलना में इतनी छोटी होती है कि वह वस्तु की बाजार कीमत को प्रभावित करने में असमर्थ रहती है, इसलिए फर्म के समक्ष तो समस्या मात्र की उस मात्रा के निर्धारण की होती है जिसकी उत्पत्ति व बिक्री की जाती है। सम्पूर्ण बाजार की दृष्टि से बाजार-कीमत और बाजार-उत्पत्ति का निर्धारण किया जाना चाहिए।

फर्म

हम प्रारम्भ में यह मान लेते हैं कि फर्म का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना अथवा यदि वह लाभ नहीं कमा सकती तो अपनी हानि को न्यूनतम करना होता है। इस मान्यता को संशोधित किया जा सकता है ताकि इसमें न्यूनतम लाभ के प्रतिबन्ध सहित बिक्री अधिकतमकरण, वातावरण पर ध्यान देने एवं समाज की सांस्कृतिक क्रियाओं में अभिवृद्धि, जैसे अन्य उद्देश्यों को भी शामिल किया जा सके। लेकिन प्राय हम यही आशा करते हैं कि एक फर्म ऐसे चुनाव करेगी जिनके कारण वह कम की बजाय ज्यादा लाभ अर्जित कर सके, और ऐसे चुनाव उसे लाभ अधिकतमकरण की तरफ ही ले जाते हैं। लाभ फर्म की कुल प्राप्तियों (TR) और इसकी कुल लागतों (TC) के अन्तर के रूप में परिभाषित किये जाते हैं।
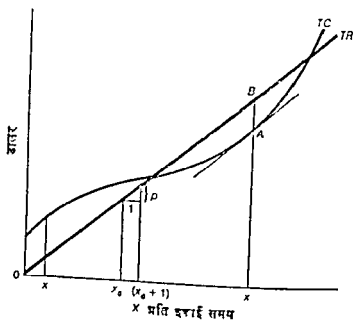
चित्र 10–3 अल्पकाल में लाभ-अधिकतमकरण कुल वक्रों की सहायता से

लाभ अधिकतमकरण कुल दक्ष-लाभ को अधिकतम करने के लिए उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओ पर कुल लागतो की तुलना कुल प्राप्तियो से करनी होती है और उत्पत्ति को उस मात्रा का चुनाव करना होता है जिस पर कुल प्राप्तियां कुल लागतो से सबसे ज्यादा ऊँची हो। उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओ पर कुल प्राप्तियां अथवा कुल आय (total revenue) चित्र 10–3 मे उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओ पर अल्पकालीन कुल लागतो के साथ अकित की गई हैं। कुल लागत-वक्र पूर्व अध्याय का अल्पकालीन कुल लागत वक्र ही है। कुल प्राप्ति वक्र पर अधिक विचार करने की आवश्यकता है।

चूँकि फर्म प्रति इकाई एक ही कीमत पर अधिक या कम माल बेच सकती है, इसलिए कुल प्राप्ति वक्र शून्य से प्रारम्भ होकर ऊपर की ओर जाने वाला रेखीय वक्र होगा। यदि फर्म की बिक्री शून्य के बराबर होती है, तो कुल प्राप्तियां भी शून्य के बराबर होगी। यदि प्रति इकाई समयानुसार एक इकाई की बिक्री होनी है तो फर्म की कुल प्राप्तियां वस्तु की कीमत के बराबर होती है। उत्पत्ति व बिक्री की दो इकाइयो पर कुल प्राप्तियां वस्तु की कीमत के दुगुने के बराबर होगी। प्रति इकाई समयानुसार फर्म की बिक्री मे एक इकाई की वृद्धि से कुल प्राप्तियो मे एक स्थिर राशि के बराबर–प्रति इकाई वस्तु की कीमत के बराबर वृद्धि होती है–इसलिए कुल प्राप्ति-वक्र ऊपर की ओर जाने वाला एव रेखीय होता है।[2]

फर्म के लाभ X उत्पत्ति पर अधिकतम होते हैं जहाँ TR और TC के बीच लम्बवत् दूरी अधिकतम होती है। यह राशि AB लम्बवत् दूरी से मापी जाती है। X उत्पत्ति पर दोनो वक्रो के ढाल बराबर होते हैं। X से कम उत्पत्ति की मात्राओ पर TR का ढाल TC से अधिक होना है, इसलिए उत्पत्ति के बढने पर दोनो वक्र एक दूसरे से अधिक दूर हो जाते हैं। X से अधिक उत्पत्ति की मात्राओ पर TC का ढाल TR से अधिक होना है, इसलिए उत्पत्ति के बढने पर दोनो वक्र परस्पर अधिक समीप आते जाते हैं।

फर्म की बिक्री मे एक इकाई के परिवर्तन से कुल प्राप्तियो मे जिस राशि के बराबर परिवर्तन होता है उसे सीमान्त आय (marginal revenue) कहते हैं। शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओ मे फर्म के लिए वस्तु की कीमत स्थिर रहती है, इसलिए बिक्री मे एक इकाई के परिवर्तन से कुल प्राप्तियो मे होने वाला परिवर्तन अनिवार्यत वस्तु की कीमत के बराबर होता है। शुद्ध प्रतिस्पर्धा मे विक्रेता के लिए सीमान्त आय और वस्तु की कीमत बराबर होते हैं। चित्र 10–3 मे बिक्री मे X_0 से (X_0+1)

---

2. कुल प्राप्ति वक्र निम्न रूप मे लिखा जा सकता है

$$=f(x)=XP.$$

तक वृद्धि से TR में P के बराबर वृद्धि होती है। इस प्रकार सीमान्त आय और वस्तु की कीमत TR वक्र के ढाल के बराबर होते हैं।[3]

लाभ को अधिकतम करने की आवश्यक शर्तें सीमान्त आय और सीमान्त लागत की भाषा में पुन: व्यक्त की जा सकती हैं। चूँकि सीमान्त लागत TC वक्र के ढाल के बराबर होती है, और सीमान्त आय TR वक्र के ढाल के बराबर होती है, इसलिए लाभ उत्पत्ति की उस मात्रा पर अधिकतम किये जाते हैं जहाँ सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होती है।[4] हम देख सकते हैं कि X से कम उत्पत्ति की मात्रा पर सीमान्त आय सीमान्त लागत से अधिक होती है। इसका आशय यह है कि X तक उत्पत्ति की अपेक्षाकृत अधिक मात्राओं से फर्म की कुल लागतों की अपेक्षा कुल
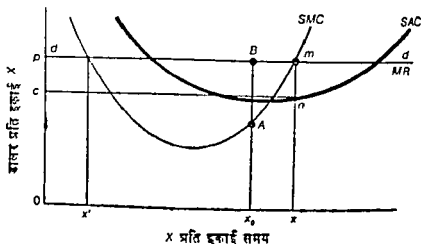
चित्र 10–4 अल्पकाल में लाभ-अधिकतमकरण : प्रति-इकाई वक्र

3. सीमांत आय और कुल आय में वही सम्बन्ध होता है जो सीमांत उपयोगिता और कुल उपयोगिता, एक साधन की सीमांत भौतिक उत्पत्ति और कुल उत्पत्ति, और सीमांत लागत व कुल लागत में पाया जाता है।

चूँकि :
$$R = f(X) = XP,$$
जिसमें P एक स्थिर राशि है, अतः

$$MR = \frac{dR}{dx} = f'(X) = P.$$

4. इस कथन का उपयोग सावधानी से किया जाना चाहिए। चित्र 10–3 में X′ उत्पत्ति की मात्रा को लीजिए। X′ उत्पत्ति पर लाभ की बजाय हानि अधिकतम होती है, लेकिन यहाँ सीमांत लागत सीमांत आय के बराबर होती है। इस विषय का स्पष्टीकरण नीचे प्रति इकाई वक्रों के विवेचन में किया जाएगा।

प्राप्तियो मे अधिक वृद्धि होती है जिससे लाभ मे विशुद्ध रूप से वृद्धि होती है। X उत्पत्ति से आगे सीमान्त लागत सीमान्त आय से अधिक होती है। इस प्रकार X से अधिक उत्पत्ति की मात्राओ के लिए, कुल लागतो मे कुल प्राप्तियो की अपेक्षा अधिक वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप लाभ की मात्रा भी कम हो जाती है।[5]

लाभ अधिकतमकरण : प्रति इकाई वक्र—फर्म की उस उत्पत्ति का विश्लेषण जिस पर लाभ अधिकतम होता है, प्राय प्रति इकाई लागत और आय-वक्रो की सहायता से किया जाता है। मूलभूत विश्लेषण तो वही रहता है जो ऊपर दिया गया है, लेकिन रेखाचित्र के रूप मे विवेचन भिन्न हो जाता है। चित्र 10–4 मे फर्म का अल्पकालीन औसत लागत-वक्र और अल्पकालीन सीमान्त लागत-वक्र फर्म के समक्ष होने वाले मांग-वक्र के रूप मे प्रदर्शित किये गये हैं। चूंकि सीमान्त आय प्रति इकाई कीमत के बराबर होती है, इसलिए सीमान्त आय-वक्र फर्म के समक्ष होने वाले मांग-वक्र से मेल खाता है। फर्म की सभी सभावित उत्पत्ति की मात्राओ पर ये दोनो वस्तु की बाजार-कीमत के बराबर होते हैं।

लाभ उत्पत्ति की उस मात्रा पर अधिकतम होते हैं जहाँ सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होती है, अर्थात्, X उत्पत्ति पर जहाँ SMC बराबर होती है MR के।[6] X से कम उत्पत्ति की किसी भी मात्रा पर, मान लीजिए X_0 पर, सीमान्त

---

5 लाभ को π से सूचित करने पर एव कुल लागत फलन को $C=g(x)$ मानने पर :

$$\pi = R - C = f(X) - g(X)$$

लाभ-अधिकतमकरण की आवश्यक शर्तें इस प्रकार हैं :

$$\frac{d\pi}{dx} = f'(X) - g'(X) = 0,$$

अथवा

$$f'(X) = g'(X);$$

अर्थात् ·

$$MR = MC.$$

पर्याप्त शर्तें इस प्रकार हैं ·

$$\frac{d^2\pi}{dx^2} < 0$$

6 X' उत्पत्ति की मात्रा पर MC बराबर होती है MR के, लेकिन यह अधिकतम हानि वाली उत्पत्ति की मात्रा होती है। लाभ अधिकतम करने के हेतु MC को MR के बराबर तो होना ही चाहिए, लेकिन इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटे।

आय X_0B, सीमान्त लागत X_0A से अधिक होती है। X तक उत्पत्ति की मात्रा के बढ़ने से कुल लागत की अपेक्षा कुल प्राप्तियों में अधिक वृद्धि होगी; इसलिए उस बिन्दु तक लाभ की मात्राओं में वृद्धि होगी। X उत्पत्ति से परे SMC अधिक होती है MR से, जिसका आशय यह है कि उत्पत्ति की उन अधिक मात्राओं पर जाने से कुल प्राप्तियों की अपेक्षा कुल लागतों में अधिक वृद्धि होती है जिससे लाभ में गिरावट आती है। अतएव X उत्पत्ति की अधिकतम लाभ वाली मात्रा होती है। चित्र 10–4 में फर्म का कुल लाभ cpmn आयत के क्षेत्रफल के बराबर होता है। X उत्पत्ति पर प्रति इकाई लाभ कीमत p में से औसत लागत C के घटाने के बराबर होता है। कुल लाभ प्रति इकाई लाभ की बिक्री से गुणा करने के बराबर होता है, अर्थात् कुल लाभ $cp \times x$ के समान होता है। स्मरण रहे कि X उत्पत्ति पर प्रति इकाई लाभ की मात्रा अधिकतम नहीं हो जाती है, और कोई कारण नहीं लगता है कि वह अधिकतम ही हो। फर्म का सम्बन्ध प्रति इकाई लाभ से न होकर कुल लाभ से होता है।

हानि-न्यूनतमकरण (Loss Minimization)—यदि उत्पत्ति की सभी सम्भव मात्राओं पर वस्तु का बाजार भाव अल्पकालीन औसत लागतों से कम होता है तो फर्म लाभ अर्जित करने के बजाय हानि उठाती है। चूँकि अल्पकाल में इतना कम समय होता है कि यह अपना संयंत्र का आकार नहीं बदल सकती, इसलिए अल्पकाल में संयंत्र को समाप्त करना सम्भव नहीं होता। फर्म के लिए निम्न चुनाव खुले रहते हैं (1) क्या वह हानि उठाकर उत्पादन करे या (2) क्या वह उत्पादन बंद कर दे। दूसरे विकल्प का चुनाव करने पर भी स्थिर लागत तो भरनी ही पड़ेगी।

फर्म का निर्णय इस बात पर निर्भर करेगा कि माल की कीमत में औसत परिवर्तनशील लागतें शामिल हो पाती हैं अथवा नहीं (अर्थात् कुल प्राप्तियों में कुल परिवर्तनशील लागतें शामिल हो पाती हैं अथवा नहीं)। मान लीजिए चित्र 10-5 में वस्तु की बाजार-कीमत p_0 है। यदि फर्म X_0 मात्रा का उत्पादन करती है जिस पर SMC बराबर होती है MR_0 के, तो कुल प्राप्तियाँ $p_0 \times X_0$ के बराबर होंगी। कुल परिवर्तनशील लागतें भी $p_0 \times X_0$ के बराबर होती हैं, इसलिए कुल प्राप्तियों में कुल परिवर्तनशील लागतें मात्र ही आ पाती हैं। कुल लागतें कुल परिवर्तनशील लागतों व कुल स्थिर लागतों के जोड़ के बराबर होती हैं, इसलिए यदि परिवर्तनशील लागतें मात्र ही निकल पाती हैं तो फर्म का घाटा कुल स्थिर लागतों के बराबर ही होगा। फर्म चाहे उत्पादन करे अथवा न करे, इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। दोनों ही दशाओं में घाटा कुल स्थिर लागत के बराबर होगा।
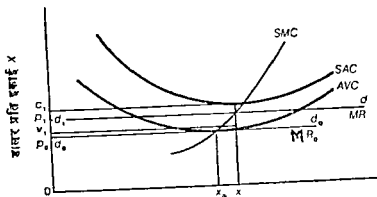
चित्र 10–5 अल्पकाल मे हानि-न्यूनतमकरण

यदि बाजार-कीमत न्यूनतम औसत परिवर्तनशील लागतो से कम होती है तो फर्म उत्पादन बन्द करके ही अपना घाटा न्यूनतम कर सकती है। जब फर्म कुछ भी उत्पादन नही करती है तो हानि कुल स्थिर लागतो के बराबर होती है। यदि फर्म p_0 से कम कीमत पर माल का उत्पादन करती है तो औसत परिवर्तनशील लागतें कीमत से अधिक होती हैं और कुल परिवर्तनशील लागतें कुल प्राप्तियो से अधिक होती हैं। ऐसी दशा मे हानि की मात्रा कुल स्थिर लागतो एव कुल परिवर्तनशील लागतो के उस अश के जोड के बराबर होती है जो कुल प्राप्तियो मे शामिल नही होता है।

न्यूनतम औसत परिवर्तनशील लागतो से अधिक, लेकिन न्यूनतम SAC से कम, कीमत पर फर्म के लिए उत्पादन करना ठीक रहेगा। p_1 कीमत पर x_1 उत्पत्ति की मात्रा से हानि की राशि कुल स्थिर लागतो की राशि से कम होगी। कुल प्राप्तियाँ $p_1 \times x_1$ के बराबर होगी। कुल परिवर्तनशील लागतें $V_1 \times x_1$ होगी। कुल प्राप्तियाँ कुल परिवर्तनशील लागतो से $V_1 p_1 \times x_1$ अधिक होती हैं। कुल प्राप्तियो का कुल परिवर्तनशील लागतो से जो आधिक्य होता है वह कुल स्थिर लागतो के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है, इस प्रकार हानि की राशि कुल स्थिर लागतो की राशि से कम हो जाती है। इस स्थिति मे हानि की मात्रा $p_1 c_1 \times x_1$ के बराबर होती है।

उदाहरण के लिए हम मान लेते हैं कि विचाराधीन फर्म एक गेहूँ उत्पन्न करने वाला कृषक है जो अपने फार्म एव अपनी मशीनों का स्वामी है। फार्म गिरवी रखा हुआ है और मशीनो का अभी तक भुगतान नही किया गया है। गिरवी और मशीनो के लिए किये जाने वाले भुगतान उसकी स्थिर लागतो मे आते हैं और ये भुगतान तो

करने ही होते हैं चाहे वह गेहूँ का उत्पादन करे अथवा न करे। बीज, गैसोलीन, खाद और उसके स्वयं के श्रम पर किये जाने वाले व्यय उसकी परिवर्तनशील लागतों का सूचित करते हैं। यदि वह कुछ भी उत्पादन नहीं करता तो परिवर्तनशील साधनों पर व्यय करने की कोई भी आवश्यकता नहीं होगी।

प्रश्न उठता है कि वह किन परिस्थितियों में उत्पादन बिल्कुल बन्द रखे और अपना श्रम किसी और को मजदूरी पर उपलब्ध करे? यदि गेहूँ की फसल से प्राप्त होने वाली अनुमानित राशियाँ बीज, गैसोलीन, खाद व उसके स्वयं के श्रम की लागतों को शामिल करने की दृष्टि से पर्याप्त नहीं होती तो उसे उत्पादन नहीं करना चाहिए। यदि वह इन परिस्थितियों में उत्पादन करेगा तो उसकी हानि की मात्रा गिरवी (mortgage) व मशीनों के भुगतान एवं उसकी परिवर्तनशील लागतों के उस भाग के जोड़ के बराबर होगी जो उसकी प्राप्तियों में शामिल नहीं होता। यदि वह उत्पादन नहीं करता है तो उसकी हानि की मात्रा केवल गिरवी एवं मशीनों के भुगतान के बराबर ही होगी। अतः उसे उत्पादन नहीं करना चाहिए।

यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि किन परिस्थितियों में घाटा उठाकर भी उत्पादन करना उसके लिए उचित होगा? यदि प्रत्याशित प्राप्तियाँ (expected receipts) परिवर्तनशील लागतों से अधिक होती हैं तो अतिरिक्त राशि गिरवी और मशीनों के भुगतान के लिए प्रयुक्त की जा सकती है और ऐसी स्थिति में उत्पादन किया जाना चाहिए। इन परिस्थितियों में उत्पादन न करने के निर्णय का आशय यह है कि हानि स्थिर लागतों की पूरी मात्रा के बराबर होगी। यदि वह उत्पादन करता है तो उसका घाटा उसकी कुल स्थिर लागतों की मात्रा से कम होगा।

x_1' उत्पत्ति पर जब बाजार-कीमत p_1 होती है तो SMC और MR के बीच की समानता यह दर्शाती है कि हानि की मात्रा न्यूनतम है। उत्पत्ति की नीची मात्रा पर MR की मात्रा SMC से अधिक होती है, और उत्पत्ति में वृद्धि होने से कुल प्राप्तियों में कुल लागतों की अपेक्षा ज्यादा वृद्धि होती है जिससे हानि में कमी हो जाती है। x_1 उत्पत्ति से आगे, SMC की मात्रा MR से अधिक होती है, जिसका आशय यह है कि उत्पत्ति में वृद्धि होने से कुल प्राप्तियों की अपेक्षा कुल लागतों में अधिक वृद्धि होती है। उत्पत्ति की इन वृद्धियों से हानि की राशियों में वृद्धि होती है। अतः हानि की मात्रा उस उत्पत्ति पर न्यूनतम होती है जहाँ SMC की मात्रा MR के बराबर होती है।

साराश यह है कि फर्म उत्पत्ति की उस मात्रा का उत्पादन करके अपना लाभ अधिकतम करती है अथवा हानि न्यूनतम करती है जहाँ SMC बराबर होती है MR के अथवा कीमत के। इसका एक अपवाद होता है। यदि बाजार-कीमत फर्म की

औसत परिवर्तनशील लागतो से कम होती है तो उत्पादन बिल्कुल बन्द करके ही हानि न्यूनतम की जा सकती है, ऐसी दशा मे हानि की मात्रा कुल स्थिर लागतो के बराबर होती है।

फर्म का अल्पकालीन पूर्ति-वक्र—फर्म के SMC वक्र का वह अश जो AVC वक्र के ऊपर होता है, वस्तु के लिए फर्म का अल्पकालीन पूर्ति-वक्र कहलाता है। SMC वक्र वस्तु की उन विभिन्न मात्राओ को दर्शाता है जिन्हे फर्म विभिन्न सभावित कीमतो पर बाजार मे प्रस्तुत करती है। प्रत्येक सभव-कीमत पर फर्म वस्तु की वह मात्रा उत्पन्न करेगी जहाँ SMC p के बराबर होती है (और MR) के ताकि लाभ अधिकतम हो सके अथवा हानि न्यूनतम हो सके। AVC से नीचे किसी भी कीमत पर पूर्ति शून्य हो जाती है।

बाजार

अभी तक बाजार अथवा उद्योग मे कीमत दी हुई मानी गई है, लेकिन अब हमारे पास यह जानने के लिए आवश्यक उपकरण विद्यमान है कि यह कैसे निर्धारित होती है। बाजार-कीमत एक तरफ वस्तु की माँग करने वालो और दूसरी तरफ वस्तु की पूर्ति करने वालो के बीच अन्तर्क्रियाओ से उत्पन्न होती है। हमने पिछले अध्यायो मे बाजार माँग-वक्र के पीछे पाई जाने वाली शक्तियो का विवेचन किया है, लेकिन हमे अभी भी बाजार पूर्ति-वक्र को स्थापित करना है। एक वस्तु के लिए अल्पकालीन बाजार पूर्ति-वक्र एक वैयक्तिक फर्म के पूर्ति-वक्र से परे एक छोटा सा कदम ही होता है। इसको स्थापित करने के पश्चात् हम सम्पूर्ण बाजार के अल्पकालीन सतुलन पर विचार करेंगे।

बाजार का अल्पकालीन पूर्ति-वक्र—निकटतम रूप मे हम **अल्पकालीन बाजार पूर्ति-वक्र** को बाजार मे समस्त फर्मों के अल्पकालीन पूर्ति-वक्रो का क्षैतिज योग ही मान सकते हैं। यह पूर्ति-वक्र वस्तु की उन मात्राओ को दर्शाता है जिन्हे विभिन्न सभावित कीमतो पर सभी फर्में मिलकर बाजार मे प्रस्तुत करती है। बाजार का ऐसा अल्पकालीन पूर्ति-वक्र तभी सही माना जायेगा जबकि बाजार मे फर्मों के समूह के लिए साधनो की पूर्तियाँ पूर्णतया लोचदार हो, अर्थात्, एक साथ समस्त फर्मों के द्वारा लगाये जाने वाले साधनो की इकाइयो एव वस्तु की उत्पत्ति मे परिवर्तन होने से साधनो की कीमत पर कोई प्रभाव नही पडता। हम इस बात पर शीघ्र ही लौट आयेंगे।

अल्पकालीन संतुलन—चित्र 10-6 मे रेखाचित्र की सहायता से बाजार-कीमत, बाजार उत्पत्ति और उद्योग मे एक प्रतिनिधि फर्म की उत्पत्ति का निर्धारण दिखलाया गया है। बाजार के रेखाचित्र का उत्पत्ति-अक्ष फर्म के रेखाचित्र की तुलना मे काफी
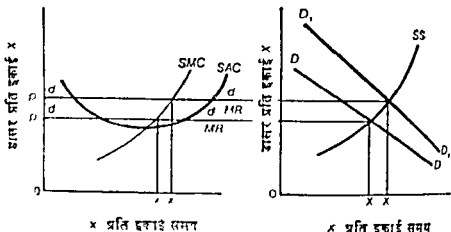
चित्र 10-6 अल्पकालीन सतुलन : फर्म व उद्योग

छोटा बना दिया गया है। दोनों रेखाचित्रों के कीमत-प्रक्ष समान हैं। वस्तु का बाजार मांग वक्र बाजार रेखाचित्र में DD के रूप मे दर्शाया गया है। प्रतिनिधि फर्म के SAC और SMC वक्र फर्म के रेखाचित्र में खींचे गये हैं। समस्त व्यक्तिगत फर्मों के पूर्ति वक्रों के क्षैतिज जोड़ से बाजार का अल्पकालीन पूर्ति-वक्र SS बन जाता है। अल्पकालीन सतुलन बाजार-कीमत p होगी। इस स्तर पर फर्म का मांग-वक्र व सीमान्त आय-वक्र क्षैतिज होंगे। लाभ को अधिकतम करने के लिए प्रतिनिधि फर्म व बाजार मे प्रत्येक फर्म उस उत्पत्ति तक उत्पादन करेगी जहां SMC=MR=p हो। फर्म की उत्पत्ति x के बराबर होती है। समस्त फर्मों की सयुक्त उत्पत्ति बाजार-उत्पत्ति X के बराबर होनी है। सम्पूर्ण बाजार एव बाजार मे प्रत्येक फर्म दोनों अल्पकालीन सतुलन की दशा मे होते हैं।

वस्तु की बाजार मांग मे D_1D_1 तक वृद्धि हो जाने से अल्पकालीन सतुलन-कीमत और उत्पत्ति मे वृद्धि हो जाती है। मांग मे वृद्धि हो जाने से पुरानी कीमत p पर वस्तु का अभाव उत्पन्न हो जाता है। उपभोक्ता कीमत को p^1 तक बढ़वा देंगे। फर्म का मांग वक्र व सीमान्त आय-वक्र नवीन बाजार भाव के स्तर तक आ जाते हैं। लाभ अधिकतम करने के लिए प्रत्येक फर्म उस बिन्दु तक अपनी उत्पत्ति को बढ़ायेगी जहां इसकी SMC इसकी नई सीमान्त आय और नई बाजार-कीमत के बराबर हो जाती है। प्रतिनिधि फर्म की नई उत्पत्ति x^1 होगी और नई बाजार उत्पत्ति X^1 के बराबर होगी।

पूर्ति-वक्र के संशोधन—जब एक साथ काम करने वाली समस्त फर्मों के द्वारा प्रयुक्त साधनो की इकाइयो के विस्तार अथवा सकुचन से साधनो की कीमतो मे

परिवर्तन हो जाते हैं, तो बाजार का अल्पकालीन पूर्ति-वक्र व्यक्तिगत फर्मों के पूर्ति-वक्रों का क्षैतिज जोड मात्र ही नही रह जाता है। यद्यपि एक फर्म अपने द्वारा खरीदे जाने वाले साधनों की मात्राओं में विस्तार अथवा संकुचन करके साधनों की कीमतों को प्रभावित नहीं कर सकती, लेकिन सभी फर्में एक साथ काम करके ऐसा करने में समर्थ हो सकती हैं। यदि बाजार की उत्पत्ति एवं साधनों की मात्राओं के विस्तार से साधनों की कीमतों में वृद्धि होती है, तो व्यक्तिगत फर्म के लागत-वक्र ऊपर की ओर खिसक जाते हैं। यदि विस्तार के फलस्वरूप साधनों की कीमतें गिर जाती हैं, तो फर्म के लागत-वक्र नीचे की ओर खिसक जायेंगे। साथ में यह सम्भावना भी पाई जाती है कि कुछ साधनों की कीमतें बढ जाय एवम् कुछ की घट जाय। इसके प्रभाव के रूप में लागत-वक्रों की आकृति में कुछ परिवर्तन हो सकता है और इनका ऊपर या नीचे खिसकना भी सम्भव हो सकता है जो इस बात पर निर्भर करता है कि प्रधानता साधनों की कीमत में वृद्धियों की है अथवा कमियों की।

विस्तार की स्थिति में साधनों की कीमतों के बढने का विशुद्ध प्रभाव यह होगा कि बाजार का अल्पकालीन पूर्ति-वक्र कम लोचदार हो जायगा। चित्र 10–6 में माँग की वृद्धि से कीमत व सीमान्त आय में वृद्धि हो जाती है जिससे फर्मों को उत्पत्ति बढाने की प्रेरणा मिलती है। लेकिन मान लीजिए उत्पादन की वृद्धि से साधनों की कीमतों में वृद्धि हो जाती है जिससे SAC व SMC ऊपर की ओर खिसक जाते हैं। SMC का ऊपर की ओर खिसकना इसका बायीं ओर खिसकना भी होता है, जिसका आशय है कि नया SMC वक्र अपेक्षाकृत कम उत्पत्ति की मात्रा पर सीमान्त आय या कीमत के बराबर होता है, बनिस्बत उस स्थिति के जबकि SMC वक्र नहीं खिसकता। इसी प्रकार बाजार की उत्पत्ति के विस्तार से उत्पन्न साधनों की कीमतों में होने वाली कमियों से बाजार पूर्ति-वक्र चित्र 10-6 में प्रदर्शित बाजार पूर्ति-वक्र की अपेक्षा अधिक लोचदार हो जायगा। इस स्थिति में बाजार का अल्पकालीन पूर्ति-वक्र बाजार-कीमत के प्रत्येक सम्भावित स्तर पर व्यक्तिगत फर्म की लाभ को अधिकतम करने वाली उत्पत्ति की मात्राओं को जोडकर प्राप्त किया जाता है।

दीर्घकाल

एक शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक उद्योग में उत्पत्ति की मात्रा के परिवर्तन की सम्भावनाएँ अल्पकाल की अपेक्षा दीर्घकाल में बहुत ज्यादा होती हैं। दीर्घकाल में अल्पकाल की भाँति संयत्र की विद्यमान क्षमता के उपयोग में वृद्धि अथवा कमी करके उत्पत्ति में परिवर्तन किया जा सकता है। लेकिन इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दीर्घकाल में फर्मों को अपने संयत्र के आकारों में वृद्धि अथवा कमी करने का समय मिल जाता है और नई फर्मों को प्रवेश के लिए अथवा चालू फर्मों को उद्योग

छोटा के लिए काफी समय व अवसर मिल जाता है। बाद की दोनों सम्भावनाओं में बाजार अल्पकालीन पूर्ति वक्र की तुलना में बाजार के दीर्घकालीन पूर्ति-वक्र की लोच काफी बढ़ जाती है। व्यक्तिगत फर्मों के द्वारा संयत्र के आकार में किए जाने वाले दीर्घकालीन समायोजन उद्योग में फर्मों के प्रवेश अथवा निकल जाने के साथ-साथ सम्पन्न होते जाते हैं, लेकिन यदि इन पर यहाँ पृथक से विचार किया जाय तो वे ज्यादा आसानी से समझ में आ सकते हैं।

फर्म

संयत्र के आकार के समायोजन (Size of Plant Adjustments) फर्म के द्वारा प्रयुक्त किए जाने वाले संयत्र के आकार के निर्धारण पर सही ढंग से यह मानकर विचार किया जा सकता है कि उद्योग में किसी तरह से प्रवेश अवरुद्ध है। मान लीजिए, फर्म के समक्ष बाजार-कीमत पाई जाती है, जैसे चित्र 10–7 में p है। इसके दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र और दीर्घकालीन सीमान्त लागत-वक्र क्रमश
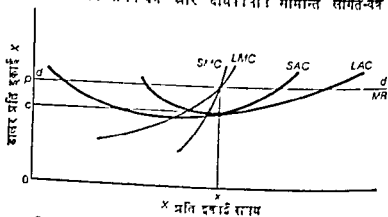
चित्र 10–7 दीर्घकाल में संयत्र के आकार में समायोजन

LAC और LMC होते हैं। दीर्घकालीन लाभ की मात्राओं को अधिकतम करने के लिए फर्म को x उत्पत्ति करनी चाहिए जहाँ पर दीर्घकालीन सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होती है। संयत्र का जो आकार फर्म को x उत्पत्ति प्रति इकाई न्यूनतम सम्भावित लागत पर करने में समर्थ बनाता है वह SAC होता है और संयत्र के इस आकार के लिए अल्पकालीन सीमान्त लागत भी सीमान्त आय के बराबर होती है। फर्म के लाभ cp × x होते हैं।

लाभ पर विषयान्तर के रूप में चर्चा (Digression on Profits)

आगे बढ़ने से पूर्व लाभ पर कुछ लिखना उचित होगा। लाभ की अवधारणा इतनी अस्पष्ट है कि इसकी स्पष्ट परिभाषा की आवश्यकता प्रतीत होती है।

आर्थिक लाभ एक शुद्ध बचत है अथवा फर्म के द्वारा किए गए उत्पादन के सभी खर्चों पर कुल प्राप्तियों का आधिक्य है। लागतों में वे दायित्व शामिल होते हैं जो प्रयुक्त किए जाने वाले समस्त साधनों के लिए किए जाते हैं, और ये उन राशियों के बराबर होते हैं जिन्हें ये साधन अपने सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक उपयोग में लग कर प्राप्त कर सकते हैं; अर्थात् प्रयुक्त किए जाने वाले समस्त साधनों की अवसर या वैकल्पिक लागतों के बराबर होते हैं। इन लागतों में प्रयुक्त की जाने वाली पूंजी के स्वामियों को मिलने वाले प्रतिफल शामिल होते हैं जो उस राशि के बराबर होते हैं जिसे वे अर्थव्यवस्था में अन्यत्र पूंजी में विनियोजित करके प्राप्त कर सकते थे। वे व्यवसाय के संचालक के द्वारा प्रदत्त श्रम के अव्यक्त प्रतिफलों (implicit returns) को शामिल करते हैं। इस प्रकार लाभ फर्म के लिए बहुत कुछ "रस" ("gravy") जैसा होता है।

ऊपर परिभाषित आर्थिक लाभ की अवधारणा और निगम की शुद्ध आय या "लाभों" के सम्बन्ध में लेखाकार की अवधारणा के बीच में जो अन्तर होता है वह परिभाषा को स्पष्ट करने में मदद देता है। यहाँ निगम की आय पर लगने वाले करों को छोड़ दिया जाएगा। एक लेखाकार निगम के "लाभों" को निम्नांकित विधि से निर्धारित करता है :

> सकल आय—खर्चे (बाण्डों पर ब्याज के भुगतान, ऋण-परिशोधन व्यय, मूल्य-ह्रास व्यय, आदि को शामिल करके) = विशुद्ध आय अथवा "लाभ",

लेकिन अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से कुछ लागतों पर विचार नहीं किया जाता है। निगम की पूँजी के स्वामियों (इसके स्टॉकहोल्डरों) के प्रति किए गए दायित्व भी उसी तरह उत्पादन की लागतों में आते हैं जैसे कि श्रम या कच्चे माल के लिए किए गए दायित्व आते हैं। प्राय ऐसा सोचा जाता है कि निगम पूँजी के स्वामियों को निगम के "लाभों" में से लाभांश के रूप में भुगतान करता है, लेकिन आर्थिक सिद्धांत के दृष्टिकोण से यह विचार गलत होगा। आर्थिक लाभ तक पहुँचने के लिए हमें निगम की विशुद्ध आय में से लाभांश के वे भुगतान घटाने चाहिएँ जो उस राशि के बराबर हों जिसे विनियोगकर्ता अर्थव्यवस्था में अन्यत्र विनियोग करके प्राप्त कर सकें। यह घटाने का काम निम्नांकित ढंग से होता है विशुद्ध आय अथवा "लाभ"—औसत लाभांश = आर्थिक लाभ होगा।

प्रश्न उठता है कि व्यक्तिगत फर्म के द्वारा अर्जित मुनाफों का क्या होगा? ये प्रमुखतया फर्म के स्वामियों को व्यवसाय में विनियोगकर्ताओं को ऊँचे प्रतिफलों के रूप में अथवा स्वामियों के द्वारा धारण की गई सम्पत्ति के मूल्य में वृद्धियों के रूप में प्राप्त होंगे। प्रथम बात का आशय यह है कि निगम के मामले में स्टॉकहोल्डरों को औसत से ऊँचे लाभांश प्राप्त होंगे, अथवा एक एकाकी स्वामी या साझेदार को

उस सीमा से अधिक आमदनी प्राप्त होगी जो उसे अन्यत्र विनियोजन करके और/अथवा काम करके प्राप्त हो सकती थी। द्वितीय बात का आशय यह है कि आर्थिक लाभों का कुछ अंश फर्म के विस्तार अथवा सुधार के लिए वापिस इसी में लगा दिया जाता है। इस काय म स्वामियों क द्वारा धारण की गई सम्पत्ति के मूल्य म वृद्धि होती है। कभी-कभी मुनाफा का उपयोग अन्य साधनों को उनकी अवसर-लागतों स अधिक प्रतिफल दन म भी किया जा सकता है।

फर्म और बाजार

दीर्घकालीन सतुलन—फर्म क लिए दीर्घकालीन सतुलन का आशय यह है कि यह जो कुछ कर रही है उसको बदलने के लिए कोई प्रेरणा या अवसर नहीं होता। यदि इसका उद्देश्य लाभ अधिकतमकरण होता है तो चित्र 10–7 की फर्म दीर्घकालीन सतुलन म होती है। इसकी LMC=MR=P होती है ताकि इसके सयत्र के आकार को परिवर्तित करने की कोई प्रेरणा नहीं होती है। इसकी SMC=MR=P होती है ताकि प्रति इकाई समयानुसार x उत्पत्ति के स्तर से हटने की कोई प्रेरणा नहीं होती।

उद्योग क लिए दीर्घकालीन सतुलन का आशय इससे अधिक होता है कि उद्योग मे फर्में दीर्घकालीन सतुलन म है। इसके अतिरिक्त उद्योग मे नई फर्मों के प्रवेश अथवा चालू फर्मों के छोड़ने की कोई प्रेरणा नहीं होनी चाहिए। दूसरे शब्दों म, नई फर्मों के प्रवेश को प्रेरित करने क लिए कोई आर्थिक लाभों का आकर्षण नहीं होगा और न घाटे क कष्ट से वर्तमान फर्में उद्योग छोड़ने को ही प्रेरित होती हैं।

यदि उद्योग म प्रवेश खुला होता है—और शुद्ध प्रतियोगिता मे यह अवरुद्ध नही होता—चित्र 10–7 की फर्म द्वारा प्राप्त किये जाने वाले मुनाफो स नई फर्में आकर्षित होगी। उद्योग अपने विनियोगकर्ताओं को अर्थव्यवस्था म अन्यत्र अर्जित की जा सकने वाली औसत प्रतिफल की दर से अधिक प्रतिफल का वायदा करता है। नये फर्मों के प्रवेश से X वस्तु की पूर्ति बढ जाती है और कीमत अपने प्रारम्भिक स्तर, p, से नीचे आ जाती है। उद्योग मे प्रत्येक व्यक्तिगत फर्म के समक्ष नीचे की ओर जाने वाला माँग वक्र और सीमान्त आय वक्र होता है जो इसकी उत्पत्ति की मात्रा को x से नीचे काटेगा और इसके सयत्र के आकार को SAC से घटाकर नीचा कर देगा। लाभ को अधिकतम करने के लिए उत्पत्ति उस सीमा तक कम कर दी जायगी जहाँ पर दीर्घकालीन सीमान्त लागत-वक्र उत्तरोत्तर नीचे के सीमान्त आय-वक्रों को काटता है।

उद्योग मे फर्मों के द्वारा उस समय तक आर्थिक लाभ अर्जित किये जा सकते हैं जब तक कि पर्याप्त सख्या म फर्में प्रवेश करके कीमत को p_1 तक नही गिरा देती,
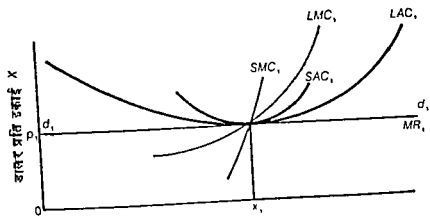
चित्र 10–8 दीर्घकालीन सतुलन

जैसा कि चित्र 10–8 मे दिखलाया गया है। उस बिन्दु पर व्यक्तिगत फर्मे अपने सयत्र के आकार को कम करके SAC_1 पर ले आयेंगी, जो सयत्र का अनुकूलतम आकार होगा, और ये इसको उत्पत्ति की अनुकूलतम दर पर सचालित करेंगी। नई फर्मों के प्रवेश से विशुद्ध लाभ समाप्त हो गया है और अधिक फर्मों के प्रवेश के लिए कोई प्रेरणा नही रह गई है। कोई घाटा भी नहीं हो रहा है, इसलिए फर्मों के लिए उद्योग को छोड देने का भी कोई कारण नही है। उद्योग मे फर्मे सतोषप्रद ढग से चल रही हैं। ये समस्त साधनो से ऐसे प्रतिफल अर्जित कर रही हैं जो उन साधनो के द्वारा वैकल्पिक उपयोगो मे प्राप्त की जाने वाली राशि के बराबर होते हैं।[7]

---

7. दीर्घकाल के विवेचन मे हम यह मानकर चलेगे कि समस्त फर्मों के लिए, जो उद्योग मे हैं और जिनकी इसमे होने की सम्भावना है, LAC वक्र के न्यूनतम बिन्दु एक ही स्तर पर आते हैं। यह शर्त उद्योग मे दीर्घकालीन सन्तुलन की स्थिति को पारिभाषित करने के लिए आवश्यक होती है।

वास्तविक जगत मे किसी भी उद्योग मे दीर्घकालीन सन्तुलन कभी भी प्राप्त नहीं किया जाता। यह उस मृग-मरीचिका की भाँति है जिसके पीछे उद्योग सदैव भागते रहते हैं, लेकिन उसे कभी पकड नहीं पाते। एक उद्योग के सन्तुलन पर पहुँचने से पूर्व सन्तुलन की स्थिति को परिभाषित करने वाली शर्तें बदल जाती हैं। वस्तु की मांग मे परिवर्तन होता है अथवा साधनो की कीमत के परिवर्तनो या उत्पादन की तकनीको के परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पादन की लागतो मे परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार सन्तुलन की नई स्थिति के पीछे दौड चलती रहती है। लेकिन स तुलन की दीर्घकालीन (व अन्य) धारणाएँ महत्वपूर्ण होती हैं, क्योंकि ये हमे पीछा करने के प्रयोजन व दिशा को बतलाती हैं। इसके अतिरिक्त ये हमे इस बात को भी दिखलाती हैं कि इस तरह से पीछा करना (अधिकाश मामलो में) आर्थिक समस्या के हल मे किस प्रकार से मदद करता है। उद्योग मे फर्मों की न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागतों की

यद्यपि यह विश्लेषण एक शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक उद्योग में दीर्घकालीन सतुलन की अवधारणा का समावेश करने में तो सहायक होता है, लेकिन यह उद्योग में होने *वाले उन दीर्घकालीन समायोजनों का पूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत नहीं करता जो किसी* हलचल उत्पन्न करने वाले तत्त्व के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। जब नई फर्में लाभों से आकर्षित होकर उद्योग में प्रवेश करती है तो प्राय लागत के परिवर्तन एव कीमत के परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। यदि लागत के कोई समायोजन होते हैं तो उनकी प्रकृति इस बात पर निर्भर करती है कि उद्योग मे बढती हुई लागतो की स्थिति पाई जाती है या स्थिर लागतो की या घटती हुई लागतो की। नीचे इनमें से प्रत्येक का क्रमश विश्लेषण किया जायगा।

बढती हुई लागतें—सर्वप्रथम बढती हुई लागतो वाले उद्योग पर विचार कीजिए। विश्लेषण में आगे बढने पर बढती हुई लागतों की प्रकृति स्पष्ट हो जायगी। मान लीजिए उद्योग प्रारम्भ में दीर्घकालीन सतुलन में होता है। अब कल्पना कीजिए कि X-वस्तु की मांग में वृद्धि के रूप में एक हलचल उत्पन्न करने वाला तत्त्व उपस्थित हो जाता है। हम इस मांग म वृद्धि के अल्पकालीन एव दीर्घकालीन प्रभाव मालूम करेंगे। इसके बाद वस्तु के लिए दीर्घकालीन बाजार पूर्ति-वक्र को स्थापित किया जायगा।

चित्र 10-9 मे उद्योग एव उद्योग मे एक प्रतिनिधि फर्म के लिए दीर्घकालीन सतुलन को सूचित करने वाले रेखाचित्र दिखलाये गये हैं। बाजार मांग-वक्र DD है
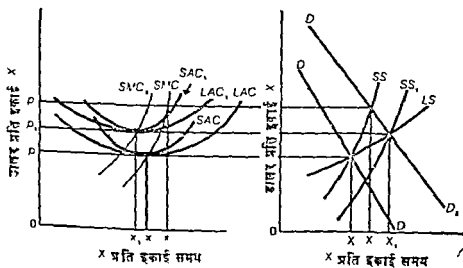
चित्र 10-9 मांग मे परिवर्तनों के प्रभाव :—बढती हुई लागतें

और बाजार का अल्पकालीन पूर्ति-वक्र SS है। फर्म के दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र और अल्पकालीन औसत लागत-वक्र क्रमश LAC और SAC हैं। SAC संयत्र के आकार के लिए फर्म का अल्पकालीन सीमान्त लागत-वक्र SMC है। यहाँ दीर्घकालीन सीमान्त लागत-वक्र छोड़ दिया गया है। यह विश्लेषण के लिए आवश्यक नहीं है और रेखाचित्र को अनावश्यक रूप से जटिल बना देता है।

चूंकि उद्योग और फर्म दीर्घकालीन सतुलन मे होते हैं, इसलिए वे अनिवार्यत अल्पकालीन सतुलन मे भी होते हैं। यही कारण है कि हम बाजार माँग-वक्र और बाजार अल्पकालीन पूर्ति-वक्र को उद्योग-कीमत p को स्थापित करने वाला मान सकते हैं। फर्म के समक्ष होने वाले माँग-वक्र और सीमान्त आय-वक्र क्षैतिज होते हैं और ये फर्म के लिए उत्पत्ति के तमाम स्तरो पर p कीमत के बराबर होते हैं। फर्म उत्पत्ति की वह मात्रा तैयार करती है जहाँ SMC (और LMC) सीमान्त आय या कीमत के बराबर होती है। व्यक्तिगत फर्म की उत्पत्ति x होती है। उद्योग की उत्पत्ति X मात्रा p कीमत पर व्यक्तिगत फर्मों की उत्पत्ति की मात्राओं का जोड होती है। उद्योग म केवल इतनी फर्म होती है जिससे कि कीमत x उत्पत्ति की मात्रा पर फर्म के लिए न्यूनतम अल्पकालीन व दीर्घकालीन औसत लागतो के बराबर हो सके। फर्म सयत्र का अनुकूलतम आकार उत्पत्ति की अनुकूलतम दर पर प्रयुक्त करती है। न तो आर्थिक लाभ प्राप्त होते हैं और न हानि ही उठानी पडती है।

अब मान लीजिए हम माँग मे D_1D_1 तक की वृद्धि के अल्पकालीन प्रभावो पर विचार करते हैं। ऐसी स्थिति मे उद्योग मे कीमत बढकर p^1 हो जायगी। फर्म मुनाफो को अधिकतम करने के लिए उत्पत्ति को x^1 तक बढा देगी। इस उत्पत्ति की मात्रा पर SMC नई सीमान्त आय के बराबर होगी। उद्योग मे उत्पत्ति की मात्रा बढ कर x^1 हो जायगी। फर्म का मुनाफा x^1 उत्पत्ति की मात्रा को p^1 कीमत और x^1 उत्पत्ति पर अल्पकालीन औसत लागतो के अन्तर से गुणा करने से प्राप्त परिणाम के बराबर होगा। माँग म वृद्धि के अल्पकालीन प्रभाव इस प्रकार होंगे (1) कीमत मे वृद्धि, और (2) उत्पत्ति मे कुछ वृद्धि, क्योंकि सयत्र की वर्तमान क्षमता का अपेक्षाकृत अधिक गहनता से उपयोग किया जाता है।

दीर्घकालीन प्रभावो पर विचार करते समय हम देखते हैं कि लाभ के अस्तित्व के कारण उद्योग मे नई फर्मों का प्रवेश होता है। नई फर्मों के प्रवेश से उद्योग की उत्पादन क्षमता मे वृद्धि होती है जिससे बाजार का अल्पकालीन पूर्ति-वक्र दाहिनी ओर खिसक जाता है। जितनी अधिक फर्मों का प्रवेश होता है, वह वक्र उतना ही अधिक दाहिनी तरफ खिसकता है। पूर्ति मे वृद्धि हो जाने से कीमत अल्पकाल के ऊँचे स्तर p^1 से नीचे की तरफ जाती है। कीमत के नीचे गिर जाने पर व्यक्तिगत

फर्म उत्पत्ति की मात्रा को अल्पकाल के ऊँचे स्तर x^1 से घटाकर नीचे ला देती हैं।

वर्द्धमान लागत वाले उद्योग मे नई फर्मों के प्रवेश से चालू फर्मों के सम्पूर्ण लागत वक्र ऊपर की ओर खिसक जाते हैं। ऐसा परिवर्तन उस उद्योग मे होता है जो अपने माल के निर्माण के लिए आवश्यक साधनो की उपलब्ध होने वाली कुल पूर्ति का महत्त्वपूर्ण अनुपात काम मे लेता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि ऐसा एक साधन विशेष किस्म का इस्पात मिश्रित-धातु (steel alloy) है। नई फर्मों के प्रवेश से ऐसे साधनो की मांग बढ जाती है जिससे इनकी कीमतें भी बढ जाती है। जैसे ही साधनो की कीमतें बढती हैं उनके अनुरूप लागत-वक्रो का समूह ऊपर की ओर खिसक जाता है।

लागत वक्रो के किसी भी दिये हुए समूह के पीछे यह मान्यता होती है कि फर्म किसी भी साधन की इच्छित मात्रा प्रति इकाई स्थिर कीमत पर प्राप्त कर सकती है। कोई भी अकेली फर्म साधनो की कीमतो मे परिवर्तन उत्पन्न नही कर सकती क्योंकि यह किसी भी साधन की इतनी अधिक मात्रा नही लेती कि इसकी कीमत को प्रभावित कर सके। उद्योग मे नई फर्मों के प्रवेश से और साथ मे चालू फर्मों के द्वारा उत्पति के विस्तार से उत्पन्न साधनो की अपक्षाकृत अधिक मांग से साधनो के मूल्यो मे वृद्धि उत्पन्न होती है। साधनो की कीमतो मे वृद्धि उत्पन्न करने वाली शक्तियां व्यक्तिगत फर्म के नियन्त्रण से पूर्णतया बाहर होती हैं, अथवा वे फर्म के लिए **बाहरी (external)** मानी जाती हैं। इस प्रकार साधनो की कीमतो की वृद्धियाँ और परिणामस्वरूप लागत वक्रो का ऊपर की ओर खिसकना, उद्योग मे बढते हुए उत्पादन की **बाहरी अमितव्ययिताओ (external diseconomies)** के ही परिणाम होते हैं।

नई फर्मों के प्रवेश से मुनाफो मे दो तरफ से कमी आने लगती है, एक तो कीमत घटती है और दूसरी तरफ लागतें बढती हैं। नई फर्म उस समय तक प्रवेश करती है जब तक कीमत काफी घट जाती है और लागतें काफी बढ जाती हैं जिससे कीमत पुन व्यक्तिगत फर्मों की न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागतो के बराबर हो जाती हैं। सारा लाभ समाप्त हो जाता हैं। चित्र 10-9 मे नई कीमत p_1 है और नये लागत वक्र LAC_1, SAC_1 और SMC_1 हैं। नई फर्मों का प्रवेश बद हो जाता है और उद्योग पुन दीर्घकालीन सतुलन मे आ जाता है। बाजार की नई दीर्घकालीन कीमत p_1 होती है जो प्रारम्भिक दीर्घकालीन कीमत p और अल्पकालीन ऊँची कीमत p^1 के बीच मे स्थित होती है। फर्म की नई उत्पत्ति की मात्रा x_1 होती है जिस पर SMC_1 नई दीर्घकालीन सीमान्त आय और कीमत के बराबर होती है। उद्योग मे उत्पत्ति बढकर X_1 हो जाती है, क्योंकि उद्योग की बढ़ी हुई क्षमता अल्प-

कालीन पूर्ति-वक्र को SS_1 पर ले आती है।[8]

फर्म की नई दीर्घकालीन उत्पत्ति की मात्रा के सम्बन्ध में कोई प्रश्न उठ सकता है। वह यह कि इसकी मात्रा x की पुरानी दीर्घकालीन उत्पत्ति की मात्रा के बराबर होगी इससे अधिक होगी अथवा इससे कम होगी। इसका उत्तर इस विधि पर निर्भर करता है जिसके द्वारा लागत-वक्र ऊपर की ओर खिसक जाते हैं। लागत-वक्र सीधे ऊपर की ओर जाते हैं, या थोड़े बायीं तरफ जाते हैं, अथवा थोड़े दायीं तरफ जाते हैं—यह साधनों की विभिन्न श्रेणियों की तुलनात्मक कीमत-वृद्धियों पर निर्भर करता है। यदि समस्त साधनों की कीमतें एक-सी अनुपात में बढ़ती है तो साधनों के पहले वाले संयोग ही न्यूनतम लागत के संयोग होंगे। ऐसी स्थिति में लागत-वक्र सीधे ऊपर की ओर जाएँगे और फर्म की नवीन दीर्घकालीन उत्पत्ति पुरानी के बराबर होगी। लेकिन मान लीजिए कि अल्पकालीन स्थिर साधनों की कीमतें अल्पकाल में परिवर्तनशील समझे जाने वाले साधनों की अपेक्षा ज्यादा बढ़ती हैं। फर्म अब अपेक्षाकृत अधिक खर्चीले स्थिर साधनों के सम्बन्ध में किफायत करना चाहेगी। अधिक खर्चीले स्थिर साधनों के अनुपात सस्ते परिवर्तनशील साधनों के साथ घटाएँ जाएँगे ताकि न्यूनतम-लागत-संयोग प्राप्त किए जा सकें। सतुलन की नई दीर्घकालीन स्थिति में संयन्त्र का अनुकूलतम आकार पुरानी स्थिति की अपेक्षा थोड़ा छोटा होगा। यही कारण है कि फर्म की नई दीर्घकालीन सतुलन-उत्पत्ति पुरानी की अपेक्षा कम होगी, *जैसा कि चित्र 10–9 में दिखलाया गया है। यदि अल्पकालीन स्थिर साधनों की* कीमतें अल्पकालीन परिवर्तनशील साधनों की तुलना में कम अनुपात में बढ़ती है तो न्यूनतम-लागत संयोग संयन्त्र के अपेक्षाकृत बड़े आकारों के पक्ष में होते हैं। फर्म अब अपेक्षाकृत अधिक खर्चीले साधनों के सम्बन्ध में किफायत करना चाहेगी और उन साधनों के बड़े अनुपातों का प्रयोग करेगी जो संयन्त्र में आते हैं। संयन्त्र का

---

8. पढ़ने के जटिल विवेचन को यथासम्भव सरल रखने के लिए मूलपाठ के विश्लेषण में एक अस्थायी विस्म के दीर्घकालीन विकास की चर्चा को छोड़ दिया गया है। वस्तु की माँग में वृद्धि से उत्पन्न होने वाली अल्पकालीन ऊँची कीमत से न केवल उद्योग में लाभ की तलाश में नई फर्में आकर्षित होती हैं, बल्कि यह चालू फर्मों के लिए संयन्त्र के आकारों को अनुकूलतम स्तर से आगे बढ़ाने के लिए भी प्रेरणा प्रदान करती है। ऐसा होना इसलिए स्वाभाविक है कि एक व्यक्तिगत फर्म अधिकतम दीर्घकालीन लाभ उत्पत्ति की उस मात्रा पर प्राप्त करती है जहाँ दीर्घकालीन सीमांत-लागत सीमांत-आय और कीमत के बराबर होता है (देखिए चित्र 10-7)। इसके बाद जब नई फर्मों के प्रवेश से कीमत घट जाती है तो उत्पत्ति की जिस मात्रा पर दीर्घकालीन सीमांत लागत कीमत के बराबर होती है, वह अपेक्षाकृत कम हो जाती है। फर्म अपने संयन्त्र के आकार को घटाने के लिए प्रेरित हो जाती है। जब लाभ को समाप्त करने की दृष्टि से काफी फर्में प्रवेश कर चुकती हैं, तो फर्म पुन. *संयन्त्र का अनुकूलतम आकार बनाती है।*

नया अनुकूलतम आकार और नई उत्पत्ति पुरानी की तुलना मे अधिक होंगे।

चित्र 10-9 मे दीर्घकालीन उद्योग पूर्ति-वक्र LS है। यह उद्योग के दीर्घकालीन संतुलन के समस्त बिन्दुओ को मिलाता है। वैकल्पिक रूप मे, उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति-वक्र समस्त व्यक्तिगत फर्मों के LAC वक्रो के न्यूनतम बिन्दुओ का क्षैतिज जोड माना जा सकता है क्योंकि नई फर्मों के प्रवेश से उनके लागत-वक्र ऊपर की ओर खिसक जाते है। उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति-वक्र उद्योग मे उत्पत्ति की उन मात्राओ को दर्शाता है जो उस समय विभिन्न सभव-कीमतो पर आ पाती हैं जबकि सयत्र के आकार के समायोजनो एव फर्मों के आने-जाने के लिए काफी समय होता है।

स्थिर लागतें—स्थिर लागतो वाले उद्योग के लिए विश्लेषण का प्रारूप मूलतया वैसा ही होता है जैसा कि बढती हुई लागतो वाले उद्योग के लिए होता है। चित्र 10-10 मे प्रदर्शित दीर्घकालीन सतुलन की स्थिति से प्रारम्भ करने पर हम मान लेते हैं कि माँग मे वृद्धि हो जाती है। अल्पकालीन प्रभाव तो पहले के जैसे ही होते हैं। कीमत बढ कर P^1 हो जाती है; फर्म की उत्पत्ति बढकर x^1 हो जाती है; और बाजार की उत्पत्ति बढकर x^1 हो जाती है। उद्योग मे व्यक्तिगत फर्मों के द्वारा आर्थिक लाभ अर्जित किए जाते हैं।

दीर्घकाल मे उद्योग मे नई फर्में आकर्षित होगी। पहले की भाँति, अल्पकालीन बाजार पूर्ति-वक्र नई फर्मों के प्रवेश से दाहिनी तरफ खिसक जायगा जिससे कीमत घट जायगी।
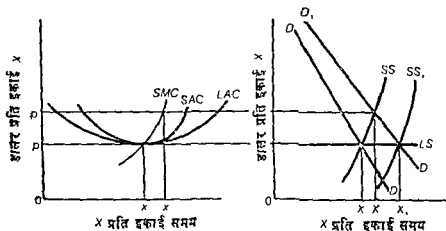
चित्र 10-10 माँग मे परिवर्तनो के प्रभाव . स्थिर लागत

स्थिर लागत वाले उद्योग मे नई फर्मो के प्रवेश से साधनो की बाजार-माँग इतनी नही बढ़ जाती कि उनकी कीमतो मे वृद्धि हो जाय। X के उत्पादन के लिए आवश्यक

साधनो की कुल पूर्ति का यह उद्योग इतना थोडा अंश लेता है कि नई फर्मों के प्रवेश से उनकी कीमतो पर कोई प्रभाव नही पडता। यदि नई फर्मों के प्रवेश से साधनो की कीमतो पर कोई प्रभाव नही पडता तो चालू फर्मों के लागत वक्र पहले की भाँति ही बने रहेंगे। जब तक पर्याप्त सख्या मे फर्में प्रवेश करके कीमत को गिराकर वापिस p पर नही ला देती तब तक लाभ अर्जित किए जाएँगे। कीमत और न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागतें बराबर होगी और दीर्घकालीन सतुलन पुन स्थापित किया जायगा। नवीन अल्पकालीन पूर्ति-वक्र SS_1 होगा। व्यक्तिगत फर्म की उत्पत्ति उतनी होगी जहा SMC सीमान्त आय और p कीमत के बराबर होती है। नई फर्मों के प्रवेश से उद्योग की उत्पत्ति काफी मात्रा मे बढकर X_1 हो जाती है। दीर्घकालीन पूर्ति-वक्र LS होगा और न्यूनतम दीर्घकालीन औसत लागतो के स्तर पर यह क्षैतिज होगा।

घटती हुई लागतें · घटती हुई लागत की परिस्थितियाँ सम्भवत दुर्लभ होती हैं। विश्लेषण की दृष्टि से वे बढती हुई और समान लागत की स्थितियो के सदृश ही होती हैं। पहले कि भाँति हम एक उद्योग और इसकी फर्मों के दीर्घकालीन सतुलन की स्थिति से प्रारम्भ करते हैं और बाद मे माँग की वृद्धियो को मान लेते हैं। अल्पकालीन प्रभाव तो पहले की भाँति ही होते हैं। चित्र 10–11 में बाजार-कीमत बढकर p^1 हो जायगी, फर्म की उत्पत्ति बढकर x^1 और उद्योग की उत्पत्ति बढकर X^1 हो जायगी। प्रतिनिधि फर्म के द्वारा अर्जित किए गए विशुद्ध लाभो की मात्रा p^1 और x^1 उत्पत्ति पर SAC के अन्तर का x^1 गुणा होगी।

विशुद्ध लाभो की प्राप्ति के कारण दीघकाल मे उद्योग मे नई फर्में आकर्षित होंगी। जब नई फर्में उद्योग की उत्पादन क्षमता मे वृद्धि करती हैं तो उद्योग का अल्कालीन पूर्ति-वक्र दाहिनी ओर खिसक जाता है। नई फर्मों के प्रवेश से कीमत गिर जाती है।

घटती हुई लागत के उद्योग—मे नई फर्मों के प्रवेश से साधनो की कीमतें अवश्य गिर जाएँगी। नई फर्मों के प्रवेश से साधनो की कीमतो मे गिरावट आने से लागत-वक्र नीचे की ओर खिसक जाते है। x की कीमत और उत्पादन की लागतें दोनो घटती हैं। अत मे उत्पत्ति की घटती हुई कीमत घटते हुए लागत-वक्रो को पकड लेती है और लाभ समाप्त हो जाता है। नई दीर्घकालीन सतुलन कीमत p_1 होती है जो प्रारम्भिक कीमत p से कम होती है। व्यक्तिगत फर्म की उत्पत्ति x_1 होती है जहाँ अल्पकालीन व दीर्घकालीन सीमान्त लागतें दोनो सीमान्त आय या कीमत के बराबर होती हैं। उद्योग की नवीन उत्पत्ति X_1 होती है। दीर्घकालीन पूर्ति वक्र LS दाहिनी ओर नीचे की तरफ झुकने वाला होता है।
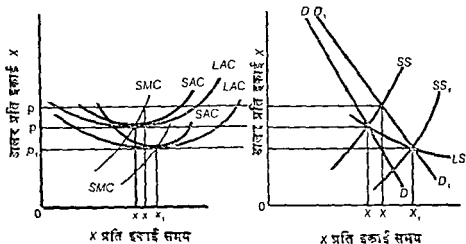
चित्र 10–11 माँग मे परिवर्तनो के प्रभाव : घटती हुई लागतें

प्रश्न उठता है कि ऐसी कौन-सी परिस्थितियां हैं जो सम्भवत घटती हुई लागतो को उत्पन्न कर सकती हैं ? मान लीजिए विचाराधीन उद्योग शिशु-अवस्था मे है और यह एक नए प्रदेश मे बढ रहा है।[9] हो सकता है कि साधनो और अन्तिम उत्पत्ति दोनो की दृष्टि से परिवहन की सुविधाओ व बाजारो का सगठन ठीक से विकसित न हो। उद्योग मे फर्मों की सख्या मे वृद्धि होने से और परिणामस्वरूप उद्योग के आकार मे वृद्धि होने से सुधरे हुए परिवहन और बिक्री की सुविधाओ का विकास सम्भव हो पाता है जिससे व्यक्तिगत फर्मों की लागतो मे काफी कमी आ जाती है। उदाहरण के लिए, एक क्षेत्र का औद्योगिक विकास उस क्षेत्र से दूसरे क्षेत्रो तक रेल, सडक व वायु परिवहन सेवा के विकास व सुधार को प्रोत्साहित कर सकता है। लेकिन घटती हुई लागतो की उचित व्याख्याएँ प्राप्त करना जरा कठिन होता है। विशेष मामलो के लिए चाहे जो स्पष्टीकरण दिए जाएँ, लेकिन मूलत वे प्रदत्त साधनो के गुणो मे सुधार अथवा साधन प्रदान करने वाले उद्योगो मे विकसित की गई अधिक कार्यकुशलताओ से ही जन्म लेते हैं।

ऊपरवर्णित बढते हुए उत्पादन की घटती हुई लागतो अथवा **बाहरी मितव्ययिताओ** (external economies) एव सयन्त्र के अनुकूलतम आकार से कम आकार की सहायता से अकेली फर्म को प्राप्त हो सकने वाली **आकार की भीतरी मितव्ययिताओ** (internal economies of size) के बीच कोई भ्रम नहीं होना चाहिए। व्यक्तिगत फर्म का बाहरी मितव्ययिताओ पर कोई प्रभाव नहीं होता है। वे केवल उद्योग

9. लेकिन इस स्थिति में इसके शुद्ध प्रतिस्पर्धा मे होने के अवसर कम होते हैं।

के विस्तार से अथवा फर्म के नियन्त्रण से बाहर की शक्तियो के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। आकार की आन्तरिक मितव्ययिताएँ फर्म के नियन्त्रण में होनी हैं। फर्म अपने सयत्र का विस्तार करके उनको प्राप्त कर सकती है।

हमने ऊपर जिन तीन स्थितियों का विश्लेषण किया है उनमें सम्भवतः बढती हुई लागत के उद्योग सबसे ज्यादा प्रचलन में पाए जाते हैं। घटती हुई लागतो के पाए जाने की बहुत कम सम्भावना होती है। स्थिर लागत एव घटती हुई लागत के उद्योग जब पुराने हो जाते हैं एव अच्छी तरह से स्थापित हो जाते हैं तो उनके बढती हुई लागत के उद्योग बन जाने की सम्भावना हो सकती है। घटती हुई लागतो की सम्भावना को स्वीकार करने पर भी जब एक बार घटती हुई लागतों अथवा बढते हुए उत्पादन की बाहरी मितव्ययिताओ का लाभ प्राप्त हो चुकता है, तो उद्योग अवश्य ही स्थिर अथवा बढती हुई लागतो का उद्योग बन जाता है।

समायोजनो की ऊपरवर्णित शृंखलाओं को गतिमान करने की दृष्टि से वस्तु की मांग मे होने वाली वृद्धि को ही एक हलचल उत्पन्न करने वाला तत्त्व मान लिया गया था। यह तत्त्व मांग की कमी भी हो सकता था, लेकिन उस स्थिति मे व्यक्तिगत फर्मों के लिए घाटा होता और उद्योग से बाहर जाने की प्रवृत्ति उस समय तक दिखलाई देती जब तक दीर्घकालीन सतुलन पुन स्थापित नही हो जाता। अथवा, मांग में परिवर्तनो के बजाय हम यह भी मान सकते थे कि बडे प्रौद्योगिक परिवर्तनो ने असतुलन उत्पन्न कर दिया और इनकी वजह से उद्योग मे नई फर्मों के प्रवेश को उस समय तक प्रेरणा मिली जब तक कि दीर्घकालीन सतुलन पुन स्थापित नही हो गया।

शुद्ध प्रतियोगिता के कल्याणकारी प्रभाव

प्रश्न उठता है कि निजी उद्यमवाली आर्थिक प्रणाली मे यदि बाजार का ढांचा ऐसा हो जिसमे उत्पादक व विक्रेता शुद्ध प्रतियोगिता मे अपना कार्य करते हैं, तो कल्याण पर किन प्रभावो की आशा की जा सकती है? इस सम्बन्ध मे प्रत्याशित प्रभावो की पूर्ण चर्चा तो विस्तार से साधनो की कीमत व उपयोग की मात्रा के निर्धारण की जाच के बाद ही की जा सकेगी, लेकिन यहां पर कुछ प्रारम्भिक कथन प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

एक शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक प्रणाली किस प्रकार से अपने कार्य का सचालन करती है उसका साराश प्रस्तुत करके ही शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक शक्तियो के कल्याणकारी प्रभाव स्पष्ट किए जा सकते हैं। मान लीजिए प्रारम्भ मे असतुलन पाया जाता है—अर्थात् कीमत, उत्पत्ति, और उत्पादक क्षमता (साधनो) के वितरण की याहच्छिक रचना (random array) पाई जाती है। सम्पूर्ण विवेचन मे दो बातें "दी हुई" मानी

जाती हैं (1) सभी बाजारो मे शुद्ध प्रतिस्पर्धा विद्यमान है और (2) क्रय शक्ति का वितरण नही बदलता है। हम दो वस्तुओ, भोजन (F) और वस्त्र (C) पर ध्यान केन्द्रित करेंगे।

अति अल्पकाल

अति अल्पकाल मे, वस्तुओ व सेवाओ की प्रारम्भिक कीमतो के दिए होने पर उपभोक्ता अपनी आमदनी का आवटन इस प्रकार से करने का प्रयास करते हैं ताकि सतोष को अधिकतम कर सकें। चूंकि पूर्ति की मात्राएँ प्रारम्भ मे स्थिर रहती हैं, इसलिए कीमतें उन स्तरो पर चली जाती हैं जिससे बाजार मे माल बिक जाता है। जब कीमते अपने सन्तुलन स्तरो की तरफ जाती हैं तो परस्पर लाभ पहुँचाने वाले सभी विनिमय होते हैं और चूंकि ऐसे विनिमयो से इनके बाहर किसी के भी कल्याण को घटाए बिना विनिमय करने वाले पक्षो को लाभ होता है अत समाज के कल्याण मे वृद्धि होती है। समाज का कल्याण स्थिर पूर्ति की दशा मे तभी अधिकतम होता है जब कि प्रत्येक उपभोक्ता के लिए

$$\frac{MU_f}{P_f} = \frac{MU_c}{P_c}$$

अथवा .

$$\frac{MU_f}{MU_c} = \frac{P_f}{P_c}$$

अथवा :

$$MRS_{fc} = \frac{P_f}{P_c}$$

अल्पकाल

यदि भोजन व वस्त्र के उत्पादन मे सयन की क्षमता स्थिर होती है और दोनो वस्तुओ की उत्पत्ति की मात्राएँ अल्पकाल मे लाभ अधिकतमकरण के स्तरो पर नही पाई जाती है तो प्रश्न उठता है कि क्या इस परिस्थिति के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले समायोजनो से कल्याण मे वृद्धि होगी ? मान लीजिए कि भोजन उत्पन्न करने वाली फर्में उत्पत्ति की उस मात्रा पर काम कर रही हैं ताकि $SMC_f < P_f$ होती है, और वस्त्र की फर्में उत्पत्ति की उन मात्राओ पर उत्पादन कर रही हैं जहाँ $SMC_c > P_c$ है। ऐसी स्थिति मे वस्त्र का उत्पादन घटाया जाएगा और भोजन का उत्पादन बढाया जाएगा। इस प्रक्रिया मे समाज का कल्याण बढेगा। उपभोक्ता

परिवर्तनशील साधनों के उपयोग का मूल्य F के उत्पादन में अन्य वस्तुओं के उत्पादन की अपेक्षा ज्यादा आकते हैं। $SMC_f < P_f$ का आशय मूल्यांकन का यह भेद ही है। P_f कीमत वह मूल्य है जिसे उपभोक्ता चालू पूर्ति के स्तर पर F की किसी भी एक इकाई के लिए लगाते हैं। F के चालू उत्पादन स्तरों पर F की अल्पकालीन सीमान्त लागत उन वस्तुओं का मूल्य है जिन्हें F की अन्तिम एक इकाई की उत्पत्ति में प्रयुक्त साधन अपने सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक उपयोगों में उत्पन्न कर सकते हैं। परिणामस्वरूप, साधनों को अन्य उपयोगों से F के उत्पादन में भेजकर उपभोक्ता के कल्याण में वृद्धि की जा सकती है अर्थात् उन उपयोगों से जिनमें ये साधन उत्पत्ति के कम मूल्य का सृजन करते हैं उस उपयोग में भेजने से जहाँ उनकी उत्पत्ति का अधिक मूल्य होता है। इसी प्रकार $SMC_c > P_c$ का आशय यह है कि उपभोक्ता C के उत्पादन में प्रयुक्त साधनों का मूल्य उनके अन्य वस्तुओं के उत्पादन में प्राप्त मूल्य से कम लगाते हैं। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता का कल्याण साधनों को C से अन्य वस्तुओं के उत्पादन में हस्तान्तरित करने में बढ़ाया जा सकता है।

शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक बाजार यन्त्र उत्पादकों को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे उपभोक्ताओं की इच्छानुसार उत्पत्ति में परिवर्तन करें। अल्पकाल में लाभ अधिकतम करने अथवा हानि न्यूनतम करने के लिए F के उत्पादक उत्पत्ति को उन स्तरों तक बढ़ाना चाहेंगे जहाँ $SMC_f = P_f$ होती है। C के उत्पादक अपनी उत्पत्ति को उन स्तरों तक घटाना चाहेंगे जहाँ $SMC_c = P_c$ होती है। F उद्योग के उत्पादक आवश्यक परिवर्तनशील साधनों के लिए थोड़ी ऊँची कीमतें देते हैं। C उद्योग में उत्पत्ति कम होने से उस उद्योग में प्रयुक्त परिवर्तनशील साधनों की माँग घट जाती है जिससे फलस्वरूप उन परिवर्तनशील साधनों को दी जा सकने वाली कीमतें घट जाती हैं। जिस सीमा तक F और C में एक से परिवर्तनशील साधनों का उपयोग किया जाता है, साधनों के स्वामियों के द्वारा कम प्रतिफल से अधिक प्रतिफल देने वाले उपयोगों में साधनों का ऐच्छिक रूप से पुनरावंटन (voluntary reallocation) उस समय तक किया जाएगा जब तक कि दोनों उपयोगों में प्रतिफल बराबर न हो जाए। यदि दोनों उद्योग विभिन्न किस्म के परिवर्तनशील साधन काम में लेते हैं तो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में परिवर्तनशील साधनों का एक सामान्य पुनरावंटन हो सकता है। उद्योग C से अन्य उद्योगों की तरफ पुनरावंटन हो सकता है जो C के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले परिवर्तनशील साधनों के जैसे साधन प्रयुक्त कर सकते हैं। बदले में, अन्य उद्योगों से F उद्योग में प्रयुक्त होने वाले साधनों का पुनरावंटन F उद्योग की तरफ हो सकता है। लेकिन जो कुल अल्पकालीन साधन पुनरावंटन होगा, वह दोनों उद्योगों में वर्तमान संयन्त्र की क्षमता तक ही सीमित रहेगा। दोनों उद्योगों में अल्पकालीन सन्तुलन तब पाया जाएगा जब कि $SMC_f = P_f$ और $SMC_c = P_c$ होगी।

दीर्घकाल

यद्यपि उत्पादन के अल्पकालीन पुनर्संगठन से उपभोक्ताओं के कल्याण मे वृद्धि होती है, लेकिन प्रत्येक उद्योग म सयत्र की क्षमता के स्थिर रहने से यह अधिकतम होने से पहले ही रुक जाता है। दीर्घकाल मे उत्पादक-क्षमता के गतिमान होने के लिए काफी समय पाया जाता है, अर्थात्, आवश्यक प्रेरणाओ के विद्यमान रहने पर फर्मों के लिए प्रवेश करने और बाहर चले जाने के लिए काफी समय रहता है।

मान लीजिए, अल्पकालीन सन्तुलन मे F उद्योग मे फर्में लाभ दिखाती हैं और C मे हानि होती है। F मे लाभ और C मे हानि का अर्थ यह है कि उपभोक्ता F उद्योग के सयत्र व उपकरण मे विनियोग को ज्यादा महत्त्व और C उद्योग को कम महत्त्व देते है, बनिस्बत अन्य उद्योगो के। इसलिए विनियोग को C से हटाकर, जहाँ इसका महत्त्व कम है, F मे ले जाना जहाँ इसका महत्त्व अधिक है, उपभोक्ताओ के कल्याण को बढायेगा। उत्पादको को मिलने वाली प्रेरणाओ से यही परिणाम आएगा।

C उद्योग मे अल्पकालीन घाटो के कारण विनियोग या निवेश पर प्रतिफल की दरे अर्थव्यवस्था मे अन्यत्र विनियोग की दरो से नीची हो जाती हैं। परिणामस्वरूप C उद्योग मे अविनियोग या विनिवेश (disinvestment) होगा—मुख्य रूप से तो सयत्र व उपकरण के मूल्य-ह्रास पर ध्यान न दे सकने के कारण और कुछ चालू फर्मों के अन्त मे समाप्त हो जाने के कारण। जब फर्में C उद्योग को छोडती है तो C की पूर्ति घटती है जिससे इसकी कीमत बढती है। C उद्योग म साधनो की घटी हुई माँग के कारण उनकी कीमत भी घट जाती है जिससे व्यक्तिगत फर्मों की उत्पादन-लागत घट जाती है। फर्मों का बाहर जाना उस समय बन्द हो जाएगा जब कि घटी हुई पूर्ति से कीमत इतनी बढ जाए और लागत इतनी कम हो जाए कि आगे घाटे की स्थिति न रहे। C उद्योग मे थोडी सख्या मे फर्में सयत्र के अनुकूलतम आकारो एव उत्पत्ति की अनुकूलतम दरो पर उत्पादन करेंगी, लेकिन कुल मिलाकर वे अल्पकाल की तुलना मे ऊँची कीमत पर अपेक्षाकृत कम मात्रा मे ही सयुक्त उत्पत्ति (combined output) कर सकेंगी।

इसी प्रकार C उद्योग मे अल्पकालीन मुनाफो की वजह से साधन (उत्पादन-क्षमता) आकर्षित होगे। ये मुनाफे विनियोग पर उस ऊँचे प्रतिफल को सूचित करते है जिसे विनियोगकर्ता अर्थव्यवस्था मे अन्यत्र अर्जित नही कर सकते। विनियोग की दृष्टि से यह एक लाभप्रद क्षेत्र बन जाता है। उद्योग मे नई फर्में स्थापित की जाती हैं। साधनो की बढती हुई माँग के कारण प्रवेश करने वाली फर्मों एव उद्योग मे पहले से विद्यमान फर्मों दोनो के लिए साधनो की कीमतें और लागत-वक्र ऊँचे चले जाते है।

नई फर्मों के प्रवेश से उद्योग की पूर्ति बढ़ जाती है जिससे कीमत नीचे आ जाती है। नई फर्में उस समय तक प्रवेश करती हैं जब तक कि बढ़ती हुई पूर्ति से F की कीमत घट कर ऊँची औसत लागतों के स्तर पर न आ जाए। प्रवेश उस समय बन्द हो जाता है जब कि प्रवेश करने वाली फर्मों को आगे विशुद्ध लाभ प्राप्त होता दिखाई न दे। फर्में घाट को टालने के लिए संयत्र के अनुकूलतम आकारों का उपयोग करने एवं उन्हें उत्पत्ति की अनुकूलतम दरों पर संचालित करने के लिए बाध्य हो जाती हैं। अब उद्योग में अधिक फर्में हो जाती हैं, उनकी मिली-जुली उत्पत्ति अधिक होती है, और वस्तु की कीमत भी अल्पकाल की तुलना में नीची होती है।

साधनों का पुनरावंटन प्रत्यक्ष या परोक्ष हो सकता है। यदि C उद्योग में फर्मों की संयत्र क्षमता F वस्तु के उत्पादन में आसानी से परिवर्तित की जा सके तो C उद्योग में फर्में अधिक लाभप्रद F वस्तु के उत्पादन में आसानी से हस्तान्तरित हो सकती हैं। अथवा, यदि दोनों उद्योगों में उत्पादन की प्रक्रियाएँ परस्पर असम्बद्ध होती हैं तो पुनरावंटन परोक्ष किस्म का होगा जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है। इससे C उद्योग से फर्में हटती चली जाएँगी और F उद्योग में नई फर्मों का प्रादुर्भाव होता जाएगा। प्रत्येक स्थिति में लाभ व हानियाँ और दोनों उद्योगों में साधनों की विभिन्न कीमतें, साधनों अथवा उत्पादन-क्षमता का वाछनीय पुनरावंटन (desirable reallocation) कर देंगी।

दीर्घकालीन सतुलन के पुन स्थापित हो जाने से दोनों उद्योग पुन. अधिकतम सम्भावित आर्थिक कार्यकुशलता प्राप्त कर लेते हैं। प्रत्येक उद्योग में व्यक्तिगत फर्में संयत्र के अनुकूलतम आकारों को उत्पत्ति की अनुकूलतम दरों पर संचालित करती हैं। उपभोक्ता प्रत्येक वस्तु की इकाइयाँ उन कीमतों पर प्राप्त करेंगे जो प्रति इकाई उपलब्ध होने वाली न्यूनतम औसत लागत के बराबर होती हैं। उपभोक्ता-वर्ग की रुचि व अधिमानों में परिवर्तनों के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के कुछ साधन अथवा उत्पादन-क्षमता एक वस्तु के उत्पादन से दूसरी वस्तु में हस्तान्तरित हो गये हैं।

सतुलन और कल्याण

शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक बाजारों में दीर्घकालीन सतुलन की दशाओं की प्राप्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि उपभोक्ता का कल्याण अधिकतम हो सकेगा। अन्य बाजार-ढाँचों की जाँच करने के बाद हमें पता चल सकेगा कि वे शिखर (summit) पर नहीं पहुँच पाते—इसलिए हमारा एक काम यह हो जाता है कि हम इस बात का पता लगायें कि वे किस सीमा तक नीचे रह जाते हैं। शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक मॉडल इस उद्देश्य के लिए एक सुन्दर माप-दण्ड (bench mark) का काम करता है, इसलिए शुद्ध प्रतिस्पर्धा की कई दशाओं या लक्षणों एवं दीर्घकालीन शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक

संतुलन पर ध्यान देने की आवश्यकता है जिनके महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी परिणाम निकलते हैं।

सर्वप्रथम, शुद्ध प्रतिस्पर्धा उत्पादन-क्षमता के उस संगठन तक पहुँचाती है जिस पर **वस्तुओं की कीमतें उनकी प्रति इकाई लागतो सीमान्त व औसत के बराबर हो** जाती हैं। वहाँ पर लाभ या हानि नहीं होते। उत्पादक-क्षमता (साधन) इस प्रकार से आवंटित की जाती है कि यह उपभोक्ताओं के द्वारा इसके सभी वैकल्पिक उपयोगों में समान रूप से महत्त्व रखने की स्थिति में आ जाती है और आगे किसी भी पुनरा-वंटन से कल्याण में वृद्धि नहीं हो सकती।

द्वितीय, प्रत्येक **फर्म चोटी की कार्यकुशलता (peak efficiency) पर काम करती है,** माल को प्रति इकाई न्यूनतम सम्भव लागत पर उत्पन्न करती है। दीर्घकालीन संतुलन में फर्म घाटे को टालने के लिए संयंत्र का अनुकूलतम आकार उत्पत्ति की अनुकूलतम दर पर संचालित करने के लिए प्रेरित होती है। यह आकार की सभी सम्भावित मितव्ययिताओं का लाभ उठाती है और माल की जिस मात्रा को उत्पन्न करती है उसके लिए सबसे ज्यादा कार्यकुशल साधन-संयोग को काम में लेती है।

तृतीय, **साधन बिक्री-संवर्द्धन प्रयासों (sales promotion efforts) में हस्तान्तरित नहीं किये जाते।** जब व्यक्तिगत फर्में शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक बाजारों में माल बेचती हैं तो उनके लिए इस बात की आवश्यकता नहीं होती कि वे बिक्री बढाने के लिए आक्रामक ढंग की क्रियाओं में उलझें। केवल एक फर्म वस्तु की कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती और उद्योग में सभी फर्मों के द्वारा उत्पादित वस्तुएँ समरूप होती हैं। चूँकि व्यक्तिगत फर्म जितना चाहे उतना माल प्रचलित बाजार कीमत पर बेच सकती है, इसलिए बिक्री बढाने के लिए बिक्री संवर्धन अनावश्यक होता है। समस्त विक्रेताओं के द्वारा उत्पादित माल की समरूपता के कारण ही ज्यादातर यह देखा जाता है कि किसी भी एक फर्म के लिए अपनी कीमत बढाने के लिए बिक्री संवर्द्धन क्रियाओं में पडने की कोई आवश्यकता नहीं होती। क्रेताओं के समक्ष पूर्ति के इतने अधिक वैकल्पिक स्रोत होते हैं कि किसी भी एक विक्रेता की तरफ से कीमत बढा देने से उसकी बिक्री गिरकर शून्य पर आ जायगी।

सारांश

इस अध्याय में माँग का विश्लेषण व लागतों का विश्लेषण दोनों मिलकर यह दर्शाते हैं कि कीमत-प्रणाली शुद्ध प्रतिस्पर्धा की विशेष दशाओं में उत्पादन को किस प्रकार से संगठित करती है। कीमत-निर्धारण व उत्पत्ति-निर्धारण का विवेचन अति अल्पकाल, अल्पकाल व दीर्घकाल के दृष्टिकोणों से किया गया है।

वस्तुओं की पूर्ति अति अल्पकाल में स्थिर रहती है। कीमत ही उपभोक्ताओं के बीच चालू पूर्ति की मात्रा का राशन करती है। इसके अतिरिक्त यह पूर्ति की स्थिर मात्रा का राशन अति अल्पकाल की अवधि में भी करती है।

अल्पकाल में व्यक्तिगत फर्मों की उत्पत्ति की मात्राएँ अपने संयत्र के स्थिर आकार की सीमाओं के बीच परिवर्तित की जा सकती हैं। लाभ को अधिकतम करने के लिए व्यक्तिगत फर्में उतना माल बनाती हैं जहाँ पर अल्पकालीन सीमान्त लागतें सीमान्त आय या वस्तु की कीमत के बराबर होती हैं। उद्योग में वस्तु की कीमत समस्त उपभोक्ताओं एवं वस्तु के समस्त उत्पादकों के बीच परस्पर क्रियाओं से निर्धारित होती है। अल्पकाल में व्यक्तिगत फर्मों को मुनाफा हो सकता है अथवा वे घाटा भी उठा सकती हैं।

दीर्घकाल में लाभ अर्जित करने वाले उद्योगों में अतिरिक्त फर्में प्रवेश करती हैं और कुछ चालू फर्में उन उद्योगों को छोड़ देती हैं जिनमें घाटे होते हैं। इस प्रकार प्रथम श्रेणी के उद्योगों में उत्पादन क्षमता का विस्तार होता है और द्वितीय श्रेणी के उद्योगों में इसका सकुचन होता है। उत्पादन-क्षमता के विस्तार से वस्तु का बाजार भाव नीचा हो जाता है और व्यक्तिगत फर्म के लाभ कम हो जाते हैं। उत्पादन-क्षमता के सकुचन से बाजार भाव बढ़ता है और घाटे कम हो जाते हैं। प्रत्येक उद्योग में दीर्घकालीन सतुलन उस स्थिति में होता है जबकि उद्योग में फर्मों की संख्या केवल इतनी ही हो कि न तो लाभार्जन किया जा सके और न घाटा ही उठाना पड़े। जब एक उद्योग दीर्घकालीन सतुलन में होता है तो वस्तु की कीमत औसत उत्पादन-लागत के बराबर होती है। घाटा को टालने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक फर्म संयत्र के अनुकूलतम आकार को उत्पत्ति की अनुकूलतम दर पर ही सचालित करे।

उद्योगों को हम बढ़ती हुई लागत, स्थिर लागत अथवा घटती हुई लागत के उद्योगों की श्रेणी में बाँट सकते हैं। बढ़ती हुई लागतें उस समय देखने को मिलती हैं जबकि उद्योग में नई फर्मों के प्रवेश से वस्तु की उत्पत्ति में प्रयुक्त साधनों की कीमतें बढ़ जाती हैं। इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली ऊँची लागतें बाहरी अमितव्ययिताएँ कहलाती हैं। स्थिर लागत वाले उद्योगों में नई फर्मों के प्रवेश से साधनों की माँग इतनी नहीं बढ़ जाती कि उनकी कीमतों में ही वृद्धि हो जाय। परिणामस्वरूप, चालू फर्मों की लागतों में कोई परिवर्तन नहीं होते। घटती हुई लागतें वास्तविक जगत में बहुत कम देखने को मिलती हैं, लेकिन ये उस समय उत्पन्न होती हैं जबकि नई फर्मों के प्रवेश से साधनों की कीमतों एवं उत्पादन-लागत में गिरावट आ जाती है। ये बाहरी मितव्ययिताएँ कहलाती हैं।

शुद्ध प्रतिस्पर्धा के कुछ कल्याणकारी प्रभाव या परिणाम होते हैं जो महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। सर्वप्रथम, उपभोक्ताओं को वस्तुएँ ऐसी कीमतों पर मिलती हैं जो

उनकी प्रति इकाई उत्पादन-लागत के बराबर होती हैं। द्वितीय, जहाँ भी शुद्ध प्रतिस्पर्धा पाई जा सकती है, वहाँ पर यह अधिकतम आर्थिक कार्यकुशलता को जन्म देती है। तृतीय, व्यक्तिगत फर्मों के लिए बिक्री-सवर्द्धन प्रयासो के लिए कोई प्रेरणा नही होती।

अध्ययन-सामग्री

Boulding, Kenneth E., *Economic Analysis*, 4th ed, vol 1, (New York : Harper & Row Publishers, 1966), Chaps 18 and 19

Marshall, Alfred, *Principles of Economics*, 8th ed. (London : Macmillan & Co., Ltd, 1920), BK V, Chaps IV and V.

Viner, Jacob, "Cost Curves and Supply Curves," Zeitschrift *für Nationalökonomie vol. III (1931), pp. 23–46.*

शुद्ध एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत व उत्पत्ति-निर्धारण

शुद्ध एकाधिकार की प्रकृति का अध्याय 7 मे विवेचन किया जा चुका है, लेकिन यहाँ उसके आवश्यक लक्षणो को पुन दोहराना उचित होगा। शुद्ध एकाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसम एक वस्तु विशेष का, जिसके लिए उत्तम स्थानापन्न पदार्थ उपलब्ध नही होते हैं, एक ही विक्रेता होना है। एकाधिकारी के द्वारा बेची जान वाली वस्तु अर्थव्यवस्था म बेची जान वाली अन्य वस्तुओ स स्पष्टतया भिन्न होनी चाहिए। अन्य वस्तुओ की कीमतो व उत्पत्ति की मात्राओं के परिवर्तनो से एकाधिकारी पर कोई प्रभाव नही पडता। इसके विपरीत, एकाधिकारी की कीमत व उत्पत्ति-सम्बन्धी परिवर्तनो से अर्थव्यवस्था के अन्य उत्पादक अप्रभावित रहते हैं।

वास्तविक जगत् मे शुद्ध एकाधिकार दुर्लभ होता है। स्थानीय सार्वजनिक-उपयोगिता उद्योग इसके समीप आते हैं। अन्य उद्योग जो इस बाजार-ढांचे के समीप आते हैं उनम इजन, टेलिफोन उपकरण, और जूता की मशीनरी का निर्माण एव मैग्नीशियम व निकल का उत्पादन शामिल होना हैं।[1] लेकिन एकाधिकार उस समय तक पूर्ण नही होता जब तक कि स्थानापन्न पदार्थ अस्तित्वहीन नही होते। एल्यूमिनियम के भी स्थानापन्न होते हैं जैसे कि मोलिबडेनम व मैग्नीशियम की सहायता से निर्मित धातु एलोय (मिश्रित धातु) होते है।

चाहे शुद्ध रूप म एकाधिकार का अस्तित्व हो या न हो, फिर भी शुद्ध एकाधिकार के सिद्धान्त कीमत निर्धारण, उत्पत्ति, साधन-आवटन, व कल्याण की समस्याओ के विश्लेपण के लिए आवश्यक उपकरण प्रदान करते हैं। सर्वप्रथम, विश्लेपण के एकाधिकार-सम्बन्धी उपकरण शुद्ध एकाधिकार के समीप पहुँचने वाले उद्योगो पर अथवा ऐसे उद्योगो पर जो बहुधा एकाधिकारी ढग से कार्य करते हैं, लागू करने की दृष्टि से सवाधिक लाभप्रद सिद्ध होते हैं। द्वितीय, विश्लेपण के एकाधिकार सम्बन्धी उपकरण और इनके सशोधित रूप अल्पाधिकार (oligopoly) और एकाधिकारात्मक

---

1 F M Sherer, Industrial Market Structure and Economic Performance (Chicago Rand McNally & Co, 1970), p 59.

प्रतियोगिता (monopolistic competition) के अध्ययन मे मूल्यवान सिद्ध होते हैं। हम प्रारम्भ मे एकाधिकार-विश्लेषण की कुछ मूलभूत धारणाओ का विवेचन करेंगे। इसके पश्चात् अल्पकाल व दीर्घकाल मे कीमत व उत्पत्ति-निर्धारण का विवेचन किया जायेगा। इसके बाद हम कल्याण पर एकाधिकार के प्रभावो का विश्लेषण करेंगे। बाद म एकाधिकार के अन्तर्गत कीमत-निर्धारण के नियन्त्रण पर विचार किया जायगा। अत मे, हम कीमत-विभेद (price discrimination) का अध्ययन करेंगे।

सारणी 11–1 माँग, कुल आय व सीमान्त आय-अनुसूचियाँ

(1) कीमत	(2) प्रति इकाई समयानुसार मात्रा	(3) कुल आय	(4) सीमान्त आय
$10	1	$10	$10
9	2	18	8
8	3	24	6
7	4	28	4
6	5	30	2
5	6	30	0
4	7	28	(–)2
3	8	24	(–)4
2	9	18	(–)6
1	10	10	(–)8

एकाधिकार के अन्तर्गत लागत व आय

उत्पादन-लागत

शुद्ध एकाधिकार के विश्लेषण मे भी हम उन्ही लागत-अवधारणाओ का उपयोग करेंगे जिनका निर्माण अध्याय 9 मे किया गया था और जिनका उपयोग हमने शुद्ध प्रतिस्पर्धा के सम्बन्ध म किया था। शुद्ध एकाधिकार शुद्ध प्रतिस्पर्धा से माल की बिक्री के सम्बन्ध मे भिन्न होता है, न कि उत्पादन-लागत के सम्बन्ध मे। हम यह मान लेते हैं कि वस्तु का एकाधिकारी विक्रेता साधनो का शुद्ध प्रतिस्पर्धी क्रेता होता

है और उनका साधनो की कीमतों पर कोई प्रभाव नही पडता।[2] वह किसी भी साधन की इच्छित मात्रा उसकी प्रति इकाई कीमत को प्रभावित किए बिना ही प्राप्त कर सकता है।

आय (Revenues)

एक शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक फर्म और एक एकाधिकारी फर्म के बीच जो अंतर पाया जाता है वह बिक्री पक्ष की ओर ही होता है। एक शुद्ध प्रतिस्पर्धी प्रचलित बाजार-कीमत पर जितना चाहे उतना माल का सकता है, अत उसकी सीमान्त आय और कीमत दोनो बराबर होते हैं। एक एकाधिकारी के समक्ष उसकी वस्तु के लिए बाजार माँग कम होता है अत प्रति इकाई समयानुसार उसे जितना अधिक माल बेचना होता है उसकी कीमत उतनी ही कम करनी होती है। एकाधिकारी की सीमान्त आय के लिए उसकी कीमत व सम्बन्ध म इसके महत्त्वपूर्ण परिणाम निकलते हैं।

एकाधिकारी के लिए प्रति इकाई समयानुसार बिक्री के विभिन्न स्तरो पर सीमान्त आय बिक्री के उन स्तरो पर प्रति इकाई कीमत से कम होगी। अब सारणी 11–1 को लीजिए। एक एकाधिकारी के समक्ष जो विशेष माँग की अनुसूची होती है वह कॉलम 1 व 2 के द्वारा प्रदर्शित की गई है। बिक्री के विभिन्न स्तरो पर कुल आय कॉलम 3 म दिखलाई गई है और बिक्री के किसी भी दिए हुए स्तर पर यह कीमत को बेची गई मात्रा से गुणा करने से प्राप्त परिणाम के बराबर होती है। सीमान्त आय का कॉलम कुल प्राप्तियो के उन परिवर्तनो को दर्शाता है जो प्रति इकाई समयानुसार बिक्री म एक इकाई के परिवर्तनो से प्राप्त होते है। प्रथम इकाई को छोडकर बिक्री के प्रत्येक स्तर पर सीमान्त आय कीमत से कम होती है। मान लीजिए फर्म का बिक्री का चालू स्तर 3 इकाई X है। प्रति इकाई कीमत $ 8 है और कुल प्राप्तियाँ $ 24 हैं। अब मान लीजिए कि फर्म प्रति इकाई समयानुसार बिक्री की मात्रा को बढ़ाकर 4 इकाई X करना चाहती है। ऐसी स्थिति मे इसे बिक्री बढाने के लिए प्रति इकाई कीमत घटाकर $ 7 करनी होगी। चौथी इकाई $ 7 म बेची जाती है। लेकिन फर्म को अपनी पिछली 3 इकाइयो की बिक्री पर प्रति इकाई $ 1 का घाटा होगा। $ 3 का कुल घाटा चौथी इकाई के बिक्री मूल्य म से घटाया जाना चाहिए, ताकि बिक्री मे एक इकाई की वृद्धि से उत्पन्न कुल प्राप्तियों म विशुद्ध वृद्धि का अनुमान लगाया जा सके। इस प्रकार, 4 इकाइयो की बिक्री पर सीमान्त आय $ 7 – $ 3 = $ 4 ($ 28 व $ 24 का अतर) होगी।

2 लागत-वक्रों क ऐसे सशोधन, जिनमें साधनों की कीमतों पर एक अकेली फर्म के प्रभाव का उल्लेख किया जाता हैं, अध्याय 15 के लिए स्थगित किये गए हैं। यदि इन सशोधनों का यहाँ प्रयोग किया जाता है तो इस अध्याय के विवेचन में कोई विशेष अतर नहीं पड़ेगा।

जब सारणी 11 – 1 की मांग-अनुसूची और सीमान्त आय-अनुसूची एक ही रेखाचित्र पर अंकित की जाती हैं तो सीमान्त आय-वक्र मांग-वक्र से नीचा होता है। वास्तव में सीमान्त आय-वक्र का मांग-वक्र से वही सम्बन्ध होता है जो सीमान्त वक्र का इसके सम्बन्धित औसत वक्र से होता है। मांग-वक्र फर्म का औसत आय-वक्र होता है। जब फर्म की उत्पत्ति के बढ़ने पर कोई भी औसत वक्र—औसत उत्पत्ति, औसत लागत, अथवा औसत आय वक्र—घटता है, तो सम्बन्धित सीमान्त वक्र उससे नीचे होना है।[3]

आर्थिक विश्लेषण में एक उपयोगी प्रस्थापना (proposition) यह सूचित करती है कि एक फर्म के द्वारा बिक्री के किसी भी दिए हुए स्तर पर सीमान्त आय
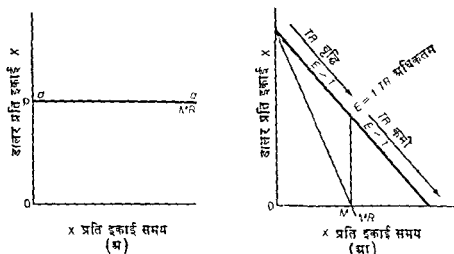
चित्र 11–1 सीमान्त आय के लिए मांग की लोच के निष्कर्ष

वस्तु की कीमत में से बिक्री के उस स्तर पर कीमत के मांग की लोच के प्रति अनुपात को घटाने से प्राप्त परिणाम के बराबर होती है; अर्थात् $MR = P - P/\epsilon$ होती

3. यदि मांग-वक्र का रूप इस प्रकार हो :

$$P = a - bX,$$

तो : $$TR = XP = Xa - bX^2$$

और : $$MR = \frac{d(TR)}{dX} = a - 2bX$$

एक दिये हुए मांग-वक्र के लिए सीमान्त आय वक्र का पता लगाने की ज्यामितीय विधि इस अध्याय के परिशिष्ट I में विकसित की गई है।

है।[4] यह प्रस्थापना फर्म की सीमान्त आय, कुल आय, कीमत और माँग की लोच के बीच सम्बन्धों को परस्पर मिलाती है। चित्र 11–1 (अ) में प्रदर्शित एक शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक फर्म के समक्ष पाए जाने वाले माँग-वक्र पर विचार कीजिए। उत्पत्ति की सभी मात्राओं पर माँग की लोच अनन्त (∞) के समीप पहुँच जाती है। चूँकि $MR=P-P/\epsilon$ होता है और $\epsilon \to \infty$ होने पर p/ϵ शून्य के समीप पहुँचता है और MR समीप पहुँचता है p के, अर्थात् व्यवहार में उत्पत्ति की सभी मात्राओं पर $MR=p$ होना है। अब एक ऐसे एकाधिकारी पर विचार कीजिए जिसके समक्ष चित्र 11–1 (आ) का सरल रेखा वाला माँग-वक्र पाया जाता है। शून्य और T के ठीक बीच में M उत्पत्ति की मात्रा पर $\epsilon=1$ होती है। इससे कम उत्पत्ति की मात्रा पर $\epsilon>1$ होती है और इससे अधिक उत्पत्ति की मात्रा पर $\epsilon<1$ होती है।[5]

हमने अध्याय 3 में देखा कि $\epsilon>1$ होने पर बिक्री में वृद्धि होने से TR में बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। इसका आशय यह है कि $\epsilon>1$ होने पर MR धनात्मक होती है। समीकरण $MR=p-p/\epsilon$ भी यही बात दर्शाता है। यदि $\epsilon>1$ होता है तो p/ϵ अवश्य ही p से कम होगा और MR धनात्मक होगा। ϵ जितनी अधिक होती है p/ϵ उतना ही कम होता है और p व MR के बीच का अन्तर भी उतना ही कम होता है। उत्पत्ति की जिस मात्रा पर $\epsilon=1$ होती है वहाँ TR अधिकतम होता है और MR शून्य होता है। यह सूत्र इस बात की पुष्टि करता है। यदि $MR=p-p/\epsilon$ होगा और $\epsilon=1$ होगा, तो $MR=p-p=0$ होगा।

हम अध्याय 3 में देख चुके हैं कि जब $\epsilon<1$ होती है तो बिक्री में वृद्धि होने से

---

4 यदि $TR=XP$ हो

तो $$MR=\frac{d\,(TR)}{dX}=P+X\,\frac{dP}{dX} \quad (1)$$

$$=P+\frac{P}{\frac{dX}{dP}\times\frac{P}{X}} \quad ...(2)$$

चूँकि $$\epsilon=-\frac{dX}{dP}\times\frac{P}{X}, \quad (3)$$

तब, (2) में प्रतिस्थापित करने पर हम प्राप्त होगा

$$MR=P-\frac{P}{\epsilon} \quad .(4)$$

यह प्रस्थापना इस अध्याय के परिशिष्ट II में ज्यामितीय विधि से सिद्ध की गई है।

5 देखिए, अध्याय 3 में लोच-सम्बन्धी विवरण

TR मे गिरावट आती है। ऐसी स्थिति मे MR ऋणात्मक होती है। यदि $MR = p - p/\epsilon$ और $\epsilon < 1$ होती है, तो $p/\epsilon > p$ और MR ऋणात्मक होगी। यह सूत्र बिक्री में वृद्धि होने की स्थिति मे लोच व कुल आय के बीच मे पाए जाने वाले सम्बन्धो के बारे मे हमारी पिछली बातो के अनुरूप ही है।

अल्पकाल

लाभ-अधिकतमकरण कुल वक्र-रेखाएँ

शुद्ध एकाधिकार की दशाओ मे लाभ अधिकतमकरण मूलत उन्ही नियमो का पालन करते हैं जो शुद्ध प्रतिस्पर्धा मे एक फर्म पर लागू होते है। सारणी 11–1 की कुल प्राप्ति अनुसूची (total receipts schedule) अंकित किए जाने पर चित्र 11–2 के जैसी कुल प्राप्ति वक्र-रेखा बन जाती है। एकाधिकारी के TR वक्र और एक शुद्ध
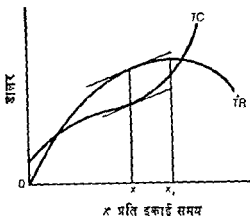
चित्र 11–2 अल्पकाल में लाभ-अधिकतमकरण : कुल वक्र

प्रतिस्पर्धात्मक फर्म के TR वक्र के अतर पर ध्यान दें। अतर इस बात से उत्पन्न होता है कि अधिक मात्रा मे माल बेचने के लिए एकाधिकारी को कीमतें कम करनी पडती हैं। अतएव x_1 जैसी किसी उत्पत्ति की मात्रा पर वह अधिकतम कुल प्राप्तियो के स्तर पर पहुँच जाएगा। इससे अधिक बिक्री की मात्राओ पर कुल प्राप्तियाँ बढने की बजाय घटेंगी। एकाधिकारी x उत्पत्ति की मात्रा पर जहाँ TR और TC के बीच अतर अधिकतम होता है अपने लाभ अधिकतम कर सकेगा। उत्पत्ति की जिस मात्रा पर TR और TC वक्रो के बीच अतर अधिकतम होना है उस पर उनके ढाल बराबर होते हैं (उत्पत्ति की इस मात्रा पर वक्रो की स्पर्श-रेखाएँ (tangents) समानान्तर होती हैं)। चूँकि TC वक्र का ढाल सीमान्त लागत होती है और TR वक्र का ढाल

सीमान्त आय होती है, इसलिए लाभ उत्पत्ति की उस मात्रा पर अधिकतम हो पाते हैं जहाँ सीमान्त आय सीमान्त लागत के बराबर होती है।[6]
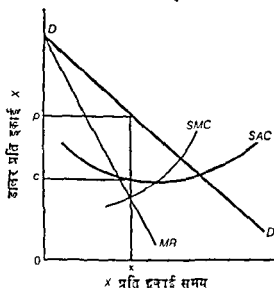
चित्र 11–3 अल्पकाल में लाभ-अधिकतमकरण : प्रति इकाई वक्र

लाभ-अधिकतमकरण प्रति इकाई वक्र-रेखाएँ

एकाधिकारी के द्वारा अल्पकाल में लाभ-अधिकतम करने का रेखाचित्रीय वर्णन चित्र 11–3 में प्रति इकाई लागतों व प्राप्तियों के माध्यम से किया गया है। लाभ उत्पत्ति की उस मात्रा पर अधिकतम हो पाते हैं जहाँ SMC बराबर होती है MR के। एकाधिकारी उत्पत्ति की उस मात्रा के लिए जो प्रति इकाई कीमत प्राप्त कर सकता है वह p होती है। औसत लागत c और लाभ cp को x से गुणा करने के बराबर होते हैं। उत्पत्ति की कम मात्राओं पर, MR की मात्रा SMC से ज्यादा होती है, इस प्रकार x मात्रा तक अधिक उत्पत्ति में कुल लागत की अपेक्षा कुल प्राप्तियों में अधिक वृद्धि होती है और लाभ बढ़ते हैं। उत्पत्ति की अधिक मात्राओं के लिए MR की मात्रा SMC से कम होती है, इसलिए x से आगे अधिक उत्पत्ति में कुल प्राप्तियों की अपेक्षा कुल लागतों में ज्यादा वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप लाभ घटते हैं।[7]

---

6 एकाधिकारी के लिए लाभ-अधिकतमकरण की गणित वही होती है जो एक शुद्ध प्रतिस्पर्धी फर्म के लिए होती है (देखिए अध्याय 10 के सम्बन्धित पृष्ठ)।

7. MR और SMC का परस्पर सम्बन्ध हमें केवल यही बतलाता है कि उस उत्पत्ति पर लाभ अधिकतम होते हैं अथवा हानि न्यूनतम होती है। कीमत उस उत्पत्ति पर माँग-वक्र के द्वारा प्रदर्शित होती है, न कि MR वक्र के द्वारा। लाभ कीमत और औसत लागत के द्वारा निर्धारित होते हैं, न कि कीमत और सीमांत लागत के द्वारा।

दो सामान्य मिथ्या धारणाएँ (Two Common Misconceptions)

आमतौर पर यह मिथ्या धारणा पाई जाती है कि एक एकाधिकारी लाभ अवश्यमेव कमाता है। लेकिन लाभार्जन हो पाता है अथवा नहीं, यह एकाधिकारी के समक्ष पाए जाने वाले बाजार माँग-वक्र और उसकी लागत की दशाओं के सम्बन्ध पर निर्भर करेगा। यदि कीमत औसत परिवर्तनशील लागत से अधिक होती है तो अल्पकाल में एक शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक फर्म की भाँति एक एकाधिकारी घाटा भी उठा सकता है। चित्र 11–4 में एकाधिकारी की लागतें इतनी ऊँची हैं और उसका बाजार इतना छोटा है कि उत्पत्ति की किसी भी मात्रा पर कीमत औसत लागत को शामिल नहीं कर पाती है। x उत्पत्ति की मात्रा पर जहाँ SMC बराबर होती है MR के, उसकी हानि न्यूनतम होती है बशर्ते कि यहाँ कीमत औसत परिवर्तनशील लागतों से अधिक होती है। हानि pc×x के बराबर होती है।
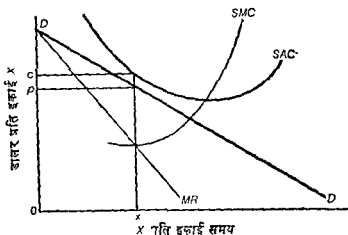
चित्र 11–4 अल्पकाल में हानि न्यूनतमकरण : प्रति इकाई वक्र

दूसरी प्रचलित मिथ्या धारणा यह है कि एकाधिकारी के समक्ष जो माँग-वक्र पाया जाता है वह बेलोच होता है। शुद्ध प्रतिस्पर्धा की दशाओं के अन्तर्गत फर्मों के समक्ष पाए जाने वाले माँग-वक्रों को छोड़कर, अधिकांश माँग-वक्र अपने ऊपरी सिरों पर (upper ends) काफी लोचदार और अपने निचले सिरों (lower ends) पर काफी बेलोच होते हैं।[8] इसी वजह से अधिकांश माँग-वक्रों को हम लोचदार अथवा

8. इस स्थिति के प्रतिकूल होने की भी कल्पना की जा सकती है, लेकिन ऐसा होना असामान्य माना जाएगा। एक माँग-वक्र जो ऊपरी सिरे पर बेलोच और निचले सिरे पर लोचदार होता है उसकी वक्रता (curvature) अनिवार्यतः एक आयताकार अतिपरवलय (rectangular hyperbola) से अधिक होती है।

बेलोच नहीं कह सकते। वे प्राय दोनों किस्म के होते हैं और यह विचाराधीन माँग-वक्र के क्षेत्र-विशेष पर निर्भर करता है। यदि एकाधिकारी के लिए कोई उत्पादन-लागत होती है, तो उत्पत्ति की जो मात्रा उसका लाभ अधिकतम करती है वह उसके माँग वक्र के लोचदार क्षेत्र में आती है। सीमान्त लागत सदैव धनात्मक होती है, इसलिए उत्पत्ति की जिस मात्रा पर सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होती है वहाँ पर सीमान्त आय भी धनात्मक होगी। यदि सीमान्त आय धनात्मक होती है तो माँग की लोच एक से अधिक होगी।

दीर्घकाल

उद्योग में प्रवेश

शुद्ध प्रतिस्पर्धा वाले उद्योग में दीर्घकाल में नई फर्मों का प्रवेश सुगम होता है, लेकिन एकाधिकारी-उद्योग में यह प्रवेश अवरुद्ध होता है। एकाधिकारी को इस बात में समर्थ होना चाहिए कि वह लाभ कमाए जाने की स्थिति में नई फर्मों के प्रवेश को रोक सके अन्यथा वह एकाधिकारी नहीं रह सकेगा। उद्योग में प्रवेश से बाजार की उस स्थिति में परिवर्तन आ जाता है जिसमें एक फर्म अपना कार्य संचालित करती है।

एकाधिकारी अपने क्षेत्र में प्रवेश को कई तरह से रोक सकता है। वह अपनी वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल के स्रोतों पर नियन्त्रण कर सकता है। उदाहरण के लिए, अमेरिका की एल्यूमिनियम कम्पनी के बारे में यह प्रसिद्ध है कि द्वितीय महायुद्ध से पूर्व बॉक्साइट, जो एल्यूमिनियम के निर्माण में प्रयुक्त होने वाला आधारभूत कच्चा माल होता है, की उपलब्ध पूर्ति के 90 प्रतिशत से भी ज्यादा अंश पर उसका स्वामित्व अथवा नियन्त्रण था।[9] अथवा उसके पास कुछ विशेषाधिकार (patents) हो सकते हैं जो अन्य फर्मों को उसके माल की नकल करने से रोकते हैं। जूते की मशीनों के निर्माण में अकेली कम्पनी को जूतों के निर्माण में प्रयुक्त होने वाले लगभग समस्त उपकरण पर एक साथ विशेषाधिकार रहा है। जूतों के उत्पादकों को मशीनें सीधी बेचने के बजाय कम्पनी ने मशीनें उनको पट्टे पर दीं और उनसे रॉयल्टी प्राप्त की। जूते का उत्पादक जिसने कोई उपकरण किसी अन्य स्रोत से प्राप्त कर लिया है, वह कम्पनी से मूल उपकरण (key equipment) प्राप्त करने में असमर्थ

9. Clair Wilcox, Competition and Monopoly in American Industry, Temporary National Economic Committee Monograph No. 21. (Washington, D C Government Printing Office, 1940), pp. 69–72.

रहेगा।[10] अथवा एकाधिकारी का बाजार, सयत्र के अपने अनुकूलतम आकार की तुलना मे इतना सीमित हो सकता है कि यद्यपि एक फर्म को लाभ प्राप्त होता है लेकिन दूसरी फर्म के प्रवेश से कीमतें इतनी नीची हो जाती हैं कि दोनो को घाटा होता है। इस प्रकार प्रवेश रुक जाता है। इसके अलावा प्रवेश को अवरुद्ध करने की अन्य विधियाँ भी पाई जा सकती हैं। सार्वजनिक-उपयोगिता के क्षेत्र मे सरकारी इकाई के द्वारा स्वीकृत एकमात्र अधिकार से यह कार्य सम्पन्न किया जा सकता है। ये कुछ ऐसे अधिक महत्वपूर्ण उपाय हैं जो एकाधिकार को उत्पन्न करते हैं।[11]

शुद्ध एकाधिकार की स्थिति को बनाये रखने के लिए प्रवेश को पूर्णतया अवरुद्ध रखने की आवश्यकता इस बात को स्पष्ट करने मे मदद देती है कि शुद्ध एकाधिकार इतना कम क्यो पाया जाता है। केवल उन दशाओ को छोडकर जिनमे सरकार प्रवेश को रोक देती है, जब कभी एकाधिकारी के क्षेत्र मे लाभ कमाये जा सकते हैं तो उसके लिए स्थानापन्न पदार्थों के आगमन को रोकना अत्यन्त कठिन होता है। एकाधिकारी से मिलते-जुलते विशेषाधिकार (पेटेन्ट्स) तो प्राप्त किये जा सकते हैं, लेकिन कुछ दशाओ मे स्थानापन्न पदार्थों की उत्पत्ति मे उनको लगाना एक जटिल प्रक्रिया हो सकती है। अथवा नये विचारो व प्रक्रियाओ के पुरानो की तुलना मे अधिक उत्तम होने से पेटेन्ट्स प्रचलन से बाहर भी हो सकते हैं। जहाँ कच्चे माल का एकमात्र स्वामित्व एकाधिकार के उपाय के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है, वहाँ प्रायः कच्चे माल के स्थानापन्न पदार्थ एक ऐसी वस्तु के निर्माण के लिए विकसित किये जा सकते हैं जो मूल वस्तु के लिए काफी उत्तम स्थानापन्न वस्तु होती है।

सयत्र के आकार के समायोजन (Size of Plant Adjustments)

चूँकि उद्योग मे प्रवेश अवरुद्ध होता है इसलिए एकाधिकारी अपनी दीर्घकालीन उत्पत्ति मे समायोजन सयत्र के आकार के समायोजनो के जरिए ही कर पाता है। इस सम्बन्ध मे तीन सम्भावनाएँ पाई जाती हैं। सर्वप्रथम, एकाधिकारी के बाजार एव उसकी दीर्घकालीन औसत लागतो के बीच एक ऐसा सम्बन्ध हो सकता है कि वह सयत्र के अनुकूलतम आकार से कम के आकार का निर्माण करे। द्वितीय, सम्बन्ध ऐसा हो सकता है कि वह सयत्र के अनुकूलतम आकार का निर्माण करे। तृतीय, कुछ दशाओ मे एकाधिकारी सयत्र के अनुकूलतम आकार से ज्यादा बडा आकार भी बनाने के लिए प्रेरित हो सकता है।

सयत्र के अनुकूलतम से कम का आकार—मान लीजिए एकाधिकारी का बाजार इतना सीमित है कि उसका सीमान्त आय वक्र उसके दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र

10 पूर्वोद्धृत, अध्याय 5 मे तटस्थता वक्रों के लक्षण देखें।

11. विशिष्ट उद्योगों में प्रवेश को रोकने के उपायों की अधिक पूर्ण सूची अध्याय 12 में दी गई है।

को इसके न्यूनतम बिन्दु के बायी तरफ काटता है। चित्र 11–5 इस स्थिति को स्पष्ट करता है। दीर्घकालीन लाभ उत्पत्ति की उस मात्रा पर अधिकतम होते हैं जहाँ LMC बराबर होती है MR के। ऐसी स्थिति मे उत्पत्ति x और कीमत p होगी। एकाधिकारी सयन्त्र के ऐसे आकार का निर्माण करेगा जिस पर x उत्पत्ति की मात्रा न्यूनतम सभव औसत लागत पर उत्पादित की जा सकेगी ताकि SAC अल्पकालीन औसत लागत वक्र LAC वक्र को x उत्पत्ति पर स्पर्श करेगा। यदि x उत्पत्ति पर SAC LAC को स्पर्श करती है तो वहाँ पर SMC अनिवार्यत LMC के बराबर होती है।[12] साथ म यह भी है कि x उत्पत्ति की मात्रा पर LMC बराबर है MR के इसलिए उसी उत्पत्ति की मात्रा पर SMC बराबर होगी MR के। इस प्रकार दीर्घकालीन सतुलन म होने वाली एकाधिकारी फर्म अनिवार्यत अल्पकालीन सतुलन म भी होती है। लाभ की मात्रा cp×x के बराबर होती है। सयत्र के आकार अथवा SAC की उत्पत्ति की दर म किसी भी परिवर्तन से मुनाफा कम हो जायेगा।

इस स्थिति म एकाधिकारी अनुकूलतम से कम सयत्र के आकार का निर्माण करेगा और इसे उत्पत्ति की अनुकूलतम दर से कम पर सचालित करेगा। उसके
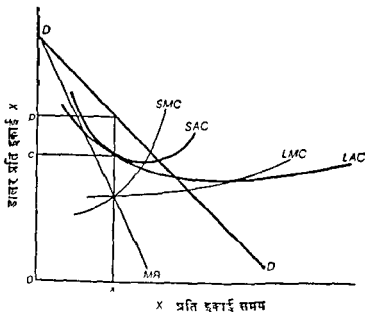
चित्र 11–5 दीर्घकाल मे लाभ अधिकतमकरण
अनुकूलतम से कम सयत्र का आकार

12 देखिए अध्याय 9 के अन्तिम पृष्ठ।

लिए बाजार इतना बडा नही होता कि वह आकार की समस्त मितव्ययिताओ का लाभ उठाने के लिए सयत्र के आकार का पर्याप्त रूप से विस्तार कर सके। सयत्र के जिस आकार का वह उपयोग करता है उसकी कुल अतिरिक्त क्षमता होती है। यदि वह अपने सयत्र के आकार को घटाकर SAC से नीचा कर दे ताकि कोई अतिरिक्त क्षमता न रहे तो वह SAC के द्वारा प्रदान की जाने वाली आकार की कुछ मितव्ययिताओं को खो देगा। सयत्र के अपेक्षाकृत छोटे आकार के अधिक पूर्ण उपयोग से प्राप्त "लाभो" की तुलना मे हानि की मात्रा अधिक होगी।

छोटे व मध्यम आकार के शहरो मे स्थानीय पावर कम्पनियाँ सयत्र के अनुकूलतम से छोटे आकार को उत्पत्ति की अनुकूलतम दर से कम दर पर सचालित करती है। बिजली के लिए सीमित स्थानीय बाजार बिजली उत्पन्न करने वाले सयत्र का आकार इतना सीमित कर देता है कि वह बिजली उत्पन्न करने वाले सबसे ज्यादा कुशल उपकरणो व तकनीको के उपयोग की दृष्टि से बहुत छोटा होता है। फिर भी सुनियोजित सयत्र की कुछ अतिरिक्त क्षमता होगी जिसके द्वारा आकार की मितव्ययिताओ का लाभ प्राप्त किया जा सकेगा और उच्चतम उत्पत्ति की आवश्यकताएँ भी पूरी की जा सकेगी।

सयत्र का अनुकूलतम आकार—मान लीजिए एकाधिकारी के बाजार और उसके लागत-वक्र ऐसे हैं कि चित्र 11–6 मे उसका सीमान्त आय-वक्र उसके LAC वक्र के
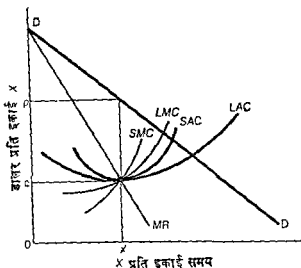
चित्र 11–6 दीर्घकाल मे लाभ-अधिलमकरण सयत्र का अनुकूलतम आकार

न्यूनतम बिन्दु से टकराता है। दीर्घकाल मे लाभ अधिकतम करने वाली मात्रा x होगी जहाँ LMC=MR होगी, यह अनिवार्यत उत्पत्ति की वह मात्रा होगी जहाँ LAC न्यूनतम होगी। एकाधिकारी को प्रति इकाई न्यूनतम सम्भव लागत पर x मात्रा का उत्पादन करने के लिए SAC संयत्र का निर्माण करना चाहिए जो संयत्र का अनुकूलतम आकार होगा। इस स्थिति मे x उत्पत्ति पर SMC=LMC= =MR=SAC=LAC होगी। फर्म अल्पकालीन एव दीर्घकालीन दोनो प्रकार के सतुलन म होगी। कीमत p, औसत लागत c, और लाभ cp×x के बराबर होंगे। परिकल्पित दशाओ म फर्म संयत्र के अनुकूलतम आकार को उत्पत्ति की अनुकूलतम दर पर सचालित करती है।

अनुकूलतम से बडा संयत्र का आकार–मान लीजिए एकाधिकारी का बाजार इतना बडा है कि उसका सीमान्त आय-वक्र उसके LAC वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु के दाहिनी तरफ काटता है। यह स्थिति रेखाचित्र 11–7 मे बतलाई गई है। दीर्घकालीन लाभ को अधिकतम करने वाली उत्पत्ति की मात्रा x होगी। निर्माण के लिए संयत्र का उचित आकार SAC होगा जो x उत्पत्ति पर LAC को स्पर्श करेगा। x उत्पत्ति पर LMC=SMC=MR होगी, अत एकाधिकारी अल्पकालीन एव दीर्घकालीन दोना सतुलनो म होगा।
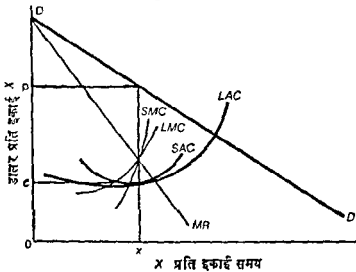
चित्र 11–7 दीर्घकाल मे लाभ-अधिकतमकरण . अनुकूलतम से बडा संयत्र का आकार

परिकल्पित दशाओ मे एकाधिकारी अनुकूलतम से बडा संयत्र का आकार बनाएगा और अपने लाभ अधिकतम करने के लिए इसे उत्पत्ति की अनुकूलतम दर से अधिक

दर पर सचालित करेगा । उसका सयत्र इतना बडा है कि आकार की अमितव्ययिताएँ (diseconomies) उत्पन्न होती हैं । उसके लिए यह ज्यादा लाभप्रद होगा कि वह एक ऐसे सयत्र का उपयोग करे जो उस सयत्र से थोडा छोटा हो जिस पर वस्तु की x मात्रा उत्पत्ति की सबसे अधिक कार्यकुशल दर पर उत्पन्न की जा सके । SAC सयत्र को उत्पत्ति की सबसे अधिक कार्यकुशल दर से भी आगे तक सचालित करके वह अपेक्षाकृत कम प्रति इकाई लागत प्राप्त कर सकता है, वनिस्वत उसके जो अपेक्षाकृत बडे सयत्र पर सम्भव हो सकती है । एक अपेक्षाकृत बडे सयत्र पर आकार की अमितव्ययिताओ की लागत SAC सयत्र को उत्पत्ति की अनुकूलतम दर से आगे तक सचालित करने की तुलना मे अधिक होती है ।

कीमत-विभेद (Price Discrimination)

कुछ दशाओ मे एकाधिकारी के लिए यह सम्भव हो सकता है और लाभप्रद भी कि वह अपनी वस्तु के लिए दो या अधिक बाजारो को पृथक् कर सके और उन्हें पृथक् रख सके । ऐसी परिस्थितियो मे वह प्रत्येक बाजार मे अपनी वस्तु के लिए पृथक् कीमत वसूल करेगा । ऐसे कीमत-विभेद के लिए दो शर्तें आवश्यक होती है । सर्वप्रथम, वह बाजारो को एक दूसरे से पृथक् रखने मे समर्थ हो । यदि ऐसा नहीं हुआ तो उसकी वस्तु कम कीमत के बाजार मे खरीदी जाएगी और ऊँची कीमत के बाजार मे पुन बेच दी जाएगी, जिससे कीमत का वह भेद समाप्त हो जायगा जिसे एकाधिकारी बनाये रखना चाहता है । द्वितीय, कीमत-विभेद के लाभप्रद होने के लिए यह आवश्यक है कि बाजारो के बीच प्रत्येक कीमत-स्तर पर माँग की लोचे भिन्न भिन्न हो । विश्लेषण मे आगे चलने पर इनकी भिन्नता का कारण स्पष्ट हो सकेगा ।

बिक्री की मात्राओ का वितरण

सर्वप्रथम हम उस विधि पर दृष्टिपात करते हैं जिसके द्वारा एक विभेद करने वाला एकाधिकारी दो (या अधिक) बाजारो के बीच अपनी बिक्री की मात्राओ का वितरण करेगा । कुछ समय के लिए लागतो को छोड़ते हुए, बिक्री की किसी भी दी हुई मात्रा के लिए यह कहा जा सकता है कि उसे अपना माल सदैव उस बाजार में बेचना चाहिए जिसमे प्रति इकाई समयानुसार बिक्री की एक अतिरिक्त इकाई से उसकी कुल प्राप्तियो मे अधिकतम वृद्धि हो सके । दूसरे शब्दो मे, इसका आशय यह है कि उसे विभिन्न बाजारो मे अपनी बिक्री को इस तरह से वितरित करना चाहिए कि प्रत्येक बाजार मे सीमान्त आय दूसरे बाजार (बाजारो) की सीमान्त आय के बराबर हो । ऐसा करने से उसे बिक्री की एक दी हुई मात्रा से अधिकतम कुल प्राप्ति हो सकेगी ।
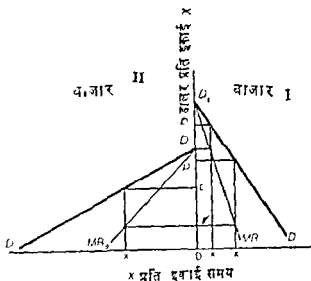
चित्र 11–8 बाजारों में बिक्री की मात्राओं का वितरण कीमत-विभेद

रेखाचित्रीय रूप में मान लीजिए कि एकाधिकारी चित्र 11–8 के दो पृथक्-पृथक् बाजारों में अपना माल बेच सकता है। मांग-वक्र क्रमश D_1D_1 व D_2D_2 हैं। सुविधा के लिए बाजार II का मात्रा-अक्ष उलट दिया जाता है। X की इकाइयाँ प्रचलित रूप में बायें से दायें की अपेक्षा दायें से बायें मापी जाती हैं। यदि बिक्री की मात्रा x_0 से नीचे हो तो उसे सम्पूर्ण मात्रा बाजार I में बेचनी चाहिए, क्योंकि उस बाजार में बिक्री से उसकी कुल प्राप्तियों में होने वाली वृद्धि बाजार II में बिक्री से उसकी कुल प्राप्तियों में होने वाली वृद्धि से अधिक होगी। यदि उसकी बिक्री की कुल मात्रा x_1 और x_2 के जोड़ के बराबर होनी है तो उसे बाजार I में x_1 और बाजार II में x_2 मात्रा बेचनी चाहिए ताकि बाजार I में सीमान्त आय बाजार II की सीमान्त आय के समान हो। प्रत्येक बाजार में सीमान्त आय का स्तर r होगा। हम यह दर्शा सकते हैं कि यही वितरण उसके लिए अधिकतम कुल प्राप्तियाँ उपलब्ध करता है। इसमें हम यह मान लेते हैं कि वह एक बाजार में अपनी बिक्री की मात्रा में एक इकाई की कमी कर देता है और दूसरे बाजार में एक इकाई बढ़ा देता है। किसी भी बाजार में बिक्री में एक इकाई कम कर देने से उस बाजार से उसकी कुल प्राप्तियों में r के बराबर कमी हो जाती है। दूसरे बाजार में बिक्री के एक इकाई बढ़ जाने से कुल प्राप्तियों में r से कम वृद्धि होगी। इसका कारण यह है कि उस बाजार में प्रति इकाई समयानुसार बिक्री की एक अतिरिक्त इकाई से सीमान्त आय r से कम होगी।

बिक्री के उचित वितरण से बाजार I मे कीमत p_1 और बाजार II में कीमत p_2 होगी।

अब यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक सम्भावित कीमत पर मांग की लोच दोनो बाजारो मे भिन्न-भिन्न क्यो पाई जाती है। चूंकि $MR = p - p/e$ होती है, इसलिए यदि समान कीमतो पर दोनो बाजारो मे लोचें समान होती हैं तो सम्बन्धित सीमान्त आय भी समान होगी। बिक्री का जो वितरण बाजार I मे सीमान्त आय को बाजार II की सीमान्त आय के बराबर करता है वही बाजार I की कीमत को बाजार II की कीमत के बराबर करेगा। यदि ऐसी स्थिति पाई जाती है तो बाजारो को पृथक् करने मे कोई तुक या लाभ नही होगा।

लाभ-अधिकतमकरण

एकाधिकारी को लाभ अधिकतम करने की समस्या को हल करने के लिए उसके लागत-वक्रो और साथ मे उसकी कुल बिक्री की मात्रा से सम्बन्धित सीमान्त आय-वक्र की आवश्यकता होती है। मान लीजिए उसके औसत लागत वक्र और सीमान्त लागत-वक्र चित्र 11–9 की भाँति होते हैं। ये उसकी सम्पूर्ण उत्पत्ति पर उपयुक्त होते हैं, चाहे ये कैसे भी वितरीत क्यो न हो। जब बिक्री की मात्राएँ ठीक से वितरित होती हैं तो सम्पूर्ण बिक्री के लिए सीमान्त आय वक्र चित्र 11–9 म ΣMR होता है। बाजार II के लिए मांग-वक्र व सीमान्त आय-वक्र सामान्य विधि से ही खीचे गये हैं। तत्पश्चात् MR_1 और MR_2 को क्षैतिज रूप मे जोडकर ΣMR प्राप्त किया गया है।
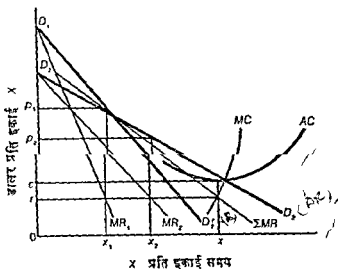
चित्र 11–9 लाभ-अधिकतमकरण . कीमत-विभेद

लाभ को अधिकतम करने की समस्या अब एक सरल एकाधिकार की समस्या बन गई है। एकाधिकारी की कुल उत्पत्ति x होनी चाहिए जहाँ MC=ΣMR हो। बाजार I में बिक्री की मात्रा x_1 और कीमत p_1 और बाजार II में ये क्रमश: x_2 व p_2 होने चाहिएँ। बाजार I में सीमान्त आय बाजार II में सीमान्त आय के बराबर होती है जो बिक्री के इस वितरण की स्थिति में r के बराबर होती है। यदि कुल उत्पत्ति और बिक्री x से कम होती है तो एक बाजार या दूसरे में (अथवा दोनों में) सीमान्त आय r से अधिक होती है और सीमान्त लागत r से कम होती है। अत x मात्रा तक उत्पादन की वृद्धियों से कुल लागतों की बनिस्बत कुल प्राप्तियों में अधिक वृद्धि होगी और लाभों में वृद्धि होगी। यदि कुल उत्पत्ति और बिक्री की मात्रा x से अधिक बढाई जाती है तो सीमान्त लागत r से अधिक होगी और एक बाजार या दूसरे में (अथवा दोनों में) सीमान्त आय r से कम होगी। उत्पादन की ऐसी वृद्धियों में कुल प्राप्तियों की बजाय कुल लागतों में अधिक वृद्धि होगी और लाभों में गिरावट आयगी। दोनों बाजारों में x उत्पत्ति के ठीक से वितरित कर दिये जाने पर बाजार I में लाभ की मात्रा $cp_1 \times x_1$ होगी और बाजार II में लाभ की मात्रा $cp_2 \times x_2$ होगी। कुल लाभ की मात्रा $cp_1 \times x_1$ एवं $cp_2 \times x_2$ के जोड़ के बराबर होगी।

कीमत-विभेद के उदाहरण

कीमत विभेद प्राय सार्वजनिक उपयोगिता सम्बन्धी उद्योगों में देखने को मिलता है। विद्युत् उत्पन्न करने वाली कम्पनियाँ प्राय विद्युत् का व्यावसायिक दृष्टि से उपभोग करने वालों को उसके घरेलू उपयोग करने वालों से पृथक् करती हैं। प्रत्येक प्रयोगकर्ता के द्वारा पृथक् मीटर का उपयोग किये जाने से कम्पनी बाजारों को पृथक् रखने में सफल होती है। व्यावसायिक प्रयोगकर्ताओं की बिजली की माँग की लोच घरेलू प्रयोगकर्ताओं से अधिक होती है, परिणामस्वरूप, व्यावसायिक प्रयोगकर्ताओं से नीची दर ली जाती है। यह विभेद इस बात से उत्पन्न होता है कि उनके लिए विद्युत्-कम्पनी की वस्तु के स्थानापन्न पदार्थों के उपयोग की अपेक्षाकृत अधिक सम्भावनाएँ होती है। बड़े व्यावसायिक प्रयोगकर्ताओं के लिए न केवल यह सम्भव होता है कि वे शक्ति के स्थानापन्न स्रोतों का उपयोग कर सकें, बल्कि वे स्वय विद्युत्-शक्ति का भी सृजन कर सकते हैं। यद्यपि घरेलू प्रयोगकर्ता भी स्वय की विद्युत्-शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं, और कभी-कभी करते भी हैं, फिर भी उनकी शक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार सृजनकारी सयत्र इतने छोटे होते हैं कि प्रति इकाई लागतें बहुत ऊँची या निषेधक (prohibitive) हो जाती हैं।

कीमत-विभेद का दूसरा दृष्टान्त "बाजार पाटने" ("dumping") के सुप्रसिद्ध उदाहरण मे पाया जाता है जो विदेशी व्यापार के क्षेत्र से सम्बन्ध रखता है। इसके अनुसार विदेशो मे वस्तुएँ घरेलू या देशी कीमत की अपेक्षा कम कीमत पर बेची जाती हैं। बाजार एक-दूसरे से परिवहन-लागतो एव प्रशुल्क-प्रतिबन्धो के द्वारा पृथक् किये जाते हैं। विदेशी बाजार मे विक्रेता के समक्ष माँग वक्र की लोच प्राय घरेलू बाजार की अपेक्षा अधिक होती है। विक्रेता यद्यपि घरेलू बाजार मे एकाधिकारी हो सकता है, लेकिन विदेशो मे उसके समक्ष अन्य देशो के प्रतियोगी पाये जा सकते हैं। विश्व-बाजार मे उसकी वस्तु के स्थानापन्न पदार्थों से उसके समक्ष पाये जाने वाले विदेशी माँग-वक्र की लोच बढ जाती है।

शुद्ध एकाधिकार के कल्याण पर प्रभाव

यहाँ प्रश्न उठता है कि पिछले अध्याय के शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक जगत् मे शुद्ध एकाधिकार के समावेश से उपभोक्ता व कल्याण पर क्या प्रभाव पडेगा ? ये प्रभाव उस समय प्रबल रूप मे सामने आते हैं जब हम यह मान लें कि कुछ बाजारो मे शुद्ध प्रतिस्पर्धा पाई जाती है और कुछ मे शुद्ध एकाधिकार। शुद्ध प्रतिस्पर्धा की स्थिति की भाँति यहाँ भी प्रभावो का पूर्ण विवेचन साधनो की कीमत व उपयोग की मात्रा (employment) के निर्धारण के बाद ही किया जा सकेगा।

अल्पकाल मे उत्पत्ति पर प्रतिबन्ध

यदि सभी उद्योग प्रारम्भ मे शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक होते हैं और दीर्घकालीन सतुलन
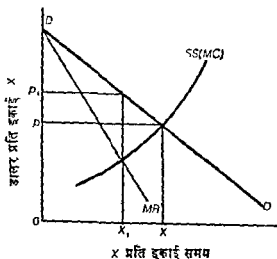
चित्र 11–10 एकाधिकारी-स्थिति मे उत्पत्ति पर प्रतिबन्ध

मे होते हैं, तो उनमे से एक या अधिक मे एकाधिकरण हो जाने से उपभोक्ता का कल्याण घट जाता है। उदाहरण के लिए, मान लें कि चित्र 11–10 मे X शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था मे एक उद्योग का सूचक है। बाजार माँग-वक्र DD है और बाजार अल्पकालीन पूर्ति-वक्र (व्यक्तिगत फर्मों के सीमान्त लागत-वक्रो का जोड़) SS है। बाजार कीमत P और उद्योग म उत्पत्ति का स्तर X है। यद्यपि चित्र मे इस बात को दर्शाने के लिए औसत लागत वक्र नहीं खींचे गये हैं, फिर भी मान लीजिए कि उद्योग दीर्घकालीन सतुलन मे है और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे पेरेटो इष्टतम की दशा (Pareto optimum) विद्यमान है।

प्रश्न उठता है कि X उद्योग मे एकाधिकरण (monopolization) हो जाने से अल्पकालीन प्रभाव क्या होग ? यदि एक उद्योग की उत्पादन क्षमता एक ही फर्म के नियन्त्रण मे लायी जाती है ता शुद्ध प्रतिस्पर्धा मे उद्योग का निर्माण करने वाली व्यक्तिगत फर्मो की अपेक्षा एकाधिकारी को माँग भिन्न प्रतीत होगी। शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक फर्मों म से प्रत्येक के लिए बाजार कीमत P पर माँग-वक्र क्षैतिज होता है। प्रत्येक फर्म के समक्ष सीमान्त आय-वक्र माँग वक्र से मेल खाता हुआ होगा। फर्म माल की वह मात्रा बनायेगी जहाँ अल्पकालीन सीमान्त लागत सीमान्त आय अथवा कीमत P के बराबर हो। एकाधिकारी क लिए बाजार माँग-वक्र नीचे दायी ओर झुकेगा और सीमान्त आय-वक्र माँग-वक्र से नीचे रहेगा जैसा कि चित्र 11–10 मे MR है। यह मानते हुए कि एकाधिकारी उद्योग की भौतिक सुविधाओ को अक्षुण्ण (intact) रूप मे ले लेता है और इससे आकार की अमितव्ययिताएँ उत्पन्न नही होती है, ऐसी स्थिति मे SS (शुद्ध प्रतिस्पर्धा मे उद्योग का पूर्ति-वक्र अथवा सीमान्त लागत वक्र) एकाधिकारी का सीमान्त लागत वक्र भी होता है। लाभ अधिकतम करने के लिए एकाधिकारी उद्योग के उत्पत्ति स्तर को घटाकर X_1 कर देगा और कीमत बढाकर P_1 कर देगा। X की उत्पत्ति मे कमी आ जाने से उद्योग मे प्रयुक्त होने वाले कुछ साधन मुक्त हो जायेंगे और ये अन्य वस्तुओ की उत्पत्ति मे वृद्धि करने के लिए प्रयुक्त होगे। इस प्रक्रिया से उनकी कीमतें घट जायेंगी।

जब साधन X से हटाकर अन्य उपयोगो मे हस्तान्तरित कर दिये जाते हैं तो कल्याण मे कमी आ जाती है। उत्पत्ति के किसी भी स्तर पर X की सीमान्त लागत अन्य उपयोगो मे इसका वह मूल्य है जो उपभोक्ता X की एक इकाई उत्पन्न करने मे प्रयुक्त साधनो के लिए लगाते हैं। उत्पत्ति के उस स्तर पर X की कीमत वह मूल्य है जो वे X के उत्पादन मे प्रयुक्त साधनो के उसी सयोग के लिए लगाते हैं। चित्र 11–10 मे हम देखते हैं कि जब X वस्तु की उत्पत्ति का स्तर X से घटाकर X_1 किया जाता है तो X की सीमान्त लागत इसकी कीमत से नीचे आ जाती है जो यह

सूचित करती है कि साधन उन उपयोगो से हटाये जा रहे हैं जहाँ उपभोक्ताओ के लिए इनका मूल्य अधिक है और उन उपयोगो मे हस्तान्तरित किये जा रहे हैं जहाँ उपभोक्ताओ के लिए उनका मूल्य कम होता है। इस परिवर्तन से समाज म कम से कम कुछ सदस्यो के कल्याण मे तो अवश्य ही कमी होगी।

दीर्घकालीन उत्पत्ति-प्रतिबन्ध

उद्योग के एकाधिकरण से दीर्घकाल म कल्याण भी अनुकूलतम स्तर से नीचा ही रहेगा। दीर्घकाल मे उद्योग मे प्रवेश के अवरुद्ध रहने से लाभ जारी रह सकते हैं। जहाँ दीर्घकाल मे लाभ होते है वहाँ वस्तु की कीमत औसत लागतो से अधिक होती है जो यह सूचित करती है कि उस उद्योग मे उत्पादन क्षमता अर्थव्यवस्था मे अन्यत्र पाई जाने वाली उत्पादन क्षमता की तुलना मे काफी कम है। उपभोक्ता सयत्र की क्षमता का निर्माण करने वाले साधनो का ज्यादा मूल्य उस समय लगाते है जब ये लाभार्जन करने वाले उद्योग मे प्रयुक्त किये जाते हैं, बनिस्वत अन्यत्र प्रयुक्त किये जाने के। इसलिए कल्याण जितना हो सकता था उससे कम ही होना है।

इसलिए एकाधिकार के द्वारा निजी उद्यमवाली अर्थव्यवस्था मे एक बडी समस्या यह खडी की जाती है कि यह कीमत-तन्त्र को पेरेटो इष्टतम ढग पर उत्पादन को सगठित करने से रोकता है। एकाधिकारी उद्योग वर्तमान उत्पादन क्षमता का उपयोग करके उत्पत्ति की इतनी कम मात्रा उत्पादित करने के लिए प्रेरित होंगे कि सीमान्त लागतें माल की कीमतो से कम होती हैं और एकाधिकार के कारण स्वय उत्पादन-क्षमता का उन दिशाओ मे विस्तार नही हो पाता जिनमे उपभोक्ता उनका विस्तार करना चाहते हैं, अर्थात् जहाँ मुनाफे प्राप्त होते हैं। एकाधिकारी उद्योगो मे साधनो के बहुत कम उपयोग का अर्थ है प्रतिस्पर्धात्मक उद्योगो मे बहुत अधिक मात्रा मे उपयोग; क्योंकि तभी साधनों के पूर्ण उपयोग (full employment) की स्थिति आ सकती है।

फर्म की अकार्यकुशलता

उत्पत्ति-प्रतिबन्ध के कल्याण प्रभाव के अतिरिक्त, एकाधिकारी फर्म साधारणतया साधनो का उपयोग उनकी सर्वोच्च सम्भाव्य कार्यकुशलता तक नही करेगी। दीर्घकालीन सतुलन मे एक शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक फर्म सयत्र के अनुकूलतम आकार का उपयोग उत्पत्ति की अनुकूलतम दर पर करती है। एकाधिकारी के दीर्घकालीन लाभो को सयन्त्र का जो आकार एव उत्पत्ति की मात्रा अधिकतम करते हैं वे अनिवार्यत इष्टतम स्तर (optimal) पर नही होते हैं।[13] लेकिन यदि इस बात को लेकर

13. देखिए अध्याय 10 का सारांश।

कीमत निर्धारित की गई है–यह एक ऐसा स्तर है जहाँ सीमान्त लागत वक्र माँग-वक्र को काटता है। एकाधिकारी के समक्ष माँग-वक्र p_1AD हो जाता है। शून्य व x_1 की उत्पत्ति के बीच बिक्री प्रति इकाई p_1 पर की जाती है। एकाधिकारी अधिक कीमत नहीं ले सकता, लेकिन जनता उसकी सम्पूर्ण उत्पत्ति को उन सीमाओं के बीच उस कीमत पर ले सकेगी। x_1 से अधिक उत्पत्ति की मात्राओं के लिए एकाधिकारी को बाजार में अपना माल बेच सकने के लिए कीमत को p_1 से नीचे घटाना होगा, अतः यहाँ पर बाजार माँग वक्र लागू होता है।

फर्म के समक्ष पाये जाने वाले माँग-वक्र में परिवर्तन होने से उसका सीमान्त आय-वक्र भी बदल जाता है। शून्य और x_1 के बीच नया माँग वक्र असीमित या अनंत लोच रखता है–यह ठीक वैसा ही होता है जैसा कि शुद्ध प्रतिस्पर्धा के अन्तर्गत फर्म के समक्ष पाया जाने वाला माँग-वक्र होता है–और सीमान्त आय p_1 के बराबर होती है। x_1 उत्पत्ति की मात्रा से परे बाजार माँग-वक्र और मूल सीमान्त आय-वक्र महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। अधिकतम कीमत के निर्धारित होने के बाद एकाधिकारी का सीमान्त आय-वक्र p_1ABC हो जाता है।

बदली हुई माँग व सीमान्त आय की स्थिति को ध्यान में रखते हुए एकाधिकारी की लाभ-अधिकतम करने वाली स्थिति की पुनः जाँच की जानी चाहिए। अधिकतम कीमत की स्थापना के बाद x उत्पत्ति लाभ अधिकतम करने वाली उत्पत्ति की मात्रा नहीं रह जाती है। लाभ उत्पत्ति की उस मात्रा पर अधिकतम होते हैं जहाँ सीमान्त
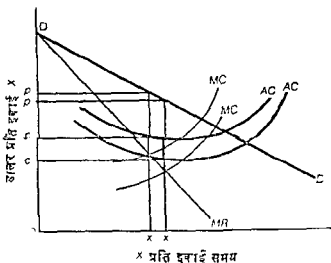
चित्र 11–12 एक विशिष्ट कर (Specific Tax) के द्वारा एकाधिकार का नियमन

लागत वक्र नई सीमान्त आय-वक्र को काटता है। x उत्पत्ति की मात्रा पर सीमान्त आय सीमान्त लागत से अधिक होती है, परिणामस्वरूप, x_1 तक उत्पत्ति की मात्रा मे वृद्धि होने से मुनाफे बढ़ते हैं। x_1 से अधिक उत्पत्ति की मात्राओ पर सीमान्त लागत सीमान्त आय से अधिक होती है–यहाँ सीमान्त आय तेजी से गिरती है, अथवा जो x_1 उत्पत्ति की मात्रा पर "असन्तत" (discontinuous) होती है–जिसकी वजह से लाभ घट जाते हैं। लाभ को अधिकतम करने वाली उत्पत्ति की नई मात्रा x_1 होगी जो पहले की उत्पत्ति से अधिक होगी। यद्यपि लाभ $c_1p_1 \times x_1$ के बराबर होते हैं, फिर भी कल्याण मे वृद्धि हुई है।

कराधान

प्राय यह सोचा जाता है कि एकाधिकारियो पर लगाये गये कर एक ऐसे उचित नियमनकारी साधन के रूप म काम करते हैं जिनके द्वारा उनको अपनी एकाधिकारी स्थिति से पूरा लाभ प्राप्त करने से रोका जा सकता है। हम दो तरह के करो पर विचार करेंगे (1) एक विशिष्ट कर (a specific tax) अथवा एकाधिकारी की उत्पत्ति पर प्रति इकाई एक निश्चित कर,[16] और (2) एक मुश्त कर (a lump-sum tax) जिसका उत्पत्ति की मात्रा से सम्बन्ध नही होता।[17]

एक विशिष्ट कर मान लीजिए चित्र 11–12 के एकाधिकारी पर एक विशिष्ट कर लगाया जाता है। उसके प्रारम्भिक औसत लागत एव सीमान्त लागत वक्र क्रमश AC और MC होते हैं। उसकी प्रारम्भिक कीमत और उत्पत्ति p व x हैं। कर एक परिवर्ती लागत है जो औसत व सीमान्त लागतो को कर की राशि के बराबर ऊपर खिसका देती है। AC_1 और MC_1 नये लागत-वक्रो के आने से एकाधिकारी अपने लाभ अधिकतम करने के लिए अपनी उत्पत्ति की मात्रा घटाकर x_1 और कीमत बढ़ाकर p_1 कर देता है।

एकाधिकारी विशिष्ट कर का एक अश उपभोक्ता को ऊँची कीमत व कम उत्पत्ति के जरिए हस्तान्तरित करने म समर्थ होता है। साथ म यह बात भी है कि एकाधिकारी के लाभ कर से पहले की अपेक्षा कर के पश्चात् कम हो जाते हैं। कर से पूर्व के लाभ $cp \times x$ के बराबर थे। कर के पश्चात् के लाभ $c_1p_1 \times x_1$ के बराबर हो जाते हैं। इस बात का निश्चय करने के लिए कि कर के पश्चात् मिलने वाले लाभ कर से पूर्व के लाभो से कम होते हैं, हम एक क्षण के लिए फर्म की कुल आय और

16 यदि मूल्यानुसार कर (ad valorem tax) लगाया जाता है, अर्थात् वस्तु की कीमत के एक निश्चित प्रतिशत के रूप मे कर लगाया जाता है तो भी सामान्य प्रभाव वही होंगे।

17. यदि कर एकाधिकारी के लाभो के एक निश्चित प्रतिशत के रूप म लगाया जाता है तो सामान्य प्रभाव वही होंगे।

कुल लागत वक्रों पर विचार करना चाहिए। उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओं पर एकाधिकारी की कुल प्राप्तियाँ कर के लगने से भी अपरिवर्तित बनी रहती हैं, लेकिन उत्पत्ति की सभी मात्राओं पर कुल लागत अपेक्षाकृत अधिक होती है। उत्पत्ति की सभी सम्भव मात्राओं पर लाभ पहले से कम होते हैं और कर के पश्चात् अधिकतम लाभ अनिवार्यतः पहले से कम होते हैं। यदि एकाधिकारी के सारे लाभ विशिष्ट करों के जरिए ले लिए जाते हैं तो परिणामस्वरूप चित्र 11–12 में प्रदर्शित मात्राओं की अपेक्षा अधिक कीमत और कम उत्पत्ति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।[18]

एकमुश्त कर (A Lump-Sum Tax) मान लीजिए, चित्र 11–13 में एकाधिकारी पर कोई एकमुश्त कर लगा दिया जाता है—उदाहरणार्थ, किसी शहर
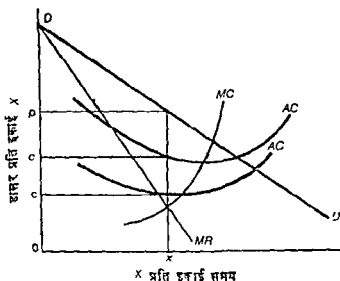
चित्र 11–13 एकमुश्त कर के द्वारा एकाधिकार का नियमन

में वहाँ के एकमात्र तैरने के तालाब पर लाइसेंस शुल्क लागू कर दिया जाता है। प्रारम्भिक औसत और सीमान्त लागत वक्र AC और MC होते हैं। प्रारम्भिक कीमत और उत्पत्ति क्रमशः p और x होते हैं। चूँकि एकमुश्त कर उत्पत्ति की मात्रा से स्वतन्त्र होता है इसलिए यह एकाधिकारी के लिए स्थिर लागत होता है। यह औसत

18 अर्थव्यवस्था में शुद्ध प्रतियोगियों की उत्पत्ति पर लगाये गए विशिष्ट करों के सम्भावित प्रभावों पर विचार कीजिए जो उन्हें उत्पत्ति कम करने के लिए प्रेरित करेंगे। इससे एकाधिकारी उद्योगों को अधिक साधन प्राप्त हो जाएँगे जिससे वे अपनी उत्पत्ति को बढ़ाने के लिए प्रेरित होंगे।

लागत वक्र को खिसका कर AC_1 पर ले आता है, लेकिन इसका सीमान्त लागत-वक्र पर कोई प्रभाव नही होता। परिणामस्वरूप लाभ अधिकतम करने वाली कीमत व उत्पत्ति p और x बने रहते हैं, लेकिन लाभ $cp \times x$ से घटकर $c_1p \times x$ पर आ जाते हैं।

एकमुश्त कर अकेले एकाधिकारी को ही भुगतना पडता है। वह इसका कोई भी अंश उपभोक्ता को ऊँची कीमतो व उत्पत्ति की नीची मात्राओ के रूप मे हस्तान्तरित करने मे असमर्थ रहता है। यदि वह ऐसा करने के प्रयास करता है तो उसके लाभ और भी ज्यादा घट जाते हैं। इस विधि से एकाधिकारी के सारे मुनाफे कर के रूप मे लिए जा सकते हैं और उत्पत्ति व कीमत पर कोई भी प्रभाव नही पडता। अपने आप मे एकमुश्त कर का कल्याण पर कोई प्रभाव नही होता।

सारांश

शुद्ध एकाधिकार वास्तविक जगत मे मुश्किल से ही पाया जाता है। लेकिन शुद्ध एकाधिकार का सिद्धान्त उन उद्योगो पर लागू होता है जो इसके समीप होते हैं और यह उन फर्मों पर भी लागू होता है जो इस तरह कार्य करती हैं मानो वे एकाधिकारी हो। इसके अतिरिक्त, यह अल्पाधिकार व एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अध्ययन के लिए भी विश्लेषण के आवश्यक उपकरण प्रदान करता है।

शुद्ध एकाधिकार के सिद्धान्त और शुद्ध प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्त के बीच जो अन्तर पाए जाते हैं वे फर्म के समक्ष पाई जाने वाली माँग व आय की दशाओ पर एव जिन उद्योगो मे लाभ अर्जित किए जाते हैं उनमे प्रवेश की दशाओ पर निर्भर करते है। एकाधिकारी के लिए सीमान्त आय कीमत से कम होती है। उसका सीमान्त आय-वक्र उसके माँग वक्र से नीचे होता है। एकाधिकार वाले उद्योगो मे प्रवेश अवरुद्ध होता है।

एकाधिकारी अपने अल्पकालीन लाभ अधिकतम करने अथवा अल्पकालीन हानि न्यूनतम करने के लिए माल की वह मात्रा उत्पादित करता है और ऐसी कीमत निर्धारित करता है जिस पर सीमान्त आय अल्पकालीन सीमान्त लागत के बराबर हो। एकाधिकारी घाटा भी उठा सकते हैं और ऐसा करने पर वे उस सीमा तक उत्पादन जारी रख सकते हैं जहाँ कीमत औसत परिवर्तनशील लागत से अधिक होती है। एकाधिकारी माँग-वक्र के लोचदार क्षेत्र मे ही अपने कार्य का सचालन करता है।

दीर्घकाल मे एकाधिकारी उस उत्पत्ति पर अपने लाभ अधिकतम करता है जहाँ दीर्घकालीन सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर हो। प्रयुक्त किया जाने वाला सयत्र का आकार ऐसा होगा जहाँ लाभ अधिकतम करने वाली उत्पत्ति पर अल्पकालीन औसत लागत-वक्र दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र को स्पर्श करेगा। उत्पत्ति की उस मात्रा पर अल्पकालीन सीमान्त लागतं दीर्घकालीन सीमान्त लागत और सीमान्त आय

के बराबर होगी ।

एकाधिकारी के लिए उस स्थिति मे कीमत-विभेद लाभप्रद होता है जबकि वह अपनी वस्तु के लिए विभिन्न बाजार पृथक् रख सके और प्रत्येक बाजार मे माँग की लोच प्रत्येक सम्भव कीमत पर भिन्न हो । कीमत-विभेद करने वाला एकाधिकारी उत्पादित माल को अपने बाज़ारो मे इस तरह से विभाजित करता है कि प्रत्येक बाज़ार मे सीमान्त आय किसी भी अन्य बाज़ार की सीमान्त आय के बराबर हो और उसकी सीमान्त लागत के भी बराबर हो ।

निजी उद्यमवाली अर्थव्यवस्था मे एकाधिकार के कल्याण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ते हैं । जहाँ यह प्रतिस्पर्धात्मक उद्योगो के साथ पाया जाता है, वहाँ इसकी वजह से उत्पत्ति पर प्रतिबन्ध लग जाते हैं और कीमतें सीमान्त लागतो से ऊँची हो जाती हैं । एकाधिकार के अन्तर्गत दीर्घकालीन मुनाफो की सम्भावना इसलिए होती है कि एकाधिकृत उद्योगो मे प्रवेश अवरुद्ध होता है । जहाँ लाभ प्राप्त होते है वहाँ उपभोक्ता वस्तुओ के लिए उस राशि से अधिक कीमत देते हैं जो उन वस्तुओ का निर्माण करने से सम्बन्धित उद्योगो मे साधनो को कायम रखने के लिए आवश्यक होती है । प्रवेश के अवरोध से एकाधिकृत रूप मे लाभार्जन करने वाले उद्योगो मे उत्पत्ति का विस्तार होता है एव इनकी तरफ होने वाले साधनों का अन्तरण सीमित हो जाता है और इस प्रकार कल्याण मे कमी आ जाती है । एकाधिकारी फर्मों मे सयन्त्र के अनुकूलतम आकारो की उत्पत्ति की अनुकूलतम दरो पर सचालित करने की प्रवृत्ति नही पाई जाती है । विक्री सवर्द्धन के कुछ प्रयत्न एकाधिकारी के बाजार का विस्तार करने के लिए, उसकी वस्तु के लिए माँग की लोच को कम करने के लिए, एव सम्भाव्य प्रति-स्पर्धा को हतोत्साहित करने के लिए किए जा सकते है ।

एकाधिकार का सिद्धान्त एकाधिकार नियमन के प्रभावपूर्ण साधनो पर भी कुछ प्रकाश डालता है । एकाधिकार-कीमत से नीचे निर्धारित की जाने वाली अधिकतम कीमत उपभोक्ताओ को माल की अपेक्षाकृत नीची कीमत व अधिक उत्पत्ति के जरिए लाभ पहुँचाती है । एकाधिकारी के माल पर जो विशिष्ट कर लागू किया जाता है वह अशत उपभोक्ता-वर्ग पर उत्पत्ति के नियन्त्रण एव ऊँची कीमतो के जरिए खिसका दिया जाता है । एकमुश्त कर पूर्णतया एकाधिकारी के लाभो मे से ही चुकाया जाता है ।

अध्ययन सामग्री

Dewey, Donald, *Monopoly in Economics and Law* (Chicago : Rand McNally & Company, 1959)

Harrod, R F, "Doctrines of Imperfect Competition," *Quarterly Journal of Economics*, vol. XLVIII (May. 1934), pp 442–470.

Marshall, Alfred, *Principles of Economics*, 8th ed (London Macmillan & Co , Ltd , 1920), BK V, Chap XIV

Robinson, Joan, *The Economics of Imperfect Competition* (London Macmillan & Co , Ltd , 1933), Chaps 2 3 15, 16.

□ □ □

सीमान्त आय-वक्र की व्युत्पत्ति

एक दिये हुए माँग-वक्र से सीमान्त आय-वक्र को ज्यामितीय विधि से निकाला जा सकता है। इस विधि को विकसित करने मे एक सरल रेखीय माँग-वक्र का उपयोग किया जायगा, उसके पश्चात् अरैखिक (nonlinear) माँग-वक्र पर लागू करने के लिए इसमे सशोधन किया जायगा।

सरल रैखिक वक्र

सर्वप्रथम, इस पर विचार करें कि सीमान्त आय-वक्र क्या होता है। चित्र 11–14 मे मात्रा को सूचित करने वाली इकाइयाँ जान-बूझकर बडी रखी गई हैं। मान लीजिए बिक्री की एक इकाई फर्म की कुल प्राप्तियो मे OK राशि की वृद्धि करती है। कुल प्राप्तियाँ व सीमान्त आय दोनो क्षेत्र I, अर्थात् OK × 1 के बराबर होते हैं। जब बिक्री की मात्रा बढाकर प्रति इकाई समयानुसार दो इकाई X कर दी जाती है, तो मान लीजिए कुल प्राप्तियों मे OL राशि की वृद्धि हो जाती है। एक इकाई की सीमान्त आय अब क्षेत्र II, अर्थात् OL × 1 के बराबर हो जाती है। क्षेत्र
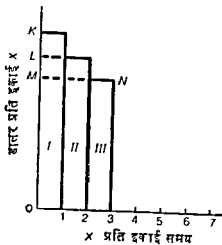
चित्र 11–14 सीमान्त और कुल आय

II, क्षेत्र I के ऊपर नही आता है बल्कि वह पूर्णतया इसके दाहिनी तरफ होता है। क्षेत्र II की चोटी से L बिन्दु तक निशानवाली रेखा केवल एक सन्दर्भ-रेखा (reference line) ही है, जो हमे डालर-अक्ष से सीमान्त आय को जानने मे मदद देती है। दो इकाइयो से प्राप्त कुल आय एक इकाई की बिक्री से प्राप्त सीमान्त आय मे दो इकाइयो की बिक्री से प्राप्त सीमान्त आय को जोडने के बराबर होनी है, दूसरे शब्दो मे, कुल आय क्षेत्र I व क्षेत्र II के जोड के बराबर होती है। जब बिक्री की मात्रा बढाकर प्रति इकाई समयानुसार तीन इकाइयाँ कर दी जाती हैं, तो सीमान्त आय OM के बराबर होती है, अथवा इसे हम यो भी कह सकते हैं कि यह क्षेत्र III के बराबर होती है। अब कुल आय क्षेत्र I, क्षेत्र II व क्षेत्र III तीनों के योग के बराबर होती है। K से N तक सीढीनुमा-वक्र (stairstep curve) बिक्री की तीन इकाइयो के लिए फर्म का सीमान्त आय-वक्र होता है।

एक सामान्य फर्म के लिए उत्पत्ति की एक इकाई, X-अक्ष पर काफी सूक्ष्म दूरी से मापी जाती है। यदि उत्पत्ति की एक इकाई को मापने वाली दूरी अति सूक्ष्म होती है तो सीमान्त आय-वक्र चित्र 11-14 के असतत (discontinuous) या सीढीनुमा वक्र के जैसा दिखलाई नही पडता, बल्कि चित्र 11-15 के MR वक्र जैसा सरल दिखलाई पडता है। चित्र 11-14 से यह बात समझ मे आ सकती है कि
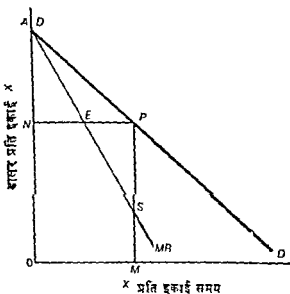
चित्र 11-15 माँग-वक्र से सीमान्त आय वक्र की व्युत्पत्ति

बिक्री के किसी भी दिये हुए स्तर पर कुल प्राप्तियाँ उस मात्रा तक सीमान्त आय-वक्र के नीचे के क्षेत्र के बराबर होती हैं। हम बतला चुके हैं कि चित्र 11–14 में तीन इकाइयों की बिक्री से मिलने वाली कुल प्राप्तियाँ क्षेत्र I, II व III के जोड़ के बराबर होती हैं। इसी तरह चित्र 11–15 में जब बिक्री की मात्रा OM होती है तो कुल प्राप्तियाँ OASM क्षेत्र के बराबर होती हैं।

मान लीजिए एकाधिकारी का माँग-वक्र चित्र 11–15 का सरल रैखिक DD है और हम OM बिक्री पर उसकी सीमान्त आय निर्धारित करना चाहते हैं। कुछ क्षणों के लिए रेखाचित्र के MR वक्र को छोड़ दीजिए। OM मात्रा पर कीमत MP या ON होगी। मान लीजिए अब चित्र 11–15 में MR वक्र एक अस्थायी सीमान्त आय वक्र के रूप में खींचा गया है। इसे लम्बवत् अक्ष पर माँग-वक्र के ही सामान्य बिन्दु से प्रारम्भ करना चाहिए।[19] सारणी 11–1 को देखने से पता चलेगा कि एक सरल रैखिक माँग-वक्र का सीमान्त आय-वक्र भी एक सरल रेखा ही होगा जो बिक्री की मात्रा के बढ़ने पर माँग-वक्र से दूर होता जायेगा।

प्रश्न उठता है कि यदि OM बिक्री के स्तर पर सीमान्त आय को सही रूप में मापना है तो किन शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए? यदि MR सीमान्त आय-वक्र होता है तो क्षेत्र OASM कुल प्राप्तियों के बराबर होगा। इसी प्रकार क्षेत्र ONPM (अर्थात् कीमत गुणा मात्रा) कुल प्राप्तियों के बराबर होना है। अत क्षेत्र ONPM, क्षेत्र OASM के बराबर होना चाहिए। क्षेत्र ONESM दोनों बड़े क्षेत्रों में शामिल होना है और यदि प्रत्येक में से इसे घटाया जाय तो त्रिभुज ANE का क्षेत्र त्रिभुज EPS के क्षेत्र के बराबर होगा। कोण NEA कोण SEP के बराबर होगा, क्योंकि दो परस्पर काटने वाली सरल रेखाओं के द्वारा निर्मित सम्मुख कोण (opposite angles) बराबर होते हैं। चूँकि त्रिभुज ANE और त्रिभुज EPS समकोण वाले त्रिभुज हैं, इसलिए एक के अतिरिक्त कोण के दूसरे के तदनुरूप कोण (corresponding angle) के बराबर होने से वे एक से त्रिभुज (similar triangles) भी हो जाते हैं। यदि MR ठीक से खींची जाती है तो त्रिभुज ANE और त्रिभुज EPS का क्षेत्रफल बराबर होगा और वे एक-से होंगे और इस प्रकार वे सर्वांगसम (congruent) भी होंगे। यदि वे सर्वांगसम होते हैं तो SP बराबर होगा NA के, क्योंकि सर्वांगसम त्रिभुजों की तदनुरूप भुजाएँ बराबर होती हैं। इसलिए OM बिक्री की मात्रा पर सीमान्त आय का ठीक से पता लगाने के लिए हमें NA दूरी को मापना चाहिए और

---

19 वास्तव में यह एक इकाई की बिक्री पर माँग वक्र से मेल खाता है। लेकिन यदि मात्रासूचक अक्ष पर एक इकाई की बिक्री को मापने वाली दूरी अतिसूक्ष्म होती है, तो हम यह मान सकते हैं कि दोनों वक्र लम्बवत् अक्ष पर एक ही बिन्दु से प्रारम्भ होते हैं।

S बिन्दु को इस प्रकार से P बिन्दु के नीचे रखना चाहिए जिससे कि SP बराबर हो NA के। OM पर सीमान्त आय MS के बराबर होगी।

एक दिये हुए माँग वक्र से सीमान्त आय को निकालने के लिए ज्यामितीय विधि का उपयोग प्रूफ देने की तुलना में काफी सरल होता है। मान लीजिए हम, चित्र 11–16 में DD माँग-वक्र के लिए सीमान्त आय-वक्र का पता लगाना चाहते हैं। इसके लिए माँग-वक्र पर वैसे ही कई बिन्दु जैसे P, P_1 और P_2 चुन लीजिए। बिक्री
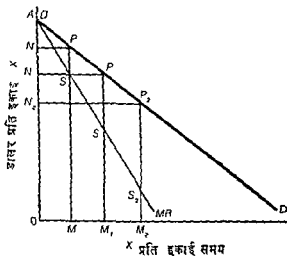
चित्र 11–16 एक रैखिक माँग-वक्र के अनुरूप MR वक्र को अंकित करना

के तदनुरूप स्तर OM, OM_1 व OM_2 होंगे। कीमतें क्रमश ON, ON_1 व ON_2 होंगी। अब P से नीचे NA के बराबर मात्रा तक आयें और नये निर्धारित बिन्दु को S से सूचित करें। OM बिक्री की मात्रा पर सीमान्त आय MS होती है। P_1 से नीचे N_1A के बराबर राशि तक आयें। इस बिन्दु को S_1 कहे। OM_1 पर सीमान्त आय M_1S_1 के बराबर होती है। P_2 पर भी इस प्रक्रिया को दोहराएँ ताकि S_2P_2 बराबर हो N_2A के। S बिन्दुओं को मिलाने वाली एक रेखा सीमान्त आय-वक्र होती है।

अरैखिक वक्र (Nonlinear Curve.)

उपर्युक्त विधि कुछ संशोधन के साथ अरैखिक माँग-वक्र के लिए सीमान्त आय-वक्र का पता लगाने के लिए प्रयुक्त की जा सकती है। मान लीजिए, चित्र 11–17 में माँग-वक्र DD है। माँग-वक्र और सीमान्त आय-वक्र लम्बवत् अक्ष पर एक ही बिन्दु से प्रारम्भ होते हैं और हमें बिक्री की विभिन्न मात्राओं, जैसे OM, OM_1 और OM_2

पर सीमान्त आय का पता लगाना है। माँग-वक्र पर सम्बन्धित बिन्दु P, P_1 व P_2 होंगे। सम्बन्धित कीमतें ON, ON_1 व ON_2 होंगी। अब माँग-वक्र के P बिन्दु पर एक स्पर्श-रेखा खींचिए जो लम्बवत् अक्ष को काटे। इसे A बिन्दु कहिए। यदि स्पर्श-रेखा ही माँग-वक्र होता तो हम OM बिक्री के स्तर पर इसके लिए सीमान्त आय का आसानी से पता लगा सकते थे। हम P से नीचे NA राशि के बराबर आयेंगे और S बिन्दु इस तरह से रखेंगे कि SP बराबर हो NA के। वस्तुत. स्पर्श-रेखा और माँग-वक्र DD एक से वक्र हैं और स्पर्शिता के बिन्दु (point of tangency) पर उनका ढाल एक-सा होता है। इसलिए OM बिक्री की मात्रा पर DD के लिए MS सीमान्त आय होगी और यदि स्पर्श-रेखा को माँग-वक्र समझा जाय तो यह स्पर्श-रेखा के लिए भी सीमान्त आय होगी। OM_1 बिक्री की मात्रा पर DD वक्र के P_1 बिन्दु पर स्पर्श-रेखा खींच कर सीमान्त आय का पता लगाया जा सकता है। स्पर्श-रेखा लम्बवत् अक्ष को A_1 पर काटती है। P_1 से नीचे N_1A_1 राशि के बराबर आयें और OM_1 पर सीमान्त आय M_1S_1 होगी। यही प्रक्रिया P_2 पर दोहराएँ ताकि S_2P_2 बराबर हो N_2A_2 के। OM_2 पर सीमान्त आय M_2S_2 होगी। S बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा DD के लिए सीमान्त आय-वक्र रेखा होगी। स्मरण रहे कि जब माँग-वक्र रेखा एक सरल रेखा नहीं होती है तो लम्बवत् अक्ष पर स्थित A बिन्दु (A points) बिक्री की विभिन्न मात्राओं पर विचार किये जाने पर खिसक जाते हैं।[20]

---

20. एक दिये हुए माँग-वक्र के लिए सम्बन्धित सीमान्त आय-वक्र को निकालने मे एक सामान्य त्रुटि यह होती है कि केवल एक सीमांत आय-वक्र खींच लिया जाता है जो माँग वक्र और लम्बवत् अक्ष के बीच की दूरी को दो टुकडों में बाँट देता है। इस विधि से एक रैखिक माँग-वक्र के लिए ही सही रूप में सीमांत आय-वक्र निकाला जा सकता है। यदि माँग-वक्र में कोई मोड़ हो—अर्थात् नीचे से देखे जाने पर यह उन्नतोदर या नतोदर हो—तो यह विधि लागू नहीं होती। यदि माँग-वक्र नीचे से उन्नतोदर हो तो सीमांत आय-वक्र उस रेखा के बायीं ओर होगा जो लम्बवत् अक्ष और माँग-वक्र के बीच की दूरी को दो टुकड़ों मे विभाजित करती है। यदि माँग-वक्र नीचे से नतोदर होता है, तो सीमांत आय-वक्र ऐसी रेखा के दायीं ओर होगा।

एक रैखिक माँग-वक्र के मामले मे भी ऊपरवर्णित विधि गणितीय अर्थ मे ही सही निकलती है। यह अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से तर्कसंगत नहीं है। उदाहरण के लिये, चित्र 11-15 मे E बिन्दु DD माँग-वक्र से सम्बन्धित सीमांत आय वक्र पर आता है। OM (अथवा NP) बिक्री की मात्रा और ON कीमत (या MP) E बिन्दु का पता लगाने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। लेकिन इस बात के लिए कोई आर्थिक कारण नहीं प्रतीत होता कि OM बिक्री की मात्रा अथवा ON कीमत (या MP) का OM बिक्री की आधी मात्रा पर सीमांत आय से कोई भी सम्बन्ध पाया जाय। यह सम्बन्ध केवल गणितीय होता है जो इस बात से उत्पन्न होता
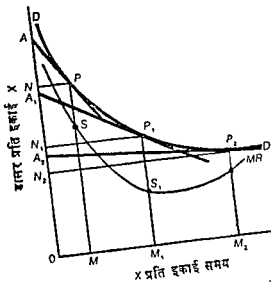
चित्र 11–17 एक अरैखिक माँग-वक्र के अनुरूप MR वक्र को अंकित करना

है कि DD एक सरल रेखा है। बिक्री की मात्रा OM और कीमत ON से तर्कसंगत रूप मे जो एकमात्र सीमांत आय-मूल्य (marginal revenue value) निकाला जा सकता है वह बिक्री की उस मात्रा और उस कीमत पर सीमांत आय ही होता है।

कीमत, सीमान्त आय, और मांग की लोच

सीमान्त आय कीमत में से उसी कीमत पर कीमत व माँग की लोच के अनुपात को घटाने के बराबर होती है—यह प्रस्थापना ज्यामितीय रूप में चित्र 11–18 की
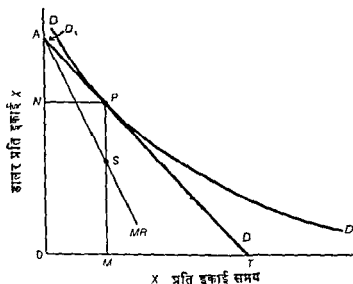
चित्र 11–18 कीमत, माँग की लोच और सीमान्त आय

सहायता से सिद्ध की जा सकती है। मान लीजिए बिक्री की मात्रा OM है। मांग-वक्र DD या D_1D_1 है—जो बिक्री की उस मात्रा पर स्पर्श-रेखाएँ होती हैं। OM बिक्री की मात्रा पर दोनों वक्रों की लोच एक-सी होती है और तदनुरूप सीमान्त आय की मात्राएँ भी एक-सी होती हैं। सुविधा के लिए D_1D_1 के अनुरूप ही सीमान्त आय-वक्र भी खींचें। OM पर माँग की लोच MT/OM के बराबर होती है। लेकिन MT/OM बराबर है PT/AP के, चूंकि त्रिभुज की एक भुजा (AO) के समानान्तर होने वाली एक रेखा (PM) दो अन्य भुजाओं को आनुपातिक रूप में काटती है। इसी तरह PT/AP=ON/NA के। चूंकि ON=MP और NA=

SP के, इसलिए ON/NA=MP/SP के। OM पर मांग की लोच बराबर होती है MT/OM=PT/AP=ON/NA=MP/SP, अथवा ϵ=MP/SP के। ϵ से भाग देने पर और SP से गुणा करने पर, SP=MP/ϵ के। रेखाचित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि MS=MP−SP के। चूंकि SP=MP/ϵ के, इसलिए MS=MP−MP/ϵ के, अथवा

$$\text{सीमान्त आय} = \text{कीमत} - \frac{\text{कीमत}}{\text{लोच}}$$

अल्पाधिकार के अन्तर्गत कीमत व उत्पत्ति-निर्धारण

जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं बाजार की वे दशाएँ अल्पाधिकार (oligopoly)* की दशाएँ कहलाती हैं जिनमें थोड़ी संख्या में इतने से विक्रेता पाये जाते हैं कि एक की क्रियाएँ दूसरों के लिए महत्त्वपूर्ण होती हैं। वस्तु-बाजार में एक अकेले विक्रेता की स्थिति का काफी महत्त्व होता है, क्योंकि उसकी बाजार क्रियाओं में परिवर्तन होने से उस बाजार में अन्य विक्रेताओं पर प्रभाव पड़ता है। अन्य विक्रेता एक विक्रेता की बाजार क्रियाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया बतलाते हैं और उनकी प्रतिक्रियाओं का प्रभाव बदले में उस पर भी पड़ता है। एक व्यक्तिगत विक्रेता इस अन्तर्निर्भरता से परिचित होता है और अपनी वस्तु की कीमत, उत्पत्ति की मात्रा, बिक्री-संवर्धन क्रिया अथवा वस्तु की किस्म में परिवर्तन करते समय उसे अन्य विक्रेताओं की प्रतिक्रियाओं का ध्यान रखना पड़ता है।

अल्पाधिकार के अन्तर्गत कीमत व उत्पत्ति-निर्धारण का विश्लेषण उतना स्पष्ट व सुनिश्चित नहीं होता जितना शुद्ध प्रतियोगिता व एकाधिकार में होता है। ऐसा अंशतः तो अल्पाधिकारी अनिश्चितता (oligopolistic uncertainty)** की वजह से होता है—अनेक बार एक अल्पाधिकारी को इस बात की निश्चित जानकारी नहीं होती कि उसकी विभिन्न किस्म की क्रियाओं से उसके प्रतिस्पर्धियों पर क्या प्रतिक्रियाएँ होंगी—और अंशतः इस वजह से होता है कि अल्पाधिकार के अन्तर्गत कई प्रकार की स्थितियाँ पाई जाती हैं जिनमें से प्रत्येक के अपने विशेष लक्षण होते हैं। अल्पाधिकार का सामान्य सिद्धान्त न तो इस समय विद्यमान है और न निकट भविष्य में ही इसके हो सकने की कोई सम्भावना प्रतीत होती है। परिणामस्वरूप, इस अध्याय में हम अल्पाधिकारी उद्योगों के विश्लेषण में निहित समस्याओं व सिद्धान्तों का कुछ आभास प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर कई चुने हुए मॉडलों का प्रयोग किया जायगा।

---

* Oligopoly के लिये अल्पविक्रेताधिकार शब्द भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

** Oligopolistic के लिए अल्पाधिकारात्मक भी उपयुक्त रहता, लेकिन सरलता के लिये अल्पाधिकारी ही रखा गया है, जो अन्य प्रसंग में Oligopolist का भी सूचक हो सकता है।

सर्वप्रथम, हम सक्षेप मे लागतो, माँग व वस्तु-विभेद की धारणाओ का सक्षिप्त विवेचन उस रूप मे करेगे जिसमे कि ये विश्लेषण मे प्रयुक्त की जाती हैं। उसके पश्चात् हम अल्पाधिकारियो के बीच गठबन्धन (collusion) बनाम स्वतत्र कार्य पर विचार करेंगे। बाद मे हम अल्पकालीन कीमत व उत्पत्ति निर्धारण, दीर्घकालीन कीमत व उत्पत्ति-निर्धारण, एव गैर-कीमत प्रतियोगिता पर आयेंगे। अन्त मे हम अर्थव्यवस्था के सचालन पर बाजार के अल्पाधिकारी ढाँचो के प्रभावो की जाँच करेंगे।

लागत, माँग और वस्तु विभेद

उत्पादन-लागत

हम इस अध्याय मे यह मान्यता जारी रखते हैं कि एक अल्पाधिकारी फर्म अपने साधन प्रतिस्पर्धात्मक रूप मे खरीदती है। इसके लागत-वक्र शुद्ध प्रतियोगी फर्म व शुद्ध एकाधिकारी फर्म के जैसे ही होते हैं।

माँग

व्यक्तिगत फर्म की दृष्टि मे माँग की दशाओ मे जो अन्तर होते हैं वे ही अल्पाधिकार को बाजार के ढाँचे की अन्य किस्मो से पृथक् करने मे मुख्य लक्षण का कार्य करते है। चूँकि एक फर्म बाजार मे जो कुछ कर सकती है उस पर अन्य फर्मों की उन प्रतिक्रियाओ का प्रभाव पड़ता है जो उसकी बाजार-क्रियाओ के प्रति होती हैं, इसलिए अल्पाधिकारी-अनिश्चितता की मात्रा एक स्थिति से दूसरी स्थिति मे काफी भिन्न होती है। कुछ दशाओ मे तो एक फर्म को अन्य फर्मों की प्रत्याशित प्रतिक्रियाओ की काफी जानकारी होती है और यह अपने समक्ष पाये जाने वाले माँग-वक्र को कुछ विश्वास के साथ निर्धारित कर सकती है। अन्य दशाओं मे फर्म को यह जानकारी नही होती है और इसके समक्ष पाये जाने वाले माँग-वक्र की स्थिति व आकृति काफी काल्पनिक होती है। उद्योग मे फर्मों के बीच माँग की परस्पर निर्भरता व अल्पाधिकारी अनिश्चितता से फर्मो के समक्ष अनेक समस्याएँ व रणनीतियाँ उपस्थित हो जाती है जो बाजार के अन्य वर्गीकरणो मे नही पाई जाती।

शुद्ध व विभेदित अल्पाधिकार (Pure and Differentiated Oligopoly)

हमारे विश्लेषण मे विभेदित अल्पाधिकार व शुद्ध अल्पाधिकार के अन्तर की महत्वपूर्ण भूमिका नही होगी। व्यवहार मे अधिकाश अल्पाधिकारी उद्योगो के विक्रेता

विभेदित वस्तुएँ ही बेचा करते हैं।[1] फिर भी विभेदित अल्पाधिकार व शुद्ध अल्पाधिकार के शुद्ध मूलभूत सिद्धान्त ज्यादा स्पष्ट रूप में तब देखे जा सकते हैं जबकि हम यह कल्पना करके चलें कि शुद्ध अल्पाधिकार पाया जाता है। उदाहरण के लिए, विभेदित अल्पाधिकार के अन्तर्गत उत्पादित वस्तु के लिए एक ही बाजार-कीमत होने के बजाय कीमतों का एक समूह (a cluster of prices) पाया जा सकता है। स्वचालित टोस्टरों (रोटी सेकने के यन्त्रों) की कीमतें $ 19 95 से $ 29 95 के बीच हो सकती हैं। विभिन्न कीमतें विभिन्न विक्रेताओं के पदार्थों के गुणों के सम्बन्ध में उपभोक्ताओं के दृष्टिकोणों एवं बाजार में विभिन्न बनावटों के पाये जाने को सूचित करती हैं। यदि हम शुद्ध अल्पाधिकार के अस्तित्व को मानकर चलें तो विश्लेषण को सरल रखा जा सकेगा और कीमत-निर्धारण के मूलभूत सिद्धान्तों में कोई गम्भीर किस्म का फेर-बदल नहीं करना होगा, इसमें वस्तु के लिए कीमतों का एक समूह एक बाजार-कीमत पर उतारा जा सकेगा।[2] जहाँ आवश्यक होगा वहाँ हम यह स्पष्ट करेंगे कि हमने विभेदित अल्पाधिकार माना है अथवा शुद्ध अल्पाधिकार।

गठबन्धन बनाम स्वतंत्र कार्य

अल्पाधिकारी बाजार के ढाँचों में एक उद्योग की फर्मों में गठबन्धन हो जाया करता है, लेकिन साथ में यह भी है कि गठबंधन के समझौतों को बनाये रखना कठिन होता है। ऐसी कम-से-कम तीन महत्त्वपूर्ण प्रेरणाएँ होती हैं जो अल्पाधिकारी फर्मों को गठबंधन की तरफ ले जाती हैं। सर्वप्रथम, यदि वे परस्पर प्रतिस्पर्धा की मात्रा को कम कर सकती हैं और एकाधिकारी रूप में कार्य कर सकती हैं तो वे अपने मुनाफे बढ़ा सकती हैं। द्वितीय, गठबंधन अल्पाधिकारी-अनिश्चितता को घटा सकता है। यदि फर्में मिल-जुल कर कार्य करती हैं तो वे एक फर्म के द्वारा अन्य फर्मों के हितों के विपरीत काम करने की सम्भावना को घटा सकती हैं। तृतीय, उद्योग में पहले से

---

1. शुद्ध अल्पाधिकार के समीप पहुँचने वाले उद्योगों में सीमेण्ट, आधारभूत इस्पात व अधिकांश धातु-उत्पादक उद्योग आते हैं। यहाँ भी एक विशेष उद्योग में बेची जाने वाली वस्तुओं के बीच विभेद (differentiation) के तत्त्व पाये जाते हैं। स्थिति-सम्बन्धी तत्त्व सेवा एवं व्यक्तिगत मित्रता से भी एक उद्योग के विभिन्न विक्रेताओं की वस्तुओं में अन्तर पड़ जाता है।

2. ऐसा एक फेर-बदल तो यह है कि वस्तु विभेद कीमत पर एक वैयक्तिक विक्रेता के नियन्त्रण को प्रभावित कर सकता है। वैयक्तिक विक्रेताओं की वस्तुओं के प्रति उपभोक्ताओं के लगाव से एक विशेष कीमत की परिधि के बीच में कीमत के ऊपर या नीचे के समायोजनों से बेची जाने वाली मात्राओं में परिवर्तन कम हो जाते हैं, अर्थात् इसकी वजह से उस कीमत की परिधि के बीच में वैयक्तिक विक्रेता के समक्ष पाया जाने वाला माँग-वक्र कम लोचदार हो जाता है।

स्थित फर्मों के बीच गठबधन हो जाने से उद्योग में नये प्रवेशकर्त्ताओं का मार्ग सुगमता से अवरुद्ध हो जायेगा। लेकिन एक बार जब ऐसे गठबधन का अस्तित्व हो जाता है तो लाभ की तीव्र इच्छा एक अकेली फर्म को समूह से पृथक् हो जाने एवं स्वतत्र रूप से काम करने के लिए प्रेरित करती रहती है। इस अध्याय मे इन्ही तत्वों की कुछ विस्तार से जाँच की जायगी।

गठबधन के अश के अनुसार अल्पाधिकारी बाजारो का वर्गीकरण प्रतिनिधि अल्पाधिकारी मॉडलो के विवेचन मे मदद देगा। हम पूर्ण गठबधन की दशाओं, अपूर्ण गठबधन की दशाओ एव व्यक्तिगत फर्मों की तरफ से किये जाने वाले स्वतन्त्र कार्य की दशाओ मे अन्तर स्पष्ट करेंगे।[3]

पूर्ण गठबंधन (Perfect Collusion)

पूर्ण गठबधन में प्रमुखतया कार्टेल व्यवस्थाएँ आती हैं। कार्टेल एक दिये हुए उद्योग मे उत्पादको का एक औपचारिक सगठन होता है। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत फर्मों के कुछ प्रबन्ध-सम्बन्धी निर्णयो एव कार्यों को एक केन्द्रीय सगठन को इस आशा से हस्तान्तरित करना होता है ताकि व्यक्तिगत फर्मों की लाभ की स्थिति मे सुधार हो सके। खुले ढग के औपचारिक कार्टेल-सगठन सयुक्त राज्य अमेरिका मे सामान्यतया अवैध माने जाते हैं, लेकिन सयुक्त राज्य अमेरिका से बाहर के देशो मे एव अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर ये व्यापक रूप से पाये गये हैं।[4] लेकिन सयुक्त राज्य अमेरिका मे भी ऐच्छिक किस्म के अव्यक्त सगठन (voluntary tacit organizations) व गठबधन कुछ उद्योगो को कार्टेल के अधिकाश लक्षण प्रदान कर सकते हैं।

एक केन्द्रीय सगठन को हस्तान्तरित किये जाने वाले कार्यों की सीमा विभिन्न कार्टेल-स्थितियों के अनुसार भिन्न भिन्न होती है। हम यहाँ पर कार्टेल की दो प्रतिनिधि किस्मो पर विचार करेंगे।[5] प्रथम किस्म जो, सदस्य फर्मों पर लगभग पूर्ण कार्टेल नियत्रण को सूचित करने के लिए चुनी गई है, **केन्द्रीकृत कार्टेल (Centralized Cartel)** कहलाती है। द्वितीय किस्म मे उन स्थितियो को लिया जाता है जिनमे केन्द्रीय सगठन को अपेक्षाकृत कम कार्य हस्तान्तरित किये जाते हैं। इसे **बाजार-सहभागी कार्टेल (market-sharing cartel)** कहा जायगा।

---

3. देखिए फिज मैक्लप, 'The Economics of Sellers' Competition (बाल्टीमोर दी जॉन्स हॉपकिन्स प्रेस, 1952) पृष्ठ 363-365

4. देखिए जोर्ज डब्ल्यू० स्टोकिग व माइरन डब्ल्यू० वाटकिन्स, Cartels in Action (न्यूयार्क दी ट्वेन्टियथ सेन्चुरी फण्ड, लि० 1946)।

5. कार्टेल की किस्मो के सुन्दर विवेचन के लिये देखें कार्ल प्रिब्राम, Cartel Problems (वाशिंगटन, डी० सी० : दी ब्रूकिंग्स इन्स्टिट्यूशन, 1935), पृ० 41-58.

के विशिष्ट दृष्टान्तो की जाँच करेंगे ताकि हमे अल्पाधिकारी-स्थितियो मे निहित मूलभूत समस्याओ व सिद्धान्तो की सामान्य रूप से जानकारी हो सके। इस अनुच्छेद के अल्पकालीन विश्लेषण मे हमे यह स्मरण रखना होगा कि व्यक्तिगत फर्मों के लिए अपने सयन्त्र के आकारो को बदलने का समय नही होता और न नई फर्मों के लिए उद्योग मे प्रवेश करना ही सम्भव होता है। विचाराधीन उद्योग मे फर्मों की सख्या स्थिर होती है।

पूर्ण गठबन्धन

केन्द्रीकृत कार्टेल (The Centralized Cartel)—केन्द्रीकृत कार्टेल का मामला गठबन्धन को इसके पूर्णतम रूप मे प्रस्तुत करता है। इसका उद्देश्य एक उद्योग मे कई फर्मों के द्वारा औद्योगिक मुनाफो का सयुक्त या एकाधिकारी अधिकतमकरण करना होता है। कार्टेल के द्वारा "आदर्श" या पूर्ण एकाधिकारी कीमत व उत्पत्ति निर्धारण वास्तविक जगत् मे मुश्किल से ही प्राप्त किया जायगा, हालाकि कुछ दशाओ से इसके समीप पहुँचा जा सकता है।

मान लीजिए किसी उद्योग मे वैयक्तिक फर्मों ने कीमत व उत्पत्ति-सम्बन्धी निर्णय के अधिकार एक केन्द्रीय सगठन को सौंप दिए हैं। औद्योगिक मुनाफों के वितरण की भाँति उत्पादन के कोटे या नियताश (quotas) सगठन के द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। ऐसी नीतियाँ निर्धारित की जाती हैं जिनसे कुल औद्योगिक लाभ अधिकतम हो सकें। विश्लेषण को सरल रखने के लिए हम यह मान लेते हैं कि उद्योग मे फर्में एक सी वस्तुएँ उत्पादित करती हैं।

कार्टेल के मुनाफो के अधिकतमकरण की समस्या अनिवार्यत एकाधिकार की समस्या ही होती है क्योकि वस्तुत एक-ही एजेंसी सम्पूर्ण उद्योग के सम्बन्ध मे निर्णय लेती है। लाभ उद्योग की उस उत्पत्ति व कीमत पर अधिकतम होते हैं जहाँ उद्योग की सीमान्त आय उद्योग की सीमान्त लागत के बराबर होती है। इन दोनो धारणाओ की व्याख्या करने की आवश्यकता है।

सगठन के समक्ष वस्तु का उद्योग-माँग-वक्र होता है। इससे उद्योग का सीमान्त आय-वक्र प्रचलित विधि का उपयोग करके निकाला जा सकता है। उद्योग का सीमान्त आय-वक्र यह दर्शाता है कि प्रति इकाई समयानुसार बिक्री की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से उद्योग की कुल प्राप्तियो म कितनी वृद्धि होगी। चित्र 12–1 मे उद्योग का माँग वक्र व उद्योग का सीमान्त आय वक्र क्रमश DD व MR के द्वारा प्रदर्शित किए गए हैं।

उद्योग का सीमान्त लागत वक्र उद्योग मे वैयक्तिक फर्मों के अल्पकालीन सीमान्त लागत-वक्रो से बनाया जाता है। चित्र 12–1 मे दो फर्मों का मामला यह दर्शाता है
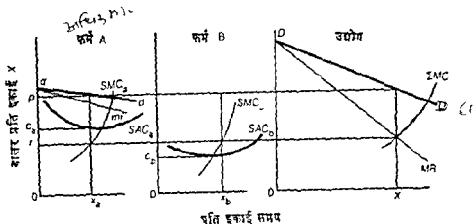
चित्र 12-1 केन्द्रीकृत कार्टेल

कि यह निर्माण कैसे किया गया है। किसी भी दी हुई उत्पत्ति के लिए केन्द्रीय एजेन्सी को औद्योगिक लागतों को न्यूनतम करना चाहिए। यह लक्ष्य सदस्य फर्मों में उनका कोटा इस तरह से वितरित करके प्राप्त किया जा सकता है कि अपने कोटे का माल उत्पादित करते समय प्रत्येक फर्म की सीमान्त लागत दूसरी फर्मों के द्वारा अपने कोटे का माल उत्पादित करते समय आने वाली सीमान्त लागत के बराबर हो। यदि व्यक्तिगत फर्मों के कोटे किसी और विधि से निर्धारित किए जाते हैं तो उत्पत्ति की दी हुई मात्रा के लिए उद्योग की लागतें न्यूनतम नहीं की जा सकेंगी। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि फर्म B के कोटे के सम्बन्ध में फर्म A का कोटा ऐसा होता है कि फर्म A की सीमान्त लागत फर्म B से अधिक होती है। उद्योग की लागतों में फर्म A के कोटे में कमी करके एवं फर्म B के कोटे में वृद्धि करके कमी की जा सकती है। फर्म A की उत्पादन-दर में एक इकाई की कमी कर देने से उद्योग की कुल लागत में फर्म A की (अपेक्षाकृत अधिक) सीमान्त लागत के बराबर कमी आ जाएगी। फर्म B की उत्पादन दर में एक इकाई की वृद्धि से उद्योग की कुल लागत में फर्म B की (अपेक्षाकृत कम) सीमान्त लागत के बराबर वृद्धि हो जाएगी। इस प्रकार फर्म A के कोटे में होने वाली कमी से कुल लागत में जो कमी हो सकती है, वह फर्म B के कोटे की वृद्धि से लागत में हो सकने वाली वृद्धि से भी अधिक होगी। जब उद्योग की प्रत्येक सम्भव उत्पत्ति के लिए कोटे ठीक से निर्धारित कर दिए जाते हैं, तो उद्योग का सीमान्त लागत-वक्र व्यक्तिगत फर्मों के अल्पकालीन सीमान्त लागत-वक्रों का क्षैतिज योग होगा। चित्र 12-1 में उद्योग का सीमान्त लागत-वक्र ΣMC होगा।

कार्टेल के लिए लाभ अधिकतम करने वाली कीमत p और उद्योग में उत्पत्ति की मात्रा X होगी। प्रत्येक व्यक्तिगत फर्म को अपने कोटे के अनुसार इतना माल उत्पन्न

करना चाहिए जिस पर इसकी अल्पकालीन सीमान्त लागत उद्योग की सीमान्त आय r के बराबर हो। फर्म A का कोटा x_a और फर्म B का x_b होगा। फिलहाल फर्म A के रेखाचित्र में dd व mr पर ध्यान न दें। यदि उद्योग की उत्पत्ति X से अधिक होती है तो एक या अधिक फर्मों की सीमान्त लागतें r से अधिक होंगी और उद्योग की सीमान्त आय अपेक्षाकृत कम होगी। उत्पत्ति की इन मात्राओं से उद्योग की कुल लागतों में उद्योग की कुल प्राप्तियों से अधिक वृद्धि होगी, इसलिए लाभ की मात्रा में कमी आ जायगी। यदि उद्योग में उत्पत्ति की मात्रा X से कम होती है तो सभी फर्मों अथवा कुछ फर्मों की अल्पकालीन सीमान्त लागत r से कम होगी, जब कि उद्योग की सीमान्त आय r से अधिक होगी। X तक उत्पत्ति की अपेक्षाकृत बड़ी मात्राएँ उद्योग की कुल प्राप्तियों में उद्योग की कुल लागतों से अधिक वृद्धि करेंगी और लाभों में वृद्धि होगी।[7]

लाभ की मात्रा एक-एक फर्म के आधार पर आँकी जा सकती है और फिर सम्पूर्ण उद्योग के लिए उसका जोड़ लगाया जा सकता है। एक अकेली फर्म के लिए प्रति इकाई उत्पत्ति के अनुसार प्राप्त होने वाला लाभ उद्योग की कीमत में से फर्म के द्वारा उत्पादित माल की उस मात्रा पर उसकी औसत लागत के घटाने से प्राप्त परिणाम के बराबर होता है। प्रति इकाई लाभ का फर्म की उत्पत्ति से गुणा करने से प्राप्त राशि उस लाभ के बराबर होती है जो एक फर्म उद्योग के कुल मुनाफे में अंशदान

---

7 मान लीजिये π = लाभ

$$R = f(x_a + x_b) = \text{कार्टेल की कुल आय}$$

$$c_a = g(x_a) = \text{फर्म A की कुल लागत}$$

$$c_b = h(x_b) = \text{फर्म B की कुल लागत}$$

तब,

$$\pi = R - (c_a + c_b) = f(x_a + x_b) - g(x_a) - h(x_b)$$

लाभ अधिकतम करने के लिए,

$$\frac{\delta \pi}{\delta x_a} = f'(x_a + x_b) - g'(x_a) = 0$$

$$\frac{\delta \pi}{\delta x_b} = f'(x_a + x_b) - h'(x_b) = 0$$

और :

$$f'(x_a + x_b) = g'(x_a) = h'(x_b)$$

अथवा कार्टेल की बिक्री से MR फर्म A की उत्पत्ति की सीमान्त लागत और फर्म B की उत्पत्ति की सीमांत लागत के बराबर होनी चाहिए।

के रूप मे देती है। फर्म A का मुनाफा $c_a\, p \times x_a$ होता है और फर्म B का $c_b\, p \times x_b$ होता है। उद्योग के कुल मुनाफे समस्त वैयक्तिक फर्मों के मुनाफो के जोड के बराबर होते हैं। फर्मों के बीच औद्योगिक मुनाफे "अर्जन" के आधार पर अथवा अन्य किसी उपयुक्त योजना के आधार पर वितरित किए जा सकते है।

उद्योग की उत्पत्ति व कीमत का ऊपरवर्णित "आदर्श" एकाधिकारात्मक निर्धारण व्यवहार मे प्राप्त कर सकना सम्भव नही होता है। सगठन के द्वारा किए गए निर्णय कार्टेल के सदस्यो के विशिष्ट दृष्टिकोणो व हितो के बीच होने वाले वार्तालाप, पारस्परिक लेन-देन व समझौते के परिणाम होते हैं। इसलिए सगठन के लिए यह सम्भव नही होता कि वह ठीक उसी तरह से कार्य करे जिस तरह से एकाधिकारी स्वय के उद्योग मे करता। उदाहरण के लिए, लाभ व्यक्तिगत फर्मों के लिए निर्धारित उत्पादन के कोटो के अनुसार वितरित किए जा सकते हैं। केन्द्रीय सगठन पर सबसे अधिक दबाव डाल सकने वाली फर्मों को अपेक्षाकृत बडा कोटा मिल सकता है, हालांकि प्रति इकाई समयानुसार अतिरिक्त उत्पत्ति की मात्रा के लिए सीमान्त लागत अन्य फर्मों से अधिक हो सकती है जिससे उद्योग की लागतो के बढ़ने एव उद्योग के लाभो के घटने में मदद मिलती है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सगठन पर कुछ फर्मों के कोटे बढाने के लिए दबाव डालने से ऐसे निर्णय लेने पड सकते हैं जिससे उद्योग की उत्पत्ति को लाभ अधिकतम करने के स्तर से भी आगे बढाना पडे। इससे कीमतें व लाभ एकाधिकारी स्तर से नीचे आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त, ऊँची लागत वाली अकुशल फर्मों को उत्पादन का इतना कोटा मिल सकता है कि उनकी सीमान्त लागत उद्योग की सीमान्त आय से काफी ऊँची हो जाय, हालांकि मितव्ययिता के सिद्धान्त के अनुसार ऐसी फर्मों को पूर्णतया बद कर दिया जाना चाहिए। ये सम्भावनाएँ पर्याप्त नही होती हैं, लेकिन ये इस बात को स्पष्ट करती हैं कि कुछ सदस्य फर्मों को सन्तुष्ट करने के लिए किए गए राजनीतिक निर्णय कुछ सीमा तक आर्थिक तत्वो से भी आगे का स्थान प्राप्त कर लेते हैं।[8]

कार्टेल मे फर्मों की सख्या जितनी अधिक होगी इसकी एकता को बनाए रखना उतना ही अधिक कठिन होगा, विशेषतया उस स्थिति मे जब कि उद्योग के मुनाफों मे व्यक्तिगत फर्मों के अश छोटे होते हैं। व्यक्तिगत फर्मों के लिए कार्टेल को छोड देने एव अपना काम स्वतन्त्र रूप से सचालित करने की तीव्र प्रेरणा होती है। जब उद्योग का एक बडा भाग कार्टेल द्वारा निर्धारित कीमत को स्वीकार कर लेता है तो स्वतन्त्र रूप से अपने कार्य का सचालन करने वाली फर्म के समक्ष अपनी उत्पत्ति के लिए पाया जाने वाला माँग-वक्र उद्योग के माँग-वक्र से कार्टेल द्वारा निर्धारित

8 देखिये फैलनर, The Economics of Sellers' Competition, pp 476–480

कीमत के आस-पास की सीमाओं मे अधिक लोचदार होता है।

उदाहरण के लिए, चित्र 12–1 मे फर्म A को लीजिए। यदि फर्म A कार्टेल से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेती है तो इसके समक्ष dd जैसा माँग-वक्र होगा, बशर्ते कि कार्टेल मे अन्य फर्में p कीमत ही लेती रहे। इन दशाओ मे व्यक्तिगत फर्म के समक्ष जो माँग-वक्र होगा वह कार्टेल कीमत पर उद्योग के माँग-वक्र से बहुत अधिक लोचदार होगा। इसका कारण यह है कि व्यक्तिगत फर्म के द्वारा कीमत मे कटौती कर देने से शेष कार्टेल की तरफ से क्रेताओ को आकर्षित किया जा सकेगा। परिणामस्वरूप x_a उत्पत्ति की मात्रा पर स्वतन्त्र रूप से अपने कार्य का सचालन करने वाली फर्म A के लिए सीमान्त आय, X उत्पत्ति की मात्रा पर कार्टेल की सीमान्त आय से अधिक होगी। x_a उत्पत्ति की मात्रा पर फर्म A की सीमान्त आय इसकी सीमान्त लागत से अधिक होगी और फर्म अपनी उत्पत्ति की मात्रा को x_a से आगे बढा कर ही अपने मुनाफो मे वृद्धि कर सकेगी। इस प्रकार जो फर्म कार्टेल से सफलतापूर्वक अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर सकती है वह, यदि अन्य फर्में इसी रणनीति को नही अपनाती तो अपने लिए लाभ की सम्भावनाएँ बढा लेती है। यदि सभी इस प्रकार का प्रयास करती है तो कार्टेल विघटित हो जाता है, उद्योग मे उत्पत्ति बढ जाती है, कीमत गिर जाती है और अत मे सबको अपेक्षाकृत कम मुनाफे ही प्राप्त हो पाते है।

बाजार सहभागी कार्टेल (The Market sharing Cartel) किसी-न किसी किस्म का बाजार-सहभाजन अनेक कार्टेल व्यवस्थाओ का लक्षण होता है। कुछ दशाओ मे इसका परिणाम उद्योग के लिए "आदर्श" एकाधिकार-कीमत व उत्पत्ति हो सकता है, अर्थात् कीमत व उत्पत्ति के लिए उद्योग का लाभ अधिकतम करने वाला स्तर हो सकता है। व्यवहार मे यह स्थिति एकाधिकार की स्थिति से थोडी भिन्न होगी।

मान लीजिए उद्योग की फर्में समरूप वस्तु बनाती हैं और बाजार के उस अश के सम्बन्ध मे सहमत हो जाती हैं जो प्रत्येक को हर सभव कीमत पर प्राप्त हो सकेगा। वस्तु की समरूपता के कारण वस्तु-बाजार मे एक-ही कीमत का नियम लागू होगा। विश्लेषण को सरल बनाए रखने के लिए यह भी कल्पना की जा सकती है कि उद्योग मे केवल दो ही फर्में होती हैं। दोनो फर्मों की लागतें एक-सी होती हैं और वे बाजार को आधा आधा बाँटने के लिए सहमत होती हैं।

परिकल्पित दशाओ मे दोनो फर्मों के दृष्टिकोण ली जाने वाली कीमत और उत्पादित की जाने वाली माल की मात्रा के सम्बन्ध मे समान होगे। चित्र 12–2 मे वस्तु के लिए उद्योग का माँग-वक्र DD है। प्रत्येक फर्म के समक्ष अपनी उत्पत्ति
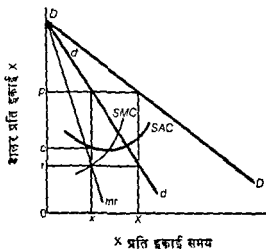
चित्र 12-2 बाजार-सहभागी कार्टेल

के लिए dd माग-वक्र होता है। प्रत्येक के लिए एक अल्पकालीन औसत लागत-वक्र SAC और अल्पकालीन सीमान्त लागत-वक्र SMC होता है। प्रत्येक फर्म का सीमान्त आय-वक्र mr होता है। प्रत्येक फर्म के लिए लाभ अधिकतम करने वाली उत्पत्ति की मात्रा x होगी जिस पर SMC बराबर होगी mr के। प्रत्येक फर्म p कीमत लेना चाहेगी। प्रत्येक फर्म का लाभ cp × x होगा। सब फर्में मिलकर उद्योग मे X उत्पत्ति की मात्रा का उत्पादन करेंगी जो p कीमत पर बाजार को पूरी तरह पाट देगा। इसी स्थिति का आना स्वाभाविक होता है क्योंकि dd रेखा बाजार माँग-वक्र में और कीमत-अक्ष के ठीक बीच मे स्थित होती है।

मानी हुई दशाओं मे, एक केन्द्रीकृत कार्टेल की भाँति, एक बाजार-सहभागी-कार्टेल कीमत व उत्पत्ति की मात्राओं को ऐसे स्तरो पर निर्धारित करेगा जहाँ एक एकाधिकारी उन्हे उद्योग की उत्पादन की सुविधाओं पर पूर्ण नियत्रण रखने की स्थिति मे निर्धारित करता। ऐसे एकाधिकारी का सीमान्त लागत-वक्र दोनों संयत्रो के दो SMC वक्रो का क्षैतिज जोड होगा—यह चित्र 12-2 के SMC वक्र की तरह प्रत्येक कीमत-स्तर पर दाहिनी तरफ दुगुनी दूरी पर स्थित होगा। एकाधिकारी के समक्ष उद्योग का माँग-वक्र DD होगा और X उत्पत्ति की मात्रा पर उद्योग की सीमान्त आय का स्तर r होगा—यह वही स्तर है जो x उत्पत्ति पर वैयक्तिक फर्म की सीमान्त आय का होता है। ऐसा होना स्वभाविक है क्योंकि DD की p कीमत पर वही लोच है जो dd की है।[9]

9. जब विभिन्न कीमतो पर दो माँग-वक्रो की लोच समान होती है तो हम उन्हे समलोच (isoelastic) वाले वक्र कहते हैं। माँग-वक्र समलोच वाले उस समय होते हैं जबकि प्रत्येक

X उत्पत्ति पर उद्योग की सीमान्त लागत का स्तर r होगा। X उत्पत्ति की मात्रा एकाधिकारी के लिए लाभ अधिकतम करने वाली उत्पत्ति की मात्रा होगी, चूंकि उत्पत्ति की इस मात्रा पर उद्योग की सीमान्त आय उद्योग की सीमान्त लागत के बराबर होती है। एकाधिकारी X उत्पत्ति को प्रति इकाई p कीमत पर बेचेगा।

लेकिन "आदर्श' एकाधिकारी कीमत व उत्पत्ति को प्राप्त करने के मार्ग मे कई तत्त्व बाधक हो सकते हैं। व्यक्तिगत फर्मों की उत्पादन लागतें परस्पर समान होने के बजाय, जैसा कि हमने माना है, एक दूसरे से पृथक् होती हैं। बाजार-सहभाजन ऊँची सीमान्त लागत वाली फर्मों से उत्पत्ति के कोटो का, प्रत्येक के द्वारा उत्पादित माल की मात्राओ पर, नीची सीमान्त लागत वाली फर्मों की तरफ ज्यादा हस्तान्तरण नही होने देता। कार्टेल का निर्माण करने वाली फर्मों के विभिन दृष्टिकोणो एव विभिन हितो के फलस्वरूप ऐसे समझौते हो सकते है जो उद्योग के लाभ-अधिकतमकरण के मार्ग मे बाधक हो। बाजार के निर्धारित अश व वस्तु की दी हुई कीमत की स्थिति मे वैयक्तिक फर्में जानबूझकर अथवा सद्विश्वास मे माल की उन मात्राओ का ऊँचा अनुमान लगा सकती हैं जिनसे कुल बाजार मे उनके अलग अलग अश निर्धारित होते हैं, और इस प्रकार वे अन्य फर्मों के बाजारो मे हस्तक्षेप कर सकती हैं।[10] इसके अतिरिक्त वैयक्तिक फर्मो के पास स्वतन्त्र कार्य का जो अश छोडा जाता है उससे उनकी कार्टेल से पृथक् होने की इच्छा तेज हो जाती है और उनके द्वारा ऐसा करने की सम्भावनाएँ बढ जाती हैं।

बाजार-सहभागी कार्टेल-व्यवस्था के अन्तर्गत यह आवश्यक नही है कि बाजारो का समान रूप से ही सहभाजन किया जाय। ऊँची क्षमता वाली फर्मों को नीची क्षमता वाली फर्मों की अपेक्षा बाजार मे बडा हिस्सा मिल सकता है। बाजार का विभाजन प्रादेशिक आधार पर हो सकता है, जहाँ प्रत्येक फर्म एक सामान्य बाजार मे हिस्सा लेने की बजाय एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र को प्राप्त कर लेती है। विशेष कीमतो पर विभिन्न माँग की लोचो के परिणामस्वरूप अनेक किस्म की कठिनाइयाँ

विभिन्न कीमत पर ली जाने वाली मात्राएं परस्पर समान अनुपात रखती है। [देखिये जोन रॉबिसन, The Economics of Imperfect Competition (लन्दन मेकमिलन एण्ड क०, लि० 1933) पृ० 61]। चूंकि dd रेखा विभिन्न कीमतों पर DD और कीमत अक्ष के ठीक बीच म आती है इसलिए dd क द्वारा प्रदर्शित ली जाने वाली मात्राएं DD के द्वारा प्रदर्शित ली जाने वाली मात्राओ से स्थिर अनुपात मे होती हैं। यह अनुपात आधा होता है।

10 बाजार के अश या कोटो से ऊपर बिक्री की मात्रा को न्यूनतम करने के लिये अधिकाश कार्टेल उस सदस्य से दण्डस्वरूप राशि वसूल करते हैं जो अपने कोटे से आगे निकल जाता है।

उत्पन्न हो सकती हैं : जैसे विभिन्न लागतें, घटिया प्रदेश, एक-दूसरे के प्रदेशों मे हस्तक्षेप, आदि-ये सब कठिनाइयाँ कीमत व उत्पत्ति-निर्धारण की समस्याओं को जितनी ये इस मॉडल मे प्रतीत होती हैं उससे भी अधिक अनिश्चित बना देती हैं।
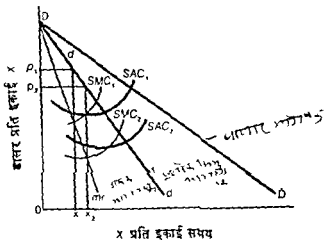
चित्र 12–3 एक नीची लागत वाली फर्म के द्वारा कीमत-नेतृत्व

अपूर्ण गठबंधन

एक नीची लागत वाली फर्म के द्वारा कीमत-नेतृत्व एक औपचारिक कार्टेल-व्यवस्था के अभाव मे उद्योग मे एक फर्म के द्वारा कीमत-नेतृत्व प्राय. गठबंधन का साधन बन जाता है। हम यह मान कर चलेंगे कि उद्योग मे दो फर्में होती हैं, अव्यक्त रूप मे बाजार-सहभागी व्यवस्था स्थापित की गई है, जिसमे प्रत्येक फर्म के लिए बाजार का आधा भाग निर्धारित किया गया है, वस्तु अविभेदीकृत (undifferentiated) है, और एक फर्म की लागत दूसरी से कम है।

यहाँ ली जाने वाली वाछित कीमत के सम्बन्ध मे विरोध उत्पन्न हो सकता है। चित्र 12–3 मे बाजार माँग-वक्र DD है। प्रत्येक फर्म के समक्ष dd माँग-वक्र है। ऊँची लागत वाली फर्म के लागत-वक्र SAC_1 और SMC_1 है। नीची लागत वाली फर्म के लागत-वक्र SAC_2 व SMC_2 हैं। प्रत्येक फर्म का सीमान्त आय-वक्र mr है। ऊँची लागत वाली फर्म माल की x_1 मात्रा उत्पन्न करना चाहेगी और p_1 कीमत लेना चाहेगी, जब कि नीची लागत वाली फर्म x_2 माल की मात्रा उत्पन्न करना चाहेगी और p_2 कीमत लेना चाहेगी।

चूँकि नीची लागत वाली फर्म ऊँची लागत वाली फर्म की अपेक्षा कम कीमत पर माल बेच सकती है, इसलिए ऊँची लागत वाली फर्म के लिए नीची लागत वाली फर्म

के द्वारा निर्धारित कीमत पर माल बेचने के अलावा और कोई विकल्प नही होता। इस प्रकार नीची लागत वाली फर्म कीमत का नेतृत्व करने लग जाती है। इस तरह की स्थिति के कई रूप पाये जा सकते हैं जो फर्मों की सापेक्ष लागतो, उद्योग मे फर्मों की सख्या, बाजार माँग-वक्र की आकृति व स्थिति और प्रत्येक फर्म के द्वारा प्राप्त किये जाने वाले बाजार के अश पर निर्भर करते है।[11]

प्रमुख या प्रभुत्वसम्पन्न फर्म के द्वारा कीमत नेतृत्व (Price Leadership by a Dominant Firm) अनेक अल्पाधिकारी उद्योगो मे कई छोटी फर्मों के साथ एक या अधिक बडी फर्में पाई जाती हैं। बडे पैमाने पर कीमत कम करने की स्थिति को रोकने के लिए एक या अधिक बडी फर्मों के द्वारा कीमत-नेतृत्व के रूप मे अव्यक्त गठबधन (tacit collusion) हो सकता है।[12] हम विश्लेषण की सरलता के लिए यह मान लेंगे कि उद्योग में एक तो अकेली व बडी प्रमुख फर्म होती है और साथ मे कई छोटी फर्में होती है। मान लीजिए यह प्रमुख फर्म उद्योग के लिए कीमत निर्धारित करती है और छोटी फर्मों को उस कीमत पर माल की इच्छित मात्रा बेचन की इजाजत देती है। ऐसी स्थिति म प्रमुख फर्म बाजार मे शेष माल की भरती करती है।

प्रत्येक छोटी फर्म इस तरह से आचरण करेगी मानो कि यह एक प्रतिस्पर्धा के वातावरण म कार्य कर रही है। यह प्रमुख फर्म के द्वारा निर्धारित कीमत पर जितना चाहे उतना माल बेच सकती है, इसलिए स्थापित की गई कीमत पर इसके समक्ष एक पूर्णतया लोचदार माँग-वक्र होता है। छोटी फर्म का सीमान्त आय-वक्र इसके समक्ष होने वाले माँग-वक्र के बराबर होता है, इसलिए अपने लाभ अधिकतम करने के लिए एक छोटी फर्म को इतना माल बनाना चाहिये ताकि इसकी सीमान्त लागत इसकी सीमान्त आय एव प्रमुख फर्म के द्वारा निर्धारित कीमत के बराबर हो सके।

समस्त छोटी फर्मों के लिए सम्मिलित रूप मे पूर्ति-वक्र उनके सीमान्त लागत-वक्रों को क्षैतिज रूप मे जोडकर बनाया जा सकता है। यह इस बात को बतलाता है कि सभी छोटी फर्में मिलकर बाजार मे प्रत्येक सम्भव कीमत पर कितना माल प्रस्तुत करेंगी। चित्र 12-4 मे यह वक्र ΣMC के रूप में सूचित किया गया है।

इस सूचना के आधार पर प्रमुख फर्म के समक्ष पाया जाने वाला माँग-वक्र निकाला जा सकता है। बाजार माँग-वक्र DD यह दर्शाता है कि उपभोक्ता प्रत्येक

---

11 देखिये केनिथ ई० बोल्डिग Economic Analysis, vol I, Microeconomics, 4th ed (न्यूयार्क हार्पर एण्ड राऊ, पब्लिशस, 1966), पृ० 475–482

12 कीमत नेतृत्व अलौह एलोय के निर्माण इस्पात कृषिगत औजार, अखबारी कागज व अन्य उद्योगों में प्रचलित रहा है। देखिए—शेरेर, पूर्वोद्धृत, पृ० 164–173.

चित्र 12–4 एक प्रमुख फर्म के द्वारा कीमत-नेतृत्व

सम्भव कीमत पर वस्तु की कितनी मात्रा बाजार मे खरीदेंगे, जब कि ΣMC वक्र यह दर्शाता है कि छोटी फर्में मिलकर प्रत्येक सम्भव कीमत पर माल की कितनी मात्रा बेच पायेंगी। सभी सम्भव कीमतो पर दोनो वक्रो के बीच जो क्षैतिज अन्तर पाये जाते हैं वे यह बतलाते हैं कि प्रमुख फर्म उन कीमतो पर कितना माल बेच सकती है। प्रमुख फर्म का मांग-वक्र dd है और यह DD वक्र मे से क्षैतिज रूप मे ΣMC को घटाकर प्राप्त किया गया है। इस बात को विस्तार से बतलाने के लिए कि dd रेखा कैसे प्राप्त की जाती है हम मान लेते हैं कि प्रमुख फर्म P′ कीमत निर्धारित करती है। इस कीमत पर अथवा इससे किसी भी ऊँची कीमत पर केवल छोटी फर्में ही बाजार मे माल की पूर्ति करती हैं और प्रमुख फर्म के लिए बिक्री की कोई सम्भावना नही रहती। P″ कीमत पर छोटी फर्में P″A″ मात्रा बेचेंगी और प्रमुख फर्म के लिए बेचने के वास्ते A″B″ मात्रा रह जायेगी। प्रमुख फर्म की वस्तु के मांग वक्र को रेखाचित्र के मात्रा व डालर अक्षो से उचित सम्बन्ध मे लाने के लिए हम C″ बिन्दु इस प्रकार निर्धारित कर सकते हैं ताकि P″C″ बराबर हो A″B″ के। यह प्रक्रिया अनेक परिकल्पित कीमतो पर दोहराई जा सकती है। ऐसे स्थापित किये गये सभी बिन्दुओ को मिलाने वाली रेखा dd होगी जो प्रमुख फर्म के समक्ष पाया जाने वाला मांग-वक्र होगा। अपनी औसत परिवर्तनशील लागतो से नीचे किसी भी कीमत पर छोटी फर्में बाजार से अलग हो जायेंगी और वे अपना सम्पूर्ण बाजार प्रमुख फर्म के लिए छोड देंगी।

लाभ अधिकतम करने वाली कीमत और उत्पत्ति की मात्रा का निर्धारण प्रचलित विधि से ही होता है। प्रमुख फर्म का सीमान्त आय-वक्र MR_d है और इसका सीमान्त लागत वक्र SMC_d है। प्रमुख फर्म के लाभ x_d माल की मात्रा पर अधिकतम होंगे जहाँ SMC_d बराबर है MR_d के। प्रमुख फर्म के द्वारा ली जाने वाली कीमत p होगी। प्रत्येक छोटी फर्म अपने लाभ अधिकतम करने के लिए माल की उतनी ही मात्रा बनायेगी जहाँ सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर हो और प्रत्येक छोटी फर्म की सीमान्त आय p कीमत के बराबर होगी। छोटी फर्मों के लिए मिलकर कुल उत्पत्ति x_s होगी। उत्पत्ति की इस मात्रा पर ΣMC बराबर होगी p के। उद्योग की कुल उत्पत्ति बराबर होगी x_d व x_s के जोड के, जो X के बराबर होगी। प्रमुख फर्म के लिए लाभ की मात्रा p कीमत और x_d उत्पत्ति पर इसकी औसत लागत के बीच के अन्तर को x_d से गुणा करने से प्राप्त परिणाम के बराबर होगी। प्रत्येक छोटी फर्म का लाभ p कीमत और उस उत्पत्ति पर इसकी औसत लागत के अन्तर को इसकी उत्पत्ति से गुणा करने से प्राप्त राशि के बराबर होगा। चित्र 12–4 में अनावश्यक जमघट को टालने के लिए औसत लागत-वक्र छोड दिये गये हैं।

प्रमुख फर्म वाले मॉडल के अनेक रूप हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, यदि दो या अधिक बडी फर्मे छोटी फर्मों के एक समूह से घिरी हुई हैं तो छोटी फर्मे एक या समस्त बडी फर्मों की तरफ कीमत-नेतृत्व के लिए देख सकती हैं। छोटी फर्मे विभिन्न कीमतो पर माल की जो मात्राएँ बेच सकती हैं, बडी फर्मे सामूहिक रूप से उनका अनुमान लगा सकती हैं, और उसके पश्चात् वे बचे हुए बाजार मे अपना अश लेने या बचे हुए बाजार को विभाजित करने के लिए विभिन्न सम्भावित तरीको मे से कोई भी तरीका काम मे ले सकती हैं। वर्तमान विश्लेषण मे वस्तु-विभेद नही माना गया है। लेकिन इस तरह के कीमत-नेतृत्व सम्बन्धी मामलो मे वस्तु-विभेद पाया जा सकता है जिससे विभिन्न फर्मों की वस्तुओ मे कीमतो के अन्तर उत्पन्न हो जाते हैं। इस सम्बन्ध मे गेसोलीन उद्योग का दृष्टान्त लिया जा सकता है। एक दिये हुए क्षेत्र मे बडी कम्पनियो जिनमे से एक या अधिक बहुधा कीमत नेतृत्व करती हैं—के खुदरा भाव परस्पर बहुत निकट हो सकते है, जबकि छोटी स्वतन्त्र फर्मों के भाव बडी फर्मों से प्रति गैलन दो या तीन सेंट कम हो सकते हैं।

स्वतन्त्र कार्य (Independent Action)

कीमत-सघर्ष एव कीमत-अनम्यता (Price Wars and Price Rigidity) अल्पाधिकारी-उद्योगो मे, जहाँ वैयक्तिक फर्मों को स्वतन्त्र कार्य करने का अवसर रहता है, कीमत सघर्षो का निरन्तर खतरा बना रहता है। इनके सम्बन्ध मे कोई निश्चित विश्लेषण प्रस्तुत नही किया जा सकता। एक विक्रेता बिक्री बढाने के लिए अपनी

कीमत कम कर सकता है। लेकिन इससे उसके प्रतिद्वन्द्वियों के ग्राहक टूट जाते हैं और वे प्रतिशोध की भावना से बदला ले सकते हैं। यह कीमत संघर्ष समस्त उद्योग में फैल सकता है जहाँ प्रत्येक फर्म दूसरों की तुलना में कीमत काटने का प्रयास करती हैं। इसका अन्तिम परिणाम कुछ वैयक्तिक फर्मों के लिए घातक हो सकता है।

कीमत-संघर्षों के विशिष्ट कारण अनेक होते हैं, लेकिन वे मूलतः विक्रेताओं की परस्पर निर्भरता से ही उत्पन्न होते हैं। इसके लिए प्रेरक तत्व यह हो सकता है कि एक नया पेट्रोल भरने का केन्द्र किसी क्षेत्र में प्रवेश करने की कोशिश में होता है अथवा एक चालू केन्द्र घटती हुई बिक्री को पुनः बढाने की कोशिश कर रहा है। पेट्रोल उद्योग में क्रूड तेल की बिक्री में चालू भावों पर अतिरिक्त स्टॉक के पाये जाने पर एवं संग्रह की सीमित सुविधाओं के कारण कीमत संघर्ष प्रारम्भ हुए हैं। एक नये उद्योग में विक्रेताओं को सम्भवतः इस बात का पता नहीं लगा है कि उनके प्रतिद्वन्द्वी क्या आचरण करेंगे, अथवा वे उद्योग में अपना स्थान जमाने के लिए छीना-झपटी कर सकते हैं और अनजान में ही कीमत संघर्ष प्रारम्भ कर बैठते हैं।

एक उद्योग की परिपक्वता कीमत-संघर्षों के खतरों को अत्यधिक मात्रा में कम कर सकती है। हो सकता है कि व्यक्तिगत फर्मों ने कम-से-कम यह तो जान ही लिया है कि उन्हें क्या नहीं करना है, और वे सावधानीपूर्वक ऐसी क्रियाओं को टाल सकती हैं जिनसे कीमत संघर्ष प्रारम्भ होने की सम्भावना होती है। हो सकता है कि वे एक ऐसी कीमत अथवा कीमत समूह स्थापित कर लें जो लाभ के दृष्टिकोण से सभी फर्मों को स्वीकार्य हो। ऐसी कीमतों के सम्बन्ध में प्रायः यह सोचा जाता है कि वे एक समयावधि में अनम्य होती हैं, हालाकि इस बात के लिए कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं पाया गया है। प्रायः यह देखा गया है कि व्यक्तिगत फर्में बाजार व मुनाफों में अपना हिस्सा बढाने के लिए कीमत स्पर्धा की बजाय गैर-कीमत प्रतिस्पर्धा में लग जाती हैं। परिपक्व अनम्य-कीमत वाले उद्योगों के दृष्टान्तों के रूप में मद्यरहित पेय पदार्थों (soft drinks) एवं सिगरेटों के उदाहरण दिये जा सकते हैं।

"मोडयुक्त" या "विकुंचित" माँग-वक्र (The "Kinked" Demand Curve)—अल्पाधिकारी कीमत-अनम्यता को स्पष्ट करने के लिए प्रायः जो विश्लेषण की विधि प्रयुक्त की जाती है वह मोडयुक्त माँग वक्र की विधि होती है। मोडयुक्त माँग-वक्र की स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जबकि उद्योग एवं उद्योग में पाई जाने वाली फर्मों के सम्बन्ध में कुछ मान्यताएँ पूरी की जाती हैं। सर्वप्रथम, उद्योग परिपक्व अवस्था में होता है ऐसा या तो वस्तु विभेद के साथ होता है अथवा इसके बिना होता है। ऐसी कीमत अथवा कीमत समूह स्थापित किया जा चुका है जो सबके लिए काफी संतोषप्रद होता है। द्वितीय, यदि एक फर्म कीमत कम कर देती है तो **अन्य फर्में** भी

ऐसा ही करेंगी अथवा वे बाजार का अपना हिस्सा बनाये रखने के लिए अपनी कीमत काट देंगी। इस प्रकार कीमत कम करके एक व्यक्तिगत फर्म बाजार में अपने पहले वाले हिस्से को कायम रखने के अलावा कुछ भी नहीं कर सकती है—और सम्भवत वह ऐसा करने में भी सफल न हो सके। तृतीय, यदि एक फर्म कीमत में वृद्धि करती है तो अन्य फर्में अपनी कीमत नहीं बढ़ायेंगी। कीमत बढ़ाने वाली फर्म के ग्राहक अब अपेक्षाकृत नीची कीमत वाली फर्मों की तरफ चले जायेंगे और कीमत बढ़ाने वाली फर्म बाजार में अपना सम्पूर्ण भाग नहीं तो भी एक भाग अवश्य खो बैठेगी।
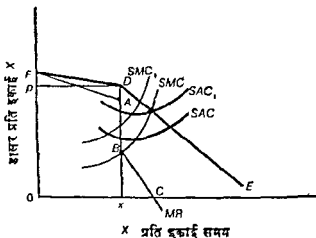
चित्र 12–5 मोडयुक्त माँग-वक्र : लागत के परिवर्तन

ऐसी स्थिति में एक अकेली फर्म के समक्ष पाया जाने वाला माँग-वक्र चित्र 12–5 में FDE के रूप में प्रस्तुत किया गया है। फर्म ने p कीमत स्थापित कर ली है। यदि यह अपनी कीमत p से नीचे करती है तो अन्य फर्में भी ऐसा ही करेंगी और यह बाजार में केवल अपना हिस्सा ही बनाये रख सकेगी। अत कीमत में कमी करने की स्थिति में फर्म के समक्ष माँग-वक्र DE होगा और विभिन्न कीमतों पर इसकी लगभग वही लोच होगी जो बाजार माँग-वक्र की होती है। यदि फर्म अपनी कीमत p से ऊपर कर देती है तो अन्य फर्में ऐसा नहीं करेंगी और यह बाजार का अपना सम्पूर्ण अश अथवा कुछ अश अन्य फर्म के पक्ष में खो देगी। कीमत की वृद्धियों के लिए फर्म के समक्ष माँग-वक्र FD होता है, और प्रत्येक सम्भव कीमत पर इसकी लोच बाजार माँग-वक्र से काफी अधिक होगी। FDE माँग-वक्र एक सरल वक्र नहीं है, बल्कि स्थापित की गई कीमत p पर इसमें "मोड" ("kink") पाया जाता है।

फर्म के सीमान्त आय-वक्र के लिए मोडयुक्त माँग-वक्र के महत्त्वपूर्ण परिणाम निकलते हैं। x उत्पत्ति पर सीमान्त आय वक्र असतत (discontinuous) होता

हैं; अर्थात् उस बिन्दु पर इसमे एक रिक्त स्थान (gap) होता है। हम इस रिक्त स्थान को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं कि हम शुरू मे यह सोचें कि माँग-वक्र का केवल FD हिस्सा ही विद्यमान है और इसके लिए एक उपयुक्त सीमान्त आय-वक्र खींचें। द्वितीय, कल्पना कीजिए कि माँग वक्र का DE हिस्सा कीमत-अक्ष तक सरलतापूर्वक बढाया जाता है और इसके बाद हम इसके अनुकूल सीमान्त आय-वक्र खीच सकते हैं। चूँकि DE वक्र के कल्पित अश का अस्तित्व नही होता है, इसलिए X से नीचे उत्पत्ति की मात्राओ के लिए सीमान्त आय-वक्र का भी अस्तित्व नही होगा। चूँकि माँग-वक्र का FD अश x से परे नही जाता है, इसलिए इसका सीमात आय-वक्र भी नही जाता है। सीमान्त आय-वक्र के प्रदर्शित किये गये दो गैर-लम्बवद् अनुभागो को दो भिन्न-भिन्न सतत (continuous) माँग-वक्रो के लिए उपयुक्त सीमान्त आय-वक्रो के रूप मे देखा जा सकता है और इस बात के लिए कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि उत्पत्ति की x मात्रा पर वे परस्पर बराबर ही हो।

असतत सीमान्त आय-वक्र पर माँग की लोच के रूप मे भी विचार किया जा सकता है। यदि माँग-वक्र एक सतत वक्र हो, तो ऊँची कीमत से नीची कीमत की तरफ जाते समय लोच मे निरन्तर परिवर्तन होगा। चूँकि $MR = p - p/e$ होता है, इसलिए माँग-वक्र से नीचे जाने पर सीमान्त आय-वक्र भी सतत ही होगा। लेकिन D पर माँग-वक्र टूट जाता है। x से बहुत थोडी मात्रा नीचे वाली उत्पत्ति पर लोच x से बहुत थोडी मात्रा ऊपर वाली उत्पत्ति पर पाई जाने वाली लोच से काफी अधिक होती है। इस प्रकार x उत्पत्ति की मात्रा पर सीमान्त आय तेजी से घटती है।

SAC और SMC लागत-वक्र एक ऐसी स्थिति दर्शाते हैं कि p कीमत पर कुछ लाभ प्राप्त किया जा सके। सीमान्त लागत-वक्र सीमान्त आय-वक्र को इसके असतत भाग मे काटता है। वास्तव मे उत्पत्ति x और कीमत p क्रमश फर्म का लाभ अधिकतम करने वाली उत्पत्ति व कीमत होते हैं। यदि उत्पत्ति की मात्रा x से कम होती है, तो सीमान्त आय सीमान्त लागत से अधिक होगी और उत्पत्ति को x तक बढ़ाने से फर्म के लाभो मे वृद्धि की जा सकेगी। x से अधिक उत्पत्ति की मात्राओ पर सीमान्त लागत सीमान्त आय से अधिक होती है और लाभ घट जाते हैं।

असतत सीमान्त आय वक्रो की वजह से उद्योग मे व्यक्तिगत फर्मों की कीमत-निर्धारण-नीतियाँ काफी अनम्य हो जाती हैं। मान लीजिए एक फर्म की लागतें इसलिए बढ जाती है कि उसे साधनो के लिए ऊँची कीमते देनी पडती है। लागत-वक्र ऊपर की ओर खिसक कर SAC_1 व SMC_1 की जैसी स्थिति मे आ जाते है। लेकिन जब तक सीमान्त लागत-वक्र सीमान्त आय वक्र के असतत हिस्से को काटता

रहता है, तब तक अल्पाधिकारी के लिए कीमत अथवा उत्पत्ति को परिवर्तित करने की कोई प्रेरणा नहीं होती। इसके विपरीत स्थिति भी लागू होती है। साधनों की कीमत में कमी होने से लागत-वक्र नीचे की ओर खिसक जायेंगे, लेकिन जब तक सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय-वक्र को इसके असतत हिस्से में काटता है, तब तक कीमत व उत्पत्ति में कोई परिवर्तन नहीं होगे। यदि लागत इतनी बढ़ जाती है कि सीमान्त लागत-वक्र सीमान्त आय-वक्र के FA हिस्से को काटता है तो अल्पाधिकारी उत्पत्ति को उस बिन्दु तक सीमित कर देगा जहाँ पर सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होती है और वह कीमत को बढ़ा देगा। इसी प्रकार यदि लागत इतनी घट जाती है कि सीमान्त लागत-वक्र सीमान्त आय वक्र के BC हिस्से को काटता है तो अल्पाधिकारी को लाभ अधिकतम करने वाली कीमत व उत्पत्ति की मात्रा में परिवर्तन किये बिना ही लागत वक्रों को ऊपर-नीचे करने की गुंजाइश पाई जाती है। जब तक सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय-वक्र को इसके असतत हिस्से में काटता है, तब तक यही स्थिति पाई जायेगी।

माँग के परिवर्तित होने पर भी कीमत-दृढ़ता जारी रह सकती है। एक अल्पाधिकारी की प्रारम्भिक स्थिति चित्र 12–6 (अ) में बतलाई गई है। कल्पना कीजिए कि उसकी लागतें नहीं बदलती है और उसकी वस्तु के लिए बाजार-माँग बढ़ जाती है। अल्पाधिकारी के समक्ष पाया जाने वाला माँग-वक्र दाहिनी तरफ खिसक कर $F_1D_1E_1$ पर आ जाता है, जैसा कि चित्र 12–6 (आ) में दर्शाया गया है, लेकिन यह p कीमत पर मोडयुक्त बना रहता है। सीमान्त आय-वक्र भी दाहिनी तरफ आ जाता है और इसका असतत अंश भी सदैव उत्पत्ति की ऐसी मात्रा पर होता है जहाँ माँग वक्र मोडयुक्त या विकुंचित होता है। यदि माँग की वृद्धि इतनी सीमित होती है कि सीमान्त लागत-वक्र सीमान्त आय-वक्र को असतत भाग B_1A_1 में ही काटता है, तो फर्म p कीमत पर अपना लाभ अधिकतम करना जारी रखेगी, लेकिन अब उत्पत्ति की मात्रा x_1 पहले से अधिक होगी। यदि बाजार माँग की वृद्धि फर्म का माँग-वक्र $F_1D_1E_1$ से ज्यादा दूर दाहिनी तरफ खिसका देती है तो सीमान्त लागत-वक्र सीमान्त आय-वक्र के F_1A_1 भाग को काटेगा और लाभ अधिकतम करने के लिए फर्म को कीमत व उत्पत्ति दोनों ही बढ़ाने होंगे। बाजार माँग की कमी फर्म के माँग-वक्र को खिसका कर $F_2D_2E_2$ के बायीं तरफ कर देगी, जैसा कि चित्र 12–6 (इ) में दिखलाया गया है। यहाँ उत्पत्ति के घटने पर भी कीमत के परिवर्तन के लिए उस समय तक कोई प्रेरणा नहीं होगी जब तक कि माँग वक्र बायीं तरफ काफी दूर तक इतना न खिसक जाय कि सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र के B_2C_2 भाग को काटे। इस परिवर्तन से फर्म को कीमत के घटाने और साथ में उत्पत्ति को भी कम करने की प्रेरणा मिलेगी।

मोड़युक्त माँग-वक्र की स्थिति अल्पाधिकार की अनेक सम्भव स्थितियों में से केवल एक होती है, और यह प्रतिस्पर्धियों के उस व्यवहार से सम्बन्धित मान्यताओं के एक विशिष्ट समूह पर आधारित होती है जबकि उनके समक्ष विश्लेषण के अन्तर्गत
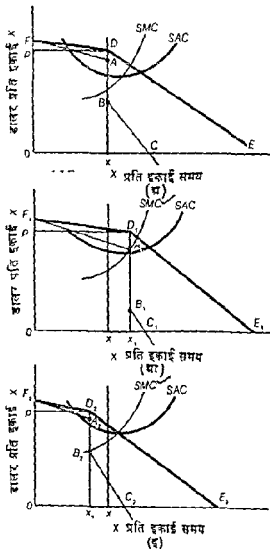
चित्र 12-6 मोड़युक्त माँग-वक्र : माँग में परिवर्तन

फर्म के कुछ कार्य विद्यमान होते हैं। प्राय. विद्यार्थी (और कुछ प्रोफेसर भी) इस बात को लेकर उलझन में पड़ जाते हैं और वे इसको एवं "अल्पाधिकार" शब्द को समानार्थी

समझने लग जाते हैं। हमे अपनी विचारधारा से यह त्रुटि दूर करनी चाहिए।

दीर्घकाल

दीर्घकाल मे अल्पाधिकारी उद्योगो मे दो प्रकार के समायोजन सम्भव हो सकते हैं। सर्वप्रथम, व्यक्तिगत फर्में सयत्र के किसी भी वाछित आकार का निर्माण करने के लिए स्वतन्त्र होती है, इस प्रकार फर्म के लिए सम्बन्धित लागत वक्र दीर्घकालीन औसत लागत वक्र और दीर्घकालीन सीमान्त लागत-वक्र होते हैं। द्वितीय, उद्योग मे कुछ समायोजन इस रूप मे सम्भव होते है कि इसमे नई फर्मों का प्रवेश हो सकता है अथवा पुरानी फर्में उद्योग को छोड सकती हैं। हम समायोजन की इन किस्मो पर क्रमश विचार करेंगे।

सयत्र के आकार के समायोजन

सयत्र का जो आकार एक व्यक्तिगत फर्म को बनाना चाहिए वह उसकी उत्पत्ति की प्रत्याशित दर पर निर्भर करता है। उत्पत्ति की एक दी हुई प्रत्याशित दर के लिए हम निकटतम रूप मे यह कह सकते है कि फर्म उत्पत्ति की उस मात्रा को न्यूनतम सम्भव औसत लागत पर उत्पादित करने का प्रयास करेगी, अर्थात् वह सयत्र के एक ऐसे आकार का निर्माण करेगी जिसका अल्पकालीन औसत लागत-वक्र उत्पत्ति की उस मात्रा पर दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को स्पर्श करेगा।

पूर्ण गठबधन एव कभी-कभी अपूर्ण गठबधन की दशा मे कोटे, बाजार के अश एव व्यक्तिगत फर्मों की उत्पत्ति की मात्राओ के सम्बन्ध मे कुछ निश्चितता के साथ कहा जा सकता है। ऐसी दशाओ मे फर्म से यह आशा की जाएगी कि वह अपना सयत्र का आकार समायोजित कर ले। इस सम्बन्ध मे ज्यादा नही कहा जा सकता कि सयत्र का आकार अनुकूलतम होगा, अनुकूलतम से कम होगा, अथवा अनुकूलतम से अधिक होगा। यह इन तीनो मे से कोई भी एक आकार ग्रहण कर सकता है और इसका निर्णय विशेष अल्पाधिकारी स्थिति की प्रकृति पर ही निर्भर करेगा। वस्तुत यह आशा करने का कोई कारण नही प्रतीत होता कि फर्म साधारणतया सयत्र के अनुकूलतम आकार का ही निर्माण करेगी।

स्वतन्त्र कार्य के लक्षण वाले उद्योग मे एक फर्म के लिए निर्मित किए जाने वाले सयत्र के आकार के सम्बन्ध मे निश्चितता उत्पादित माल की मात्रा एव ली जाने वाली कीमत की निश्चितता से अधिक नही होगी। उद्योग मे विकास की सम्भावनाएँ काफी सीमा तक फर्म के निर्णयो को प्रभावित कर सकती हैं। विकास की व्यापक सम्भावना के अस्तित्व के कारण व्यक्तिगत फर्म प्रत्याशित बिक्री के सम्बन्ध मे आशा-वादी होगी और इससे सयत्र का विस्तार होगा। व्यक्तिगत फर्मों की तरफ से "जीओ

और जीने दो" की नीतियों अथवा "नाव को चट्टान से टकरा देने" के भय के कारण उत्पत्ति की मात्रा काफी निश्चित की जा सकती है, और परिणामस्वरूप इससे निर्मित किए जाने वाले सयत्र के आकारो के सम्बन्ध मे कुछ निश्चितता आ सकती है। यहाँ भी इस विश्वास के लिए कोई कारण नही प्रतीत होता कि सयत्र के अनुकूलतम आकारो का ही निर्माण किया जाएगा।

उद्योग मे प्रवेश

जब उद्योग में व्यक्तिगत फर्में लाभार्जन करती है अथवा हानि उठाती है तो इसमे नई फर्मों के प्रवेश के लिए अथवा पुरानी फर्मों के छोडने के लिए प्रेरणाएँ विद्यमान रहती है। अल्पाधिकारी उद्योग म प्रवेश की अपेक्षा इसको छोडना प्राय अधिक सुगम होता है और इस पर हम यहाँ ज्यादा रुकने की आवश्यकता नही है। प्रवेश की सहूलियत या कठिनाइयो का ज्यादा महत्व होता है। अल्पाधिकारी बाजारो का अस्तित्व ही कुछ सीमा तक इस बात पर निर्भर करता है कि उद्योग मे प्रवेश आंशिक रूप से अथवा पूर्ण रूप से अवरुद्ध किया जा सकता है अथवा नही। इसके अतिरिक्त उद्योग मे गठबन्धन का जो अश प्राप्त किया जा सकता है अथवा कायम रखा जा सकता है उसका प्रवेश की सुगमता से विपरीत सम्बन्ध होता है।

प्रवेश और अल्पाधिकार का अस्तित्व—यदि किसी प्रचलित अल्पाधिकारी उद्योग मे प्रवेश अपेक्षाकृत सुगम हो तो सम्भव है कि यह उद्योग दीर्घकाल मे अल्पाधिकारी न रहे। ऐसा होना है अथवा नही यह व्यक्तिगत फर्म के सयत्र के अनुकूलतम आकार की तुलना मे वस्तु के बाजार के विस्तार पर निर्भर करेगा। लाभ की वजह से नई फर्में आकर्षित होंगी और उद्योग मे उत्पत्ति के बढने पर बाजार-कीमत घटेगी अथवा कीमत समूह नीचे की ओर जायेगा। जब कीमत व्यक्तिगत फर्मों की दीर्घकालीन औसत लागतो से अधिक नही रह जाती है, तो प्रवेश रुक जायेगा। यदि बाजार सीमित हो तो भी फर्मों की सख्या इतनी थोडी हो सकती है कि प्रत्येक फर्म के लिए दूसरो के कार्य कलापो पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। यदि ऐसा होता है, तो बाजार की स्थिति अल्पाधिकार की ही बनी रहती है। यदि बाजार इतना विस्तृत हो जाता है और फर्मों की सख्या उस बिन्दु तक बढ़ जाती है जहाँ प्रत्येक फर्म इस तरह नही सोचती कि इसकी क्रियाएँ अन्य फर्मों को प्रभावित करती है अथवा अन्य फर्मों की क्रियाएँ इसको प्रभावित करती है तो बाजार की स्थिति शुद्ध अथवा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की हो जाती है।

प्रवेश एव गठबधन—सुगम प्रवेश गठबधन की व्यवस्थाओ को समाप्त कर सकता है। हम पहले ही देख चुके हैं कि गठबधन की व्यवस्था मे एक व्यक्तिगत फर्म के लिए समूह से सम्बन्ध विच्छेद करने की तीव्र प्रेरणा विद्यमान रहती है। उसी प्रकार की

प्रेरणा एवं कार्टेलीकृत उद्योग में नई फर्मों को आकर्षित करने एवं प्रवेशी फर्मों को कार्टेल से बाहर रहने के लिए प्रेरित करने के लिए क्रियाशील रहती है। यदि प्रवेश करने वाली फर्म समूह से बाहर रहती है तो विभिन्न कीमतों पर माँग-वक्र समूह के माँग-वक्र से अधिक लोचदार होगा और परिणामस्वरूप इसके समक्ष ऊँची सीमान्त आय की सम्भावनाएँ होंगी। कार्टेल-कीमत से थोड़ी नीची कीमतों पर यह कार्टेल के अनेक ग्राहकों को अपनी तरफ ले सकती है। कार्टेल-कीमत से थोड़ी ऊँची कीमत पर यह या तो थोड़ी मात्रा में माल बेच सकती है अथवा कुछ भी नहीं बेच सकती। जो प्रवेशी फर्में गठबंधन वाले समूह से बाहर रह जाती हैं वे उस समूह के मुनाफों पर अधिकाधिक अपना अधिकार स्थापित करती जाती हैं अथवा वे ऐसी स्थिति बना देती हैं जिसमें इसे घाटा होने लगता है और अन्त में यह बाध्य होकर भंग हो जाती है।

यदि प्रवेशी फर्मों को कार्टेल में ले लिया जाता है तो भी इस बात की प्रबल सम्भावना रहती है कि अन्त में कार्टेल भंग हो जाएगा। चित्र 12–7 में मान लीजिए कि ΣMC व्यक्तिगत फर्मों के अल्पकालीन सीमान्त लागत-वक्रों का क्षैतिज योग है। यहाँ पर कीमत p और उद्योग में उत्पत्ति की मात्रा X होगी। नई फर्मों का प्रवेश
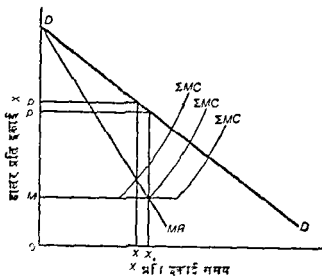
चित्र 12–7 दीर्घकालीन कार्टेल सन्तुलन और प्रवेश के प्रभाव

ΣMC वक्र को दाहिनी तरफ खिसका देगा,[13] जिससे उद्योग में लाभ अधिकतम करने वाली उत्पत्ति की मात्रा बढ़ जाएगी और लाभ अधिकतम करने वाली कीमत घट

---

13 ज्ञात कीजिए कि M वह न्यूनतम कीमत है जिस पर कोई भी फर्म उद्योग में प्रवेश करेगी।

जाएगी। जब उद्योग के सीमान्त लागत-वक्र को ΣMC_1 तक खिसकाने के लायक पर्याप्त मात्रा मे फर्मों का प्रवेश हो चुकता है, तो कीमत अनिवार्यत घटकर p_1 पर आ जाती है और उत्पत्ति X_1 तक बढ जाती है, फिर भी उद्योग मे लाभ बने रह सकते हैं। ऐसी स्थिति मे अधिक फर्मों का प्रवेश होगा जिससे उद्योग का सीमान्त लागत-वक्र खिसक कर ΣMC_2 जैसी किसी स्थिति मे आ जाएगा, लेकिन उत्पत्ति के X_1 से आगे बढाये जाने पर उद्योग मे मुनाफे कम हो जाएँगे। अतिरिक्त उत्पत्ति के लिए उद्योग की सीमान्त आय उद्योग की सीमान्त लागत से कम होगी। कार्टेल के लिए अधिक लाभप्रद मार्ग यह होगा कि वह अतिरिक्त फर्मों को बेकार रखे और उनको केवल उद्योग के मुनाफो को कम करने दे। अतिरिक्त फर्मों की सयत्र-सम्बन्धी लागतो से उद्योग की कुल लागतो मे वृद्धि हो जाती है और अन्त मे उद्योग मे पर्याप्त सख्या मे फर्मों का प्रवेश हो जाता है जिससे इसमे समस्त लाभ समाप्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति मे इस बात के लिए प्रबल प्रेरणा पाई जाएगी कि व्यक्तिगत फर्में कार्टेल से अलग हो जाएँ। यदि कोई भी फर्म अपना माल स्वय बेचती है तो कार्टेल की कीमत के पास इसका माँग वक्र कार्टेल के माँग-वक्र से अधिक लोचदार होता है। फर्म की सीमान्त आय कार्टेल की सीमान्त आय से अधिक होती है। यही नही बल्कि फर्म की औसत लागत भी कार्टेल की औसत लागत से कम होती है।[14] जो फर्म अलग हो सकती है वह लाभ कमा सकती है बशर्ते कि अन्य फर्में कार्टेल मे ही रह जाएँ और कार्टेल-कीमत कायम रखी जा सके। प्रत्येक व्यक्तिगत फर्म के समक्ष पाए जाने वाले प्रलोभनो के कारण कार्टेल के भग होने की सम्भावना हो जाती है।[15]

प्रवेश मे बाधाएँ : चूँकि उद्योग मे प्रवेश की सुगमता गठबधन वाले अल्पाधिकार की एक तरह की सजा मानी जाती है, इसलिए गठबधन प्राय तभी कायम रखा जा सकता है जब कि प्रवेश पर प्रतिबन्ध हो और इसका एक उद्देश्य सम्भावी प्रवेश-कर्ताओ के मार्ग मे बाधाएँ खडी करना होता है। नई फर्मों के प्रवेश मे बाधाएँ या तो उद्योग की प्रकृति मे ही निहित हो सकती हैं अथवा वे उद्योग की प्रचलित फर्मों के द्वारा स्थापित की जा सकती हैं। उनको हम क्रमश "प्राकृतिक" बाधाएँ व "कृत्रिम" बाधाएँ कह कर पुकारेंगे। विशिष्ट उद्योगो मे प्रवेश के मार्ग मे प्राकृतिक बाधाएँ अवश्यम्भावी हो सकती हैं। कृत्रिम बाधाओ को दूर करने की बात सोची जा सकती है।

---

14 व्यक्तिगत फर्म की लागत नीची होती है क्योंकि कार्टेल कई फर्मों की सयत्र क्षमता को बेकार बनाये हुए है जिससे कार्टेल की औसत लागतें बढ़ जाती हैं।

15 देखिए डॉन पैटिनकिन, "Multiple-Plant Firms, Cartels and Imperfect Competition", Quarterly Journal of Economics, vol. LXI (Feb, 1947), pp. 173-205

सम्भवत प्रवेश के मार्ग मे सबसे महत्वपूर्ण बाधा उद्योग मे फर्म के लिए सयत्र के अनुकूलतम आकार के सम्बन्ध मे वस्तु के बाजार का छोटापन होना है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि उद्योग मे दो फर्मे है और प्रत्येक सयत्र के ऐसे आकार के साथ अपने कार्य का सचालन करती है जो अनुकूलतम के कुछ समीप होता है। प्रत्येक की औसत लागतो से कीमत अधिक होती है और कुछ लाभ प्राप्त किया जाता है। अब तक हमने लाभ के अस्तित्व को नई फर्मों के प्रवेश के लिए सकेत माना है। सम्भावी प्रवेशकर्ता लाभ पर नजर रखते हैं और प्रवेश करने की सम्भावना पर विचार करते हैं। उन्हे पता लगता है कि यदि एक नई फर्म सयत्र के अनुकूलतम आकार से काफी छोटे आकार पर प्रवेश करती है तो प्रवेशकर्ता की औसत लागतें इतनी ऊँची होगी कि कोई लाभ अर्जित नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, यदि एक नई फर्म सयत्र के अनुकूलतम आकार के साथ प्रवेश करती है तो उद्योग मे उत्पत्ति की मात्रा इस सीमा तक बढ जायगी कि उद्योग मे चालू फर्मों एव प्रवेशकर्ता दोनो के लिए कीमत औसत लागत से कम होगी। अत नई फर्मों का प्रवेश नहीं होगा।

प्रवेश के मार्ग मे दूसरी प्राकृतिक बाधा बडे एव जटिल सयत्र के स्थापित करने एव इसके निर्माण के लिए कोष प्राप्त करने की कठिनाई होती है। इस सम्बन्ध मे मोटरगाडी-उद्योग का दृष्टान्त लिया जा सकता है। एक सम्भाव्य प्रवेशकर्ता के लिए प्रारम्भिक विनियोग की राशि काफी ऊँची होती है। काफी बडा स्थान, कई इमारतें एव विशिष्टीकृत भारी उपकरण प्राप्त करने होते हैं। काफी दक्ष एव उचित वेतन प्राप्त कर्मचारियो की आवश्यकता होती है। विक्रय कार्य, देख भाल एव मरम्मत की सुविधाओ के लिए राष्ट्रव्यापी सगठन स्थापित करना होता है। प्रवेश की कठिनाइया इतनी बडी होती है कि द्वितीय महायुद्ध के समय से उद्योग मे रिकाड लाभ प्राप्त होने के बावजूद भी कुछ ही फर्मों को इनका मुकाबला करने हेतु आवश्यक वित्तीय सहारा मिल पाया है। मोटरगाडी उद्योग म प्रवेश के माग मे केवल यही बाधा नही रही है, लेकिन यह एक बडी बाधा अवश्य मानी गई है।

प्रवेश के मार्ग म जो कृत्रिम बाधाएँ होती हैं उनम राज्य के द्वारा लागू की गई बाधाएँ अथवा राज्य द्वारा समर्थित बाधाएँ अधिक महत्व रखती हैं। उद्योग मे कुछ फर्मो के द्वारा आधारभूत मशीनो अथवा प्रौद्योगिक प्रक्रियाओ के पटेण्ट अधिकार प्राप्त किय जा सकते है। हो सकता है कि ये फर्मे अन्य थोडी-सी फर्मों को मशीनें या प्रक्रियाएँ पट्टे पर देकर उन पर नियन्त्रण रखें।[16] अथवा उद्योग मे फर्मे परस्पर

16 काँच के डिब्बे के उद्योग म प्रवेश इसी तरह से नियन्त्रित किया गया है। देखिए बिलोइस, पूर्वोद्धृत, पृ० 73-78

लाइसेंस देने की व्यवस्थाओ के अन्तर्गत एक दूसरे को प्रत्येक के पेटेण्टो तक पहुँचने दें, लेकिन वे नई फर्मों को उनके उपयोग की इजाजत न दें।[17]

प्रवेश के मार्ग मे सरकार द्वारा समर्थित बाधाएँ परिवहन के क्षेत्र मे व्यापक रूप से पाई जाती हैं। स्थानीय आधार पर टैक्सी-कम्पनियाँ व बस-कम्पनियाँ उद्योग मे सीमित "प्रतिस्पर्धा" की गारण्टी देने वाले अधिकारो के अन्तर्गत अपना कार्य करती हैं। वायु-परिवहन को छोडकर अन्तर्राज्यीय सार्वजनिक परिवहन के क्षेत्र मे प्रवेश अन्तर्राज्यीय वाणिज्य-आयोग के द्वारा नियमित किया जाता है। वायु-परिवहन के क्षेत्र मे प्रवेश का नियमन नागरिक उड्डयन बोर्ड के द्वारा किया जाता है।

स्थानीय सरकारें अनेक स्थानीय अल्पाधिकारी उद्योगो मे प्रवेश को नियमित करती हैं। अनेक शहरो की भवन-संहिताएँ पूर्वनिर्मित मकानो (prefabricated houses) अथवा मकानो के हिस्से बनाने वाली फर्मों के प्रवेश को रोकती हैं। प्राय स्थानीय लाइसेन्स-सम्बन्धी अधिनियमो का उपयोग नाइयों, मद्यशालाओ, नलकारो एव प्रेस-कर्म कराने वाले महाब्राह्मणो एव अन्य सेवा-व्यवसायो मे सलग्न व्यक्तियो की सख्या को सीमित करने मे किया जाता है। ऐसे प्रतिबन्धात्मक उपायो का समर्थन योग्यता के स्तरों को बनाये रखने, अवांछनीय व्यक्तियो को व्यवसायो से बाहर रखने एव अन्य प्रकार से जनता की सुरक्षा के लिए किया जाता है।

भावी प्रवेशकर्ताओ के मार्ग मे दूसरी कृत्रिम बाधा पहले से ही मैदान मे होने वाली फर्मों के द्वारा माल के उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल के मूल स्रोतो पर नियन्त्रण का पाया जाना है। इस बाधा का सबसे अधिक महत्त्व उस समय होता है जबकि कच्चे माल के स्रोतो का तो केन्द्रीकरण बहुत ही अधिक पाया जाता है। कच्चे माल के स्रोतो का केन्द्रीकरण स्वामित्व के केन्द्रीयकरण मे सुविधा पहुँचाता है। मेग्नीशियम, निकल, मोलिबडिनम व एल्यूमिनियम इसके दृष्टान्त-स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

तृतीय, उद्योग मे प्रचलित फर्मों की कीमत-नीतियाँ मार्ग अवरुद्ध कर सकती हैं। नई फर्मों के प्रवेश की सम्भावनाएँ चालू फर्मों को सक्रिय बना सकती हैं। चालू फर्में सम्भावी प्रवेशकर्ताओ को यह धमकी देकर डरा सकती हैं कि वे कीमत इतनी कम कर देंगी कि जिससे लाभ की सम्भावनाएँ ही मिट जायेंगी। अथवा यदि नई फर्में प्रवेश करने का साहस दिखाती हैं तो चालू फर्में कम कीमत पर माल बेच कर उन्हे पुन. शीघ्र ही भगा देती हैं। इस सम्बन्ध मे सुप्रसिद्ध दृष्टान्त उन्नीसवी शताब्दी के

17. बिजली के लैम्प-सम्बन्धी उद्योग की घरेलू शाखा में परस्पर लाइसेंस देने की व्यवस्थाएँ विस्तृत रूप मे प्रयुक्त हुई हैं। देखिये स्टॉकिंग व वाटकिन्स, पूर्वोद्धृत, पृ० 325-327, विशेषतया फुटनोट 75.

अन्तिम भाग मे स्टेण्डर्ड आयल से लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, बार बार होने वाले कीमत-सघर्ष उद्योग मे लाभ की सम्भावनाओ के सम्बन्ध मे एक ऐसा अनिश्चित वातावरण उत्पन्न कर देते है जिससे नई फर्में इससे साफ बचने का प्रयास करने लगती है।

चतुर्थ, वस्तु विभेद भी प्रवेश के मार्ग मे एक कृत्रिम बाधा का काम कर सकता है। हो सकता है कि उद्योग का माल विशेष विक्रेताओ के नामो से इतना गहरा जुड जाय कि उपभोक्ता "अन्य ब्राडो' का माल खरीदने से इन्कार कर दें। यद्यपि स्टेण्डर्ड ब्राडो मे परस्पर अतर पाया जाता है फिर भी सभी उपभोक्ता इनके बारे मे समुचित जानकारी रखते है। उपभोक्ता नये, अपरिचित एव परिणामस्वरूप "घटिया" ब्राडो से तनिक डरते है और उनका उपभोग करने से इन्कार कर देते है। इस प्रकार से इन्कार करना भी मोटरगाडी उद्योग मे प्रवेश के मार्ग मे एक महत्त्वपूर्ण बाधा होती है।

एक अल्पाधिकारी उद्योग मे प्रवेश के प्रतिबन्धित होने से उद्योग की फर्मों के लिए दीर्घकाल मे भी लाभार्जन करते रहना सम्भव हो जाता है। हम यह नही कह रहे है कि अल्पाधिकारी उद्योगो मे शुद्ध लाभ सदैव पाये जाते हैं। हानियाँ हो सकती है और होती भी है। अथवा, उद्योग मे फर्में केवल औसत लागतें ही प्राप्त कर सकती है, जिससे उन्हे न तो लाभ होता है और न हानि ही। जब लाभ ही नही होते हैं तो प्रवेश की इच्छा नही की जायेगी, चाहे प्रवेश प्रतिबन्धित हो अथवा खुला हो। लाभ की सम्भावना ही प्रवेश के लिए प्रेरणा प्रदान करती है और जब प्रवेश ही प्रतिबन्धित होता है तो लाभ एक समयावधि मे भी जारी रह सकते हैं। प्रतिबन्धित प्रवेश एक स्वतन्त्र उद्यम वाली अर्थव्यवस्था मे लाभो को उत्पादन क्षमता के सगठन मे अपनी आवश्यक भूमिका निभाने से रोकता है।

गैर-कीमत प्रतिस्पर्धा

यद्यपि अल्पाधिकारी वस्तु की कीमत को घटाकर एक दूसरे के बाजार के हिस्सो मे हस्तक्षेप करने मे अनिच्छुक हो सकते हैं, लेकिन उन्ही परिणामो को प्राप्त करने के लिए अन्य तरीको के उपयोग मे उन्हे कोई हिचकिचाहट नही प्रतीत होती। प्रतिद्वन्द्वियो की कीमत/कीमतो की तुलना मे खुले रूप मे अपनी कीमतें घटाने से कीमत-सघर्षो की सम्भावनाओ के लिए मार्ग खुल जाता है जो कुछ फर्मों के लिए घातक सिद्ध हो सकता है लेकिन लगभग उन्ही परिणामो को प्राप्त करने के लिए अधिक सूक्ष्म एव अधिक सुरक्षित तरीका वस्तु विभेद को माना जा सकता है। वस्तु विभेद दो बडे रूपो मे हो सकता है (1) विज्ञापन और (2) वस्तु की डिजाइन व गुण मे परिवर्तन। दोनो रूप एक साथ पाये जा सकते है और बहुधा पाये भी जाते हैं,

लेकिन विश्लेषण के लिए हम उन पर अलग-अलग विचार करेंगे।

विज्ञापन

विज्ञापन का प्रमुख उद्देश्य एक अकेले विक्रेता के समक्ष पाये जाने वाले माँग-वक्र को दाहिनी ओर खिसकाना और इसको कम लोचदार बनाना होता है। इससे विक्रेता उसी कीमत पर अथवा सम्भवत ऊँची कीमत पर वस्तु की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा बेचने मे समर्थ हो सकेगा और साथ मे कीमत-संघर्ष को छेड़ने का भी भय नही रहेगा। प्रत्येक विक्रेता दूसरे विक्रेताओ के बाजारो मे विज्ञापन के जरिए हस्तक्षेप करने का प्रयास करता है। जब एक फर्म एक दक्ष एव सफल विज्ञापन-कार्यक्रम को लागू करती है तो साधारणतया ऐसे ही कार्यक्रमों को लागू करने म प्रतिद्वन्द्वियो को थोडा समय लग जाता है और इसी समयावधि म लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं।

प्राय एक उद्योग मे विक्रेताओ की वस्तुओ म प्रभावपूर्ण अतर केवल विज्ञापन के जरिए से ही किया जा सकता है। प्रत्येक विक्रेता अपने ही विशिष्ट ब्राड की तरफ ग्राहको को आकर्षित करने का प्रयास करता है, हालाकि मूल रूप से प्रत्येक विक्रेता का माल उद्योग म अन्य विक्रेताओ के जैसा ही होता है। इस सम्बन्ध मे एस्परीन उद्योग के विक्रेताओ की सफलता विशेष रूप स ध्यान देने योग्य है। सभी पाँच-ग्रेन वाली एस्परीन की गोलियाँ किसी सयुक्त राज्य अमेरिका के औषध ग्रन्थ के नमूने के मुताबिक बनाई हुई होती है और रोगी के लिये सभी एक-सी प्रभावपूर्ण होती हैं, फिर भी कुछ ऐसे विक्रेता जो सारे देश म प्रसिद्ध है उसी उद्योग म अन्य विक्रेताओ से काफी ऊँची कीमतो पर ग्राहको को आकर्षित करने एव अपनी तरफ रखने मे समर्थ हो जाते हैं।

कुछ दशाओ मे प्रतिद्वन्द्वियो की तरफ से किये गये विज्ञापन-अभियानो की वजह से केवल वैयक्तिक विक्रेताओ की लागतों म ही वृद्धि हो पाती है। हो सकता है कि एक अकेले विक्रेता की तरफ से अन्य विक्रेताओ के बाजारो मे हस्तक्षेप करने के प्रयास का पूर्वानुमान अन्य विक्रेता लगा लें। वे अपनी तरफ से प्रतिरोधी विज्ञापन-अभियान चालू कर देते हैं और इस प्रकार समस्त विक्रेता बाजार मे अपनी प्रारम्भिक दशाओ को ही बनाये रखने मे सफल हो पाते हैं। हो सकता है कि विज्ञापन-क्रिया की वजह से वस्तु के समग्र बाजार मे जरा भी विस्तार न हो—इस सम्बन्ध मे आधुनिक सिगरेट उद्योग का दृष्टान्त लिया जा सकता है। लेकिन जब एक बार प्रतिद्वन्द्वी विज्ञापन प्रारम्भ हो जाता है तो कोई भी अकेला विक्रेता बाजार मे अपना स्थान खोये बिना वापिस नही हट सकता। विज्ञापन-परिव्यय व्यक्तिगत फर्मों के लागत ढाँचो मे "समा" जाते हैं और परिणामस्वरूप माल की कीमतें अन्य दशाओ की अपेक्षा अधिक हो जाती हैं।

प्रश्न उठता है कि अपना लाभ अधिकतम करने वाले व्यक्तिगत विक्रेता के द्वारा विज्ञापन के जरिए गैर-कीमत प्रतियोगिता कहाँ तक काम में ली जायगी ? जिन सिद्धान्तों ने लाभ अधिकतमकरण में अब तक हमारा मार्गदर्शन किया है वे इस स्थिति में भी लागू होते हैं। विज्ञापन-परिव्ययों से विक्रेता की कुल प्राप्तियों में वृद्धि होने की आशा की जा सकती है, लेकिन एक बिन्दु से परे प्रति इकाई समयानुसार उत्तरोत्तर अधिक परिव्ययों से सीमांत आय में क्रमश कम वृद्धि होती जाएगी। दूसरे शब्दों में ज्यों-ज्यों परिव्यय बढ़ता जाता है विज्ञापन से सीमान्त-आय घटती जायगी। इसी प्रकार अधिक विज्ञापन परिव्ययों से विक्रेता की कुल लागतों में वृद्धि हो जाती है, अर्थात् विज्ञापन की सीमान्त लागतें धनात्मक (positive) होती हैं। विज्ञापन पर लाभ अधिकतम करने वाले परिव्यय की मात्रा वह होगी जहाँ पर विज्ञापन की सीमान्त लागत इससे प्राप्त सीमान्त आय के बराबर हो।[18]

किस्म व डिजाइन में अन्तर

विज्ञापन के साथ प्राय विशिष्ट वस्तुओं की डिजाइन व किस्म के परिवर्तन एक विक्रेता की वस्तु को दूसरे विक्रेता की वस्तु से पृथक् करने के लिए काम में लिये जाते हैं। एक विक्रेता की तरफ से किये गये परिवर्तनों का उद्देश्य प्राय यह होता है कि उपभोक्ता अन्य विक्रेताओं के माल की बनिस्पत उसका माल ज्यादा पसंद करें, अर्थात् इसका उद्देश्य अपने माँग-वक्र को दायीं तरफ खिसकाना (अथवा कुल बाजार में अपना अंश बढ़ाना) और अपने माँग वक्र को कम लोचदार बनाना होता है। इसके अतिरिक्त, गुण-परिवर्तन का उपयोग बाजार को लम्बवत् रूप में बढ़ाने के लिए भी किया जा सकता है–विभिन्न किस्में क्रेताओं के विभिन्न वर्गों या समूहों को आकर्षित करने के लिए बनायी जाती हैं।

जब गुण व डिजाइन के परिवर्तनों का उपयोग व्यक्तिगत फर्मों के बाजार के हिस्सों को बढ़ाने के लिए किया जाता है तो हम यह आशा नहीं कर सकते कि प्रतिद्वन्द्वी फर्में उनके बाजार सिकुड़ने जाने पर भी शान्त बैठी रहें। प्रतिद्वन्द्वियों के द्वारा बदला लिया जायेगा। नई सफल रीतियों की नकल की जायेगी और उनमें सुधार किया जायेगा। व्यक्तिगत फर्में थोड़े समय के लिए बाजार में अपने हिस्से को बढ़ाने

18 व्यवहार में सम्भवत विज्ञापन-परिव्ययों के प्रभावों के सम्बन्ध में फर्म के द्वारा किये गए अन्य लागत-परिव्ययों के प्रभावों की अपेक्षा कम जानकारी होती है। फिर भी विज्ञापन-बजट की "सही" मात्रा के सम्बन्ध में व्याख्यात्मक का बुद्धिमत्तापूर्ण दृष्टिकोण यह होता है जिसमें इसके संकुचन या विस्तार से उत्पन्न अनुमानित सीमांत आय और अनुमानित सीमांत लागत को ही आधार बनाया जाता है।

मे सफल भले ही हो जाएँ, लेकिन स्थायी रूप से वृद्धि करने के लिए ऐसी फर्मों को अपने प्रतिद्वन्द्वियों से आगे निकलना होगा।

बाजार मे विशिष्ट फर्मों के हिस्सो मे वृद्धि करने के लिए वस्तु-परिवर्तन की दृष्टि से मोटरगाडी उद्योग एक सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। एक उत्पादक बाजार मे शक्ति-मार्गनिर्देशक (power steering) का श्रीगणेश करता है। उपभोक्ता इस नई रीति को तुरन्त अपना लेते है और अन्य उत्पादक भी अपनी बाजार-स्थिति को फिर से प्राप्त करने के लिए ऐसा ही करते है। दूसरा उत्पादक रबर पर मोटर को मढ देता है और यह प्रक्रिया दोहराई जाती है। निम्न दबाव वाले टायर, स्वचालित सम्प्रेषण यत्र (automatic transmissions), ऊँची हॉर्सपावर एव अन्य कई वास्तविक एव काल्पनिक सुधार प्रारम्भ मे एक उत्पादक के द्वारा बाजार के अपने हिस्से का विस्तार करने के लिए लागू किये जाते हैं और बाद मे अन्य उत्पादक बाजार मे अपने हिस्सो को पुन प्राप्त करने के लिए अथवा इनको बनाये रखने के लिए इनकी नकल कर लेते हैं।

जब एक वस्तु के बाजार का लम्बवत रूप मे विस्तार करने के लिए किस्म के अन्तरो का समावेश किया जाता है, तो हो सकता है कि एक ही फर्म माल की विभिन्न किस्मो का उत्पादन क्रेताओ के विभिन्न समूहों को विभिन्न कीमतो पर बेचने के लिए करे, अथवा यह भी हो सकता है कि विभिन्न फर्में वस्तु की विशेष किस्मो मे विशिष्टीकरण प्राप्त करले। प्रारम्भ मे एक वस्तु, जैसे कूडा डालने के सुन्दर पात्र (deluxe garbage disposals) माध्यम आय वाले समूह के बाजारो के लिए उत्पादित किये जाते हैं। विक्रेताओ को मालूम होता है कि 'अति सुन्दर" (super deluxe) मॉडलो का उत्पादन करके बाजार का विस्तार ऊँची आय वालो मे किया जा सकता है। इसी प्रकार सुन्दर मॉडल के फैन्सी हिस्सो को हटाकर एक स्टेण्डर्ड मॉडल को नीची कीमत पर नीची आय वाले समूहो को बेचा जा सकता है। जब विभिन्न फर्में वस्तु की एक विशेष किस्म मे विशिष्टीकरण प्राप्त करती है तो किस्म के अन्तर बाजार-सहभाजन का आधार बन सकते हैं।

वस्तु-परिवर्तन प्राय उपभोक्ताओ के सर्वाधिक हित मे होता है। जब यह उपभोग करने वाली जनता को औद्योगिक शोध के परिणाम सुधरी हुई वस्तु के रूप मे पहुँचाता है तो उपभोक्ताओ की इच्छाओ की पहले से ज्यादा अच्छी तरह से पूर्ति हो सकती है। पुराने हस्तचालित अण्डापेषण-यत्र (egg beater) के बजाय विद्युत् मिश्रक-यत्र (electric mixer), सरल मॉडल के बजाय अधिक आसानी से ले जाये जा सकने वाले एव अधिक उपयोग वाले टैंक-किस्म के वायुविहीन स्थल को साफ करने वाले यत्र (vacuum cleaner), पालाविहीन प्रशीतक यत्र (रेफरिजरेटर), अधिक

सुनिश्चित व पुरानी किस्म की ध्वनि प्रणाली (high fidelity stereo sound system), मोटरगाडी पर सेल्फ स्टार्टर और वस्तु मे अनेक तरह के अन्य परिवर्तन सम्भवत उपभोक्ताओ की आवश्यकताओ की ज्यादा पूर्ति के द्योतक होते हैं।

लेकिन कुछ वस्तु-परिवर्तन तो प्रतियोगी विज्ञापन की ही श्रेणी मे आता है। इससे लागतो मे तो वृद्धि होती है लेकिन माँग मे अथवा उपभोक्ता की इच्छाओ की पूर्ति मे कोई वृद्धि नही होती। डिजाइन के ऐसे परिवर्तन हो सकते हैं जिनमे वस्तु की किस्म मे कुछ भी सुधार नही होता। डिजाइन के परिवर्तन का उद्देश्य केवल 1974 के मॉडल को 1975 के मॉडल से पृथक् करना हो सकता है। प्रत्येक विक्रेता यह सोचता है कि अन्य विक्रेता कुछ परिवर्तन अवश्य करेंगे और वह निर्णय करता है कि बाजार मे अपने हिस्से को बनाये रखने के लिए उसे भी ऐसा ही करना चाहिये।

डिजाइन व किस्म परिवर्तनो के सम्बन्ध मे लाभ-अधिकतमकरण के सिद्धान्त सुपरिचित ही माने जाते हैं। जिन परिवर्तनो से कुल लागतो की अपेक्षा कुल प्राप्तियो मे अधिक वृद्धि होती है, उनसे लाभ मे वृद्धि होती है (अथवा हानि मे कमी होती है), अथवा जिन परिवर्तनो से कुल प्राप्तियो की अपेक्षा कुल लागतो मे अधिक कमी होती है, उनसे लाभों मे वृद्धि होती है (अथवा हानि मे कमी होती है)। वस्तु के परिवर्तनो के सम्बन्ध मे लाभ को अधिकतम करने के लिए फर्म को परिवर्तन उस बिन्दु तक करने चाहिएँ जहाँ पर इनसे प्राप्त सीमान्त आय इनकी सीमान्त लागत के बराबर हो।

अल्पाधिकार के कल्याण पर प्रभाव

शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक बाजार ढाँचो की तुलना मे अल्पाधिकारी बाजार-ढाँचो से यह आशा की जा सकती है कि वे उपभोक्ता के कल्याण पर विपरीत प्रभाव डालेंगे। इसमें समस्याएँ अनिवार्यत वही होती हैं जो शुद्ध एकाधिकार मे पाई जाती हैं। उत्पत्ति पर प्रतिबन्ध होता है, फर्म को आन्तरिक अकार्यकुशलता और विक्री-सवर्धन क्रियाओ म साधन-अपव्यय का सामना करना होता है। लेकिन वस्तु विभेद से कुछ कल्याण-सम्बन्धी लाभ भी प्राप्त हो सकते हैं।

उत्पत्ति-प्रतिबध

एक अल्पाधिकारी फर्म के माल के लिए साधारणतया जो माँग-वक्र होता है वह नीचे दायी ओर झुकता है और यह पूर्णतया लोचदार से कम होता है। परिणामस्वरूप, विक्री की प्रत्येक मात्रा पर सीमान्त आय कीमत से कम होती है, और चूँकि लाभ अधिकतम करने वाली फर्म उत्पत्ति की वह मात्रा उत्पन्न करती है जहाँ सीमान्त आय सीमान्त लागत के बराबर होती है, इसलिए सीमान्त लागत वस्तु की कीमत से कम

होगी। यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि इस वस्तु के उत्पादन मे प्रयुक्त साधन उपभोक्ताओ के लिए वैकल्पिक उपयोगो की बजाय इस उपयोग मे ज्यादा मूल्य रखते हैं। इस वस्तु मे साधनो के हस्तान्तरण से कल्याण मे वृद्धि होगी और इसकी उत्पत्ति का विस्तार उस बिन्दु तक होगा जहाँ सीमान्त लागत वस्तु की कीमत के बराबर हो जाती है।

इसके अतिरिक्त एक अल्पाधिकारी फर्म दीर्घकाल मे लाभ अर्जित कर सकती है क्योकि उद्योग मे प्रवेश सीमित होता है। वस्तु की कीमत उत्पादन की औसत लागतो से अधिक होती है जो यह सूचित करती है कि उद्योग मे उत्पादन-क्षमता का विस्तार होने से कल्याण मे वृद्धि होगी। लेकिन सीमित प्रवेश साधनो के इस वाछनीय पुनरावटन को होने से रोकता है।

फर्म की कार्यकुशलता

विशेष वस्तुओ के उत्पादन मे व्यक्तिगत फर्मो की अधिकतम सम्भाव्य आर्थिक कार्यकुशलता उस समय प्राप्त होती है जबकि उन फर्मों को सयत्र के अनुकूलतम आकारो का निर्माण करने और उनको उत्पत्ति की अनुकूलतम दरो पर सचालित करने के लिए प्रेरित किया जाता है। हम पहले देख चुके हैं कि दीर्घकाल मे अल्पाधिकार के अन्तर्गत इसकी तरफ कोई स्वत प्रवृत्ति नही होती है। फर्म की उत्पत्ति इसके कोटा, इसके बाजार अश अथवा अपनी सीमान्त आय के सम्बन्ध मे इसकी प्रत्याशाओ एव इसकी दीर्घकालीन सीमान्त लागतो पर निर्भर करती है। जब एक बार दीर्घकालीन उत्पत्ति की मात्रा निश्चित कर ली जाती है तो फर्म उस मात्रा को ज्यादा से-ज्यादा सस्ता उत्पन्न करना चाहेगी, अर्थात् यह सयत्र का ऐसा आकार बनायेगी जिसका अल्पकालीन औसत लागत-वक्र उत्पत्ति की उस मात्रा पर दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र को स्पर्श करे। वाछित उत्पत्ति की मात्रा का उत्पत्ति की अनुकूलतम दर पर सचालित सयत्र के अनुकूलतम आकार की उत्पत्ति से मेल खाना एक दैवयोग की ही बात होगी।

यहाँ इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि अल्पाधिकारी किस्म के बाजार की फर्में अन्य किस्म के बाजार सगठन की फर्मों की अपेक्षा वस्तु विशेष के उत्पादन मे ज्यादा कार्यकुशलता दिखला सकती है, हालाकि वे उत्पत्ति की अनुकूलतम दरों पर सचालित सयत्र के अनुकूलतम आकारो का उपयोग नही करती। सयत्र का अनुकूलतम आकार वस्तु के बाजार की तुलना मे काफी बडा हो सकता है, जिससे उद्योग में इस बात की गुजाइश नही रह जाती कि पर्याप्त मात्रा मे फर्में इसके बाजार को शुद्ध प्रतिस्पर्धा के बाजार मे बदल दें। यदि उद्योग की फर्मो के टुकडे किए जाते हैं अथवा उनके काफी सूक्ष्म भाग किए जाते है ताकि कोई एक फर्म बाजार कीमत को विशेष

रूप से प्रभावित न कर सके, तो प्रत्येक के पास साधन के अनुकूलतम आकार से काफी छोटा आकार ही रह जाएगा। परिणामस्वरूप, ऐसी व्यवस्था में अल्पाधिकारी बाजार ढाँचे की तुलना में वस्तु की लागतें और कीमत (कीमतें) ऊँची और उत्पत्ति की मात्राएँ नीची पाई जा सकती हैं।

विक्री-सवर्धन में अपव्यय

अल्पाधिकारी बाजारों में फर्में व्यापक रूप से विक्री-सवर्धन क्रियाओं में सलग्न होती हैं जिनका प्रमुख उद्देश्य प्रतिद्वन्द्वियों के बाजारों के स्थान पर स्वय के बाजारों का विस्तार करना होता है। हम पहले देख चुके हैं कि ऐसी क्रियाएँ मुख्यतया विज्ञापन एव वस्तु के गुण व डिजाइन के परिवर्तनों के रूप में होती है। जहाँ तक ये क्रियाएँ उपभोक्ता की सन्तुष्टि में कोई वृद्धि नही करती, इन पर व्यय किए गए साधन नष्ट हुए माने जाते हैं। फिर भी वे उपभोक्ताओं को मनोरजन एव वस्तु की सुधरी हुई किस्म के रूपों में कुछ सतोष अवश्य प्रदान करती हैं। ऐसे मामलों में आर्थिक कार्य-कुशलता व कल्याण के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह होता है कि विक्री-सवर्धन क्रियाओं में प्रयुक्त साधनों से प्राप्त अतिरिक्त सतोष उनकी लागतों के बराबर होता है अथवा नहीं, अर्थात्, यह उस सतोष के बराबर होना है अथवा नहीं जिसे साधन वैकल्पिक उपयोगों में उत्पन्न कर सकते थे। चूंकि मनोरजन एव वस्तु की किस्म के परिवर्तनों के सम्बन्ध में निर्णय अर्थव्यवस्था के बाजार-रचना में उपभोक्ताओं के बजाय व्यावसायिक फर्मों के द्वारा लिए जाते हैं, इसलिए इस बात का समर्थन प्रबल रूप से किया जा सकता है कि इस प्रकार से प्रयुक्त किए गए साधनों पर व्यय काफी अधिक हो जाता है और उसका गलत दिशा में उपयोग हो जाता है; एव उपभोक्ता के द्वारा प्राप्त किए गए सतोष का मूल्य इसको प्रदान करने में सलग्न साधनों की लागतों से कम होना है। जहाँ तक यह स्थिति पाई जाती है, परिणाम आर्थिक अपव्यय के रूप में मिलता है और कल्याण अनुकूलतम से कम हो जाता है।

वस्तुओं की परिधि

विभेदीकृत अल्पाधिकार शुद्ध प्रतिस्पर्धा अथवा शुद्ध एकाधिकारी की तुलना में उपभोक्ताओं को चुनाव के लिए ज्यादा किस्म की वस्तुएँ उपलब्ध करता है। एक ही किस्म व गुण वाली मोटरगाड़ी तक सीमित रहने की बजाय प्रत्येक उपभोक्ता उस किस्म व गुण को चुन सकता है जो उसकी आवश्यकताओं और आमदनी के सबसे ज्यादा अनुकूल हो। ये ही बातें टेलिविजन रिसीवरों, धुलाई की मशीनों, रेफ्रिजरेटरों अथवा मनोरजन पर भी लागू होती हैं। वस्तु के गुण की श्रेणियाँ, जहाँ प्रत्येक निम्न श्रेणी अपेक्षाकृत नीची कीमत पर बेची जाती है, विभिन्न मदों के लिए उपभोक्ता

की खरीद की विभाज्यता (divisibility) को बढा देती हैं। परिणामस्वरूप, विभिन्न वस्तुओं के बीच अपनी आय को विभाजित करने के सम्बन्ध में उसके लिए अवसर इतने बढ जाते हैं कि वह आवश्यकताओ की सन्तुष्टि का अपेक्षाकृत ऊँचा स्तर प्राप्त कर सकता है, जो अन्यथा सम्भव नही होता। इसके अतिरिक्त वस्तु-विभेद उपभोक्ताओ को यह अवसर देता है कि वे वस्तु-विशेष की वैकल्पिक डिजाइनो के सम्बन्ध मे स्वय की रुचियो व अधिमानो को प्रगट कर सकें। विभेदीकृत अल्पाधिकार के अन्तर्गत वस्तुओ की जो परिधि उपलब्ध होती है वह उपभोक्ता के पक्ष मे जाती है अथवा उसके कल्याण मे उस सीमा से अधिक वृद्धि होती है जितनी अन्यथा होती।

सारांश

अल्पाधिकार की दशाओ के अन्तर्गत उद्योग मे इतनी थोडी फर्में होती हैं कि एव अकेली फर्म की क्रियाएँ अन्य फर्मों को प्रभावित कर सकती हैं और उनकी तरफ से प्रतिक्रियाओ को जन्म देती हैं। एक फर्म का माँग-वक्र उस स्थिति मे निर्धारित (determinate) माना जाता है जब कि वह सही रूप मे यह बतला सके कि उसकी बाजार सम्बन्धी क्रियाओ से उसके प्रतिद्वन्द्वियो पर क्या प्रतिक्रियाएँ होगी, अन्यथा यह अनिर्धारित ही बना रहेगा।

हमने अल्पाधिकारी उद्योगो का वर्गीकरण प्रत्येक उद्योग की फर्मों के बीच पाए जाने वाले गठबन्धन की मात्रा के आधार पर किया है। पूर्ण गठबन्धन के अन्तर्गत हमने कार्टेल जैसी फर्मों के समूहो को शामिल किया है। अपूर्ण गठबन्धन मे हमने उन स्थितियो को शामिल किया है जिनमे कीमत-नेतृत्व व भद्र व्यक्तियो के समझौते पाए जाते हैं। स्वतन्त्र कार्य-कलापो के अन्तर्गत हमने अगठबन्धन की दशाओ (noncollusive cases) को शामिल किया है।

अल्पकाल मे पूर्ण गठबन्धन वाले अल्पाधिकार के मामले सम्पूर्ण उद्योग के लिए एकाधिकार-कीमत एव एकाधिकार-उत्पत्ति की स्थापना के समीप ही होते हैं। गठबन्धन का अश जितना कम होगा साधारणतया कीमत उतनी ही कम और उत्पत्ति की मात्रा उतनी ही अधिक होगी। जिन उद्योगो मे व्यक्तिगत फर्मों की तरफ से स्वतन्त्र कार्य-कलाप होते हैं उनमे साधारणतया कीमत-सघर्षों के पाए जाने की सम्भावना होती है। उद्योग के परिपक्व होने पर स्थिति गठबन्धन की हो जाती है अथवा यह उद्योग की फर्मों के लिए "जीओ और जीने दो" की प्रवृत्ति मे बदल जाती है। दूसरी स्थिति मे कीमत अनम्यता (price rigidity) पाई जा सकती है। फर्में कीमत-सघर्ष प्रारम्भ होने के भय से कीमत बदलने से डरती रहती हैं।

दीर्घकाल मे फर्म अपने सयत्र के आकार को इच्छानुसार व्यवस्थित कर सकती है और यदि प्रवेश अवरुद्ध नही है तो नई फर्में उद्योग मे प्रवेश कर सकती हैं। फर्में

के द्वारा चुना गया संयत्र का आकार ऐसा होगा जो प्रत्याशित उत्पत्ति को न्यूनतम सम्भव औसत लागत पर उत्पादित करेगा। उद्योग में सुगम प्रवेश का गठबन्धन व ऊँचे अंश से बहुधा मेल नहीं होता। गठबन्धन का अस्तित्व प्रायः प्रवेश को अवरुद्ध करने के लिए होता है। प्रवेश की बाधाओं को "प्राकृतिक" और 'कृत्रिम' दो भागों में बाँटा जा सकता है। सीमित प्रवेश के कारण उद्योग की फर्में दीर्घकालीन शुद्ध लाभ प्राप्त करने में समर्थ हो सकती हैं।

विशेष अल्पाधिकारी उद्योगों की फर्में प्रायः वस्तु विभेद के जरिए गैर-कीमत प्रतिस्पर्धा में लग जाती हैं ताकि वे कीमत-संघर्षों को टाल सकें। गैर-कीमत प्रतिस्पर्धा के दो प्रमुख रूप होते हैं विज्ञापन और गुण व डिजाइन में परिवर्तन। जिस सीमा तक उनका प्रयोग करने वाली फर्में केवल अपने बाजार-अंशों को कायम रखने में सफल होती हैं वहाँ तक उत्पादन की लागतें व वस्तुओं की कीमतें अन्य दशाओं की बनिस्बत ऊँची होती हैं। लाभ अधिकतम करने की इच्छुक फर्म इनमें से प्रत्येक का उपयोग उस सीमा तक करेगी जहाँ पर इससे प्राप्त सीमान्त आय इसके उपयोग का विस्तार करने में लगाई गई सीमान्त लागत के बराबर हो।

अर्थव्यवस्था पर अल्पाधिकारी बाजारों के कल्याण सम्बन्धी कुछ प्रभाव इस प्रकार होंगे

(1) उत्पत्ति उन स्तरों से नीचे एवं कीमतें उन स्तरों से ऊपर होंगी, जो सार पेरेटो इष्टतम की दशा को उत्पन्न करते हैं, चूँकि वस्तु की कीमत सीमान्त लागत से ऊँची होने की प्रवृत्ति दर्शाती है। प्रवेश के अंशतः या पूर्णतः अवरुद्ध हो जाने से शुद्ध लाभ और अतिरिक्त उत्पत्ति-प्रतिबन्धों की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(2) व्यक्तिगत फर्मों को अधिकतम कार्यकुशलता के संयत्र के आकारों पर उत्पादन करने की कोई प्रेरणा नहीं होती, हालांकि कुछ-सी दशाओं में वे उस स्थिति की अपेक्षा ज्यादा कार्यकुशलता से उत्पादन करती हैं जबकि उद्योग कई सूक्ष्म अंशों में विभाजित होता है।

(3) विक्री-संवर्धन से सम्बन्धित कुछ अपव्यय होते हैं।

(4) शुद्ध प्रतिस्पर्धा अथवा शुद्ध एकाधिकार की अपेक्षा विभेदीकृत अल्पाधिकार में उपभोक्ताओं के लिए उपलब्ध वस्तुओं की परिधि अधिक विस्तृत होती है।

अध्ययन-सामग्री

Bain, Joe S *Industrial organization*, 2d ed. (New York : John Wiley & Sons, Inc, 1968).

Machlup, Fritz, *The Economics of Seller's Competition* (Baltimore: The Johns Hopkins Press, 1952), Chaps 4, 11-16

Modigliani, Franco 'New Developments on the Oligopoly Front", *Journal of Political Economy*, Vol LXVI (June 1958), PP. 215-232

Patinkin, Don, 'Multiple-Plant Firms, Cartels, and Imperfect Competition", *Quarterly Journal of Economics*, Vol LXI (February 1945), PP 173-205.

Wilcox, Clair *Competition and Monopoly in American Industry*, Temporary National Economic Committee Monograph No. 21 (Washington, D. C. : U. S Government Printing Office, 1940)

□ □ □

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत व उत्पत्ति-निर्धारण

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता (monopolistic competition)* के लक्षण वाले उद्योग मे एक वस्तु के अनेक विक्रेता होते हैं और प्रत्येक विक्रेता की वस्तु किसी-न किसी रूप म अन्य विक्रेता की वस्तु से भिन्न होती है। यहाँ पर प्रश्न किया जा सकता है कि "अनेक विक्रेताओं" से हमारा आशय क्या है ? हम विभेदीकृत अल्पाधिकार और एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता मे किस प्रकार से अंतर करेंगे ? एक उद्योग म कितने विक्रेता हो ताकि उसे एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति कहना उचित प्रतीत हो ? इन प्रश्नो के उत्तर वस्तुपरक रूप मे (objectively) केवल सख्या मे ही नहीं दिये जा सकते। जब विक्रेताओ की सख्या इतनी अधिक होती है कि एक विक्रेता के कार्यों का दूसरे विक्रेताओ पर कोई स्पष्ट प्रभाव (perceptible effect) न पडे और उनके कार्यों का उस पर कोई स्पष्ट प्रभाव न पडे, तो यह उद्योग एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का उद्योग बन जाता हैं।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का सिद्धान्त कोई नये विश्लेषणात्मक उपकरण प्रदान नहीं करता, यह शुद्ध प्रतियोगिता से काफी मिलता-जुलता होता है। यह उन प्रतिस्पर्धात्मक उद्योगो का ज्यादा अच्छा विवरण प्रस्तुत करता है जिनमे वस्तु विभेद पाया जाता है, जैसे खाद्य-परिनिर्माण (food processing), पुरुषो के वस्त्र, सूती वस्त्र, बडे शहरो मे सेवा-व्यवसाय। कारण स्पष्ट है कि यह मामूली एकाधिकार के तत्वों एव परिणामस्वरूप एक विशेष किस्म की वस्तु के विभिन्न विक्रेताओ के द्वारा ली जाने वाली कीमतों को मान्यता देता है।

कुछ विशेष लक्षण

फर्म के समक्ष पाई जाने वाली माँग की दशाएँ एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता को पूर्ववर्णित बाजार की तीन दशाओं से पृथक करती हैं। वस्तु-विभेद के कारण कुछ

* Monopolistic Competition के लिए एकाधिकारी प्रतियोगिता शब्द भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

उपभोक्ता विशेष विक्रेताओं की वस्तुओं को अन्य विक्रेताओं की वस्तुओं से ज्यादा पसंद करने लग जाते हैं। परिणामस्वरूप, एक व्यक्तिगत विक्रेता के मांग-वक्र का ढाल कुछ नीचे की ओर होता है और विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत पर कुछ अंश तक नियन्त्रण रखने में समर्थ होता है। साधारणतया एक फर्म का मांग-वक्र कीमतो की सम्बन्धित परिधि के अन्तर्गत बहुत लोचदार होगा, क्योंकि उसकी वस्तु के लिए बहुत से उत्तम स्थानापन्न पदार्थ उपलब्ध होते हैं।

उद्योग में विक्रेताओं की वस्तुओं में भिन्नता पाये जाने के कारण विश्लेषण को ग्राफ के रूप में प्रस्तुत करने में जटिलता बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ, शुद्ध प्रतियोगिता के विश्लेषण में बाजार मांग व पूर्ति-वक्र कोई ग्राफ की समस्या उत्पन्न नहीं करते। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार-वक्रों का निर्माण करना असंतोषप्रद होता है। वस्तु-विभेद एक विक्रेता के द्वारा बेची जाने वाली वस्तु की इकाइयों को दूसरे के द्वारा बेची जाने वाली वस्तु की इकाइयों से बहुत-कुछ भिन्न कर देता है। टूथपेस्ट की ट्यूबे टूथपाउडर के डिब्बो से भिन्न होती हैं। तरल दन्त-मंजन (liquid dentifrice) की बोतलें और भी भिन्न होती हैं। जब तक इनको एक सामान्य अनुमाप (denominator) में परिवर्तित नहीं किया जाता तब तक उद्योग-वक्रों के लिए मात्रा-अक्ष का निर्माण करने में कठिनाई प्रतीत होगी।

यहाँ एक अतिरिक्त कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। उद्योग की विभेदीकृत वस्तुओं के लिए कोई एक कीमत नहीं होती है। विभिन्न विक्रेता विभिन्न मूल्य प्राप्त करते हैं जो विभेदीकृत वस्तुओं के तुलनात्मक गुणों के सम्बन्ध में उपभोक्ताओं के निर्णयों पर निर्भर करते हैं। इन समस्याओं के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि रेखाचित्रीय विश्लेषण को व्यक्तिगत फर्म तक सीमित करना ज्यादा उपयुक्त होगा। सम्पूर्ण बाजार तो होता है, लेकिन हम इसका विवेचन ग्राफ के रूप में करने के बजाय भाषा के रूप में करेंगे।

अल्पकाल

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के उद्योग में अल्पकालीन उत्पत्ति व कीमत-निर्धारण बाजार की अन्य स्थितियों से काफी मिलता-जुलता होता है। यह प्रमुखतया एक ऐसा विश्लेषण होता है जिसमें एक व्यक्तिगत फर्म अपने समक्ष पाई जाने वाली दशाओं के अनुरूप ही अपना समायोजन करती है। फर्म के पास अपने संयन्त्र के आकार को बदलने का समय नहीं होता है, अतएव, उद्योग में नई फर्मों के प्रवेश के लिए अपर्याप्त समय पाया जाता है। व्यक्तिगत फर्में कीमत एवं उत्पत्ति के समायोजन कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त, वे विज्ञापन एवं वस्तु की किस्म व डिजायन में मामूली परिवर्तन करके अपनी वस्तुओं की मांग में थोड़ी मात्रा में परिवर्तन करने में

समर्थ हो सकती हैं।

व्यक्तिगत फर्म के द्वारा उत्पत्ति व कीमत के सम्बन्ध में लाभ-अधिकतमकरण पूर्व अध्यायों में वर्णित सिद्धान्तों के द्वारा ही शासित होता है और यह चित्र 13 1 में ग्राफ के रूप में दर्शाया गया है। फर्म के अल्पकालीन औसत लागत-वक्र और अल्पकालीन सीमान्त लागत-वक्र क्रमश SAC व SMC हैं। फर्म के समक्ष मांग-वक्र dd है। चूंकि dd पूर्णतया लोचदार से कम है, इसलिए विक्री की प्रत्येक सम्भव मात्रा पर सीमान्त आय कीमत से कम होती है, और सीमान्त आय वक्र मांग-वक्र से नीचे होता
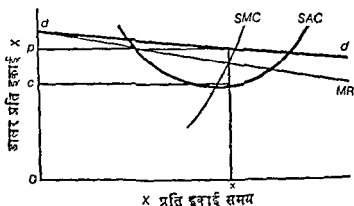
चित्र 13–1 अल्पकाल में लाभ-अधिकतमकरण

है। माल की x मात्रा का उत्पादन करके फर्म अपना लाभ अधिकतम करती है (अथवा अपनी हानि न्यूनतम कर सकती है, बशर्ते कि उत्पत्ति की सभी सम्भव मात्राओं के लिए SAC वक्र dd से ऊपर हो)। x मात्रा पर सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होती है। प्रति इकाई लाभ की मात्रा cp होती है। कुल लाभ cp×x होते हैं।

फर्म विज्ञापन-परिव्यय और वस्तु-परिवर्तन के परिव्यय के सम्बन्ध में भी लाभ अधिकतम करने का प्रयास कर सकती है, लेकिन एक व्यक्तिगत फर्म की वस्तु के लिए बहुत-से उत्तम स्थानापन्न पदार्थ होते हैं, इसलिए इनमें से किसी भी नीति को बहुत दूर तक ले जाना सम्भव नहीं होगा। जिस सीमा तक फर्म विज्ञापन व वस्तु-परिवर्तन पर परिव्यय करती है, उसके सम्बन्धित सिद्धान्त जाने-बूझे ही हैं। यदि फर्म का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना है, तो इनमें से प्रत्येक को उस बिन्दु तक ले जाया जाना चाहिए जहाँ पर उसकी सीमान्त आय उसकी सीमान्त लागत के बराबर हो।

अल्पकालीन सन्तुलन का यह आशय नहीं है कि सभी फर्में समान कीमतें वसूल

करती है। कीमतों की समानता की आशा नहीं की जायेगी, क्योंकि उद्योग की फर्में समरूप वस्तुओं का उत्पादन नहीं करती हैं। प्रत्येक फर्म स्वय की लाभ अधिकतम करने की स्थिति को ढूँढ लेती है। प्रत्येक स्वय की सीमान्त लागत को अपनी ही सीमान्त आय के बराबर करती है। लेकिन विभिन्न उत्पादकों के द्वारा ली जाने वाली कीमतें एक-दूसरे से बहुत ज्यादा भिन्न नहीं होंगी। अल्पकालीन सतुलन मे हम यह तो आशा कर सकते हैं कि कीमतें परस्पर समीप हो, लेकिन यह आवश्यक नही कि वे एक-दूसरे के बराबर ही हो। यद्यपि प्रत्येक उत्पादक को अपनी कीमत निर्धारित करने मे स्वय का कुछ निर्णय दिखाने का अवसर मिलता है, फिर भी उसके द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तु के अनेक निकट के स्थानापन्न पदार्थों के प्रतिबन्धक प्रभाव उस पर पडते रहते है।

दीर्घकाल

फर्म के द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले सभी साधन दीर्घकाल मे परिवर्तनशील होते है; परिणामस्वरूप, दो प्रकार के समायोजन सम्भव हो सकते है (1) फर्म समत्र के किसी भी वाछित आकार का निर्माण कर सकती है, (2) जब तक उद्योग मे प्रवेश अवरुद्ध नही होता, तब तक चालू फर्मों के द्वारा लाभ कमाये जाने की स्थिति मे नई फर्मों का प्रवेश सम्भव होगा। घाटे की दशा मे चालू फर्में उद्योग को छोडकर बाहर जा सकती है।

अवरुद्ध प्रवेश की स्थिति मे समायोजन

यह स्पष्ट है कि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के लक्षण वाले उद्योग मे अवरुद्ध प्रवेश कोई सामान्य स्थिति नही होती, लेकिन कभी-कभी यह स्थिति पाई जा सकती है और पाई जाती भी है। जहाँ यह उत्पन्न होती है वहा यह प्राय एक-न-एक किस्म की वैधानिक क्रिया का परिणाम होती है। एक विशेष उद्योग की फर्मों के स्वामियों या सचालकों का सम्बन्ध एक व्यापार-सगठन से हो सकता है जिसका स्थानीय, राज्य-व्यापी अथवा सभवत राष्ट्र-व्यापी आधार पर कुछ राजनीतिक प्रभाव हो। उद्योग बहुत-कुछ लाभप्रद हो सकता है और व्यापार-सगठन उद्योग मे बडे रूप मे प्रवेश की सम्भावना की आशा कर सकता है। अतएव, यह एक ऐसे कानून को बनवाने मे अपने प्रभाव का उपयोग कर सकता है जिसका उपयोग इस बात को युक्तिसगत ठहराने के लिए किया जाता है कि वस्तु की पर्याप्त पूर्ति ऐसी कीमतो पर की जायेगी जहाँ व्यवसाय मे सलग्न फर्में उचित मात्रा म लाभाजन कर सकें। एक विशेष शहर या राज्य मे सेवा-व्यवसायो मे ऐसे लाइसेन्स सम्बन्धी नियम आसानी से

पाये जा सकते हैं जो प्रवेश को अवरुद्ध करते हैं।[1]

ऐसी स्थितियों में व्यक्तिगत फर्म अपने संयत्र के आकारों को दीर्घकाल में लाभ-अधिकतमकरण की आवश्यकता के अनुसार समायोजित करने का प्रयास करती हैं। फर्म के लिए दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र और दीर्घकालीन सीमान्त लागत-वक्र महत्त्वपूर्ण होते हैं। ये चित्र 13–2 मे LAC और LMC के रूप में दर्शाये गये हैं।
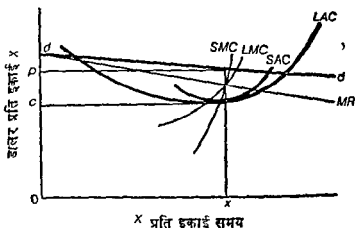
चित्र 13–2 दीर्घकाल मे लाभ-अधिकतमकरण : प्रवेश अवरुद्ध

फर्म का मांग-वक्र dd होता है और सीमान्त आय-वक्र MR होता है। लाभ उत्पत्ति की X मात्रा पर अधिकतम होंगे जहाँ दीर्घकालीन सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होती है। x उत्पत्ति की मात्रा प्रति इकाई p कीमत पर बेची जा सकती है। x उत्पत्ति को प्रति इकाई न्यूनतम सम्भव लागत पर उत्पादित करने के लिए फर्म को संयत्र के ऐसे आकार का निर्माण करना चाहिए जिसका अल्पकालीन औसत लागत-वक्र उत्पत्ति की उस मात्रा पर दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र को स्पर्श करे। चूँकि x उत्पत्ति की मात्रा पर SAC वक्र LAC को स्पर्श करता है, इसलिए अल्पकालीन सीमान्त लागत उत्पत्ति की उस मात्रा पर दीर्घकालीन सीमान्त लागत और सामान्त आय के बराबर होती है। लाभ cp×x के बराबर होते हैं।

यदि फर्म संयत्र के दिये हुए आकार के साथ उत्पति की अपनी दर में वृद्धि या कमी करके x उत्पत्ति की मात्रा से अलग हट जाती है, तो SMC की मात्रा MR से अधिक या कम होगी और लाभ घट जायेंगे। यदि वह संयत्र के आकार में वृद्धि या कमी करके उत्पत्ति की अपनी दर में वृद्धि या कमी करती है तो LMC की मात्रा

1 देखिए मिल्टन फ्रीडमैन, Capitalism and Freedom (Chicago : The University of Chicago Press, 1962), अध्याय IX

MR से अधिक या कम होगी और लाभ घटेंगे। उद्योग मे प्रवेश के अवरुद्ध होने की स्थिति मे फर्म के दीर्घकालीन सतुलन का आशय यह है कि फर्म माल की वह मात्रा उत्पादित करती है जहाँ पर SMC बराबर है LMC के, एव साथ में बराबर है MR के, और जहाँ SAC बराबर है LAC के।

प्रवेश के खुले रहने की स्थिति मे समायोजन

साधारणतया हम यह आशा करेंगे कि एक एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता वाले उद्योग मे प्रवेश करना अथवा इसको छोडकर बाहर जाना दोनो आसान होते हैं। एक व्यवसाय-सगठन की सुविधा के अभाव मे चालू फर्म उद्योग मे कुछ फर्मों के अधिक या कम होने पर कोई ध्यान नही देती, अथवा, जब वे कुछ नई फर्मों के प्रवेश पर ध्यान देती हैं तो वे इस सम्बन्ध मे कुछ भी कर सकने की दृष्टि से स्वय को असमर्थ पाती है। उद्योग मे विशाल सख्या मे फर्म विद्यमान हैं—केवल यही तथ्य यह बतलाता है कि प्रत्येक फर्म का आकार विशाल आकार से कुछ कम ही होता है, और सरकारी समर्थन के अभाव मे प्रभावपूर्ण गठबन्धन कर सकना अत्यधिक मुश्किल होगा इस प्रकार अल्पाधिकारी बाजारो मे प्रवेश के मार्ग मे जो अधिकाश रुकावटें होती हैं वे एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति मे प्रभावपूर्ण नही रह पाती हैं।

जब उद्योग मे फर्मों के लिए शुद्ध लाभ पाये जाते है और सम्भावी प्रवेशकर्ताओ को यह विश्वास होता है कि वे भी शुद्ध लाभ प्राप्त कर सकते हैं, तो प्रवेश के लिए प्रयास किया जायेगा। जब नई फर्मों का प्रवेश होता है तो वे चालू फर्मों के बाजारो मे हस्तक्षेप करती है जिससे प्रत्येक फर्म का माँग-वक्र और सीमान्त-आय नीचे की ओर खिसक जाता है। नई फर्मों के प्रवेश से उद्योग में माल की पूर्ति के बढने से प्रत्येक फर्म का माँग-वक्र नीचे की ओर खिसक जाता है। पूर्ति मे (और पूर्ति करने वालो की सख्या मे) वृद्धि होने से व्यक्तिगत फर्मों के लिए कीमत की परिधियो का सम्पूर्ण समूह (whole cluster of price ranges) नीचे की ओर खिसक जाता है।[2]

उद्योग मे नई फर्मों का प्रवेश चालू फर्मों की उत्पादन-लागतो को प्रभावित करेगा। शुद्ध प्रतियोगिता की भाँति (और अल्पाधिकार मे जिस सीमा तक प्रवेश सम्भव होता है) उद्योगो का वर्द्धमान-लागत, समता-लागत और ह्रासमान-लागत का वर्गीकरण प्रयुक्त किया जा सकता है। यदि उद्योग वर्द्धमान लागत वाला होता है तो नई फर्मों के प्रवेश से साधनो की कीमतें बढ जायेगी, जिससे चालू फर्मों के लागत-वक्र

---

2. यह विश्लेषण शुद्ध प्रतियोगिता के जैसा ही होता है। शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत बाजार की अपेक्षाकृत अधिक पूर्ति व्यक्तिगत फर्मों के माँग-वक्रो को नीचे की ओर खिसका देती है।

ऊपर की ओर खिसक जायेंगे और प्रवेश करने वाली फर्मों की लागतें भी बढ़ जायेंगी। लागत समता के अन्तर्गत नई फर्मों के प्रवेश से साधनों की कीमतों एवं व्यक्तिगत फर्मों के लागत वक्रों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। ह्रासमान-लागतों की असम्भावित स्थिति में नई फर्मों के प्रवेश से साधनों की कीमतें घटेंगी और लागत-वक्र नीचे की ओर खिसकेंगे। हम यहाँ पर केवल वर्द्धमान-लागतों की स्थिति का ही विश्लेषण करेंगे।

नई फर्मों का प्रवेश व्यक्तिगत फर्मों के माँग-वक्रों को नीचे की ओर और फर्मों के लागत वक्रों को ऊपर की ओर खिसका देगा। इससे लाभों में घटने की प्रवृत्ति होगी, लेकिन जब तक लाभ की सम्भावनाएँ बनी रहती है तब तक नई फर्मों का प्रवेश जारी रहेगा। अन्त में इतनी फर्मों का प्रवेश हो जायगा कि उनसे शुद्ध लाभ समाप्त हो जायेंगे।

व्यक्तिगत फर्म के लिए यह स्थिति चित्र 13–3 में ग्राफ के रूप में बतलाई गई है। चित्र 13–2 की तुलना में नई फर्मों के प्रवेश से फर्म का माँग-वक्र चित्र 13–2 के dd से चित्र 13–3 के d_1d_1 तक नीचे खिसक गया है। दीर्घकालीन लागत-वक्र ऊपर की ओर LAC_1 व LMC_1 की तरफ खिसक गये हैं। अल्पकालीन लागत-वक्र भी ऊपर की ओर खिसक गये हैं और संयंत्र के आकार में भी समायोजन हो गये हैं। जब इतनी फर्मों का प्रवेश हो जाता है कि प्रत्येक फर्म का माँग वक्र इसके दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र को स्पर्श करने लगता है तो उद्योग की फर्मों को इस स्थिति में लाभ प्राप्त नहीं होते और प्रवेश बन्द हो जाता है।

चित्र 13-3 दीर्घकाल में लाभ-अधिकतमकरण : प्रवेश युक्त
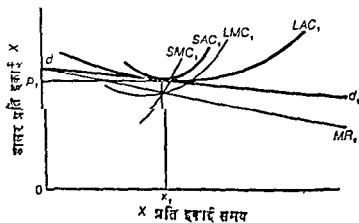
व्यक्तिगत फर्मों और सम्पूर्ण उद्योग के द्वारा दीर्घकालीन सतुलन तभी प्राप्त किया जायगा जबकि उद्योग मे प्रत्येक फर्म चित्र 13-3 म प्रदर्शित स्थिति मे हो। प्रत्येक व्यक्तिगत फर्म के लिए दीर्घकालीन सीमान्त लागत और अल्पकालीन सीमान्त लागत x_1 जैसी किसी उत्पत्ति की मात्रा पर सीमान्त आय के बराबर होते हैं। SAC_1 सयत्र के आकार पर उत्पत्ति की उस मात्रा से अलग होने पर घाटा होता है। सयन के आकार मे किसी भी परिवर्तन से घाटा होना है। उत्पत्ति की उस मात्रा पर अल्पकालीन औसत लागत दीर्घकालीन औसत लागत के बराबर होती है और दोनो लागतें फर्म के द्वारा अपने माल के लिए प्राप्त की जान वाली प्रति इकाई कीमत के बराबर होती हैं। सम्पूर्ण उद्योग सतुलन की स्थिति म होगा, क्योकि उद्योग म प्रवश के लिए अथवा इसको छोड़कर बाहर जाने के लिए लाभ अथवा हानि की प्रेरणाएँ नही होती है।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के कल्याण पर प्रभाव

उत्पत्ति पर प्रतिबन्ध

यदि शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था मे पाये जान वाले उद्योगो मे से एक उद्योग जो दीर्घकालीन सतुलन की स्थिति मे होता है, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति मे आ जाय, तो उत्पत्ति मे थोडी कमी व वस्तु की कीमतो मे थोडी वृद्धि हो जाने से कल्याण मे कमी आने की प्रवृत्ति होगी। एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धी के समक्ष जो माँग-वक्र होता है वह यद्यपि बहुत लोचदार होता है, फिर भी पूर्णतया लोचदार से कम होता है। व्यक्तिगत फर्म के लिए सीमान्त आय कीमत से कम होती है और उत्पत्ति उस सीमा से पहले ही रोक दी जाती है जहाँ सीमान्त लागत कीमत के बराबर हो जाय। फर्म का माँग वक्र जितना अधिक लोचदार होगा, शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक कीमत व उत्पत्ति से विचलन (deviation) उतना ही कम होगा।

दीर्घकाल मे उद्योग मे प्रवेश के अवरुद्ध न होने पर कीमत उत्पादन की औसत लागतो के बराबर होगी। जब प्रवेश मुक्त व सुगम होता है जैसा कि प्राय देखा जाता है—तो नई फर्में लाभार्जन करने वाले उद्योगो म प्रवेश करती हैं और लाभो को घटाकर शून्य कर देती हैं। उपभोक्ता केवल इतनी ही राशि देते हैं ताकि फर्में वस्तु के उत्पादन मे साधनो की वाछित मात्राओ को कायम रख सकें। अर्थव्यवस्था की उत्पादन-क्षमता का सगठन ज्यादा निश्चितता के साथ उपभोक्ता की रुचि व अधिमानो के अनुरूप हो सकता है।

जब लाभार्जन करने वाले उद्योगो मे प्रवेश अवरुद्ध हो जाता है तो कीमतो व औसत लागतो के सम्बन्ध मे परिणाम लगभग वही होते हैं जो शुद्ध एकाधिकार व

अल्पाधिकार के अन्तर्गत होते हैं। अर्थव्यवस्था की उत्पादन-क्षमता को सुनिश्चित रूप से उपभोक्ता की रुचि व अधिमान के अनुरूप संगठित नहीं किया जा सकता। साधनों की अतिरिक्त मात्राएँ लाभार्जन करने वाले उद्योगों में प्रविष्ट होने से रुक जाती हैं जहाँ वे वैकल्पिक उपयोगों की बनिस्बत अधिक उत्पादक होंगी।

व्यक्तिगत फर्मों की कार्यकुशलता

दीर्घकाल में जब उद्योग में प्रवेश सुगम होता है तो व्यक्तिगत फर्मों में कुछ अकार्यकुशलता पाई जाती है, अर्थात्, फर्म को संयत्र के अनुकूलतम आकार के निर्माण की अथवा जिस आकार का वह निर्माण करती है उसकी उत्पत्ति की अनुकूलतम दर पर संचालित करने की कोई प्रेरणा नहीं होगी। यह बात सर्वोत्तम रूप में चित्र 13–3 की सहायता से देखी जा सकती है। संयत्र के अनुकूलतम आकार से फर्म को घाटा होगा, क्योंकि उत्पत्ति की इस मात्रा पर औसत लागत कीमत से अधिक होगी। यदि उत्पत्ति की मात्राओं की किसी भी परिधि के लिए दीर्घकालीन औसत लागत वक्र माँग वक्र से नीचा होता है, तो किसी भी ऐसी फर्म के द्वारा शुद्ध लाभ अर्जित किए जा सकते हैं जो उत्पत्ति की इन मात्राओं में से किसी एक के लिए भी संयत्र के सही आकार का निर्माण कर लेती है। जब तक लाभ समाप्त नहीं हो जाते तब तक नई फर्मों का प्रवेश जारी रहेगा। जब व्यक्तिगत फर्मों के दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र उनके समक्ष पाये जाने वाले माँग वक्रों को स्पर्श करते हैं, तो लाभ की सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। जब दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र उत्पत्ति की सभी मात्राओं के लिए माँग-वक्र से ऊपर होता है तो घाटा होता है। उद्योग से फर्मों का बाहर जाना उस समय तक जारी रहेगा जब तक प्रत्येक फर्म के लिए दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र इसके समक्ष पाये जाने वाले माँग-वक्र को पुनः स्पर्श नहीं कर लेता।

दीर्घकालीन संतुलन में उत्पत्ति की वह मात्रा जिस पर फर्म के द्वारा घाटे टाल दिये जाते हैं (SMC=LMC=MR) ऐसी होती है जिस पर औसत लागत वक्र माँग वक्र को स्पर्श करते हैं। चूंकि फर्म का माँग-वक्र नीचे की ओर झुकता हुआ होता है, इसलिए औसत लागत-वक्र भी माँग-वक्र के साथ अपने स्पर्शिता के बिन्दु पर नीचे की ओर झुकते हुए होंगे। इस प्रकार उद्योग में सुगम प्रवेश की स्थिति में व्यक्तिगत फर्में चित्र 13–3 में प्रदर्शित SAC_1 के जैसे संयत्र के अनुकूलतम से कम आकार का निर्माण करेंगी और वे उत्पत्ति की अनुकूलतम दर से कम पर उसका संचालन करेंगी।

जब प्रवेश सुगम होता है तो उद्योग में फर्मों की संख्या के सम्बन्ध में कुछ भीड़-भाड़ भी हो सकती है और संयत्र की कुछ अतिरिक्त क्षमता भी पाई जा सकती है। चूंकि प्रत्येक फर्म संयत्र के अनुकूलतम से नीचे आकार का निर्माण करती है, इसलिए

उस स्थिति की बनिस्बत अधिक फर्मों के अस्तित्व की गुजाइश होती है जबकि सभी फर्में सयत्र के अनुकूलतम आकार का निर्माण करती हैं। साथ मे यह भी है कि प्रत्येक फर्म के लिए अपने द्वारा निर्मित सयत्र के आकार को उत्पत्ति की अनुकूलतम दर से कम पर सचालित करने की प्रवृत्ति होती है, इसलिए सयत्र की अतिरिक्त क्षमता का पाया जाना स्वाभाविक है। दोनो ही स्थितियो के लिए अनुभवाश्रित दृष्टान्त मिलने कठिन नही हैं। विभिन्न वस्त्र उद्योग एक उद्योग मे फर्मों के आधिक्य एव व्यक्तिगत फर्मों की अतिरिक्त क्षमता को सूचित करते हैं।

फर्म की ऊपर वर्णित अकार्यकुशलताओ पर आवश्यकता से अधिक बल नही दिया जाना चाहिए और ऊपर के पैरा को एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता वाले उद्योगो मे प्रवेश को रोकने के पक्ष मे तर्क भी नही माना जाना चाहिए। फर्म के समक्ष पाया जाने वाला माँग वक्र काफी लोचदार होता है, और यह जितना अधिक लोचदार होता है, फर्म सयत्र के अनुकूलतम आकार के निर्माण के एव इसको उत्पत्ति की अनुकूलतम दर पर सचालित करने के उतनी ही समीप पाई जाती है। उद्योग मे स्वतन्त्र प्रवेश से कुल उत्पत्ति उस स्थिति की अपेक्षा अधिक होगी जबकि प्रवेश सीमित होता है और इससे कीमते भी अपेक्षाकृत कम होगी।

जब प्रवेश सीमित होता है तो फर्म उस उत्पत्ति की मात्रा के अनुरूप सयत्र का आकार बनायेगी जहाँ पर दीर्घकालीन सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होती है। फर्म के लिए सयत्र के अनुकूलतम आकार का निर्माण करने की कोई प्रेरणा नही होती है। निर्मित किया जाने वाला सयत्र का आकार उसी स्थिति मे अनुकूलतम होगा जबकि फर्म का सीमान्त आय-वक्र इसके दीर्घकालीन औसत लागत-वक्र के न्यूनतम बिन्दु से गुजरे। ऐसी सम्भावना पूर्णतया आकस्मिक ही हो सकती है।

बिक्री-सवर्धन के अपव्यय

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत विज्ञापन या डिजाइन परिवर्तनो के रूप मे कुछ अपव्यय हो सकता है। इस तरह से व्यक्तिगत फर्मों के द्वारा अपने बाजारो के विस्तार के लिए किए गए प्रयत्न दूसरो के द्वारा किए जाने वाले ऐसे ही प्रयत्नो से प्राय कट जाते हैं और इस प्रकार से प्रयुक्त किए गए साधन केवल उत्पादन की लागतो मे ही वृद्धि करते हैं। साधनो के ऐसे अपव्यय अल्पाधिकार की अपेक्षा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता से कम हुआ करते हैं। अल्पाधिकार के अन्तर्गत एक फर्म के द्वारा अपने बाजार के अश को बढ़ाने के लिए किए गए प्रयत्न दूसरो को ऐसे ही प्रयत्न इस प्रकार के विस्तार को रोकने हेतु करने के लिए प्रेरित करते हैं। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत ऐसी स्पर्धाओ का अस्तित्व नही होता है। एक फर्म के द्वारा किए गए विज्ञापन दूसरो की तरफ से प्रतिशोधपूर्ण या जवाबी क्रिया को

जन्म नहीं देते हैं। जब एक के द्वारा किया गया विज्ञापन दूसरों के द्वारा किए गए विज्ञापन से कट जाता है या विफल हो जाता है, तो यह परिणाम सभी के द्वारा एक-सा कार्य करने के प्रयास से उत्पन्न होता है और यह कार्य होता है अपने-अपने बाजारों का विस्तार करना। यहाँ कोई भी अपने विशिष्ट बाजारों में दूसरी फर्मों के द्वारा किए गए हस्तक्षेपों के प्रति किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं बतलाता है।

उपलब्ध वस्तुओं की परिधि या सीमा

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की बाजार-दशाओं में उपभोक्ताओं के लिए विशेष वस्तुओं की व्यापक किस्मों, ढंगों व नमूनों में से चुनाव करने का अवसर रहता है। उपभोक्ता उस किस्म ढंग अथवा पैकेज के रंग का चुनाव कर सकता है जो उसकी रुचि व जेब को देखते हुए सर्वाधिक रूप से उपयुक्त होता है।

एक वस्तु विशेष की विभिन्न किस्में इतनी अधिक हो सकती हैं कि वे उपभोक्ता को भ्रम में डाल दें और चुनाव की समस्या बहुत अधिक जटिल हो जाय। वास्तविक गुण-भेदों के सम्बन्ध में अज्ञानता के कारण उपभोक्ता उन विशेष ब्राडों के लिए, जो उसी वस्तु की नीची कीमत वाले ब्राडों से वास्तव में ज्यादा अच्छे नहीं होते, अपेक्षाकृत ऊँची कीमतें देने के लिए उद्यत हो जाते हैं। कौन-सी गृहिणी साबुनों, शोधकों (detergents), फर्श-मोमजामों, विद्युत-इस्तरियों, आदि वस्तुओं के अनेक विभिन्न ब्राडों के सापेक्ष गुणों से सम्भवतः परिचित होगी ?[3]

सारांश

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की बाजार-स्थिति में विभेदीकृत वस्तुओं के इतने अधिक विक्रेता होते हैं कि एक के कार्य-कलापों का दूसरों पर और दूसरों के कार्य-कलापों का उस एक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक फर्म के माँग-वक्र का ढाल कुछ नीचे की ओर होता है, क्योंकि वस्तु-विभेद पाया जाता है और उपभोक्ता विशेष ब्राडों को पसन्द किया करते हैं। लेकिन यह ढाल सम्बन्धित कीमत-उत्पत्ति की परिधि (relevant price-output range) के अन्दर काफी लोचदार होता है।

उद्योग में फर्मों के द्वारा अल्पकालीन लाभ-अधिकतमकरण उन कीमतों व उत्पत्ति की मात्राओं पर होगा जहाँ प्रत्येक फर्म अपनी सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर करती है। यहाँ उद्योग के लिए कोई एक कीमत नहीं होती है। बाजार-कीमतों का

3. इस समस्या के अधिक समाधान के लिए देखें Eugene R. Beem and John S Ewing, "Business Appraises Consumer Testing Agencies'(, Harvard Business Review, vol XXXII (March–April 1954), 113-126.

एव समूह होगा जो वस्तु के सापेक्ष गुणो के सम्बन्ध मे उपभोक्ता की राय को प्रकट करेगा।

दीर्घकाल मे फर्मो एव उद्योग की सन्तुलन की स्थिति पर समायोजन की प्रकृति इस बात पर निर्भर करेगी कि उद्योग मे प्रवेश अवरुद्ध है अथवा सुगम। प्रवेश के अवरुद्ध रहने पर व्यक्तिगत फर्में उत्पत्ति की वह मात्रा बनायेगी और इसे ऐसी कीमत पर बेचेगी जहाँ दीर्घकालीन सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होती है। फर्म उत्पत्ति की उस मात्रा के लिए सयत्र का उपयुक्त आकार बनाएगी और सयत्र के उपयुक्त आकार पर अल्पकालीन सीमान्त लागत भी सीमान्त आय के बराबर होगी।

सुगम प्रवेश की स्थिति मे लाभो का अस्तित्व नई फर्मो के प्रवेश को प्रेरित करेगा, जिससे फर्म के समक्ष पाया जाने वाला माँग-वक्र घट जाएगा और उद्योग मे वर्द्धमान लागतो के पाए जाने पर लागत-वक्र ऊपर की ओर खिसक जायेंगे। प्रवेश उस समय तक जारी रहेगा जब तक कि लाभ समाप्त नही हो जाते। प्रत्येक फर्म के लिए दीर्घकालीन औसत लागत वक्र और अल्पकालीन औसत लागत वक्र उत्पत्ति की उचित मात्रा पर उसके समक्ष पाए जाने वाले माँग वक्र को स्पर्श करेंगे। दीर्घकालीन सीमान्त लागते व अल्पकालीन सीमान्त लागते सीमान्त आय के बराबर होगी।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के शुद्ध प्रतियोगिता के साथ पाए जाने वाले कल्याण मे निम्न विधियो से कमी उत्पन्न होने की प्रवृत्ति होती है (1) उत्पत्ति पर प्रतिबन्ध व कीमत-वृद्धियाँ, (2) सयत्र का अकार्यकुशल आकार और (3) विज्ञापन के कुछ अपव्यय। अन्य तीन बाजार स्थितियो की अपेक्षा यहाँ उपभोक्ता वस्तुओ की ज्यादा विस्तृत परिधि या सीमा मे से अपना चुनाव कर सकते है। यह दशा कल्याण को प्रभावित कर सकती है और सम्भवत नही भी।

अध्ययन सामग्री

Chamberlin Edward H, *The Theory of Monopolistic Competition*, 8th ed (Cambridge Mass Harvard University Press, 1962), Chaps IV and V

Machlup, Fritz *The Economics of Sellers' Competition* (Baltimore The Johns Hopkins Press 1952), Chaps 5–7, 10

Stigler, George J, 'Monopolistic Competition in Retrospect," *Five Lectures on Economic Problems* (New York The Macmillan Company, 1949), pp 12–24, Reprinted in Stigler, George J, *The Organization of Industry* (Homewood, Ill Richard D. Irwin, Inc, 1968)

☐ ☐ ☐

साधनों की कीमत एवं उपयोग की मात्रा का निर्धारण : शुद्ध प्रतियोगिता[1]

इस अध्याय में हम उपभोग्य वस्तुओं के बाजारों से उनके उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले साधनों के बाजारों की तरफ जायेंगे। साधनों की कीमतें स्वतन्त्र उद्यमवादी अर्थव्यवस्था के पथ-प्रदर्शन व संचालन में एक महत्त्वपूर्ण हाथ रखती हैं। वे साधनों के उपयोग के स्तरों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण होती हैं और, जैसा कि हम अध्याय 16 में देखेंगे, वे विभिन्न उपयोगों में साधनों का आवंटन करती हैं, उनको कम महत्त्वपूर्ण उपयोगों से अधिक महत्त्वपूर्ण उपयोगों की तरफ ले जाती हैं। वे व्यक्तिगत फर्मों को साधनों के अधिक कार्यकुशल संयोग की तरफ जाने के लिए प्रेरित करती हैं। और साथ में यह बात भी है कि चूंकि हम सब साधनों के स्वामी हैं, इसलिए साधनों की कीमतें और उनके उपयोग के स्तर हमें व्यक्तिगत रूप से भी प्रभावित करते हैं। वे हमारी आमदनी और हममें से प्रत्येक के द्वारा अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति में प्राप्त किया जाने वाला अंश निर्धारित करते हैं। हम अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति के वितरण पर अध्याय 17 में विचार करेंगे।

इस अध्याय में साधनों के उपयोग की मात्रा व कीमत निर्धारण के सिद्धान्तों का विवेचन वस्तु-बाजारों एवं साधन-बाजारों में शुद्ध प्रतिस्पर्धा की दशाओं के अन्तर्गत किया जायगा।[2] साधन-बाजारों में पाई जाने वाली शुद्ध प्रतियोगिता में कई बातें शामिल होती हैं। कोई भी अकेली फर्म एक दिए हुए साधन की इतनी मात्रा नहीं लेती कि वह इसकी कीमत को प्रभावित कर सके। कोई भी एक साधन की पूर्ति

---

1. इस अध्याय की सामग्री अध्याय 8 में पूर्ववर्णित उत्पादन के सिद्धांतों पर आधारित है। जब तक पाठक उस विषय-सामग्री से पूर्णतया परिचित नहीं हो जाता तब तक उस अध्याय को पुनः पढ़ना उपयोगी होगा।

2. अधिकांश कार्यों के लिए साधन के बाजार की एक सरल परिभाषा ही पर्याप्त होगी। साधन के लिए बाजार वह क्षेत्र होता है जिसमें साधन वैकल्पिक उपयोगों के बीच आने (या गतिशील होने) के लिए स्वतन्त्र होता है। एक दिए हुए साधन के लिए बाजार का विस्तार विचाराधीन अवधि के विस्तार (time span) के अनुसार परिवर्तित होगा। अवधि जितनी अधिक होगी बाजार उतना ही अधिक विस्तृत होगा।

करने वाला बाजार मे एक दिए हुए साधन की इतनी पूर्ति नही कर सकता कि वह इसकी कीमत को प्रभावित कर सके। विभिन्न उपयोगो के बीच परिवर्तनशील साधन गतिशील होते हैं और उनके बाजार-भाव भी लचीले होते हैं। इन मान्यताओ के आधार पर हम सर्वप्रथम एक फर्म के द्वारा कई परिवर्तनशील साधनो के एक साथ प्रयुक्त किए जाने का विश्लेषण करेंगे। तत्पश्चात् हम किसी भी दिए हुए परिवर्तनशील साधन की कीमत व रोजगार की मात्रा के निर्धारण का विवेचन करेंगे।

कई परिवर्तनशील साधनो का एक साथ उपयोग

अभी तक फर्म के लाभ-अधिकतमकरण पर वस्तु की उत्पत्ति एव बिक्री की मात्राओ के रूप मे विचार किया गया है और साधनो की लगाई जाने वाली मात्राओ पर कोई विशेष ध्यान नही दिया गया है। इस अनुभाग मे लाभ-अधिकतमकरण पर लगाए जाने वाले साधनो की मात्राओ एव न्यूनतम लागत वाले साधन-सयोगो के रूप मे विचार किया जाएगा।

लाभ-अधिकतमकरण और न्यूनतम-लागत सयोग

एक दी हुई उत्पत्ति के लिए परिवर्तनशील साधनो के न्यूनतम लागत-सयोग का विवेचन अध्याय 8 मे किया गया था।[3] साधनो का मिश्रण इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि एक साधन पर एक डालर के व्यय से प्राप्त सीमान्त भौतिक उत्पत्ति, प्रयुक्त किए जाने वाले प्रत्येक साधन पर एक डालर के व्यय से प्राप्त सीमान्त भौतिक उत्पत्ति के बराबर हो, तभी ऐसा सयोग प्राप्त किया जा सकेगा। लेकिन यह
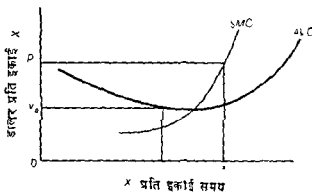
चित्र 14–1 न्यूनतम लागत सयोग और लाभ अधिकतमकरण

3. देखिए, अध्याय 8 में न्यूनतम लागत सयोग का वर्णन।

आवश्यक नही कि दी हुई उत्पत्ति फर्म की लाभ अधिकतम करने वाली उत्पत्ति ही हो। मान लीजिए चित्र 14–1 म फर्म x_0 उत्पत्ति करती है और दो परिवर्तनशील साधनो A व B का उपयोग करती है। x_0 माल का उत्पादन करने के लिए A और B साधनों को इस तरह से मिलाना चाहिए कि MPP_a/P_a बराबर हो MPP_b/P_b के, तभी औसत परिवर्तनशील लागतो को V_0 के जितना नीचा रखा जा सकेगा। यदि वस्तु की कीमत P_x होती है तो फर्म की उत्पत्ति लाभ-अधिकतमकरण की दृष्टि से बहुत थोडी होती है। यद्यपि A व B ठीक अनुपातों मे प्रयुक्त किए जाते है, फिर भी प्रत्येक काफी मात्रा मे प्रयुक्त नही किया जाता।

लाभ अधिकतम करने के लिए फर्म की उत्पत्ति को x तक बढाया जाना चाहिए। अतिरिक्त उत्पत्ति A और B दोनो साधनो की अधिक मात्रा के उपयोग से प्राप्त की जा सकती है। उत्पत्ति के बढाये जाने पर औसत परिवर्तनशील लागतो को यथासम्भव कम-से-कम रखने के लिए A और B साधनो की मात्राओं म होने वाली वृद्धियो का परस्पर सम्बन्ध ऐसा होना चाहिए कि एक डालर मूल्य के A की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति एक डालर मूल्य के B की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति के निरन्तर समान बनी रहे। जब x उत्पत्ति प्राप्त कर ली जाती है, तो फर्म साधनो का उपयोग न केवल न्यूनतम-लागत-संयोग म करती है बल्कि यह सही निरपेक्ष मात्राओं (absolute quantities) मे भी करती है।

सीमान्त भौतिक उत्पत्ति एवं सीमान्त लागत

A और B साधनो के न्यूनतम लागत संयोग की दशाएँ—MPP_a/P_a बराबर MPP_b/P_b – X-वस्तु की सीमान्त लागत की विलोम (reciprocal) होती हैं। सर्वप्रथम A साधन पर विचार कीजिए। A साधन की कोई भी एक इकाई फर्म की कुल लागतो म P_a के बराबर राशि का योगदान करती है। यह फर्म की कुल उत्पत्ति मे MPP_a के बराबर वृद्धि करती है। इसलिए P_a/MPP_a अनुपात को 'माल में एक इकाई के परिवर्तन मे फर्म की कुल लागतो मे परिवर्तन" के रूप म समझा जाना चाहिए। यह X वस्तु की सीमान्त लागत ही है, अत हम कह सकते हैं कि MC_x बराबर है P_a/MPP_a के। इसी प्रकार MC_x बराबर है P_b/MPP_b के। जब फर्म A और B के न्यूनतम-लागत-संयोग का उपयोग करती है तो MPP_a/P_a बराबर होता है MPP_b/P_b के, इसलिए हम कह सकते हैं कि

$$\frac{MPP_a}{P_a} = \frac{MPP_b}{P_b} = \frac{1}{MC_x} \qquad (14\ 1)$$

अथवा हम इनके विलोम रूपो को लेकर कह सकते है कि

$$\frac{P_a}{MPP_a} = \frac{P_b}{MPP_b} = MC_x \qquad ..(14\ 2)$$

अन्तिम कथन का आशय यह है कि फर्म माल की कोई भी मात्रा क्यो न उत्पन्न करे, यदि यह साधनों के न्यूनतम-लागत सयोग का उपयोग करती है तो A की मात्रा अथवा B की मात्रा अथवा दोनो की मिली-जुली मात्राएँ, जो फर्म की उत्पत्ति मे एक इकाई की वृद्धि के लिए आवश्यक होती है फर्म की कुल लागतो मे समान वृद्धि करेगी। मान लीजिए वस्तु के रूप मे हम पुरुषों के सूट लेते हैं और प्रयुक्त किए जाने वाले परिवर्तनशील साधनो के रूप मे श्रम, मशीन एव सामग्री को लेते है। प्रति इकाई समयानुसार उत्पादित माल की मात्रा मे अन्तिम एक इकाई की वृद्धि से फर्म की कुल लागत मे एक-सी वृद्धि होनी चाहिए, चाहे माल की मात्रा मे होने वाली वृद्धि सामग्री व मशीनो के साथ श्रम का अनुपात बढाकर प्राप्त की जाय अथवा श्रम व मशीन के साथ सामग्री का अनुपात बढाकर, अथवा श्रम व सामग्री के साथ मशीनो का अनुपात बढाकर प्राप्त की जाय। कुल लागत मे एक-सी मात्रा मे वृद्धि होगी चाहे वस्तु की मात्रा मे होने वाली वृद्धि तीनो साधनो की मात्राओ मे एक साथ वृद्धि करके प्राप्त की जाय। जब साधन सही अनुपात मे प्रयुक्त किए जाते हैं तो वे सीमा पर समान रूप से कार्यकुशल होते है। एक साधन पर अन्तिम डालर के व्यय से कुल उत्पत्ति मे उतनी ही वृद्धि होती है जितनी किसी दूसरे साधन पर अन्तिम डालर के व्यय से होती है। प्रति इकाई समयानुसार वस्तु की उत्पत्ति मे अतिम इकाई की वृद्धि के लिए लागत मे जो वृद्धि आवश्यक होनी है वह वस्तु की सीमान्त लागत होनी है।

मान लीजिए हम फर्म के लाभ-अधिकतमकरण पर प्रयुक्त किए जाने वाले साधनो की मात्राओ के रूप मे पुन विचार करते है। चित्र 14–1 के सन्दर्भ मे x_0 उत्पत्ति पर MC_x कम होती है P_x से, अथवा

$$\frac{MPP_a}{P_a} = \frac{MPP_b}{P_b} = \frac{1}{MC_x} > \frac{1}{P_x} \qquad .(14\ 3)$$

यहाँ पर फर्म x_0 मात्रा का उत्पादन करने के लिए साधनो को सही अनुपातो मे प्रयुक्त कर रही है, लेकिन उत्पत्ति की x_0 मात्रा लाभ-अधिकतमकरण की दृष्टि से बहुत कम है, क्योकि MC_x कम होती है P_x से। अधिकतम लाभ के लिए फर्म A और B साधनो की मात्राओ मे वृद्धि करके उत्पत्ति मे वृद्धि करेगी। अचल साधनो (fixed resources) की स्थिर मात्राओ के साथ प्रयुक्त की जाने वाली A और B की अतिरिक्त मात्राओ से प्रत्येक की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति घटने लगती है। A

और B की कीमतें स्थिर रहती हैं क्योंकि फर्म उनको शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओं में खरीदती हैं, परिणामस्वरूप, $1/MC_x$ के साथ MPP_a/P_a और MPP_b/P_b भी घटते हैं।

$1/MC_x$ में घटने का वही आशय है जो MC_x में वृद्धि का होना है। इसी प्रकार A और B की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति में गिरावट का वही अर्थ है जो X-वस्तु की सीमान्त लागत में वृद्धि का होना है। A और B की अधिक मात्राओं का प्रयोग फर्म की उत्पत्ति का विस्तार उस सीमा तक करने में किया जायगा जहाँ पर

$$\frac{MPP_a}{P_a} = \frac{MPP_b}{P_b} = \frac{1}{MC_x} = \frac{1}{P_x} \quad \text{....(14 4)}$$

अथवा उस बिन्दु तक जहाँ पर फर्म की सीमान्त लागत इसकी सीमान्त आय या वस्तु की कीमत के बराबर होती है। लाभ अधिकतम करने वाली उत्पत्ति पर फर्म अपने परिवर्तनशील साधनों का उपयोग सही संयोग एवं सही निरपेक्ष मात्राओं दोनों में करेगी।

एक दिए हुए परिवर्तनशील साधन की कीमत व उपयोग की मात्रा का निर्धारण

माँग व पूर्ति विश्लेषण का प्रयोग एक दिए हुए साधन की बाजार कीमत एवं उपयोग के स्तर के निर्धारण में किया जा सकता है। सर्वप्रथम, व्यक्तिगत फर्म के माँग-वक्र, बाजार माँग-वक्र, एवं साधन के बाजार पूर्ति-वक्र का निर्माण किया जाना चाहिए। इन उद्देश्यों को प्राप्त कर लेने के बाद हम बाजार-कीमत, फर्म के द्वारा साधन के उपयोग का स्तर एवं साधन के उपयोग का बाजार-स्तर निर्धारित कर सकते हैं।

फर्म का माँग-वक्र एवं साधन परिवर्तनशील

एक दिए हुए परिवर्तनशील साधन के लिए फर्म का माँग-वक्र इसकी उन विभिन्न मात्राओं को दर्शायेगा जिन्हें फर्म विभिन्न सम्भव कीमतों पर लेगी। एक साधन की विभिन्न वैकल्पिक कीमतों पर एक फर्म के द्वारा ली जाने वाली मात्राएँ कई तत्वों पर निर्भर करेंगी। जब दिया हुआ साधन तो फर्म के द्वारा प्रयुक्त होने वाला अकेला परिवर्तनशील साधन होता है और दूसरी स्थिति में जब यह फर्म के द्वारा प्रयुक्त विभिन्न परिवर्तनशील साधनों में से एक होता है तो इन दोनों स्थितियों में ये तत्त्व पृथक्-पृथक् होते हैं। यहाँ पर यह कल्पना करें कि एक दिया हुआ साधन ही फर्म के द्वारा प्रयुक्त किया जाने वाला अकेला परिवर्तनशील साधन होता है; अर्थात् प्रयुक्त

किए जाने वाले सभी अन्य साधनों की मात्राएँ स्थिर रहती हैं।[4] यह भी कल्पना करें कि फर्म का उद्देश्य अपने लाभों को अधिकतम करना है।

फर्म एक साधन, मान लीजिए, इसे A कहा जाता है, कि विभिन्न मात्राओं पर इसकी कुल प्राप्तियों एवं इसकी कुल लागतों पर पड़ने वाले प्रभावों के सन्दर्भ में विचार करती है। यदि प्रति इकाई समयानुसार A की बड़ी मात्राओं के प्रयोग से फर्म की कुल लागतों की अपेक्षा इसकी कुल प्राप्तियों में ज्यादा वृद्धि होती है तो उन मात्राओं से लाभ में वृद्धि होगी (अथवा घाटे में कमी होगी)। इसके विपरीत, यदि A की बड़ी मात्राओं से फर्म की कुल प्राप्तियों की अपेक्षा इसकी कुल लागतों में अधिक वृद्धि होती है तो लाभों में कमी होगी (अथवा हानि में वृद्धि होगी)। फर्म को एक साधन की उस मात्रा का उपयोग करना चाहिए जिस पर इसके उपयोग के स्तर में एक इकाई की वृद्धि से कुल प्राप्तियों व कुल लागतों में एक-सी मात्रा में वृद्धि होती है।[5]

सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य—फर्म के द्वारा A साधन (अथवा अन्य किसी साधन) के उपयोग की मात्रा में प्रति इकाई समयानुसार एक इकाई की वृद्धि से उसकी उत्पत्ति की मात्रा में जो वृद्धि होती है उसका बाजार-मूल्य उस साधन की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य (value of marginal product) अथवा VMP_a कहलाता है। A साधन की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य का हिसाब लगाने में हम सर्वप्रथम यह देखते हैं कि इसकी उपयोग की मात्रा में एक इकाई की वृद्धि से फर्म की कुल उत्पत्ति में कुछ राशि (MPP_a) की वृद्धि होती है। अतिरिक्त उत्पत्ति इसके बाजार भाव (P_x) पर बेची जा सकती है। इस प्रकार उत्पादित माल की अतिरिक्त मात्रा को बेची जा सकने वाली प्रति इकाई कीमत से गुणा करने से प्राप्त राशि A साधन की एक इकाई की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य के बराबर होती है, अर्थात्, जब प्रयुक्त किए जाने

---

4 यह मान्यता वही है जो ह्रासमान-प्रतिफल-नियम की परिभाषा में प्रयुक्त की गई थी।

5. एक विशाल एकीकृत तेल कम्पनी की स्थिति पर विचार करें जो पेट्रोल नली डालने वाले श्रमिकों (pipeline riders) को रोजगार देती है। नियुक्त किए जाने वाले श्रमिकों की सख्या के सम्बन्ध में बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय बनाई गई दशाओं पर निर्भर करेंगे। कम्पनी को प्रति इकाई समयानुसार एक अतिरिक्त श्रमिक को काम पर लगाने से टाले जाने वाले अपव्यय के मूल्य का अनुमान लगाना चाहिए और श्रमिक की नियुक्ति पर होने वाले अतिरिक्त व्यय से इसकी तुलना करनी चाहिए। यदि टाले गए अपव्यय का मूल्य अतिरिक्त समय की मजदूरी से अधिक होता है, तो श्रमिक को काम पर लगाना लाभप्रद होगा। पेट्रोल नली के श्रमिकों की नियुक्ति उस बिन्दु तक की जानी चाहिए जहाँ पर किसी भी एक श्रमिक का फर्म की कुल प्राप्तियों में सीमान्त योगदान उस अतिरिक्त व्यय के ठीक बराबर हो जो उसकी नियुक्ति पर किया गया है।

वाले A साधन की मात्रा में एक इकाई की वृद्धि की जाती है तो VMP_a बराबर होती है $MPP_a \times P_x$ के।

सारणी 14–1 में, जो साधन A की अवस्था II को सूचित करती है, कॉलम (2) इसकी सीमान्त भौतिक उत्पत्ति को प्रदर्शित करता है जबकि इसकी विभिन्न मात्राएँ

सारणी 14–1 सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य, साधन-कीमत, और लाभ-अधिकतमकरण

(1) A की मात्रा	(2) सीमान्त भौतिक उत्पत्ति (MPP_a)	(3) वस्तु-कीमत (P_x)	(4) सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य (VMP_a)	(5) साधन कीमत (P_a)
4	7	$2	$14	$4
5	6	2	12	4
6	5	2	10	4
7	4	2	8	4
8	3	2	6	4
9	2	2	4	4
10	0	2	0	4

अन्य साधनों की स्थिर मात्राओं के साथ प्रयुक्त की जाती हैं। फर्म की अन्तिम उत्पत्ति की प्रति इकाई कीमत कॉलम (3) में दर्शाई गई है। A साधन की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य कॉलम (4) में दर्शाया गया है। वस्तु के शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक विक्रेता के लिए एक साधन के उपयोग की मात्रा में एक इकाई की वृद्धि से फर्म की कुल प्राप्तियों में जो वृद्धि होती है वह उस साधन की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य के बराबर होती है।

A साधन की अवस्था II में प्रति इकाई समयानुसार A की अधिक मात्राओं के उपयोग से सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य घटता है। यह गिरावट ह्रासमान-प्रतिफल नियम के क्रियाशील होने का परिणाम होती है। अवस्था II में A साधन की अधिक मात्राओं के उपयोग से इसकी सीमान्त भौतिक उत्पत्ति में गिरावट आती है। इस प्रकार A की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य घटता है, हालांकि जिस कीमत पर अन्तिम उत्पत्ति बेची जाती है वह यथास्थिर रहती है।

रोजगार का स्तर जब उत्पादन के साधन शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओं में खरीदे जाते हैं तो एक साधन के उपयोग के स्तर में एक इकाई की वृद्धि से फर्म की कुल लागत में इस साधन की कीमत के बराबर वृद्धि होती है। एक फर्म साधन

की कुल पूर्ति का इतना थोड़ा अंश लेती है कि वह अकेली साधन की कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती। यदि साधन की कीमत (P_a) प्रति इकाई $4 होती है, तो A की मात्रा में एक इकाई की वृद्धि से फर्म की कुल लागत में $4 की वृद्धि होती है। यह सारणी 14–1 के कॉलम (5) में दर्शाया गया है।

फर्म के द्वारा A के उपयोग का लाभ-अधिकतम करने वाला स्तर वह होता है जिस पर A की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य साधन की एक इकाई की कीमत के बराबर होता है। सारणी 14–1 को देखिए। प्रति इकाई समयानुसार A की चौथी इकाई से फर्म की कुल प्राप्तियों में $14 की वृद्धि होती है, लेकिन फर्म की कुल लागतों में केवल $4 की ही वृद्धि होती है। अतएव, इससे फर्म के लाभों में $10 की वृद्धि होती है। A की पाँचवी, छठी, सातवी, एवं आठवी इकाई कुल लागतों की अपेक्षा कुल प्राप्तियों में अधिक वृद्धि करती है, और, परिणामस्वरूप, लाभों में विशुद्ध वृद्धि करती है। A की नवी इकाई कुल प्राप्तियों व कुल लागतों दोनों में समान मात्रा में वृद्धि करती है। यदि A की दसवी इकाई का उपयोग किया जाएगा तो लाभ की मात्रा $4 घट जाएगी। इसलिए जब $P_a = \$4$ होती है, तो A साधन के सन्दर्भ में लाभ उस समय अधिकतम होंगे जब कि इनकी 9 इकाइयाँ प्रयुक्त की जाती हैं। हम लाभ अधिकतम करने वाली शर्त को निम्न में से किसी भी रूप में लिख सकते हैं

$$VMP_a = P_a$$

अथवा ....(14.5)

$$MPP_a \times P_x = P_a$$

द्वितीय रूप केवल पहले का ही विस्तृत रूप है।

मांग-वक्र : यदि केवल A ही परिवर्तनशील साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तो हम साधन के सीमान्त उत्पत्ति-मूल्य की अनुसूची, जैसा कि सारणी 14–1 के कॉलम (1) व (4) में बतलाया गया है, A के लिए फर्म की मांग-अनुसूची होगी। यह उन विभिन्न मात्राओं को दर्शाती है जिन्हे फर्म विभिन्न सम्भव कीमतों पर लेगी। यदि P_a प्रति इकाई $10 है, तो 6 इकाइयाँ प्रयुक्त होंगी। यदि P_a प्रति इकाई *$14 हो, तो 4 इकाइयाँ प्रयुक्त की जायेंगी।*

साधन के लिए फर्म का मांग-वक्र रेखाचित्र पर प्रदर्शित सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य की अनुसूची ही होता है। चित्र 14–2 में ऐसा ही वक्र दर्शाया गया है। मात्रा अक्ष के सन्दर्भ में यह A साधन के लिए अवस्था II में होता है। प्रति इकाई डालर अक्ष के सन्दर्भ में A की प्रत्येक मात्रा पर सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य सीमान्त भौतिक उत्पत्ति को उस प्रति इकाई कीमत से गुणा करके प्राप्त किया जाता है जिस पर अन्तिम उत्पत्ति बेची जाती है।

सम्भवत A साधन के सन्दर्भ मे फर्म के द्वारा लाभ-अधिकतमकरण पर पुन विचार करना उपयोगी हो सकता है और इस बार यह विचार मांग-वक्र अथवा सीमान्त उत्पत्ति-मूल्य-वक्र की भाषा मे किया जायेगा। यदि चित्र 14–2 मे A की कीमत P_{a2} होनी है तो फर्म a_2 मात्रा का उपयोग करके अपने लाभ अधिकतम
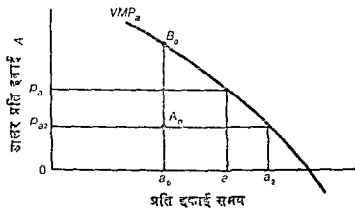
चित्र 14–2 सीमान्त उत्पत्ति वक्र का मूल्य

करेगी। यदि फर्म a_0 मात्रा का उपयोग करती है तो a_0 इकाई से फर्म की कुल लागतो मे $a_0 A_0$ की वृद्धि होगी, लेकिन फर्म की कुल प्राप्तियो मे $a_0 B_0$ की वृद्धि होगी। इससे फर्म के लाभो मे $A_0 B_0$ की वृद्धि होगी। A के उपयोग की मात्रा को a_2 तक बढाने से कुल लागतो की अपेक्षा कुल प्राप्तियो मे अधिक वृद्धि होती है और इसी कारण से लाभो मे वृद्धि होती है। a_2 से आगे की अधिक मात्राओ से फर्म की कुल प्राप्तियो की अपेक्षा इसकी कुल लागता मे अधिक वृद्धि होती है और परिणाम-स्वरूप लाभ घटते है। यदि A की कीमत P_{a1} होती है, तो फर्म उस मात्रा का उपयोग करके अपने लाभ अधिकतम करेगी, जहाँ A की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य इसकी प्रति इकाई कीमत के बराबर होता है।

फर्म का मांग-वक्र . कई साधन परिवर्तनशील

जब एक फर्म कई परिवर्तनशील साधनो का उपयोग करती है तो इनमे से किसी के लिए भी इसका मांग-वक्र उस साधन की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य का वक्र नहीं रह जाता है। जब फर्म कई परिवर्तनशील साधनो का उपयोग करती है तो एक साधन की कीमत के परिवर्तन से, अन्य साधनो की कीमतो को स्थिर मानते हुए अन्य साधनो की प्रयुक्त की जाने वाली मात्राओ मे परिवर्तन उत्पन्न हो जाएँगे; और

इन परिवर्तनों के फलस्वरूप एक साधन के उपयोग पर प्रभाव पड़ेगा क्योंकि फर्म लाभ अधिकतम करने एवं साधनों के न्यूनतम-लागत-संयोग को पुनः स्थापित करने का प्रयास करेगी। मान लीजिए हम ऐसे परिवर्तनों को एक साधन की कीमत में परिवर्तन के फर्म या आन्तरिक प्रभाव (firm or internal effects) कह कर पुकारते हैं।

आन्तरिक प्रभावों को स्पष्ट करने के लिए, मान लीजिए, हम A साधन के लिए, जो कई परिवर्तनशील साधनों में से एक है, फर्म का माँग-वक्र निकालना चाहते हैं। मान लीजिए प्रारम्भ में फर्म X-वस्तु की लाभ अधिकतम करने वाली उत्पत्ति का निर्माण कर रही है और परिवर्तनशील साधनों के उपयुक्त न्यूनतम-लागत संयोग का उपयोग कर रही है। जैसा कि चित्र 14-3 में दर्शाया गया है, A की कीमत P_{a1} है और प्रयुक्त की जाने वाली मात्रा a_1 है। जब केवल A की मात्रा में ही परिवर्तन किया जाता है, तो VMP_{a1} वक्र A की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य दर्शाता है।
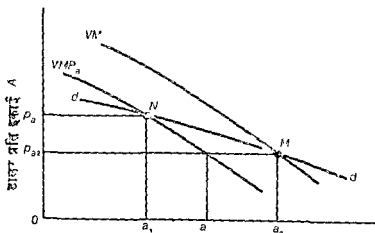
चित्र 14-3 फर्म की कई परिवर्तनशील साधनों में से एक की माँग

अब मान लीजिए कि किसी कारणवश A की कीमत गिरकर P_{a2} पर आ जाती है। चूँकि $VMP_a > P_a$ इसलिए फर्म A की लगाई जाने वाली मात्रा का विस्तार a_1 की तरफ करेगी। लेकिन A के इस बढ़े हुए उपयोग के कारण A के पूरक होने वाले परिवर्तनशील साधनों के सीमान्त भौतिक उत्पत्ति वक्र एवं सीमान्त उत्पत्ति-मूल्य के वक्र दाहिनी ओर खिसक जाएँगे। स्थानापन्न साधनों के सम्बन्धित वक्र

बायीं ओर खिसक जाएँगे। चूँकि अन्य साधनों की कीमतें स्थिर रहती हैं, इसलिए पूरक साधनों का उपयोग बढ़ेगा और स्थानापन्न साधनों का घटेगा। अन्य साधनों के उपयोग में होने वाले ऐसे परिवर्तनों से A के सीमान्त भौतिक उत्पत्ति वक्र एवं सीमान्त उत्पत्ति-मूल्य के वक्र दाहिनी ओर खिसक जाएँगे। प्रत्येक अन्य परिवर्तनशील साधन के उपयोग के भिन्न स्तर से A के लिए सीमान्त भौतिक उत्पत्ति वक्र एवं सीमान्त उत्पत्ति मूल्य-वक्र भिन्न होंगे।

जब ये और अन्य ऊँचे क्रम के पूरक और स्थानापन्न प्रभाव अपना काम कर चुकते हैं, तब फर्म सीमान्त उत्पत्ति वक्र के VMP_{a2} जैसे किसी मूल्य पर होगी और यह A की उस मात्रा का उपयोग करेगी जहाँ पर इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य इसकी कीमत के बराबर होता है—अर्थात्, a_2 मात्रा के बराबर होता है।[6] अन्य परिवर्तनशील साधनों के उपयोग के स्तर भी ऐसे होंगे जहाँ प्रत्येक के लिए उसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य इसकी कीमत के बराबर होगा। यहाँ पर फर्म को पुन अधिकतम लाभ प्राप्त होते हैं और वह उपयुक्त न्यूनतम-लागत-संयोग का उपयोग करती है।

N और M बिन्दु A साधन के लिए फर्म के माँग-वक्र पर पाये जाने वाले बिन्दु होते हैं। ये बिन्दु A की उन मात्राओं को दर्शाते हैं जिन्हें फर्म A की उन वैकल्पिक कीमतों पर लगायेगी जबकि अन्य साधनों की कीमतें स्थिर रखी जाती हैं और अन्य सभी साधनों की मात्राएँ A की प्रत्येक कीमत के अनुसार ठीक से समायोजित की जाती हैं। A के लिए फर्म के माँग-वक्र पर अन्य बिन्दु भी इसी तरह से निर्धारित किये जा सकते हैं और वे dd जैसे एक वक्र का निर्माण करेंगे। साधारणत एक साधन के लिए फर्म का माँग-वक्र उस साधन के उत्पत्ति-वक्र के किसी भी अवैसे मूल्य से ज्यादा लोचदार होगा। एक साधन के लिए जितने ज्यादा अच्छे स्थानापन्न पदार्थ उपलब्ध होते हैं उसका माँग-वक्र उतना ही अधिक लोचदार होता है।

बाजार माँग-वक्र

व्यक्तिगत फर्मों के माँग-वक्रों का क्षैतिज योग एक साधन के लिए पाये जाने वाले बाजार माँग-वक्र के काफी निकट होता है। लेकिन एक सीधा क्षैतिज योग एक साधन की कीमत में होने वाले परिवर्तनों के उन प्रभावों को भुला देता है जिन्हें हम बाजार या बाह्य प्रभाव (market or external effects) कह कर पुकारते हैं।

---

6 फर्म के स्थिर साधनों के साथ A के बढ़ते हुए अनुपातों के कारण A की सीमांत भौतिक उत्पत्ति एवं सीमांत उत्पत्ति का मूल्य घटेगा, हालांकि अन्य परिवर्तनशील साधनों के बदलते हुए उपयोग के कारण A के वक्र दाहिनी ओर खिसक जाएँगे।

एक शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक जगत में एक व्यक्तिगत फर्म उन बाजारों की तुलना में जिनमें यह अपने कार्य का सचालन करती है, इतनी छोटी होती है कि वह इस बात को पहले से ही जानती है कि इसके कार्य कलापों का इसके द्वारा किये जाने वाले क्रय-विक्रय की कीमत पर कोई प्रभाव नही पडेगा। परिणामस्वरूप एक साधन के लिए फर्म का माँग वक्र इसकी उन विभिन्न मात्राओं को दर्शायेगा जिन्हें फर्म उस साधन की विभिन्न वैकल्पिक कीमतों पर लेगी जबकि फर्म पहले से ही जानती है कि इसके कार्य कलापों का इसके द्वारा बेची जाने वाली वस्तु की कीमत पर कोई प्रभाव नही पडेगा। फर्म साधनों की कीमतों के परिवर्तनों से उत्पन्न फर्म या आन्तरिक प्रभावों पर ही अपना ध्यान देती है।

बाजार अथवा बाह्य प्रभाव उस समय उत्पन्न होते हैं जबकि एक साधन की कीमत मे परिवर्तन होने से उसका उपयोग करने वाली सभी फर्मों के द्वारा उत्पादित माल की मात्राओं म परिवर्तन होने से उद्योग की उत्पत्ति म एक साथ विस्तार या सकुचन आ जाता है। यदि A साधन का उपयोग करने वाले उद्योगों मे से एक उद्योग X होता है तो इस साधन की कीमत मे कमी होने से इसका उपयोग करने वाली सभी फर्में इसको अधिक मात्रा मे प्रयुक्त करने लगेंगी। यद्यपि किसी एक फर्म की उत्पत्ति मे होने वाली वृद्धि X–की कीमत मे गिरावट के लिए पर्याप्त नही होगी, लेकिन सभी फर्मों की उत्पत्ति की मात्रा मे एक साथ वृद्धि होने से कीमत मे ऐसी गिरावट आ सकती है। X की कीमत मे होने वाली ऐसी प्रत्येक गिरावट व्यक्तिगत फर्मों के सभी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य-सम्बन्धी वक्रों को बायीं ओर खिसका देगी अथवा नीचे की ओर ले जायेगी और परिणामस्वरूप, यह A साधन के लिए व्यक्तिगत फर्मों के माँग-वक्रों को बायीं ओर या नीचे की ओर खिसका देगी।
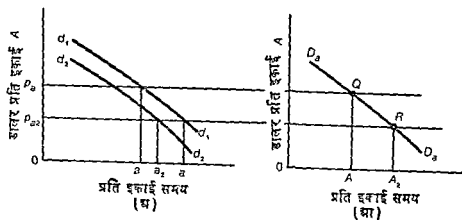
चित्र 14-4 एक साधन का बाजार माँग वक्र

चित्र 14–4 मे एक साधन की कीमत में होने वाले परिवर्तनो के बाह्य प्रभाव एव उस साधन के लिए बाजार माँग-वक्र का निर्माण प्रस्तुत किये गये हैं। मान लीजिए रेखाचित्र की फर्म एव प्रत्येक अन्य फर्म, जो A साधन का उपयोग करती है, सतुलन की दशा मे है और A की कीमत P_{a1} है। A के लिए फर्म का माँग-वक्र d_1d_1 है और फर्म A साधन की a_1 मात्रा का उपयोग कर रही है। यदि P_{a1} कीमत पर समस्त फर्मों के द्वारा प्रयुक्त मात्राओं का योग किया जाय, तो उस कीमत पर बाजार से ली जाने वाली इस साधन की कुल मात्रा A_1 होगी। इस प्रकार Q बिन्दु A के बाजार माँग-वक्र पर एक बिन्दु है।

अब मान लीजिए कि A की कीमत घटकर P_{a2} हो जाती है। इससे प्रत्येक फर्म A की लगाई जाने वाली मात्रा मे वृद्धि कर देगी, लेकिन जब A का उपयोग करने वाले प्रत्येक उद्योग मे फर्में इसके उपयोग मे वृद्धि करती हैं और, परिणामस्वरूप, उद्योग मे उत्पत्ति की मात्रा मे वृद्धि होती है तो वस्तुओं के बाजार-भाव घटते हैं। A साधन के लिए व्यक्तिगत फर्म के माँग-वक्र d_2d_2 जैसी स्थिति की तरफ बायी तरफ खिसक जाते हैं। इस प्रकार व्यक्तिगत फर्मों के द्वारा A की लगाई जाने वाली मात्राएँ a_1' जैसी मात्राओं की तरफ जाने की बजाय a_2 जैसी मात्राओं की तरफ बढती हैं।

साधन की कीमत मे कमी से बाजार या बाह्य प्रभाव के फलस्वरूप A के उपयोग मे सीमित मात्रा मे विस्तार होता है। जब प्रत्येक व्यक्तिगत फर्म साधनो के न्यूनतम-लागत-सयोग को प्राप्त करने के लिए और लाभ-अधिकतम करने वाली उत्पत्ति की मात्रा के लिए आवश्यक समायोजन कर लेती है एव प्रत्येक फर्म के उपयोग का स्तर a_2 के जैसा होता है तो P_{a2} कीमत पर सभी फर्में मिलकर जिन मात्राओं को प्रयुक्त करेंगी उनके योग से A_2 मात्रा प्राप्त की जा सकती है, और A के बाजार माँग-वक्र पर R एक दूसरा बिन्दु होता है। बाजार माँग-वक्र के दूसरे बिन्दुओं का भी इसी तरह से पता लगाया जा सकता है और इस प्रकार बाजार माँग-वक्र $D_a D_a$ प्राप्त किया जा सकता है।

बाजार पूर्ति-वक्र

A साधन अथवा किसी अन्य साधन का बाजार पूर्ति-वक्र प्रति इकाई समयानुसार उन विभिन्न मात्राओं को दर्शाता है जिन्हे उसके स्वामी विभिन्न सम्भव कीमतो पर बाजार मे प्रस्तुत करेंगे। सामान्यत यह दाहिनी तरफ ऊपर की ओर उठता हुआ होगा जो इस बात को सूचित करेगा कि नीची कीमतो की अपेक्षा ऊँची कीमतो पर इसकी अधिक मात्रा बाजार मे प्रस्तुत की जायेगी। यदि A साधन एक किस्म का श्रम है तो कई शक्तियाँ कार्यरत होती हैं जिनके कारण नीची मजदूरी की दरो के बजाय ऊँची मजदूरी की दरो पर श्रम की पूर्ति की मात्रा अधिक होती है। सर्वप्रथम,

अध्याय 5 में हम देख चुके हैं कि यदि प्रतिस्थापन प्रभाव आय प्रभावों से अधिक भारी नहीं होते तो व्यक्तिगत श्रमिक काम के अधिक घंटे प्रदान करने के लिए प्रेरित होंगे।[7] द्वितीय, ऊँची मजदूरी की दरों के कारण अधिक श्रमिक व्यवसाय में प्रवेश करने के लिए प्रेरित होंगे। तृतीय, एक दिए हुए व्यवसाय में ऊँची मजदूरी की दरों के कारण जो श्रमिक अन्य काम धंधों में संलग्न थे, लेकिन जो उस व्यवसाय के लायक योग्यता रखते थे, वे इसमें पुनः प्रवेश करेंगे।

किसी एक उद्योग में प्रयुक्त गैर-मानवीय साधन सामान्यतया अन्य उद्योगों की उत्पत्ति हुआ करते हैं। तब उनके पूर्ति-वक्र उपयुक्त उद्योग या बाजार पूर्ति-वक्र ही होते हैं। *स्थिर लागत और ह्रासमान लागत स्थितियों* के अलावा वे ऊपर दाहिनी तरफ जायेंगे। उदाहरण के लिए, पेट्रोल उद्योग में क्रूड तेल की कीमतों में होने वाली वृद्धियों में तेल प्राप्त करने की दर अधिक तेज हो जाती है और इसके विपरीत भी सही होता है। हमारे उद्देश्य की दृष्टि से साधन के पूर्ति-वक्रों की सुनिश्चित आकृति का विशेष महत्त्व नहीं होता है, हालांकि कुछ आर्थिक समस्याओं में इनका महत्त्व अवश्य होता है। ये दाहिनी तरफ ऊपर की ओर जा सकते हैं, ये पूर्णतया लम्बवत हो सकते हैं अथवा ये ऊँची कीमतों पर पीछे की ओर मुड़ सकते हैं। प्रत्येक स्थिति में मूलभूत विश्लेषण वही रहेगा।

साधनों की कीमत का निर्धारण एवं उपयोग का स्तर

बाजार-माँग एवं बाजार-पूर्ति की दशाएँ, जो इनके बाजार माँग-वक्र एवं बाजार पूर्ति वक्र में शामिल की गई थी साधन की बाजार-कीमत निर्धारित करती हैं। इसकी संतुलन-कीमत वह होगी जहाँ साधनों के क्रेता प्रति इकाई समयानुसार उसी मात्रा को लेने के लिए उद्यत होते हैं जिसे विक्रेता बेचना चाहते हैं।

चित्र 14–5 में बाजार माँग-वक्र एवं बाजार पूर्ति वक्र क्रमशः $D_3 D_3$ व $S_3 S_3$ हैं। A साधन की कीमत P_3 होगी। ऊँची कीमत पर विक्रेता उस मात्रा से ज्यादा बेचना चाहेंगे जितनी क्रेता उस कीमत पर खरीदना चाहेंगे। इससे साधनों की कुछ बेकारी उत्पन्न होगी और बेकार पड़ी हुई इकाइयों के स्वामी अपनी विशिष्ट पूर्तियों के लिए पूरा उपयोग करने के लिए आपस में स्पर्धा करके कीमत को घटा देंगे। इस प्रकार कीमत घटकर P_3 के संतुलन-स्तर पर आ जायेगी। P_3 से नीची कीमतों पर साधन के अभाव की स्थिति होगी। साधनों के क्रेता उपलब्ध पूर्ति के लिए परस्पर स्पर्धा करेंगे, और कीमत को बढ़ाकर संतुलन स्तर पर पहुँचा देंगे।

---

7. अध्याय 5 में श्रम की पूर्ति का खण्ड।
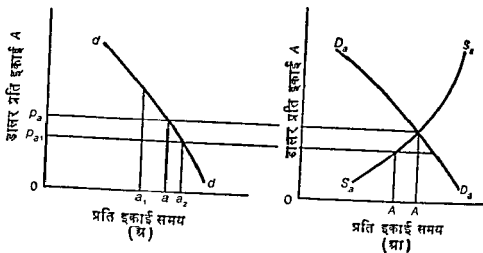
चित्र 14-5 एक साधन की बाजार-कीमत, बाजार मे उपयोग का स्तर और फर्म के लिए उपयोग के स्तर का निर्धारण

जिस अर्थव्यवस्था का हम वर्णन कर रहे हैं उसमे एक दिये हुए साधन की सतुलन बाजार-कीमत उस विधि से निर्धारित होती है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, लेकिन उस अर्थव्यवस्था के पीछे जो मान्यताएँ निहित है उनको यहाँ पुन दोहराना उचित होगा। हमने यह कल्पना की है कि अर्थव्यवस्था स्थिर किस्म की है—अर्थात् यह बडे उच्चावचनो मे मुक्त है—और साधनो के उपयोग के सम्बन्ध मे उच्च स्तर विद्यमान हैं। दूसरे शब्दो मे, हम यह मान लेते हैं कि सघीय सरकार की राजकोषीय-मौद्रिक नीतियाँ ऐसी हैं कि राष्ट्रीय आय साधनो के उपयोग के ऊँचे स्तरो पर स्थिर रखी जाती है।

एक स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था मे जिसमे स्थिरता निश्चित नही होती है, साधनो की कीमत व उपयोग के स्तरो का निर्धारण अधिक जटिल होता है। साधनो की पूर्तियाँ एव साधनो की माँग एक-दूसरे से स्वतन्त्र नही होती। उदाहरण के लिए, 1930 की दशाब्दी की महान् मन्दी म वस्तुओ एव साधनो की कीमतें भी घट गई थी। लेकिन साधनो के उपयोग के स्तर एव कीमतें व्यक्तिगत आमदनी को निर्धारित करते हैं। इसलिए व्यक्तिगत आमदनियाँ घट गईं जिसमे पदार्थों एव साधनो की माँग और भी ज्यादा घट गई। इस प्रकार एक अस्थिर अर्थव्यवस्था मे साधनो के माँग वक्र कुछ अश मे बेकारी के स्तरो एव साधनो की कीमतो पर निर्भर करते हैं। इसके अतिरिक्त, सकुचन की तरफ जाने वाली अर्थव्यवस्था मे बेरोजगारी का भय और घटती

हुई आमदनियाँ साधनो के स्वामियो को दी हुई कीमतो पर अपेक्षाकृत अधिक मात्राएँ प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित कर सकती हैं, अर्थात् ये साधनो के पूर्ति-वक्रो को दाहिनी तरफ खिसका सकती हैं जिससे वेकारी की समस्या बढ जाती है। हमारे लिए इस तरह के तर्क का विशेष प्रयोग करने की आवश्यकता नही है क्योकि यह हमारे विश्लेषण के क्षेत्र के बाहर है। लेकिन यह समष्टि अर्थशास्त्र एव व्यष्टि अर्थशास्त्र के बीच पाये जाने वाले पेचीदे सम्बन्धो को भी बतलाना है और साथ मे यह भी दर्शाता है कि स्थिर अर्थव्यवस्था मे जो कीमत-सिद्धान्त विकसित किया गया है उसकी अपनी कुछ मर्यादाएँ होती हैं।

जव हम स्थिर अर्थव्यवस्था पर वापस आते हैं तो यह स्पष्ट है कि एक व्यक्तिगत फर्म, जो A साधन को प्रतियोगिता की दशा मे खरीदती है प्रति इकाई p_a कीमत पर चाहे जितनी मात्रा मे प्राप्त कर सकती है। शिकागो मे अकेली निर्माण फर्म (construction firm) इस्पात के बाजार-भाव को प्रभावित नही कर सकेगी। इस प्रकार एक अकेली फर्म के दृष्टिकोण से एक साधन का पूर्ति-वक्र चित्र 14–5 मे सतुलन-बाजार-कीमत पर एक क्षैतिज रेखा के रूप मे दिखलाया गया है। फर्म और बाजार के रेखाचित्रो पर प्रति इकाई डालर-अक्ष समान हैं। बाजार रेखाचित्र पर मात्रा अक्ष का पैमाना एक अकेली फर्म की तुलना मे काफी छोटा किया गया है। यह मानने पर कि P_a कीमत से सम्बद्ध फर्म का माँग-वक्र dd है, अकेली फर्म के द्वारा साधन की लगाई जाने वाली मात्रा a होगी और उस मात्रा पर सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य इसकी प्रति इकाई कीमत के बराबर होगा। साधन की लगाई जाने वाली मात्रा का बाजार-स्तर (market level) व्यक्तिगत फर्मों के द्वारा लगाई जाने वाली मात्राओ का योग होगा और यह बाजार-रेखाचित्र पर मात्रा A के रूप मे प्रदर्शित किया गया है।

यह धारणा कि साधनो को प्राय सतुलन-कीमत से कम भुगतान किया जाता है, इतनी व्याप्त है कि यहाँ इस स्थिति पर कुछ विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है। मान लीजिए, चित्र 14–5 मे A साधन की कीमत P_{a1} होती है। उस कीमत पर व्यक्तिगत फर्में a_2 मात्रा लेना चाहती हैं ताकि वे उस साधन के सम्बन्ध मे अपने लाभ अधिकतम कर सकें। सभी फर्मों को अपनी इच्छानुसार मात्रा नही मिल सकती क्योकि उस कीमत पर बाजार मे प्रस्तुत की जाने वाली सम्पूर्ण मात्रा A_1 होती है। वास्तव मे अनेक फर्में अथवा सम्भवत सभी फर्में a से भी कम मात्रा–जैसे, a_1 प्राप्त कर सकेंगी। ऐसी फर्मों के लिए A की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य साधन की कीमत से अधिक होगा। ये फर्में लाभ मे वृद्धि करने के लिए साधन की लगाई जाने वाली मात्रा में वृद्धि करने की इच्छुक होती हैं। प्रत्येक फर्म ऐसा सोचती है कि वह P_{a1} से

थोड़ी ऊँची कीमत देकर अपनी इच्छानुसार साधन की मात्रा प्राप्त करने में समर्थ हो जायगी। साधन का उपयोग करने वाली फर्मों के बीच गठबंधन के अभाव में—और प्रतियोगिता में कोई गठबंधन नहीं होता—प्रत्येक फर्म एक सी नीति अपनाने का प्रयास करती है। जब तक कीमत बढ़कर P_a नहीं हो जाती तब तक कोई भी फर्म अपनी आवश्यकतानुसार साधन की मात्रा प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाती। साधनों की खरीद में शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत प्रत्येक फर्म का स्वतन्त्र कार्य एवं लाभों को अधिकतम करने की इच्छा कीमत को स्थायी रूप से सतुलन-स्तर से नीचे नहीं आने देते।

यह ध्यान देने योग्य है कि शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक विशिष्ट साधन को प्रति इकाई जो कीमत प्राप्त होती है वह उसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य के बराबर होती है। इस प्रकार A साधन की एक इकाई को केवल वही राशि दी जाती है जो वह अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति के मूल्य में योगदान के रूप में देती है। A के लिए बाजार माँग-वक्र इसके सभी उपयोगों में मिलाकर A की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य को दर्शाता है। बाजार माँग वक्र बाजार पूर्ति-वक्र के साथ मिलकर कीमत निर्धारित करता है, इस प्रकार साधन की कीमत इसका उपयोग करने वाली एक या सभी फर्मों में इसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य के बराबर होती है। प्रत्येक फर्म साधन की बाजार-कीमत को दिया हुआ मानती है और साधन की लगाई जाने वाली मात्रा इस प्रकार से समायोजित करती है (adjusts) कि उस फर्म में इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य उस साधन की बाजार-कीमत के बराबर होता है।[8]

फर्म के लाभों को अधिकतम करने के लिए एक साथ कई साधनों को सही मात्राओं एवं सही अनुपातों में लगाने की जिन शर्तों का इस अध्याय के प्रथम भाग में उल्लेख किया गया था, वे साधनों पर एक-एक करके विचार करने पर भी प्राप्त की जा सकती हैं। मान लीजिए फर्म दो साधनों —A और B—का उपयोग करती है। A के सम्बन्ध में लाभ अधिकतम करने के लिए इसे इस साधन को उस बिन्दु तक लगाना चाहिए जहाँ पर

8. प्राय इसका अर्थ गलत लगा लिया जाता है। एक फर्म के लिए यह कहा जाता है कि वह साधन को इसकी सीमांत उत्पत्ति के मूल्य के बराबर कीमत देती है—जिसका आशय यह समझा जाता है कि फर्म ही साधन की सीमांत उत्पत्ति का मूल्य निर्धारित करती है, और तत्पश्चात् उसका भुगतान कर देती है। यह आशय शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत सीमांत-उत्पादकता-सिद्धांत की प्रकृति को गलत रूप में प्रस्तुत करता है। फर्म का कीमत के निर्धारण में कुछ भी हाथ नहीं होता। यह बाजार-कीमत देनी ही होती है, लेकिन यह साधन की लगाई जाने वाली मात्रा को उस बिन्दु तक समायोजित करती है जहाँ सीमांत उत्पत्ति का मूल्य उस कीमत के बराबर होता है।

$$MPP_a \times P_x = P_a, \text{ अथवा } \frac{MPP_a}{P_a} = \frac{1}{P_x} \quad ....(14\ 6)$$

इसी तरह, B को उस बिन्दु तक लगाना चाहिए जहाँ

$$MPP_b \times P_x = P_b, \text{ अथवा } \frac{MPP_b}{P_b} = \frac{1}{P_x} \quad ...(14.7)$$

समीकरण (14.6) व (14 7) को मिलाने पर

$$\frac{MPP_a}{P_a} = \frac{MPP_b}{P_b} \frac{1}{P_x} \quad ...(14.8)$$

चूंकि MPP_a / P_a एव MPP_b / P_b वैसे ही हैं जैसे कि $1/MC_x$, इसलिए :

$$\frac{MPP_a}{P_a} = \frac{MPP_b}{P_b} = \frac{1}{MC_x} = \frac{1}{P_x} \quad ....(14\ 9)$$

जब फर्म प्रत्येक परिवर्तनशील साधन को लाभ अधिकतमकरण के लिए सही निरपेक्ष मात्रा (absolute amount) मे लगाती है, तो यह अनिवार्यत. इनके सही सयोग का ही उपयोग करती है।

वैकल्पिक लागतो पर पुनर्विचार

वैकल्पिक लागत का सिद्धान्त, जिसका विवेचन हमने अध्याय 9 मे किया था, एक दिये हुए साधन की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य की भाषा मे पुन व्यक्त किया जा सकता है। शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक दिये हुए साधन का उपयोग करने वाली प्रत्येक फर्म इसका उस मात्रा तक उपयोग करती है जहाँ पर इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य इसकी कीमत के बराबर होता है। विभिन्न फर्मों के द्वारा दी जाने वाली एक साधन की कीमतों मे अन्तर होने से इसकी इकाइयो को कम प्रतिफल वाले उपयोगों से अधिक प्रतिफल वाले उपयोगो मे जाने की प्रेरणा उस समय तक मिलती है जब तक कि सम्पूर्ण बाजार मे एक-सी कीमत न हो जाय। इस प्रकार साधन की कीमत, अथवा किसी भी फर्म के लिए इसकी लागत, वैकल्पिक उपयोगो मे इसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य के बराबर होगी।

आर्थिक लगान या अधिशेष

शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओ मे भी अल्पकाल मे समस्त साधनो की पूर्ण गतिशीलता नही पाई जाती। वे साधन जो फर्म के सयत्र के आकार का निर्माण करते हैं गति-शील नहीं होते—वे विशेष उपयोगो या उपयोगकर्ताओ के लिए मात्रा मे स्थिर होते

हैं। विचाराधीन समय की अवधि जितनी अधिक लम्बी होती है स्थिर साधन उतने ही कम होते हैं।

स्थिर साधनों के द्वारा प्राप्त किये गये प्रतिफल उपरवर्णित सिद्धान्तों के अनुसार निर्धारित नहीं होते हैं। चूंकि वे साधन वैकल्पिक उपयोगों में गतिशील होने के लिए मुक्त नहीं होते है, इसलिए इनका अल्पकालीन प्रतिफल वह राशि होगी जो गतिशील साधनो को विशिष्ट फर्म मे रोकने के लिए दी जाने वाली राशि के बाद शेष बच रहती है। गतिशील साधनो को वह राशि अवश्य दी जानी चाहिये जिसे वे वैकल्पिक उपयोगों में अर्जित कर सकें; अर्थात् यह राशि वैकल्पिक उपयोगों में उनकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्यों के बराबर हो। स्थिर साधनों के लिए अवशिष्ट राशि लगान कहलायेगी।[9]

एक व्यक्तिगत फर्म के लिए एक अल्पकालीन लागत-कीमत रेखाचित्र आर्थिक लगान की धारणा को स्पष्ट करने में सहायता पहुँचायेगा। चित्र 14–6 में अल्पकालीन औसत लागत-वक्र, औसत परिवर्तनशील लागत-वक्र, एवं सीमान्त लागत-वक्र खीचे गये है। मान लीजिए, वस्तु की बाजार-कीमत P है। फर्म की उत्पत्ति x
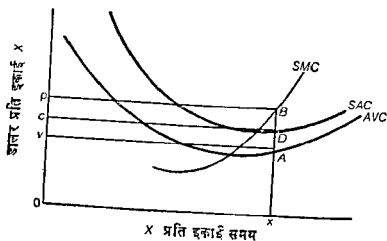
चित्र 14–6 आर्थिक लगान

---

9. ये प्रतिफल कभी-कभी अर्द्ध-लगान (आभास लगान) भी कहलाते हैं। यह शब्द, जिसका श्रीगणेश ऐल्फ्रेड मार्शल ने किया था, आर्थिक साहित्य में इतने अस्पष्ट रूप मे प्रयुक्त किया गया है कि यहाँ पर हम इसे पूर्णतया टालना चाहेंगे।

होगी। परिवर्तनशील (गतिशील) साधनो की कुल लागत OvA_x है। यदि फर्म अपने परिवर्तनशील साधनो को कायम रखना चाहती है तो यह परिव्यय करना आवश्यक है।

यदि फर्म परिवर्तनशील साधनो को किये गये भुगतानो को कम करने का प्रयास करती है तो उनमे से कुछ या सभी साधन वैकल्पिक उपयोगो में चले जायेगे जहाँ उनकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य एव भुगतान अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। इस प्रकार औसत परिवर्तनशील लागत-वक्र प्रति इकाई उत्पत्ति की मात्रा के अनुसार उन आवश्यक परिव्ययो को दर्शाता है जिन्हे फर्म परिवर्तनशील साधनो के लिए अनिवार्य रूप से करती है। स्थिर साधन फर्म की कुल प्राप्तियो में से जो कुछ बच रहता है उसको प्राप्त करते हैं, अर्थात् वे आर्थिक लगान प्राप्त करते हैं। स्थिर साधनो के लिए कुल लगान vpBA होता है। वस्तु की बाजार-कीमत जितनी कम होती है, लगान उतना ही कम होगा। वस्तु की बाजार-कीमत जितनी अधिक होती है, आर्थिक लगान उतना ही ऊँचा होगा।

अब SAC वक्र की प्रकृति के सम्बन्ध में एक समस्या खडी हो जाती है। प्रश्न यह है कि यह वक्र क्या दर्शाता है? समस्या को समझने के लिए, मान लीजिए, हम स्थिर साधनो को एकत्र कर लेते है और उनको फर्म में किया जाने वाला विनियोग कहकर पुकारते हैं। लगान फर्म मे विनियोग पर प्रतिफल को सूचित करता है। लगान का केवल वह भाग जो विनियोग पर उस प्रतिफल को सूचित करता है जो विनियोग की उस मात्रा के द्वारा अर्थव्यवस्था में अन्यत्र (अथवा वैकल्पिक उपयोगो में) अर्जित की जाने वाली राशि के बराबर होता है, फर्म की स्थिर लागत कहलाता है। इस प्रकार लगान का वह हिस्सा जो vcDA के द्वारा सूचित किया जाता है, फर्म की स्थिर लागत होता है। लगान के शेष भाग को हमने पहले विशुद्ध लाभ कहकर परिभाषित किया है। किसी भी उत्पत्ति की मात्रा पर औसत लागत उस उत्पत्ति की मात्रा पर औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्तनशील लागत के जोड के बराबर होती है।

आर्थिक लगान इतना हो सकता है कि वह फर्म की स्थिर लागतो को शामिल कर सके अथवा उनसे अधिक या कम हो सके। जब एक फर्म मे विनियोग के प्रतिफल की दर अर्थव्यवस्था मे अन्यत्र औसत विनियोग के प्रतिफल की दर से अधिक होती है तो लगान कुल स्थिर लागतो से अधिक होते हैं, और हम कहते हैं कि फर्म विशुद्ध लाभ अर्जित कर रही है। जब लगान कुल स्थिर लागत के बराबर होते है, अर्थात्, जब फर्म मे किये गए विनियोग से वही प्रतिफल प्राप्त होता है जो अन्यत्र किये गये विनियोग से प्राप्त होता है, तो फर्म के लाभ शून्य होते हैं। जब वस्तु की कीमत

इतनी नहीं होती कि लगान कुल स्थिर लागतों के बराबर हो सके, अथवा जब अर्थव्यवस्था मे अन्यत्र किया जाने वाला विनियोग फर्म मे किये गए विनियोग से ऊँचा प्रतिफल देता है, तो हम कहते हैं कि फर्म घाटा उठा रही है।

सारांश

इस अध्याय मे उत्पादन के सिद्धान्तो को शुद्ध प्रतिस्पर्धा की दशाओ के अन्तर्गत वस्तु-विक्रय एव साधन-क्रय दोनो मे, साधनो की कीमत व उपयोग की मात्रा के निर्धारण पर लागू किया गया है। सर्वप्रथम, एक फर्म के द्वारा कई परिवर्तनशील साधनो के उपयोग से सम्बन्धित सिद्धान्त प्रस्थापित किये गए हैं। द्वितीय, किसी भी दिये हुए परिवर्तनशील साधन की कीमत एव उपयोग की मात्रा के निर्धारण से सम्बन्धित सिद्धान्तो की रचना की गई है।

जब फर्म के द्वारा कई परिवर्तनशील साधनो का उपयोग किया जाता है तो अपने लाभ अधिकतम करने की प्रक्रिया मे फर्म एक साथ दो समस्याएँ हल कर लेती है। इसे साधनो का उपयोग सही (न्यूनतम-लागत) सयोग मे करना चाहिए, और इसे साधनो की उन निरपेक्ष मात्राओ का उपयोग करना चाहिए जो वस्तु की लाभ-अधिकतम करने वाली मात्रा का उत्पादन करने के लिए आवश्यक होती हैं। साधनो का उपयोग सही निरपेक्ष मात्राओ मे करने का आशय यह है कि ये सही सयोग मे भी प्रयुक्त किए जायें। फर्म को साधनो की उन मात्राओ का उपयोग करना चाहिए और वस्तु की उस मात्रा का उत्पादन करना चाहिए जिस पर .

$$\frac{MPP_a}{P_a} = \frac{MPP_b}{P_b} = \ldots\ldots\ldots = \frac{MPP_n}{P_n} = \frac{1}{MC_x} = \frac{1}{P_x}$$

एक साधन की बाजार-कीमत, व्यक्तिगत फर्म के लिए उस साधन के उपयोग का स्तर और बाजार मे उसके उपयोग का स्तर निर्धारित करने के लिए उस साधन के व्यक्तिगत फर्म के माँग-वक्र, बाजार माँग वक्र, और बाजार पूर्ति-वक्र आवश्यक होते हैं। जब फर्म केवल एक परिवर्तनशील साधन का उपयोग करती है तो उस साधन की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य का वक्र इसके लिए फर्म का माँग-वक्र ही होता है। यदि फर्म कई परिवर्तनशील साधनो का उपयोग करती है तो एक दिये हुए साधन के लिए फर्म का माँग-वक्र उन विभिन्न मात्राओ को दर्शायेगा जिन्हें फर्म उस स्थिति मे विभिन्न वैकल्पिक कीमतो पर लेगी जबकि अन्य साधनो की कीमतें स्थिर रखी जाती हैं और एक दिए हुए साधन की प्रत्येक कीमत पर फर्म अपने लाभ अधिकतम करने के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले सभी साधनो की मात्राओ मे समस्त आवश्यक समायोजन कर लेती है। बाजार माँग वक्र उस साधन का उपयोग करने वाले सभी

उद्योगो मे सभी फर्मों की उन मात्राओ के योग से प्राप्त किया जाता है जिन्हें वे साधन की प्रत्येक सम्भव कीमत पर लेती हैं। बाजार पूर्ति-वक्र उस साधन की उन मात्राओ को दर्शाता है जिसे इसके स्वामी बाजार मे विभिन्न सम्भव कीमतो पर प्रस्तुत करेंगे। जब एक बार बाजार-कीमत निर्धारित हो जाती है तो फर्म साधन की उस मात्रा का उपयोग करेगी जिस पर इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य इसकी बाजार-कीमत के बराबर होता है। साधन के उपयोग का बाजार स्तर व्यक्तिगत फर्मों में उसके उपयोग के स्तरो का योग मात्र ही होता है।

अध्ययन सामग्री

Hicks, John R., *Value and Capital*, 2nd ed. (Oxford, England The Clarendon Press, 1946), Chaps. VI, VII, VIII,

Robertson, Dennis H, "Wage Grumbles," *Economic Fragments* (London R S King & Son, Ltd, 1931), PP 42-57. Reprinted in *Readings in the Theory of Income Distribution* (Philadelphia : P. Blakiston's Sons & Company, 1946), PP 221-236.

Scitovsky, Tibor, *Welfare and Competition*, Rev. ed.(Homewood, Ill. : Richard D. Irwin, Inc, 1971), Chap. 7.

Stigler, George J, The Theory of Price, 3rd ed (New York : Crowell-Collier and Macmillan, Inc., 1966), Chap. 14, PP. 239-244.

साधनों की कीमत एवं उपयोग की मात्रा का निर्धारण : एकाधिकार एवं एकक्रेताधिकार

शुद्ध प्रतियोगिता के अलावा अन्य बाजारो मे साधनों की कीमत व उपयोग की मात्रा के निर्धारण के सिद्धान्त सशोधित रूप मे काम करते हैं। अब हम इनके कार्य करने की शैली की निम्न दशाओ मे जाँच करेंगे (1) फर्म वस्तुएँ तो एकाधिकारी के रूप मे बेचती हैं, लेकिन साधनों को शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओ मे खरीदती हैं और (2) फर्में साधनो को एकक्रेताधिकारी की हैसियत से खरीदती हैं, लेकिन वस्तुओं को शुद्ध प्रतिस्पर्धी अथवा एकाधिकारी की हैसियत से बेचती हैं। वस्तु-एकाधिकार पर विचार करने के लिए एक साधन के लिए फर्म के माँग-वक्र की पुन परिभाषा करनी होगी। ऐसे सशोधित विश्लेषण मे एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता एव अल्पाधिकार और शुद्ध एकाधिकार के भी वस्तु-बाजार (product market) शामिल होते हैं। एकक्रेताधिकार पर विचार करने के लिए फर्म के समक्ष पाए जाने वाले साधन पूर्ति वक्र का सशोधित रूप लेना आवश्यक होगा। इस सशोधन मे अल्पक्रेता-धिकार (oligopsony) एव एकक्रेताधिकारी-प्रतियोगिता (monopsonistic competition) की दशाएँ भी शामिल होनी हैं। एकाधिकार एव एकक्रेताधिकार की दशाओ पर क्रमश विचार किया जाएगा।

वस्तुओं के विक्रय में एकाधिकार

कई परिवर्तनशील साधनो का एक-साथ उपयोग

जो एकाधिकारी कई परिवर्तनशील साधनो का उपयोग करता है उसे साधनो के उन उपयुक्त सयोगो को निर्धारित करना होता है जो न्यूनतम सम्भव लागतों पर वस्तु की वैकल्पिक मात्राओ के उत्पादन के लिए आवश्यक होते हैं। यदि वह साधनों को शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओ मे खरीदता है तो उसकी न्यूनतम लागत दशाएँ वही होती हैं जो एक शुद्ध प्रतिस्पर्धी के समक्ष होती हैं। दी हुई उत्पत्ति की मात्रा के लिए न्यूनतम लागत-सयोग वह होता है जिस पर एक परिवर्तनशील साधन की एक डालर के व्यय से प्राप्त सीमान्त भौतिक उत्पत्ति प्रयुक्त किए जाने वाले प्रत्येक दूसरे परिवर्तन-

शील साधन की एक डालर के व्यय से प्राप्त सीमान्त भौतिक उत्पत्ति के बराबर होनी है। यदि A और B ऐसे दो साधन होते हैं तो वे इस तरह से मिलाये जाने चाहिएँ ताकि

$$\frac{MPP_a}{P_a} = \frac{MPP_b}{P_b} \qquad (15\ 1)$$

लेकिन लाभो को अधिकतम करने के लिए एकाधिकारी को परिवर्तनशील साधनो के न्यूनतम लागत सयोगो को निर्धारित करने के अतिरिक्त और भी कुछ करना होगा। उसे वस्तु की उस मात्रा का उत्पादन करने के लिए इनमे से प्रत्येक का काफी उपयोग करना होगा जहा पर वस्तु की बिक्री से प्राप्त सीमान्त आय वस्तु की सीमान्त लागत के बराबर होती है। चित्र 15–1 के सन्दभ म मान लीजिए वह x_0 वस्तु की मात्रा
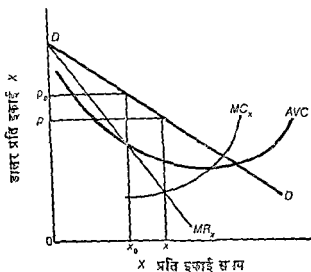
चित्र 15–1 न्यूनतम लागत सयोग व लाभ अधिकतमकरण

के उत्पादन के लिए न्यूनतम लागत सयोग का उपयोग करता है। वस्तु की सीमान्त लागत इसकी सीमान्त आय से कम होती है। X की उत्पत्ति एव A व B साधनो की प्रयुक्त की जाने वाली मात्राएँ सभी काफी कम होती है। इन शर्तों का साराश इस प्रकार दिया जा सकता है

$$\frac{MPP_a}{P_a} = \frac{MPP_b}{P_b} = \frac{1}{MC_x} > \frac{1}{MR_x} \quad ....(15.2)$$

एकाधिकारी अपने स्थिर साधनों के साथ A और B की प्रयुक्त की जाने वाली मात्राओं में वृद्धि करके उत्पत्ति में वृद्धि कर सकता है। A और B दोनों की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति में कमी होगी जिससे उत्पत्ति की सीमान्त लागत में वृद्धि होगी। एकाधिकारी की अपेक्षाकृत अधिक उत्पत्ति और बिक्री से वस्तु की सीमान्त आय में गिरावट आएगी। फर्म की उत्पत्ति के साथ A और B की मात्राएँ उस समय तक बढ़ाई जायेंगी जब तक कि सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर नहीं हो जाती। x उत्पत्ति की मात्रा और P कीमत पर लाभ अधिकतम हो जायेंगे। परिवर्तनशील साधनों का उपयोग न्यूनतम-लागत-संयोग में किया जाएगा और साथ में सही निरपेक्ष मात्राओं में भी। साधनों की खरीद, साधनों के संयोग एवं वस्तु की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लाभ अधिकतम करने वाली दशाओं का सारांश इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:

$$\frac{MPP_a}{P_a} = \frac{MPP_b}{P_b} = \frac{1}{MC_x} = \frac{1}{MR_x} \quad ....(15.3)$$

लाभ-अधिकतमकरण के ये सिद्धान्त सभी किस्म के विक्रेता-बाजारों पर लागू होते हैं—शुद्ध प्रतियोगिता, शुद्ध एकाधिकारी, अल्पाधिकारी एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता—लेकिन शर्त यह है कि साधनों की खरीद में शुद्ध प्रतियोगिता पाई जाए।[1]

एक दिए हुए परिवर्तनशील साधन की कीमत एवं उपयोग की मात्रा का निर्धारण

जब साधनों के क्रेता वस्तु के एकाधिकारात्मक विक्रेता होते हैं तो एक दिए हुए परिवर्तनशील साधन की कीमत एवं उपयोग की मात्रा का निर्धारण ठीक वैसे ही होता है जैसा उस स्थिति में होता है जबकि वे वस्तु के शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक विक्रेता होते हैं। एक साधन के लिए एकाधिकारी का माँग-वक्र, हालांकि उसी तरह से परिभाषित किया जाता है जिस तरह से कि एक शुद्ध प्रतिस्पर्धी का किया जाता है, फिर भी इसकी गणना थोड़ी भिन्न विधि से की जाती है। यहाँ भी शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक

1. इस स्थिति एवं पिछले अध्याय की शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति में केवल यह अन्तर है कि प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति के P_x की जगह एकाधिकारात्मक स्थिति का MR_x आ जाता है। चूंकि प्रतिस्पर्धात्मक फर्म में P_x व MR_x एक-से होते हैं, इसलिए यहाँ पर बतलाई गई दशाएँ प्रतिस्पर्धात्मक फर्म एवं एकाधिकारात्मक फर्म दोनों पर लागू होती हैं।

बाजार की भांति हमे उस स्थिति मे जिसमे एक दिया हुआ साधन ही फर्म के द्वारा लगाया जाने वाला अकेला परिवर्तनशील साधन होता है और उस स्थिति मे जिसमे यह लगाए जाने वाले कई परिवर्तनशील साधनो मे से एक होता है, अन्तर करना होगा।

फर्म का मांग-वक्र : एक साधन परिवर्तनशील—एक अकेले परिवर्तनशील साधन के सम्बन्ध मे लाभ अधिकतम करने के लिए एकाधिकारी को उस मात्रा का उपयोग करना चाहिए जिस पर प्रति इकाई समयानुसार लगाई जाने वाली मात्रा म एक इकाई के परिवर्तन से कुल आय व कुल लागत मे एक ही दिशा मे एव एक ही मात्रा मे परिवर्तन होते हैं। लगाई जाने वाली मात्राओ मे एक इकाई के परिवतनो से कुल प्राप्तियो एव कुल लागतो पर पडने वाले प्रभाव उसी तरह से निर्धारित किए जाते है जिस तरह से शुद्ध प्रतिस्पर्धा के लिए किए गए थे।

सारणी 15-1 एक साधन की सीमान्त आय उत्पत्ति का सगणन (Computation)

A की मात्रा (1)	सीमात भौतिक उत्पत्ति (MPPa) (2)	कुल उत्पत्ति (3)	वस्तु की कीमत (Px) (4)	कुल आय (5)	सीमात आय उत्पत्ति (MRPa) (6)
4	8	28	$ 10 00	$ 280 00	—
5	7	35	9 80	343 00	$ 63 00
6	6	41	9 60	393 60	50 60
7	5	46	9·50	437 00	43 40
8	4	50	9 40	470 00	33 00

सारणी 15–1 मे फर्म की कुल प्राप्तियो के परिवतन एव उन परिवतनो के कारण दर्शाये गए हैं। कॉलम (1) व (2) A साधन की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति-अनुसूची के उस अश को दर्शाते है जो उस साधन की दृष्टि से अवस्था II मे आता है। फर्म के द्वारा प्रयुक्त किए जाने वाले साधनो म केवल A साधन ही एक परिवर्तन-शील साधन है, अन्य सभी साधनो की मात्राएँ स्थिर रहती हैं। कॉलम (3) व (4) एकाधिकारी की वस्तु-मांग अनुसूची के उस अश को दर्शाते हैं जो कॉलम (1) मे प्रदर्शित A की मात्राओ के अनुरूप होता है।

इस समय हमारे लिए कॉलम (6) का ही महत्व है। यह फर्म की कुल प्राप्तियो मे होने वाली उन वृद्धियो को दर्शाता है जो प्रति इकाई समयानुसार लगाई जाने वाली

A की मात्रा मे एक-इकाई की वृद्धियो से उत्पन्न होती हैं और जो A साधन की सीमान्त आय-उत्पत्ति (marginal revenue product) कहलाती हैं। A की एक दी हुई मात्रा की सीमान्त आय-उत्पत्ति कॉलम (5) से सीधे भी निकाली जा सकती है, लेकिन मूलतः यह उस मात्रा पर A की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति को उसकी अन्तिम उत्पत्ति की बिक्री से प्राप्त सीमान्त आय से गुणा करने से प्राप्त परिणाम के बराबर होती है। इस प्रकार जब 5 इकाइयाँ प्रयुक्त की जाती हैं, तो A की सीमान्त आय-उत्पत्ति अथवा MRP_a, उस बिन्दु पर A की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति को बिक्री की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई की सीमान्त आय से गुणा करने से प्राप्त परिणाम के बराबर होती है।[2]

एकाधिकारी के द्वारा A की प्रयुक्त की जाने वाली मात्रा की वृद्धियों से A की सीमान्त आय-उत्पत्ति मे दो कारणों से गिरावट आती है। सर्वप्रथम, ह्रासमान-प्रतिफल नियम के लागू होने से ये A की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति मे गिरावट उत्पन्न कर देती हैं। द्वितीय, एकाधिकारी जब वस्तु की अपेक्षाकृत अधिक मात्राएँ बाजार में प्रस्तुत करता है तो साधारणतया उसके लिए सीमान्त आय घटती है।

जब एकाधिकारी साधनो को प्रतिस्पर्धा की दशा मे खरीदता है और जब A साधन ही फर्म के द्वारा प्रयुक्त किया जाने वाला अकेला परिवर्तनशील साधन होता है, तो
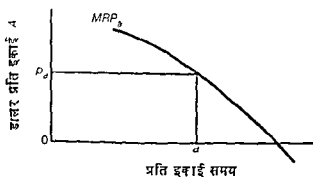
चित्र 15-2 एक साधन का सीमान्त आय उत्पत्ति वक्र

2 A की पाँचवीं इकाई प्रति इकाई समयानुसार X की उत्पत्ति व बिक्री का 28 इकाइयो से बढ़ाकर 35 इकाइयाँ और फर्म की कुल प्राप्तियों को $ 280 से $ 343 कर देती है। बिक्री म एक इकाई की वृद्धि से आय म होने वाली वृद्धि अथवा MR_x, $ 63—7 या 7 इकाइयों मे से प्रत्येक के लिए $ 9 प्रति इकाई होती है। अत पाँच इकाइयों क प्रयुक्त होने पर A की सीमान्त-आय-उत्पत्ति $MPP_a \times MR_x$; अर्थात् 7×$ 9=$ 63 होती है।

सीमान्त आय उत्पत्ति वक्र A साधन के लिए एकाधिकारी का माँग-वक्र होता है। एकाधिकारी A की वह मात्रा खरीदेगा जिस पर एक इकाई की वृद्धि से कुल प्राप्तियो मे होने वाली वृद्धि कुल लागत मे होने वाली वृद्धि के बराबर हो जाती है। चूँकि साधन की खरीद प्रतिस्पर्धात्मक दशा मे की जाती है, इसलिए प्रति इकाई समयानुसार खरीदी जाने वाली A की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से कुल लागत मे होने वाली वृद्धियाँ A की प्रति इकाई कीमत के बराबर होती है। इस प्रकार चित्र 15–2 मे यदि A के लिए एकाधिकारी का सीमान्त आय उत्पत्ति वक्र MRP_a होता है और A की प्रति इकाई कीमत P_a होती है तो एकाधिकारी a मात्रा का उपयोग करेगा। लाभ अधिकतम करने वाली दशाएँ इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती हैं

$$MRP_a = P_a \qquad ....(15\ 4)$$

अथवा

$$MPP_a \times MR_x = P_a$$

A की विभिन्न सम्भावित कीमतो पर सीमान्त आय उत्पत्ति वक्र उन विभिन्न मात्राओं को दर्शाता है जिन्हे एकाधिकारी प्रति इकाई समयानुसार खरीदेगा।

फर्म का माँग-वक्र : कई साधन परिवर्तनशील—जब विभिन्न परिवर्तनशील साधन प्रयुक्त किए जाते हैं तो एक दिए हुए साधन के लिए एकाधिकारी के माँग-वक्र को स्थापित करने की विधि शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति मे प्रयुक्त विधि से बहुत कम ही
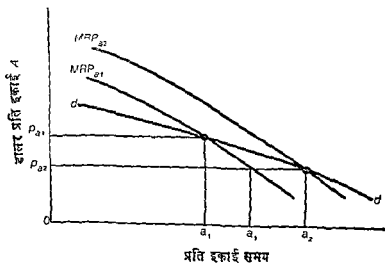
चित्र 15–3 एक साधन के लिए फर्म का माँग-वक्र

भिन्न होती है। यदि हम यह मान लेते हैं कि अन्य सभी साधनों की कीमतें स्थिर बनी रहती हैं तो एक दिए हुए साधन की कीमत में होने वाले परिवर्तनों से इसी किस्म के फर्म अथवा आन्तरिक प्रभाव उत्पन्न हो जाते हैं।

ये प्रभाव चित्र 15–3 में दर्शाये गए हैं जिसमें A एक दिया हुआ परिवर्तनशील साधन है। मान लीजिए A की प्रारम्भिक कीमत P_{a1} है, फर्म परिवर्तनशील साधनों के न्यूनतम-लागत-संयोग का उपयोग कर रही है और X– वस्तु की लाभ-अधिकतम करने वाली मात्रा का उत्पादन कर रही है। A की प्रयुक्त की जाने वाली मात्रा a_1 है। MRP_{a1} वक्र केवल A की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों पर ही लागू होता है।

A की कीमत में P_{a2} तक कमी होने से एकाधिकारी को साधन का उपयोग a'_1 की तरफ बढ़ाने की प्रेरणा मिलेगी। लेकिन A के उपयोग में विस्तार करने से पूरक साधनों के सीमान्त भौतिक उत्पत्ति-वक्र और सीमान्त आय उत्पत्ति-वक्र दाहिनी तरफ खिसक जायेंगे जिससे दी हुई कीमतों पर इन साधनों की अधिक मात्राओं का उपयोग किया जाएगा। A के अपेक्षाकृत अधिक उपयोग से स्थानापन्न साधनों के सम्बन्धित वक्र बायीं तरफ खिसक जायेंगे और एकाधिकारी के द्वारा दी हुई कीमतों पर स्थानापन्न साधनों की अपेक्षाकृत कम मात्राओं का उपयोग किया जाएगा। दोनों ही प्रभावों के फलस्वरूप A के सीमान्त भौतिक उत्पत्ति-वक्र और सीमान्त आय उत्पत्ति-वक्र दाहिनी तरफ खिसक जायेंगे। जब एकाधिकारी परिवर्तनशील साधनों का न्यूनतम-लागत पर लाभ अधिकतम करने वाला संयोग पुन: स्थापित कर लेता है तो A का सीमान्त आय उत्पत्ति वक्र MRP_{a2} के जैसी स्थिति में होगा और A की प्रयुक्त मात्रा a_2 होगी। इस प्रकार A साधन के लिए फर्म का माँग-वक्र उन बिन्दुओं से बनेगा जो dd जैसा वक्र प्रस्तुत करेंगे।

बाजार माँग-वक्र और साधनों की कीमत-निर्धारण—यदि A साधन के समस्त क्रेता वस्तु के शुद्ध एकाधिकारी विक्रेता होते हैं तो A का बाजार माँग-वक्र इस साधन के लिए व्यक्तिगत फर्मों के माँग-वक्रों का क्षैतिज योग होगा। चूँकि प्रत्येक एकाधिकारी अपने उद्योग में वस्तु का एकमात्र पूर्ति करने वाला होता है, इसलिए A की कीमत में गिरावट आने से कोई बाह्य या उद्योग प्रभाव उत्पन्न नहीं होंगे। A की कीमत में कमी आने से किसी भी दिये हुए उद्योग में उत्पादित वस्तु की मात्रा पर पड़ने वाला प्रभाव, पहले ही सीमान्त आय उत्पत्ति वक्रों में और इस साधन के लिए एकाधिकारी के माँग-वक्र में शामिल कर लिया गया है।

यदि A साधन के क्रेता अल्पाधिकारी अथवा एकाधिकारात्मक प्रतिस्पर्धी होते हैं, तो साधन का बाजार माँग वक्र इसके लिए व्यक्तिगत फर्मों के माँग-वक्रों का क्षैतिज योग नहीं रह जाता है। A की कीमत का परिवर्तन एक दिये हुए उद्योग में किसी

अकेली फर्म के द्वारा उत्पादित माल की मात्रा मे ही परिवर्तन नही कर देगा, बल्कि यह उद्योग मे सभी फर्मों की उत्पत्ति की मात्राओं को भी परिवर्तित कर देगा। ये परिवर्तन उन सभी उद्योगो मे होगे जो इस साधन का उपयोग करते हैं। जैसा कि पिछले अध्याय की शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक दशा मे पाया गया था, उद्योग मे अन्य फर्मों के द्वारा वस्तु की मात्रा के परिवर्तन किसी भी फर्म के समक्ष पाये जाने वाले उत्पत्ति मांग-वक्र को खिसका देंगे, और परिणामस्वरूप, A साधन के लिए फर्म का मांग-वक्र भी खिसक जायगा। अत जब प्रत्येक फर्म अपने लाभ अधिकतम कर रही है, तो A की किसी भी दी हुई कीमत पर इसका उपयोग करने वाले सभी उद्योगो मे सभी फर्मों के द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली मात्राओं को जोडना होगा, ताकि A के बाजार मांग-वक्र पर एक बिन्दु का पता लगाया जा सके। बाजार मांग-वक्र पर अन्य बिन्दु भी इसी तरह से प्राप्त किये जा सकते हैं।

एक साधन के लिए बाजार मांग-वक्र को स्थापित करने की ऊपरवर्णित विधि वस्तु-बाजार की उस प्रत्येक दशा मे लागू होती है जिसमे उस साधन का उपयोग करने वाली फर्में अपना माल बेचती हैं। प्रचलित स्थिति यह होगी कि A साधन का उपयोग करने वाली कुछ फर्में एक किस्म के वस्तु-बाजार मे अपना माल बेचेंगी और कुछ अन्य किस्मो मे बेचेंगी। बाजार-ढांचे की जिस आवश्यकता की पूर्ति अवश्य होनी चाहिए वह यह है कि सभी फर्में साधन को प्रतिस्पर्धात्मक दशा मे खरीदती हैं।

बाजार-पूर्ति, साधन की कीमत-निर्धारण एव साधन के उपयोग की मात्रा के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि वस्तु-बाजार मे पाया जाने वाला एकाधिकार पिछले अध्याय मे प्रस्तुत किये गये विश्लेषण मे कोई भी नई बात नही जोडता है। A साधन के लिए बाजार पूर्ति-वक्र यहाँ भी उन विभिन्न मात्राओं को दर्शाता है जिन्हे इनके स्वामी विभिन्न वैकल्पिक कीमतो पर बाजार मे प्रस्तुत करेंगे। एक साधन की बाजार-कीमत उस स्तर की तरफ जाती है जिस पर फर्में प्रति इकाई समयानुसार उस मात्रा को प्रयुक्त करने की इच्छुक होती हैं जिसे इसके स्वामी बाजार मे प्रस्तुत करने को उद्यत होते हैं।

A की बाजार-कीमत इसके उपयोग की मात्रा को निर्धारित करती है। शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओं मे माल बेचने वाली फर्म की भांति एकाधिकारी के समक्ष भी A साधन का एक क्षैतिज पूर्ति-वक्र होता है जिसका स्तर इसकी बाजार-कीमत के समान होता है। एकाधिकारी साधन का उपयोग उस बिन्दु तक करेगा जहाँ पर वह इसके सम्बन्ध मे अपने लाभ अधिकतम कर सकेगा। इस बिन्दु पर साधन की सीमान्त-आय-उत्पत्ति इसकी कीमत के बराबर होती है। साधन की प्रयुक्त की जाने वाली मात्रा का बाजार-स्तर समस्त व्यक्तिगत फर्मों के द्वारा प्रयुक्त मात्राओं का

योग ही होगा, चाहे वे फर्में एकाधिकारी हों, शुद्ध प्रतिस्पर्धी हों, अल्पाधिकारी हों, अथवा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता वाली हों।

जब एकाधिकारी प्रत्येक परिवर्तनशील साधन के सम्बन्ध में अपने लाभ अधिकतम करता है तो वे साधन अनिवार्यतः न्यूनतम लागत संयोग में प्रयुक्त किये जाते हैं। मान लीजिए, X-वस्तु का उत्पादन करने वाले एकाधिकारी के द्वारा केवल दो परिवर्तनशील साधन A और B ही प्रयुक्त किये जाते हैं। जब A के सम्बन्ध में लाभ अधिकतम किये जाते हैं, तब

$$MPP_a \times MR_x = P_a \qquad \ldots(15.5)$$

इसी तरह B के सम्बन्ध में लाभ अधिकतमकरण का आशय होगा

$$MPP_b \times MR_x = P_b \qquad \ldots(15.6)$$

परिणामतः,

$$\frac{MPP_a}{P_a} = \frac{MPP_b}{P_b} = \frac{1}{MC_x} = \frac{1}{MR_x} \qquad \ldots(15.7)$$

एक साधन का एकाधिकारी-शोषण
(Monopolistic Exploitation of a Resource)

वस्तु-बाजार में एकाधिकार के कारण एकाधिकारी के द्वारा प्रयुक्त साधनों का शोषण किया जाता है। इस सम्बन्ध में शोषण का अर्थ यह है कि एक साधन की इकाइयों को उत्पत्ति के उस मूल्य से कम भुगतान किया जाता है जिसे उनमें से प्रत्येक इकाई अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति में जोड़ती है। एक एकाधिकारी एक साधन की उस मात्रा का उपयोग करता है जिस पर इसकी कीमत इसकी सीमान्त आय-उत्पत्ति-सीमान्त भौतिक उत्पत्ति को वस्तु की बिक्री से प्राप्त सीमान्त आय से गुणा करने से प्राप्त परिणाम के बराबर होती है। लेकिन साधन की एक इकाई से अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति में होने वाली वृद्धि का मूल्य इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य होता है, अर्थात् सीमान्त भौतिक उत्पत्ति को प्रति इकाई कीमत, जिस पर वस्तु बेची जाती है, से गुणा करने से प्राप्त परिणाम के बराबर होता है। एक विशेष फर्म, जिसके समक्ष नीचे की ओर झुकने वाला वस्तु-माँग-वक्र होता है, के लिए साधन की सीमान्त आय-उत्पत्ति साधन की सीमान्त-उत्पत्ति के मूल्य से कम होती है, क्योंकि ऐसी दशाओं में सीमान्त आय वस्तु की कीमत से कम होती है। इसलिए एकाधिकारी फर्मों के द्वारा प्रयुक्त साधनों के लिए दी जाने वाली कीमतें उत्पत्ति के उन मूल्यों से कम होती हैं जो वे अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति में जोड़ती हैं।

फिर भी यह आवश्यक है कि एक साधन को दी जाने वाली कीमत उस राशि के बराबर हो जो वह वैकल्पिक उपयोगो मे प्राप्त कर सकती है। शोषण का अर्थ यह नही है कि एकाधिकारी साधन की इकाइयो के लिए उस राशि से कम देता है जो उन्ही साधन की इकाइयो को लगाते समय प्रतियोगी फर्में देती है। एकाधिकार के अन्तर्गत शोषण इसलिए होता है कि एकाधिकारी के समक्ष साधन की जो बाजार-कीमत होती है उसको देखते हुए वह उस स्तर से कम मात्रा लगाता है जिस पर साधन की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य उसकी कीमत के बराबर होता है। साधन की इकाइयाँ अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति के मूल्य मे अधिक अशदान उस समय करती हैं जब कि वे शुद्ध प्रतियोगी फर्म के द्वारा लगाई जाने की बजाय एकाधिकारी के द्वारा लगाई जाती हैं, लेकिन जब प्रत्येक बाजार-स्थिति मे उन्हे कीमत एक-सी ही दी जाती है। इस प्रकार बाजार शक्तियाँ साधनो को उनके अधिक मूल्यवान उपयोगो मे गतिशील होने के लिए प्रेरित नही करेंगी।

साधनो की खरीद मे एकक्रेताधिकार

साधन के बाजार की वह स्थिति जिसमे एक साधन-विशेष का एक अकेला क्रेता होता है, एकक्रेताधिकार (Monopsony) कहलाती है।[3] हमने अब तक साधन के क्रेताओ म जो शुद्ध प्रतियोगिता की स्थिति मानी है उसकी तुलना मे एकक्रेताधिकार की स्थिति दूसरे छोर पर होती है। साधनो के सम्बन्ध मे बाजार की दो अतिरिक्त दशाओ को भी प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रथम स्थिति अल्पाधिकार (oligopsony) की होती है जिसमे एक साधन विशेष के, जो विभेदीकृत हो या न हो, थोडे-से क्रेता होते हैं। एक क्रेता साधन की कुल पूर्ति का काफी बडा अश लेता है ताकि वह उसकी बाजार-कीमत को प्रभावित करने मे समर्थ हो सके। द्वितीय स्थिति एकक्रेताधिकारी प्रतियोगिता की होती है। यहाँ एक विशेष किस्म के साधन के अनेक क्रेता होते है, लेकिन प्रत्येक साधन की किस्म मे अन्तर पाये जाते हैं जिससे विशिष्ट क्रेता एक विक्रेता के साधन को दूसरे की अपेक्षा ज्यादा पसद करने लगते हैं। हमारा विश्लेषण एकक्रेताधिकार—एक विशेष साधन के लिए एक क्रेता—के इर्द-गिर्द ही केन्द्रित होगा, लेकिन यह अल्पाधिकार व एकक्रेताधिकारी प्रतियोगिता पर भी लागू किया जा सकता है।

---

3 एकक्रेताधिकार शब्द उन दशाओ पर भी लागू किया जाता है जिनमें एक वस्तु-विशेष का अकेला क्रेता होता है, लेकिन हमारा विवेचन साधन बाजारो मे पाए जाने वाले एकक्रेताधिकार तक ही सीमित रहेगा।

साधन पूर्ति-वक्र एव सीमान्त साधन-लागतें

एक साधन के अकेले क्रेता के रूप मे एकक्रेताधिकारी के समक्ष साधन का बाजार पूर्ति-वक्र पाया जाता है। साधारणतया यह पूर्ति-वक्र ऊपर की ओर जाने वाला होता है। एक उत्पादक जो एक अलग-थलग क्षेत्र मे किसी साधन के उपयोग का लगभग एकमात्र स्रोत होता है, वह कम-से-कम अल्पकाल मे तो इस स्थिति मे अवश्य होता है। एकक्रेताधिकारी के समक्ष पाये जाने वाले पूर्ति-वक्र का भेद उस स्थिति से करें जिसमे एक फर्म शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओ मे एक साधन को खरीदती है। शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म चालू बाजार-कीमत पर प्रति इकाई समयानुसार चाहे जितनी इकाइयां खरीद सकती है, इस प्रकार इसके समक्ष क्षैतिज या पूर्णतया लोचदार साधन पूर्ति-वक्र होता है, चाहे बाजार पूर्ति-वक्र दायी ओर ऊपर की तरफ जाय अथवा पूर्णतया लोचदार से कम हो।

एकक्रेताधिकार के समक्ष ऊपर की ओर जाने वाले साधन पूर्ति-वक्र के होने से एकक्रेताधिकार मे ऐसे लक्षण आ जाते हैं जो इसे शुद्ध प्रतियोगिता से पृथक् करते हैं। प्रति इकाई समयानुसार साधन की अपेक्षाकृत अधिक मात्राएँ प्राप्त करने के लिये एकक्रेताधिकारी को प्रति इकाई अपेक्षाकृत ऊँची कीमतें देनी होती है। सारणी 15–2 के कॉलम (1) व (2) इस स्थिति को दर्शाने वाली साधन की विशेष पूर्ति-अनुसूची के एक अश को प्रस्तुत करते हैं। कॉलम (3) फर्म के लिए A साधन की खरीदी गई विभिन्न मात्राओ की कुल लागत को दर्शाता है। कॉलम (4) फर्म के लिए A की सीमान्त साधन लागत को दर्शाता है।

सीमान्त साधन-लागत (marginal resource cost) फर्म की कुल लागत मे होने वाला वह परिवर्तन है जो प्रति इकाई समयानुसार साधन की खरीद मे एक-इकाई के परिवर्तन से उत्पन्न होता है। जब फर्म के समक्ष पाया जाने वाला साधन पूर्ति-वक्र दायी तरफ ऊपर की ओर उठता है तो सीमान्त साधन-लागत फर्म के द्वारा खरीदी जाने वाली किसी भी मात्रा के लिए साधन-कीमत से अधिक होगी। यह सारणी 15–2 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

मान लीजिए वह फर्म A की खरीदी जाने वाली मात्रा को 10 इकाइयो से बढाकर 11 इकाइयां कर देती है। फर्म की ग्यारहवी इकाई की लागत $ 0 65 होनी है। लेकिन प्रति इकाई समयानुसार 11 इकाइयां प्राप्त करने के लिए फर्म को सभी 11 इकाइयो के लिए प्रति इकाई $ 0 65 की कीमत देनी होगी। इसलिए अन्य 10 इकाइयो को प्राप्त करने की लागत प्रति इकाई $ 0 60 से बढकर $ 0 65 हो गई है। 10 इकाइयो पर अतिरिक्त लागत $ 0 50 होती है। इसमे ग्यारहवीं इकाई की लागत $ 0 65 जोडने पर फर्म की कुल लागत बढकर $ 1.15 हो जाती

सारणी 15-2   सीमान्त साधन लागत का सगणन

(1) A की मात्रा	(2) साधन की कीमत (Pa)	(3) कुल साधन लागत (TCa)	(4) सीमान्त साधन लागत (MRCa)
10	$ 0 60	$ 6·00	—
11	0 65	7 15	$ 1·15
12	0 70	8·40	1·25
13	0·75	9 75	1·35

है। बारहवी व तेरहवी इकाइयो की सीमान्त साधन-लागत की गणना भी इसी तरह से की जा सकती है।[4]
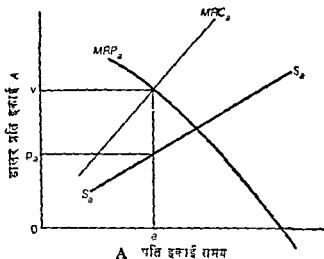
चित्र 15-4   एकक्रेताधिकारी के लिए सीमान्त ग्राय उत्पत्ति, सीमान्त साधन लागत, और लाभ अधिकतमकरण

4   शुद्ध प्रतिस्पर्धा की दशाओं के अन्तर्गत खरीदने वाली फर्म की सीमान्त साधन लागत साधन की कीमत के बराबर होती है। चूंकि फर्म प्रति इकाई स्थिर कीमत पर जितनी चाहे उतनी मात्रा खरीद सकती है, इसलिए प्रत्येक अतिरिक्त इकाई फर्म की कुल लागतों में जो वृद्धि करती है वह साधन की कीमत के बराबर होती है।

एकक्रेताधिकारी के समक्ष जो साधन पूर्ति-वक्र और सीमान्त साधन लागत-वक्र होता है उसका ग्राफ के रूप मे वर्णन चित्र 15–4 मे दिया गया है। A साधन के लिए बाजार पूर्ति-वक्र S_a S_a है। सीमान्त साधन लागत-वक्र MRC_a है जो पूर्ति-वक्र से ऊपर होता है। सीमान्त साधन लागत-वक्र का पूर्ति-वक्र से वही सम्बन्ध होता है जो सीमान्त लागत-वक्र का औसत-लागत-वक्र से होता है। वास्तव मे A साधन का बाजार पूर्ति-वक्र अकेले इस साधन का औसत-लागत-वक्र होता है और सीमान्त साधन-लागत-वक्र अकेले A साधन का सीमान्त-लागत-वक्र होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि A का पूर्ति (औसत लागत) वक्र बढता है, तो सीमान्त-साधन-लागत (सीमान्त लागत) वक्र इसके ऊपर होगा।[5]

अकेले साधन की कीमत व उपयोग की मात्रा का निर्धारण

A साधन के सम्बन्ध मे लाभ-अधिकतमकरण के लिए एकक्रेताधिकारी भी उन्ही सामान्य सिद्धान्तो का पालन करता है जो प्रतियोगिता की दशा मे साधनों को खरीदने वाली फर्मों पर लागू होते हैं। प्रति इकाई समयानुसार A की अपेक्षाकृत अधिक मात्राएँ उस स्थिति मे खरीदी जायेंगी जब कि वे फर्म की कुल लागतो की अपेक्षा कुल प्राप्तियो मे ज्यादा वृद्धि करती हैं। A की अधिक मात्रा के प्रयोग से एकक्रेताधिकारी की कुल प्राप्तियो मे जो वृद्धियाँ होती हैं वे चित्र 15–4 मे MRP_a वक्र के द्वारा प्रदर्शित की गई हैं। कुल लागतो की वृद्धियाँ सीमान्त साधन-लागत-वक्र के द्वारा प्रदर्शित की गई हैं। साधन की a मात्रा के प्रयुक्त किये जाने पर लाभ अधिकतम होते हैं। A की अधिक मात्राओ से कुल प्राप्तियो की अपेक्षा कुल लागतो मे अधिक वृद्धि होती है जिससे मुनाफो मे गिरावट आती है। हम लाभ-अधिकतम करने वाली दशाओ को समीकरण के रूप मे व्यक्त कर सकते हैं। जब एकक्रेताधिकारी के लाभ अधिकतम होते हैं, तो वह A की उस मात्रा का प्रयोग करता है जिस पर

$$MRP_a = MRC_a$$

अथवा ....(15.8)

$$MPP_a \times MR_x = MRC_a$$

लाभ अधिकतम करने वाले उपयोग के स्तर पर साधन को दी जाने वाली कीमत के सम्बन्ध मे एकक्रेताधिकारी साधनो के प्रतियोगी क्रेता से भिन्न स्थिति मे होता है। साधन की a मात्रा के लिए एकक्रेताधिकारी के लिए केवल P_a कीमत देना आवश्यक होता है, हालाकि उपयोग के उस स्तर पर साधन की सीमान्त-आय-उत्पत्ति V होती है। यदि एकक्रेताधिकारी A मात्रा का उपयोग करता है जिस पर इसकी सीमान्त-

---

5. देखिए—अध्याय 9 में MC का AC व AVC से सम्बन्ध, आदि।

आय-उत्पत्ति इसकी कीमत के बराबर होती है—जैसा कि प्रतियोगी साधन-क्रेता करता है—तो उसे लाभ कम होगा। अपने लाभों को अधिकतम करने के लिए वह प्रयुक्त साधन की मात्रा को सीमित करता है और इसे प्रति इकाई वह कीमत देता है जो इसकी सीमान्त-आय-उत्पत्ति से कम होती है। लाभ-अधिकतमकरण की आवश्यक शर्त यह है कि साधन की उस मात्रा का प्रयोग किया जाय जिस पर सीमान्त-साधन-लागत सीमान्त आय-उत्पत्ति के बराबर हो—और एकक्रेताधिकारी के लिए साधन की कीमत सीमान्त साधन-लागत से कम होती है। एकक्रेताधिकार के लाभ, जो साधन की सीमान्त-आय-उत्पत्ति के इसकी प्रति इकाई कीमत से ऊपर पाये जाने वाले आधिक्य से उत्पन्न होते हैं, P_a V $\times$ a के बराबर होते हैं।[6]

---

6. कलन (calculus) के रूप में फर्म के द्वारा एक परिवर्तनशील साधन A के सन्दर्भ में लाभ-अधिकतमकरण की समस्या का सामान्य हल इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

मान लीजिए :

$X = f(a)$ = फर्म का उत्पादन-फलन

$P_x = h(x)$ = फर्म के समक्ष वस्तु का माग-वक्र

$P_a = g(a)$ = फर्म के समक्ष साधन पूर्ति-वक्र

आय-पक्ष की ओर :

$R = X P_x$ = फर्म की कुल आय

$\frac{dR}{dX} = P_x - X.\ h'(X)$ = फर्म की सीमांत आय

और : $\frac{dR}{da} = \left(\frac{dR}{dx}\right)\left(\frac{dx}{da}\right) = [P_x - X h'(x)] f'(a)$ = फर्म के लिए A की सीमांत आय उत्पत्ति

लागत-पक्ष की ओर : $C = k + a.P_a$ = फर्म की कुल लागतें

$\frac{dC}{da} = P_a + a.g'(a)$ = सीमांत साधन लागत

लाभ अधिकतम करने के लिए :

$\pi = R - C = X P_x - (k + a.P_a)$

$\frac{d\pi}{da} = [P_x - X.h'(x)] f'(a) - [P_a + a.g'(a)] = 0$

अथवा : $[P_x - x h'(x)] f'(a) = P_a + a.g'(a)$

अथवा : $MRP_a = MRC_a$.

यदि फर्म वस्तु की शुद्ध प्रतिस्पर्धी विक्रेता हो तो :

$P_x = h(x) = k$

कई परिवर्तनशील साधनों का एक साथ उपयोग

एकक्रेताधिकारी को उत्पत्ति की दी हुई मात्राओं के लिए परिवर्तनशील साधनों के न्यूनतम लागत संयोगों को प्रयुक्त करने के सम्बन्ध में जिन शर्तों को पूरा करना होता है वे उन शर्तों से भिन्न होती हैं जो शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति में साधन क्रेताओं पर लागू होती हैं। पहले की भाँति, एकक्रेताधिकारी के लिए न्यूनतम लागत संयोग वह संयोग होगा जहाँ एक साधन पर एक डालर के व्यय से प्राप्त सीमान्त भौतिक उत्पत्ति प्रत्येक दूसरे साधन पर एक डालर के व्यय से प्राप्त सीमान्त भौतिक उत्पत्ति के बराबर होती है। एकक्रेताधिकारी एवं प्रतियोगी क्रेता के बीच जो अन्तर होता है, वह एक साधन पर एक डालर के व्यय से प्राप्त सीमान्त भौतिक उत्पत्ति पर आधारित होता है।

एक दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। मान लीजिए एक कोयला-खनन फर्म खनिकों का श्रम एकक्रेताधिकारी के रूप में खरीदती है। उपयोग के वर्तमान स्तर पर एक अकेले खनिक के श्रम से फर्म की उत्पत्ति में प्रतिदिन एक टन कोयले की वृद्धि होती है। यह खनिक के श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति है। इससे फर्म की कुल लागतों में \$20 की वृद्धि होती है। यह खनिक के श्रम की सीमान्त-साधन-लागत होती है और यह दैनिक मजदूरी की दर से अधिक होती है। श्रम पर प्रत्येक अतिरिक्त डालर के व्यय से फर्म की कुल उत्पत्ति में होने वाली वृद्धि 1/20 टन कोयला होती है, अथवा यह MPP_l / MRC_l के बराबर होती है। यही हिसाब अन्य साधन पर भी लागू होता है जो एकक्रेताधिकारी के रूप में खरीदा जाता है। किसी भी साधन पर एक डालर के व्यय से प्राप्त होने वाली सीमान्त भौतिक उत्पत्ति इसकी सीमान्त भौतिक उत्पत्ति को इसकी सीमान्त साधन लागत से विभाजित करके निकाली जाती है।

और $$h'(x) = 0$$

यदि यह A की शुद्ध प्रतिस्पर्धी क्रेता हो तो

$$P_a = g(a) = k$$

और $$g'(a) = 0$$

अत लाभ अधिकतमकरण की शर्तें इस प्रकार हो जाती हैं

$$P_x \quad f'(a) = P_a$$

अथवा $$VMP_a = P_a$$

और साथ में $$MRP_a = MRC_a \,.$$

यदि फर्म दी हुई उत्पत्ति के न्यूनतम-लागत संयोग को प्राप्त करने के लिए A व B परिवर्तनशील साधनो को एकक्रेताधिकारी के रूप मे खरीदती है तो इसे इनको निम्न अनुपातो मे प्रयुक्त करना होगा .

$$\frac{MPP_a}{MRC_a}=\frac{MPP_b}{MRC_b} \quad \text{....(15.9)}$$

समीकरण के इन अशो मे से एक या दोनो का विलोम (reciprocal), फर्म जिस उत्पत्ति की मात्रा पर उत्पादन कर रही है, उसकी सीमान्त लागत को सूचित करता है। A की प्रयुक्त की जाने वाली एक इकाई से कुल लागत मे MRC_a राशि की एवं कुल उत्पत्ति मे MPP_a राशि की वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार उत्पत्ति मे एक इकाई की वृद्धि से कुल लागत मे MRC_a/MPP_a की वृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार, B साधन के रूप मे वस्तु की सीमान्त लागत MRC_b/MPP_b होती है।

मान लीजिए, प्रारम्भ मे एकक्रेताधिकारी लाभ-अधिकतमकरण के लिए A और B की बहुत कम मात्रा का उपयोग करता है और वह उत्पत्ति की जिस मात्रा का उत्पादन करता है उसके लिए न्यूनतम-लागत-संयोग का उपयोग करता है। वस्तु की सीमान्त लागत इसकी बिक्री से प्राप्त सीमान्त आय से कम होती है। इन शर्तों का साराश इस प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है :

$$\frac{MPP_a}{MRC_a}=\frac{MPP_b}{MRC_b}=\frac{1}{MC_x}>\frac{1}{MR_x} \quad \text{....(15.10)}$$

लाभ-अधिकतमकरण के लिए प्रति इकाई समयानुसार परिवर्तनशील साधनो की अपेक्षाकृत अधिक मात्राओं के उपयोग की आवश्यकता होती है। साधनों की अतिरिक्त इकाइयो से उत्पत्ति मे वृद्धि होती है और वस्तु से प्राप्त सीमान्त आय मे कमी होती है। A और B की अतिरिक्त मात्राओ के प्रयोग से दोनो साधनो की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति की मात्राओ मे गिरावट आती है। साथ मे A और B की सीमान्त साधन लागतो मे वृद्धि होती है। इस प्रकार घटती हुई सीमान्त भौतिक उत्पत्ति की मात्राओं एव बढ़ती हुई सीमान्त-साधन-लागतो दोनो शक्तियो के एक साथ काम करने से फर्म के लिए उत्पत्ति की सीमान्त लागत मे वृद्धि होती है। प्रति इकाई समयानुसार A और B की अतिरिक्त मात्राएँ उस समय तक प्रयुक्त की जायेंगी जब तक सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर नहीं हो जाती। इस बिन्दु पर साधन सही निरपेक्ष मात्राओ एव साथ मे न्यूनतम-लागत-अनुपातो मे प्रयुक्त किये जाते हैं। लाभ अधिकतमकरण के लिए आवश्यक शर्तों को निम्नलिखित रूप मे व्यक्त किया जा सकता है :

$$\frac{MPP_a}{MRC_a} = \frac{MPP_b}{MRC_b} = \frac{1}{MC_x} = \frac{1}{MR_x} \quad ....(15.11)$$

एकक्रेताधिकारी के द्वारा लाभ-अधिकतमकरण की आवश्यक शर्तों को A व B साधनो के व्यक्तिगत दृष्टिकोण से भी स्थापित किया जा सकता है। साधन A को उस बिन्दु तक प्रयुक्त किया जाना चाहिए जहाँ पर :

$$MPP_a \times MR_x = MRC_a, \text{अथवा } \frac{MPP_a}{MRC_a} = \frac{1}{MR_x} \quad ....(15.12)$$

इसी तरह साधन B को भी उस बिन्दु तक प्रयुक्त किया जाना चाहिए जहाँ पर :

$$MPP_b \times MR_x = MRC_b, \text{अथवा } \frac{MPP_b}{MRC_b} = \frac{1}{MR_x} \quad ....(15.13)$$

(15·12) व (15·13) की सहायता से हम निम्न प्रकार से भी लिख सकते हैं :

$$\frac{MPP_a}{MRC_a} = \frac{MPP_b}{MRC_b} = \frac{1}{MC_x} = \frac{1}{MR_x} \quad ....(15.14)$$

एकक्रेताधिकारी के लिए ऊपरवर्णित लाभ-अधिकतमकरण की शर्तें इतनी सामान्य हैं कि वे वस्तु-विक्रेताओं के बाजारो एव साधन-विक्रेताओं के बाजारो मे दोनो के सभी वर्गीकरणों पर लागू होती ह। साधन-क्रय में शुद्ध प्रतियोगिता की शर्तों के अन्तर्गत, MRC_a व MRC_b क्रमश: P_a व P_b हो जाते हैं। वस्तु-विक्रय में शुद्ध प्रतियोगिता की शर्तों के अन्तर्गत MR_x बन जाता है P_x।

एकक्रेताधिकार को उत्पन्न करने वाली दशाएँ

एकक्रेताधिकार की दशाएँ दो मूलभूत कारणों मे से एक या दोनो के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न होती हैं। सर्वप्रथम, एक साधन की एकक्रेताधिकारी-खरीदें उस स्थिति मे उत्पन्न हो सकती हैं जबकि साधन की इकाइयाँ किसी विशेष उपयोगकर्ता के लिए विशेषीकृत (specialized) होनी है। इस कथन का अर्थ यह है कि एक विशेषीकृत उपयोग में साधन की सीमान्त आय उत्पत्ति उन वैकल्पिक उपयोगों से इतनी ऊँची होती है जिनमे यह साधन की पूर्ति करने वाली की दृष्टि से वैकल्पिक उपयोगो को मिटाने के लिए प्रयुक्त की जा सकती है। इस प्रकार एकक्रेताधिकारी के समक्ष साधन पूर्ति वक्र साधन का बाजार पूर्ति-वक्र होगा और यह प्राय: दायी तरफ ऊपर की ओर उठने वाला होगा। साधन के लिए यह जितनी अधिक राशि देने के लिए उद्यत होता है, बाजार मे प्रस्तुत की जाने वाली मात्रा उतनी ही अधिक होती है।

ऊपरवर्णित स्थिति उस समय उत्पन्न हो सकती है जब कि एक विशेष किस्म के दक्ष श्रम को एक फर्म विशेष की कुछ आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए विकसित किया जाता है। श्रम की विशेष किस्म के लिए प्रदान की जाने वाली मजदूरी की दर जितनी ऊँची होती है, उतने ही अधिक व्यक्ति इसको विकसित करने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण लेने के लिए उद्यत हो जाते हैं। कोई भी अन्य फर्म इस दक्षता अथवा ऐसे ही दक्षता वाले श्रम का उपयोग नही करती, परिणामस्वरूप, एक बार प्रशिक्षित होने पर, श्रमिको के समक्ष ये विकल्प होते हैं कि व या तो इस फर्म के लिए कार्य करें अथवा अन्यत्र ऐसे धधो मे काम करें जहां उनकी सीमान्त आय उत्पत्ति की मात्राएँ और उनकी मजदूरी की दरें काफी कम हो।

एक विशेष प्रयोगकर्ता के लिए साधनो का विशिष्टीकरण श्रम के क्षेत्र तक ही सीमित नही होता है। एक बडे वायुयान अथवा गाडी का विनिर्माता (manufacturer) ऐसे पुर्जों के लिए जिन्हे कोई दूसरा विनिर्माता प्रयुक्त नही करता है, पूर्ति करने वाली कुछ फर्मों पर निर्भर कर सकता हैं। इस तरह की सबसे ज्यादा कठोर स्थिति मे पूर्ति करने वालो की फर्में अपनी सम्पूर्ण उत्पत्ति की मात्राएँ विनिर्माता को बेच देती हैं, और विनिर्माता का सम्पूर्ण एकक्रेताधिकार विद्यमान रहता है। समय के साथ-साथ पूर्ति करन वाली फर्में उत्पादन की सुविधाओ को इस प्रकार से परिवर्तित कर लेती हैं ताकि वे दूसरे विनिर्माताओ को अन्य किस्म के पुर्जे दे सकें, और इससे एक विनिर्माता को प्राप्त एकक्रेताधिकार का अश कम हो जायेगा।

विशेष किस्म की एकक्रेताधिकार की दशाएँ मनोरजन के क्षेत्र मे देखने को मिलती हैं। कलाकार-विशेष नियोक्ताओ या मालिको से प्रसविदे के अन्तर्गत बधे रहते हैं और वे दूसरे नियोक्ताओ के साथ काम करन के लिए स्वतन्त्र नही होते। बडे सगठनो के बेसबॉल के खिलाडी इस श्रेणी मे आते हैं। सर्वविदित रिजर्व धारा (reserve clause) के अन्तर्गत, जब एक बार खिलाडी एक विशेष टीम मे खेलने के लिए हस्ताक्षर कर देता है तो वह या तो उस नियोक्ता से प्राप्त हो सकने वाले वेतन की सर्वश्रेष्ट शर्तों को मानता है अथवा उसे बडे सगठनो (major leagues) मे बिल्कुल भी नही खेलने दिया जाता। वह अपनी इच्छा से एक बडे सगठन की टीम से दूसरे की टीम मे नही जा सकता, हालाकि उसका नियोक्ता चाहे तो उसका प्रसविदा किसी अन्य टीम को बेच सकता है।

दूसरी शर्त जिसमे से एकक्रेताधिकार उत्पन्न हो सकता है वह है कुछ साधनो की अगतिशीलता। यह आवश्यक नही कि साधन सामान्य रूप से अगतिशील हो। आवश्यकता केवल इस बात की है कि कुछ क्षेत्रो से अथवा कुछ फर्मों से गतिशीलता का अभाव हो, ताकि विशेष एकक्रेताधिकारी-स्थितियां उत्पन्न हो सकें। श्रमिको को

किसी समुदाय अथवा किसी फर्म से बाँधे रखने वाली कई शक्तियाँ हो सकती हैं। इनमें समुदाय व मित्रों के प्रति भावनात्मक सम्बन्ध हो सकते हैं और साथ में अज्ञात का भय (fear of the unknown) भी हो सकता है। रोजगार के वैकल्पिक अवसरों के सम्बन्ध में अज्ञानता भी पाई जा सकती है। रोजगार के वैकल्पिक क्षेत्रों में रोजगार ढूँढने एवं उन क्षेत्रों में पहुँचने के लिए पर्याप्त कोषों का अभाव हो सकता है। एक फर्म में प्रवरता (seniority) एवं पेंशन के अधिकार संचित हो जाने से श्रमिक उसे छोड़ने के सम्बन्ध में अनिच्छुक हो जाते हैं। एक दिए हुए भौगोलिक क्षेत्र में फर्मों के बीच अगतिशीलता की विशिष्ट दशाएँ उन समझौतों से भी उत्पन्न हो सकती हैं जो नियोक्ताओं के बीच एक-दूसरे के श्रमिकों का चोरी-छिपे अनुचित प्रयोग न करने के लिए किये जाते हैं।

एक साधन का एकक्रेताधिकारी-शोषण
(Monopsonistic Exploitation of a Resource)

एक साधन की खरीद में एकक्रेताधिकार की स्थिति के पाये जाने से भी उस साधन का शोषण हो सकता है। साधन की खरीद में एकक्रेताधिकार की शुद्ध प्रतियोगिता से तुलना करके भी एकक्रेताधिकारी शोषण सही ढंग से समझा जा सकता है। शुद्ध प्रतियोगिता की स्थिति में प्रत्येक फर्म साधन की अधिक मात्राएँ उस बिन्दु तक लगा कर अपने मुनाफों में वृद्धि करती है जहाँ पर उस साधन की सीमान्त आय उत्पत्ति उस साधन की कीमत के बराबर होती है। साधन प्रति इकाई के हिसाब से जो कीमत प्राप्त करता है वह उस राशि के बराबर होती है जो इसकी किसी भी एक इकाई के द्वारा फर्म की कुल प्राप्तियों में योगदान के रूप में प्रदान की जाती है।[7]

उपरोक्त स्थिति के विपरीत, एकक्रेताधिकारी साधन के जिस उपयोग के स्तर पर साधन की सीमान्त आय उत्पत्ति इसकी प्रति इकाई कीमत के बराबर होती है, उससे पहले ही ठहर कर अपने लाभ अधिकतम करता है। यह चित्र 15-4 में दर्शाया गया है। उपयोग का लाभ-अधिकतम करने वाला स्तर वह होता है जिस पर सीमान्त आय उत्पत्ति सीमान्त साधन लागत के बराबर होती है। चूँकि सीमान्त साधन लागत साधन की कीमत से अधिक होती है, इसी तरह साधन की सीमान्त आय उत्पत्ति भी अधिक होती है। इस प्रकार साधन की इकाइयों को उस राशि से कम दिया जाता है जो इनमें से कोई भी इकाई फर्म की कुल प्राप्तियों में योगदान के

7. यदि साधनों का क्रय करने वाली फर्मों के समक्ष नीचे की ओर झुकते वाले वस्तु माँग-वक्र होते हैं तो एकाधिकारी-शोषण होता है, लेकिन एकक्रेताधिकारी शोषण नहीं होता।

रूप मे प्रदान करती है। यह साधन का एकक्रेताधिकारी शोषण कहलाता है। एकक्रेताधिकारी प्रयुक्त साधन की मात्रा को सीमित कर देता है और इसकी कीमत को नीचा रखता है।

एकक्रेताधिकार को रोकने के उपाय

प्रश्न उठता है कि साधनो के एकक्रेताधिकारी शोषण को रोकने के लिए क्या किया जा सकता है ? यहाँ दो विकल्पो पर विचार किया जायगा। सर्वप्रथम, साधनो की प्रशासित (administered) या स्थिर न्यूनतम कीमतें काम मे ली जा सकती हैं। द्वितीय, साधन-गतिशीलता की वृद्धि मे सफल होने वाले उपायो से विशेष साधन के प्रयोगकर्ताओ की एकक्रेताधिकारी शक्ति मे कमी आ जाती है।

साधन की न्यूनतम कीमतें

साधन की न्यूनतम कीमतें सरकार के द्वारा अथवा साधन की पूर्ति करने वाले सगठित समूहो के द्वारा स्थापित की जा सकती हैं। विशेष किस्म की एकक्रेताधिकारी स्थिति चित्र 15-5 मे प्रस्तुत की गई है। A साधन के उपयोग की मात्रा a होती
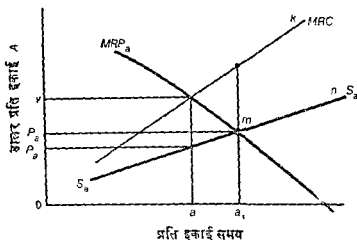
चित्र 15-5 न्यूनतम साधन कीमतो के द्वारा एकक्रेताधिकार का नियन्त्रण

है। इसकी प्रति इकाई कीमत P_a होनी है, लेकिन सीमान्त आय उत्पत्ति V होती है और साधन का शोषण किया जाता है। मान लीजिए P_{a1} न्यूनतम कीमत निर्धारित की जाती है और फर्म को खरीदी जाने वाली सभी इकाइयो के लिए प्रति इकाई कम-से-कम P_{a1} कीमत देनी होती है। यदि फर्म को a_1 इकाइयो से ज्यादा की आवश्यकता हो, तो इसके समक्ष साधन पूर्ति वक्र का mn अश होता है। अब फर्म के समक्ष सम्पूर्ण पूर्ति-वक्र $P_{a1}mn$ होगा।

फर्म के समक्ष साधन पूर्ति-वक्र मे परिवर्तन होने से सीमान्त साधन लागत-वक्र में भी परिवर्तन हो जाता है। शून्य और a_1 के बीच की मात्राओं के लिए प्रति इकाई समयानुसार लगाई जाने वाली A की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से फर्म की कुल लागतो मे P_{a1} के बराबर वृद्धि हो जाती है। नया सीमान्त साधन लागत वक्र a_1 मात्रा पर नये पूर्ति-वक्र $P_{a1}m$ से मेल खाता है। a_1 से अधिक मात्राओं के लिए नियमित पूर्ति-वक्र mn का ही महत्त्व होता है और सीमान्त साधन लागत वक्र का सम्बन्धित क्षेत्र lk हो जाता है। परिवर्तित सीमान्त साधन लागत वक्र $P_{a1}mlk$ होता है। a_1 मात्रा पर m व l के बीच यह असतत (discontinuous) होता है।

अब लाभ अधिकतम करने के लिए फर्म को A की जिस मात्रा का उपयोग करना चाहिए वह उस मात्रा से भिन्न होगी जो न्यूनतम कीमत निर्धारित होने से पूर्व प्रयुक्त की गई थी। फर्म को a_1 मात्रा का उपयोग करना चाहिए जिस पर नई सीमान्त साधन लागत A की सीमान्त आय उत्पत्ति के बराबर होती है। न्यूनतम कीमत न केवल साधन के एकक्रेताधिकारी शोषण को दूर कर देती है, बल्कि वह इस प्रक्रिया मे इसके उपयोग के स्तर को भी ऊँचा कर देती है।

उपर्युक्त विश्लेषण मे यह मान लिया गया है कि A साधन की न्यूनतम कीमत एक ऐसे सही स्तर पर निर्धारित की गई है कि यह एकक्रेताधिकार का पूर्णतया प्रतिरोध (counteract) कर सके। वास्तव मे ऐसी सुनिश्चितता प्राप्त हो सकती है और नही भी। लेकिन P_a व P_{a1} के बीच कोई भी न्यूनतम कीमत कुछ सीमा तक एकक्रेताधिकार का प्रतिरोध करेगी। P_{a1} के जितनी समीप कीमत निर्धारित की जाती है, शोषण उतनी ही ज्यादा मात्रा मे मिटाया जा सकता है। P_{a1} और V के बीच निर्धारित की जाने वाली कीमतें शोषण का भी प्रतिरोध करेंगी, लेकिन यह प्रतिरोध साधन के उपयोग की मात्रा की बलि देकर ही किया जायगा। यहाँ साधन की बेकारी की स्थिति उत्पन्न हो जायगी, क्योंकि P_{a1} से ऊपर किसी भी कीमत पर साधन-विक्रेता बाजार मे क्रेता जो कुछ खरीदने के लिए उद्यत होते हैं उससे ज्यादा बेचना चाहेंगे।

कीमत नियमन के द्वारा एकक्रेताधिकार का प्रतिरोध करना एक कठिन कार्य होता है। उस कीमत स्तर का निर्धारण करना एक जटिल कार्य होता है जिस पर एकक्रेताधिकार का पूर्णतया प्रतिरोध किया जा सकता है। श्रम के क्षेत्र म जहाँ एकक्रेताधिकार का सबसे ज्यादा प्रचार किया जाता है, न्यूनतम मजदूरी के अधिनियम प्रतिरोधात्मक उपाय के रूप मे प्रयुक्त किये जा सकते हैं। लेकिन विभिन्न किस्म के श्रम एव विभिन्न स्थितियो के लिए एकक्रेताधिकार की विभिन्न श्रेणियाँ इस किस्म के प्रत्यक्ष कीमत-निर्धारण को समग्र एकक्रेताधिकारी-प्रतिरोध के रूप मे अव्याव-हारिक बना देती हैं। प्रत्येक फर्म के आधार पर सामूहिक सौदाकारी वैयक्तिक

एकक्रेताधिकारी दशाओं का ज्यादा अच्छी तरह से मुकाबला एव प्रतिरोध कर सकती है। यहाँ भी साधन के लिए "सही" न्यूनतम कीमत को प्राप्त करने की कठिनाई के अलावा इसके निर्धारण की समस्या बनी रहती है।

गतिशीलता मे वृद्धि करने के उपाय—वैकल्पिक उपयोगो के बीच साधनो की गतिशीलता मे वृद्धि के उपाय हमे प्रत्यक्षतया एकक्रेताधिकार के कारणो तक पहुँचाते हैं। अनेक अर्थशास्त्रियो के मतानुसार साधनो की अगतिशीलता श्रम-बाजारो मे सबसे ज्यादा गम्भीर रूप मे पाई जाती है, इसलिए, हम अपना विवेचन श्रम साधन पर ही केन्द्रित करेंगे। हम विशिष्ट व विस्तृत कार्यक्रमो के बजाय सामान्य दृष्टिकोण की ही कुछ रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे। श्रम-साधन के सम्बन्ध मे भौगोलिक क्षेत्रो व फर्मों के बीच गतिशीलता, एक ही दक्षता के स्तर पर व्यवसायो के बीच क्षैतिज गतिशीलता एव अपेक्षाकृत ऊँची दक्षता वाले वर्गीकरणो म लम्बवत् व्यावसायिक गतिशीलता का एकक्रेताधिकार का प्रतिरोध करने की दृष्टि से महत्व होगा।

सघीय रोजगार विनिमयालयो (employment exchanges) की कायकुशल प्रणाली वह विधि होती है जिसके द्वारा श्रम की अगतिशीलता पर प्रहार किया जा सकता है। ऐसी प्रणाली का एक महत्वपूर्ण कार्य वैकल्पिक रोजगार के अवसरो के सम्बन्ध मे सूचना को सग्रह करना एव उसका प्रसार करना होता है। इसे सम्पूर्ण श्रम शक्ति के लिए जिसमे इस समय के अलग-थलग समुदाय भी शामिल हैं-ऊँची मजदूरी, सीमित श्रम-पूर्ति के क्षेत्रो एव ऐसे क्षेत्रो मे रोजगार प्राप्त करने के लिए आवश्यक दक्षता सम्बन्धी तथ्य उपलब्ध करने चाहिएँ। इसके अतिरिक्त इस व्यवस्था को रोजगार के अवसरो एव वैकल्पिक रोजगार तलाश करने वाले श्रमिको को परस्पर समीप लाने का अधिक सामान्य कार्य भी करना चाहिए।

शैक्षणिक व्यवस्था प्रहार की दूसरी विधि होनी है। यह श्रम-साधनो की लम्बवत् गतिशीलता एव क्षैतिज गतिशीलता दोनो में वृद्धि कर सकती है। लम्बवत् गतिशीलता के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि शैक्षणिक अवसरो की उपलब्धि एव उपयोग से विशाल सख्या मे तरुण पीढी के व्यक्तियो को ऊँची आय वाले एव ऊँचे स्तर वाले व्यवसायो की तरफ ले जाया जा सकता है। व्यावसायिक व ट्रेड स्कूलो के माध्यम से शैक्षणिक व्यवस्था अपेक्षाकृत अधिक उम्र वाले श्रमिको के लिए आवश्यक प्रशिक्षण की व्यवस्था कर सकती है ताकि दक्षता-वर्गीकरणो (skill classifications) के जरिए वे ऊपर की ओर गतिशील हो सके। क्षैतिज गतिशीलता के सम्बन्ध मे यह कहा जायगा कि व्यावसायिक पथ प्रदर्शन (vocational guidance) से भावी श्रमिकों को कम आय वाले धधो से हटा कर अधिक आय वाले धधो मे ले जाने मे मदद मिल सकती है। इसके अतिरिक्त, प्रौढ शिक्षा कार्यक्रमो के जरिए विशेषतया

कम आय वाले व्यवसायो से बचने के लिए आवश्यक पुन प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है।

समस्या पर प्रहार की एक तीसरी विधि और होती है जिसमे एकक्रेताधिकार के लक्षण वाले क्षेत्रो से बाहर भेजने के लिए श्रमिको को सीमित मात्रा मे आर्थिक सहायता दी जाती है, चूँकि अगतिशीलता का एक कारण यह है कि वैकल्पिक रोजगार के क्षेत्रो मे जाने के लिए श्रमिको के पास आवश्यक कोषो का अभाव पाया जाता है। प्रवास के लिए आर्थिक सहायता सरकारी ऋणो अथवा कोषो के प्रत्यक्ष अनुदानो के रूप मे हो सकती हैं, ताकि श्रमिक को स्थान-परिवर्तन मे मदद मिल सके।

गतिशीलता की धारणा

यहाँ पर गतिशीलता के अर्थ के सम्बन्ध मे कुछ बातें कहनी आवश्यक हैं ताकि इसके सम्बन्ध मे हमे कोई गलत धारणा न हो। कुछ व्यक्ति गतिशील श्रम-शक्ति का आशय इधर-उधर भटकने वाले श्रम से लगाते हैं जो एक अवांछनीय सामाजिक स्थिति होती है। गतिशीलता शब्द का जो प्रयोग अर्थशास्त्र मे लगाया जाता है वह यह नही है कि विशिष्ट समुदायो व सामाजिक संस्थाओ से सम्बन्धो का पूर्ण अभाव पाया जाय, और न यह है कि सभी श्रमिक तनिक-सी उत्तेजना मे आकर अपना सामान बाध कर दूसरे स्थान मे जाने को तैयार हो जाएँ। एकक्रेताधिकार को उत्पन्न होने से रोकने के लिए वास्तविक गतिशीलता की जिस मात्रा तक आवश्यकता होनी है वह प्राय बहुत कम होती है। प्रवास की सम्भावना एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व होता है। इसके साथ सभी समयो मे श्रम शक्ति मे काफी परिवर्तन व आना-जाना लगा रहता है—श्रमिक अपने काम बदलते रहते हैं, नये श्रमिक-श्रम-शक्ति मे प्रविष्ट होते रहते हैं, और पुराने श्रमिक अवकाश प्राप्त करते जाते हैं। इस निरन्तर परिवर्तन को ही गतिशीलता कहते हैं। प्रमुख समस्या यह है कि जो कुछ गतिशीलता पहले से विद्यमान है उसे आर्थिक दृष्टि से वांछनीय दिशाओ मे ले जाया जाय।

सारांश

शुद्ध प्रतियोगिता के अतिरिक्त अन्य दशाओ मे साधन की कीमत व उपयोग की मात्रा के निर्धारण के विश्लेषण के लिए पिछले अध्याय मे स्थापित किये गये सिद्धान्तो मे संशोधन की आवश्यकता होगी। वस्तु-बाजारो मे एकाधिकार की स्थिति साधनो के लिए व्यक्तिगत फर्म के माँग वक्रो की प्रकृति को बदल देती है। साधनो की खरीद मे एकक्रेताधिकार की स्थिति फर्म के समक्ष पाये जाने वाले साधन पूर्ति वक्र की प्रकृति को बदल देती है।

कई परिवर्तनशील साधनों का उपयोग करने वाली एकाधिकारी-फर्म को उत्पत्ति की विभिन्न मात्राओं के लिए साधनों के न्यूनतम-लागत संयोगों को एवं प्रयुक्त किये जाने वाले परिवर्तनशील साधनों की लाभ-अधिकतम करने वाली मात्राओं को निर्धारित करना होगा। उत्पत्ति की किसी भी दी हुई मात्रा के लिए न्यूनतम लागत संयोग वह होता है जहाँ एक साधन पर एक डालर के व्यय से प्राप्त सीमान्त भौतिक उत्पत्ति प्रयुक्त किये जाने वाले प्रत्येक दूसरे साधन पर एक डालर के व्यय से प्राप्त सीमान्त भौतिक उत्पत्ति के बराबर होती है। लाभ अधिकतम करने के लिए फर्म को न्यूनतम-लागत संयोग एवं प्रत्येक साधन की सही निरपेक्ष मात्राओं (absolute amounts) का उपयोग करना चाहिए। साधन इस प्रकार से प्रयुक्त किये जाने चाहिएँ ताकि

$$\frac{MPP_a}{P_a}=\frac{MPP_b}{P_b}=\cdots=\frac{MPP_n}{P_n}=\frac{1}{MC_x}=\frac{1}{MR_x}$$

वस्तु-बाजारों में एकाधिकार की स्थिति से साधनों का एकाधिकारात्मक शोषण होता है। इसका कारण यह है कि साधन की कीमत फर्म के लिए इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति के बराबर होनी है और यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए इसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य से कम होती है।

साधन की बाजार कीमत एवं इसके उपयोग का स्तर एक साथ निर्धारित होते हैं। यदि वस्तु बाजारों में एकाधिकार की स्थिति में लाभों को अधिकतम किया जाना है तो प्रयुक्त किये जाने वाले प्रत्येक परिवर्तनशील साधन की सीमान्त आय उत्पत्ति इसकी कीमत के बराबर होनी चाहिए। यदि एकाधिकारी केवल एक-ही परिवर्तनशील साधन का उपयोग करता है तो उस साधन का सीमान्त आय उत्पत्ति वक्र इस साधन के लिए फर्म का मांग वक्र होता है। यदि कई परिवर्तनशील साधन प्रयुक्त किये जाते हैं तो किसी भी दिये हुए साधन के लिए फर्म के मांग वक्र को निर्धारित करते समय उस साधन में होने वाले कीमत के परिवर्तनों के आन्तरिक या फर्म-प्रभावों पर ध्यान देना होगा।

एक साधन के लिए बाजार मांग-वक्र इसकी उन मात्राओं को जोड़कर प्राप्त किया जाता है जिन्हें सभी फर्में प्रत्येक सम्भव कीमत पर प्रयुक्त करती हैं, चाहे वे फर्में वस्तुओं की बिक्री में एकाधिकारी के रूप में कार्य करती हैं अथवा शुद्ध प्रतिस्पर्धी के रूप में। साधन की कीमत बाजार मांग व बाजार पूर्ति की दशाओं से निर्धारित की जाती है। जब बाजार-कीमत निर्धारित हो जाती है, तो फर्म उस साधन के प्रयोग को उस स्तर तक समायोजित कर लेती है जहाँ पर सीमान्त आय उत्पत्ति उस साधन की कीमत के बराबर हो जाती है। बाजार में उपयोग की मात्रा व्यक्तिगत फर्मों के

उपयोग की मात्राओं का योग होती है।

एकक्रेताधिकार का अर्थ है एक साधन-विशेष का अकेला क्रेता; इसलिए, एकक्रेताधिकारी के समक्ष एक साधन का पूर्ति-वक्र होता है जो दाहिनी ओर ऊपर की तरफ जाता है। उसके समक्ष एक सीमान्त साधन लागत वक्र भी होता है जो पूर्ति-वक्र से ऊपर होता है। वह साधन की उस मात्रा को लगाकर अपना लाभ अधिकतम करता है जहाँ पर इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति इसकी सीमान्त साधन लागत के बराबर होती है। सीमान्त साधन लागत और साधन की सीमान्त आय उत्पत्ति उपयोग के लाभ-अधिकतम करने वाले स्तर पर साधन की कीमत से अधिक होती है, जिसके परिणामस्वरूप साधन का एकक्रेताधिकारी शोषण होता है।

अध्ययन-सामग्री

Cartter, A. M., and F. R. Marshall, *Labor Economics* (Homewood : Richard D. Irwin, Inc.,1967), Chap. 10.

Fellner, William, *Modern Economic Analysis* (New York: McGraw-Hill, *Inc*., 1960), Chap. 19.

Nicholls, William H., *Imperfect Competition within Agricultural Industries* (Ames The Iowa State College Press 1941), Introduction and Chaps, 1 3,

Robinson, Joan, *The Economics of Imperfect Competition* (London : Macmillan & Co., Ltd., 1933), Chaps, 25 and 26.

□□□

अध्याय 16

साधन-आवंटन

साधन-कीमतो के द्वारा एक निजी उद्यमवाली अर्थव्यवस्था मे जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किए जाते हैं उनमे से एक कार्य विभिन्न उपयोगो व विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रो मे साधनो को आवंटित करने का होता है। यदि अर्थव्यवस्था मे कार्यकुशलता का एक ऊँचा स्तर प्राप्त किया जाना है तो मानवीय आवश्यकताओ, उपलब्ध साधनो की किस्मो व मात्राओ, एव उत्पादन की उपलब्ध तकनीको के परिवर्तनो के फलस्वरूप साधनो का निरन्तर पुनरावटन (reallocation) करते रहना होगा। साधन-आवटन के सिद्धान्तों के विकास मे हमे सर्वप्रथम साधन बाजार की धारणा का विवेचन करना होगा। इसके बाद हम साधन आवटन की उन शर्तों पर विचार करेंगे जिनसे साधन के उपयोग मे अधिकतम कार्यकुशलता प्राप्त होती है। अन्त मे हम उन तत्त्वो की जाँच करेंगे जो साधनो के सही आवटन को रोकते हैं।

अधिकतम कल्याण की शर्तें

प्रश्न यह है कि यदि एक दिये हुए साधन को कल्याण मे अधिकतम योगदान देना हो तो आवटन की कौन सी शर्तें पूरी की जानी चाहिएँ? सामान्य रूप से शर्त यह होगी कि किसी भी एक उपयोग मे साधन की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य इसके अन्य सभी उपयोगो मे सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य के बराबर होना चाहिए। कल्पना कीजिए कि कोई और आवटन पाया जाता है — उदाहरण के लिए, खेत पर प्रयुक्त किया जाने वाला ट्रैक्टर अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति मे सीमा पर कृषि-पदार्थों की वार्षिक $ 2000 राशि का योगदान देता है, और निर्माण (construction) मे प्रयुक्त किया जाने वाला वैसा-ही ट्रैक्टर अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति मे वार्षिक $ 3000 राशि का योगदान दे सकता है। ऐसी स्थिति मे यदि ट्रैक्टर कृषि से निर्माण की ओर हस्तान्तरित कर दिया जाता है तो उपभोक्ताओ को उत्पत्ति का $ 1000 राशि के बराबर शुद्ध लाभ होगा। स्पष्ट है कि किसी भी उपभोक्ता की स्थिति को बिगाडे बिना कुछ उपभोक्ताओ की स्थिति को सुधारा जा सकता है। साधनो को सीमान्त उत्पत्ति के नीचे मूल्य वाले उपयोगो से सीमान्त उत्पत्ति के ऊँचे मूल्य वाले उपयोगो मे हस्तान्तरित करने से सदैव कल्याण मे वृद्धि होती है, और अधिकतम कल्याण की स्थिति उस बिन्दु

पर ग्राती है जहां इन हस्तान्तरणो से प्रत्येक साधन की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य इसके समस्त वैकल्पिक उपयोगो मे एक हो जाता है।

साधनो के बाजार

जब कीमत प्रणाली का उपयोग साधन-ग्रावटन मे किया जाता है तो साधन-बाजार की धारणा महत्त्वपूर्ण हो जाती है। साधन बाजार का विस्तार विचाराधीन साधन की प्रकृति एव विचाराधीन समस्या से सम्बन्धित समयावधि पर निर्भर करता है। एक दी हुई समयावधि के ग्रन्दर कुछ साधन दूसरो से ज्यादा गतिशील होते हैं, ग्रौर परिणामस्वरूप उनके बाजार ज्यादा विस्तृत होते हैं। गतिशीलता कई बातो पर निर्भर करती है जैसे जहाजी या नौवहन लागतें (shipping costs), नश्वरता (perishability), सामाजिक शक्तियाँ ग्रादि—ग्रौर साधनो मे इन लक्षणो को लेकर भेद पाए जाते हैं।

साधारणतया, किसी भी दिए हुए साधन की गतिशीलता विचाराधीन समयावधि पर निर्भर करती है। ग्रल्पकाल मे इसकी गतिशीलता दीर्घकाल की बनिस्बत ग्रधिक सीमित होती है। एक विशेष किस्म के श्रम—जैसे मशीन-चालको पर विचार कीजिए। कुछ महीनो ग्रथवा सम्भवत एक वर्ष की ग्रल्पावधि मे ग्रमेरिका के मशीन-चालक एक भौगोलिक क्षेत्र से दूसरे मे स्वतन्त्रतापूर्वक गतिशील नही होगे, हालाकि वे एक-ही क्षेत्र मे एक नियोक्ता से दूसरे नियोक्ता तक काफी स्वतन्त्रतापूर्वक गतिशील हो सकेंगे। विचाराधीन ग्रवधि जितनी ग्रधिक लम्बी होगी वे उतने ही वडे भौगोलिक क्षेत्र मे स्वतन्त्रतापूर्वक गतिशील हो सकेंगे। पच्चीस वर्षों की ग्रवधि मे वे सम्पूर्ण ग्रर्थव्यवस्था मे काफी सीमा तक गतिशील हो सकेंगे।[1]

ग्रल्पकाल मे सभी मशीन चालक ग्रथवा ग्रर्थव्यवस्था मे किसी भी दूसरे साधन की समस्त इकाइयाँ ग्रनिवार्यत एक-ही बाजार मे ग्रपने कार्य को सचालित नही करती हैं। हम ग्रर्थव्यवस्था को कई उपबाजारो मे विभाजित कर सकते हैं, प्रत्येक उप-बाजार एक ऐसा क्षेत्र होता है जिसमे एक साधन की इकाइयाँ दी हुई समयावधि मे गतिशील होती हैं। विचाराधीन ग्रवधि जितनी ज्यादा लम्बी होती है, उपबाजारो के बीच परस्पर सम्बन्ध उतने ही ग्रधिक पाए जाते हैं। काफी लम्बी ग्रवधि के दौरान

---

1 गतिशीलता के लिए यह आवश्यक नहीं कि स्वय मशीन-चालक एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में एव एक नियोक्ता से दूसरे के पास चला जाय। जब पुराने मशीन चालक काय से अवकाश ग्रहण करते हैं एव नए व्यक्ति प्रवेश करते हैं तब भी गतिशीलता पाई जा सकती है, क्योंकि कुछ क्षेत्रों में ऐसा भी हो सकता है कि अवकाश ग्रहण करने वाले मशीन-चालकों के वदले म दूसरे न लिए जाएँ जबकि अन्य क्षेत्रो में व्यवसाय मे प्रवेशकर्ताओ की सख्या अवकाश ग्रहणकर्ताओ से अधिक हो सकती है।

उपबाजारों की प्रवृत्ति एक-ही बाजार में समा जाने की हो जाती है।

एक साधन के लिए उपबाजार वास्तविक होने की बजाय इस अर्थ में धारणा-मूलक (conceptual) होते हैं कि उपबाजारों के बीच की सीमाएँ धुंधली होती हैं। प्रत्येक उपबाजार दूसरे में मिलने की प्रवृत्ति रखता है। लेकिन यदि हम उनको एक-दूसरे से पृथक् व भिन्न मानें तो हम साधन-आवंटन के विश्लेषण में ज्यादा प्रगति कर सकते हैं। साथ में यह भी है कि समयावधि में पूरी निरन्तरता (continuum) के स्थान पर केवल दो पर ही विचार करने की आवश्यकता है (1) अल्पकाल जिसमें एक दिए हुए साधन के लिए उपबाजार पृथक् होते हैं और (2) दीर्घकाल जिसमें साधनों के पास उपबाजारों के बीच स्वतन्त्रतापूर्वक गतिशील होने के लिए पर्याप्त समय होता है, और इनका एक ही बाजार में विलय हो जाता है।

शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत साधन-आवंटन

क्या कीमत-प्रणाली विभिन्न उपयोगों में साधनों का आवंटन इस प्रकार से करेगी कि इष्टतम कल्याण के समीप पहुँचा जा सके। यदि वस्तु-बाजारों व साधन-बाजारों में शुद्ध प्रतियोगिता पाई जाती है तो ऐसा आवंटन हो जाएगा, इसलिए हमारे लिए प्रतिस्पर्धात्मक मॉडल से अपने विश्लेषण को प्रारम्भ करना सुविधाजनक होगा। सर्वप्रथम हम एक दिए हुए उपबाजार में साधन के अल्पकालीन आवंटन का विवेचन करेंगे। तत्पश्चात् उसका विस्तार किया जाएगा ताकि उसमें विभिन्न उपबाजारों के बीच अथवा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में किए जाने वाले दीर्घकालीन आवंटन को शामिल किया जा सके।

एक दिये हुए उपबाजार में आवटन

जब एक साधन की इकाइयाँ इस प्रकार से आवटित की जाती हैं कि एक उपयोग में इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य अन्य उपयोगों से अधिक होता है, तो वह आवटन आर्थिक कार्यकुशलता व कल्याण की दृष्टि से गलत होगा। साधन की इकाइयाँ समाज के लिए अधिक मूल्य वाले सीमान्त उत्पत्ति उपयोग में ज्यादा मूल्यवान होंगी, और यदि ये इकाइयाँ नीचे मूल्य वालों से ऊँचे मूल्य वाले सीमान्त उत्पत्ति-उपयोगों (marginal product uses) में हस्तान्तरित की जाती हैं, तो अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति के कुल मूल्य में वृद्धि होगी।

जब शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक प्रणाली में साधन गलत ढंग से आवटित होते हैं तो साधनों की कीमतें पुनरावटन का यन्त्र प्रदान करती हैं। मान लीजिए, एक दिए हुए साधन की इकाइयाँ दो उद्योगों के बीच इतनी इतनी मात्राओं में आवटित की जाती हैं कि एक साधन की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य एक की बजाय दूसरे में ऊँचा होता

है। इस आवटन के दिए हुए होने पर उद्योग में वे फर्में, जिनमे सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य ऊँचा होता है, साधन के लिए प्रति इकाई ज्यादा राशि देने को उद्यत होंगी, क्योंकि प्रत्येक उद्योग म साधन को इसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य के बराबर राशि दी जाती है। परिणामस्वरूप, अधिकतम आय के इच्छुक साधनो के स्वामी साधनो की इकाइयों को कम आय वाले उपयोगो से अधिक आय वाले उपयोगो मे हस्तान्तरित कर देते हैं।[2] जब एक साधन की इकाइयाँ हस्तान्तरित की जाती हैं तो जिन उपयोगो मे इसका हस्तान्तरण किया जाता है उनम इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य घटता है और जिन उपयोगो की तरफ से इसका हस्तान्तरण किया जाता है उनमे यह बढता है। यह हस्तान्तरण उस समय तक जारी रहता है जब तक कि इसके सभी उपयोगों मे इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य बराबर न हो जाय और उपबाजार मे सभी फर्में प्रति इकाई वह कीमत न देने लग जाएँ जो इसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य के बराबर हो। इस बिन्दु पर साधन का सही आवटन हो पाता है, और यह उपबाजार मे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति मे अपना अधिकतम अंशदान दे पाता है।

विभिन्न उपयोगो मे साधन आवटन मे साधन कीमतो के स्थान का अधिक विस्तार से वर्णन करने के लिए हम मान लेते हैं कि दो विभिन्न उद्योगो की फर्में X और Y का उत्पादन करती हैं और साधन A के लिए एक ही उपबाजार मे कार्य करती हैं। यह भी कल्पना कीजिए कि प्रारम्भ मे A की इकाइयाँ दो उद्योगो की फर्मों के बीच सही ढग से आवटित की जाती हैं। X का उत्पादन करने वाले उद्योगों की फर्मों मे A की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य (VMP_{ax}) Y का उत्पादन करने वाले उद्योग की फर्मो म A की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य (VMP_{ay}) के बराबर होगा। यह भी कल्पना कीजिए कि बाजार मे A का न तो आधिक्य है और न अभाव ही, ताकि

$$VMP_{ax} = VMP_{ay} = P_a$$

अथवा

$$MPP_{ax} \times P_x = MPP_{ay} \times P_y = P_a\ ,$$

यहाँ पर P_a तो साधन A की प्रति इकाई कीमत है, और P_x व P_y क्रमश X-वस्तु व Y-वस्तु की कीमतें हैं।

मान लीजिए, X-वस्तु की बाजार-माँग मे वृद्धि होती है, जबकि Y-वस्तु की

---

2 बाजार म प्रवेश करन वाले नए साधनों की इकाइयाँ—जैसे कॉलेज के स्नातक ऊँची आय वाले धधों की तरफ आकर्षित हो सकते हैं। इस आकर्षण के साथ यदि कम आय वाले रोजगारों के बाजार से अवकाश प्राप्त साधनों की इकाइयों के स्थान पर दूसरी इकाइयों को स्थापित नहीं किया जाय तो हस्तान्तरण की एक महत्वपूर्ण विधि प्राप्त हो जाती है।

माँग यथास्थिर बनी रहती है। समग्र माँग का स्तर स्थिर रहता है और X की माँग मे होने वाली वृद्धि X और Y के अलावा अन्य वस्तुओ की माँग मे होने वाली कमियो से कट जाती है। X की कीमत मे वृद्धि होती है जिससे VMP_{ax} बढ जाता है। A साधन Y के उत्पादन की अपेक्षा X के उत्पादन मे समाज के लिए ज्यादा मूल्यवान हो जाता है। अब A का प्रारम्भिक ग्रावंटन कल्याण को अधिकतम नही करता, अर्थात्, यह ग्रावंटन अब सही नही रह जाता। साधन के लिए P_a कीमत पर X उत्पन्न करने वाले उद्योग मे नियोक्ता यह देखते हैं कि A का अभाव है। परिणाम-स्वरूप वे A की कीमत को इतना ऊँचा कर देंगे कि A के स्वामी इसकी इकाइयो को Y का उत्पादन करने वाले उद्योग से X का उत्पादन करने वाले उद्योग मे हस्तान्तरित करना चाहेंगे। जब X का उत्पादन करने वाले उद्योग मे फर्मों के द्वारा लगाई जाने वाली A की मात्रा लगाए जाने वाले अन्य साधनों की मात्राओ की तुलना मे बढती है, तो MPP_{ax} मे गिरावट आती है। X की उत्पत्ति मे वृद्धि होने से P_x मे गिरावट आती है। इस प्रकार VMP_{ax} घटता है।

X का उत्पादन करने वाले उद्योग मे होने वाले परिवर्तनो के साथ Y का उत्पादन करने वाले उद्योग मे भी परिवर्तन होंगे। जब A की इकाइयाँ Y के उत्पादन से X की तरफ हस्तान्तरित की जाती हैं, तो Y का उत्पादन करने वाले उद्योग मे फर्मों के द्वारा प्रयुक्त अन्य साधनो के साथ A के अनुपात घट जाते हैं और MPP_{ay} बढ जाता है। Y की अपेक्षाकृत कम मात्राएँ उत्पन्न की जाती हैं और बेची जाती हैं; परिणाम-स्वरूप P_y बढता है। MPP_{ay} एव P_y मे होने वाली वृद्धियो से VMP_{ay} बढ जाता है।

Y के उत्पादन से X की तरफ A का पुनरावंटन उस समय तक जारी रहता है जब तक कि साधन की इकाइयो का दोनों उद्योगो के बीच पुन सही वितरण नही हो जाता। A की इकाइयाँ Y का उत्पादन करने वाले उद्योग से X का उत्पादन करने वाले उद्योग की तरफ उस समय तक गतिशील होगी जब तक कि VMP_{ax} इतना नीचा एव VMP_{ay} इतना ऊँचा न हो जाय कि दोनो परस्पर बराबर हो सकें। A की प्रति इकाई नई कीमत पुरानी कीमत मे कुछ ऊँची होगी, क्योकि अब दोनो उद्योगो मे इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य पहले से ऊँचा होगा। A की उपलब्ध पूर्ति के लिए परस्पर स्पर्धा करने मे दोनो उद्योगो की फर्में A की कीमत को दोनों उपयोगो मे इसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य तक पहुँचा देंगी।

A साधन पुन शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति मे अपना अधिकतम योगदान देने लगेगा। जब VMP_{ax} राशि VMP_{ay} से अधिक होती है तो Y का उत्पादन करने वाले उद्योग से X का उत्पादन करने वाले उद्योग मे A की एक इकाई की गतिशीलता से शुद्ध

प्रदर्शित उनके श्रम-माँग-वक्र D_1D_1 व D_2D_2 भी एक-से होते हैं। लेकिन दोनों क्षेत्रों में श्रम की पूर्ति में अन्तर पाया जाता है। क्षेत्र I में क्षेत्र II की अपेक्षा श्रम की पूर्ति अधिक होती है, इसीलिए क्षेत्र I का श्रम-पूर्ति-वक्र S_1S_1 क्षेत्र II के S_2S_2 की अपेक्षा ज्यादा दाहिनी तरफ आता है।

श्रम का कुआवंटन हो जाता है (malallocated) और इसके गलत वितरण के कारण इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य एवं इसकी कीमत दोनों क्षेत्रों में भिन्न भिन्न हो जाते हैं। क्षेत्र I में श्रम की कीमत अथवा मजदूरी की दर W_1 और क्षेत्र II में W_2 होगी। क्षेत्र II में रोजगार का स्तर L_2 होगा जबकि क्षेत्र I में अपेक्षाकृत ऊँचा L_1 होगा। क्षेत्र I में श्रम का पूँजी से अपेक्षाकृत ऊँचा अनुपात होने से उस क्षेत्र में श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति एवं सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य नीचे होते हैं। क्षेत्र II में इसके विपरीत होता है। यहाँ पर श्रम का पूँजी से अनुपात अपेक्षाकृत कम होता है, परिणामस्वरूप, श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति एवं सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य दोनों ऊँचे होते है।

उपबाजारों में श्रम की भिन्न भिन्न कीमतों से क्षेत्र I से क्षेत्र II में श्रम की दीर्घकालीन गतिशीलता अथवा पुनरावंटन के लिए प्रेरणा मिलती है और पुनरावंटन से मजदूरी का भेद समाप्त होने लगता है। जब श्रमिक क्षेत्र I को छोड़ने लगते हैं तो उस उपबाजार का अल्पकालीन पूर्ति वक्र बायीं ओर खिसक जाता है। जब वे क्षेत्र II में प्रवेश करते हैं तो इसका अल्पकालीन पूर्ति वक्र दाहिनी ओर खिसक जाता है। जब क्षेत्र I में श्रम का पूँजी के प्रति अनुपात घटता है तो श्रम की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य
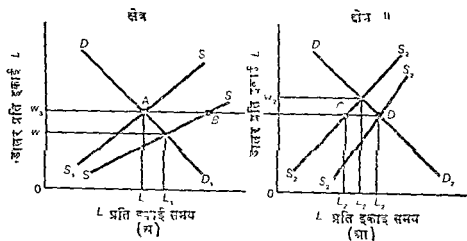
चित्र 16 1 उपबाजारों की बीच श्रम का आवंटन

और मजदूरी की दर बढते हैं। क्षेत्र II मे श्रम का पूंजी के प्रति अनुपात बढने से श्रम की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य एव मजदूरी की दर घट जाती है। पुनरावटन उस समय तक जारी रहता है जब तक कि दोनो उपबाजारो में मजदूरी की दरें W_3 के बराबर नही हो जाती। अब क्षेत्र I का श्रम-पूर्ति वक्र $S_1'S_1'$ और क्षेत्र II का $S_2'S_2'$ होगा।

क्षेत्र I व क्षेत्र II के बीच श्रम का पुनरावटन शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति व कल्याण म वृद्धि करता है। गतिशीलता प्रारम्भ होने से पूर्व क्षेत्र I मे श्रम की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य W_1 था। क्षेत्र II म यह काफी ऊँचा W_2 था। क्षेत्र I से क्षेत्र II मे श्रम की एक इकाई की गतिशीलता से क्षेत्र I म W_1 डालर के मूल्य के माल की क्षति होती है, और क्षेत्र II म लगभग W_2 डालर के मूल्य के माल का लाभ होता है। क्षेत्र II का लाभ क्षेत्र I की हानि से भी अधिक होता है और यह अर्थव्यवस्था म उत्पादित माल के कुल मूल्य म शुद्ध रूप से वृद्धि उत्पन्न करता है। क्षेत्र I से क्षेत्र II म श्रम की प्रत्येक इकाई के स्थानान्तरण से उस समय तक ऐसी शुद्ध वृद्धि होती रहती है जब तक कि सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य एव मजदूरी की दरें दोनो उपबाजारो म बराबर नही हो जाते। तब श्रम दोनो क्षेत्रो मे सही ढग से आवटित हो जाता है और यह कल्याण मे सबसे ज्यादा योगदान देता है। किसी भी दशा में श्रम के और अधिक स्थानान्तरण से शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति मे वृद्धि नही होगी, बल्कि इसमे गिरावट आएगी। साथ मे यह भी है कि मजदूरी की दरो के समान होने से श्रम म प्रवास के लिए प्रेरणा समाप्त हो जायगी।

पूंजी का आवटन—समायोजन का सम्पूर्ण भार दीर्घकाल मे श्रम पर नही डाला जायगा, जैसा कि पूर्व विश्लेषण से प्रतीत होता है, बल्कि यह अशत पूंजी के पुनरावटन के द्वारा वहन किया जायगा। क्षेत्र I म श्रम का पूंजी के प्रति ऊँचे अनुपात का वही आशय है जो पूंजी का श्रम के प्रति नीचे अनुपात से है। इसी प्रकार, क्षेत्र II मे श्रम का पूंजी के प्रति नीचे अनुपात से वही आशय है जो पूंजी का श्रम के प्रति ऊँचे अनुपात से है। अतएव हम आशा कर सकते है कि क्षेत्र I म पूंजी की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य क्षेत्र II से अधिक होगा। दोनो क्षेत्रो के बीच पूंजी की उत्पादकताओ एव विनियोग पर प्रतिफलो मे अन्तर होने से पूंजी के लिए क्षेत्र II से क्षेत्र I मे गतिशील होने के लिए प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है।

पूंजी का दीर्घकालीन गमन (migration) दोनो क्षेत्रो मे श्रम के अल्पकालीन माँग वक्रो व मजदूरी की दरो को प्रभावित करता है। ज्योही पूंजी की इकाइयाँ क्षेत्र II को छोडती हैं, उस क्षेत्र म श्रम का माँग-वक्र (सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य का वक्र) बायी ओर खिसक जाता है जिससे श्रम की बढती हुई पूर्ति से मजदूरी की दरो मे गिरावट और भी बढ जाती है। जब पूंजी की इकाइयाँ क्षेत्र I मे प्रवेश करती हैं, तो

उस क्षेत्र मे श्रम का माँग-वक्र बढ जाता है। माँग की वृद्धियाँ पूर्ति की कमियो से मिलकर क्षेत्र 1 मे मजदूरी की दरो को बढा देती है।

जब श्रम व पूँजी के विपरीत दिशाओं मे गमन इस सीमा तक हो जाते हैं कि दोनो क्षेत्रो मे मजदूरी की दरें एव विनियोग के प्रतिफल बराबर हो जाते हैं, तब यह माना जायगा कि श्रम व पूँजी का सही आवटन हो गया है। अब किसी भी साधन के किसी भी दिशा मे आगे हस्तान्तरित होने से दोनो उपबाजारो के द्वारा मिले जुले रूप में प्रदत्त वास्तविक शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति मे कमी आ जायगी।

सही आवंटन को रोकने वाले तत्व

वास्तविक जगत् मे कीमत-प्रणाली को साधनो के सही आवटन से रोकने मे कई शक्तियाँ काम करती हैं। यदि कीमत-प्रणाली को स्वतन्त्र रूप से सचालित होने दिया जाय और साधनो की कीमतो को साधनो के आवटन के निर्देशन की स्वतन्त्रता हो, तो भी साधनो के गलत आवटन के लिए तीन महत्त्वपूर्ण कारण प्रस्तुत किये जा सकते है। ये है वस्तु बाजारो मे एकाधिकार, साधन-बाजारो मे एकक्रेताधिकार, एव साधनो की गतिशीलताओ मे कुछ गैर-कीमत बाधाएँ। इनके अतिरिक्त, सरकार अथवा साधनो के स्वामियो व साधन-क्रेताओ के निजी समूहो के द्वारा कीमत सयत्र मे प्रत्यक्ष हस्तक्षेप भी गलत आवटन का कारण हो सकता है। हम इन कारणो पर क्रमश: विचार करेंगे।

यहाँ एकाधिकार शब्द का प्रयोग एक व्यापक अर्थ मे किया गया है और इसमे शुद्ध एकाधिकार, अल्पाधिकार, एव एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता जैसी स्थितियाँ शामिल होती हैं, जिनमे व्यक्तिगत फर्मों के वस्तु माँग-वक्र (product demand curves) नीचे की ओर झुकते हुए होते हैं। इसी प्रकार एकक्रेताधिकार शब्द का भी व्यापक अर्थ मे प्रयोग किया गया है। साधनो की खरीद मे पूर्ण एकक्रेताधिकार की स्थिति होने मे कोई भी पुनरावटन नही हो पाता है। पूर्ण एकक्रेताधिकार से कम की स्थिति के होने पर एक दिये हुए साधन की इकाइयाँ सीमित क्रेताओ के बीच गतिशील होने के लिए स्वतन्त्र होती है, एव कोई भी क्रेता साधन की बाजार-कीमत को प्रभावित कर सकता है।

एकाधिकार

यह सम्भव है कि वस्तु-बाजारो मे एकाधिकार समस्त साधनो की गतिशीलताओ को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित न करे। कुछ साधन वैकल्पिक नियोक्ताओ के बीच गतिशील होने के लिए स्वतन्त्र होते है हालांकि उनको नियुक्त करने वाली कुछ फर्मों को थोडी मात्रा मे वस्तु एकाधिकार (product monopoly) प्राप्त हो सकता है।

इस्पात, साधारण किस्म का श्रम, कुछ किस्म के कच्चे माल एव अन्य साधन अनेक फर्मों के द्वारा प्रयुक्त किये जाते हैं एव वे एक फर्म से दूसरी के पास जाने के लिए स्वतन्त्र हो सकते हैं और इसका वस्तु बाजार की उन किस्मो से कोई सम्बन्ध नही होता है जिनमे व्यक्तिगत फर्मो को अपना माल बेचना होता है। जहाँ ऐसे किसी साधन के लिए उपबाजारो म अथवा उनके बीच कीमतो के अन्तर पाये जाते हैं वहाँ साधन का दीर्घकालीन पुनरावटन उस सीमा तक होता है जो इन अन्तरो को मिटाने के लिए आवश्यक होता है। प्रत्येक उपबाजार मे प्रत्येक फर्म साधन की उस मात्रा का उपयोग करती है जिस पर इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति साधन की कीमत के बराबर होती है। पुनरावटन उस समय तक होता रहता है जब तक कि सीमान्त आय उत्पत्ति और साधन की कीमत इसके सभी वैकल्पिक उपयोगो मे बराबर नहीं हो जाते।

जब कुछ अश मे वस्तु-एकाधिकार पाया जाता है, तो समस्त साधनो को इस तरह से आवटित किये जान पर कि प्रत्येक की सीमान्त आय उत्पत्ति इसके समस्त वैकल्पिक उपयोगो मे समान हो जाय, फिर भी वास्तविक शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति और कल्याण अधिकतम नही हो पायेंगे। व्यक्तिगत फर्मो के समक्ष नीचे की ओर झुकने वाले वस्तु माँग-वक्र होते है। प्रत्येक फर्म के लिए सीमान्त आय वस्तु की कीमत से कम होती हैं। इस प्रकार किसी भी दिये हुए साधन के लिए इसके प्रत्येक उपयोग मे सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति से अधिक होगा। लेकिन विभिन्न उपयोगो मे साधन की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्यो के बीच अन्तर पाये जायेंगे, चाहे उन सबमे इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति समान हो। ऐसा विभिन्न वस्तुओ, जिनके उत्पादन मे वह साधन सहायक होता है, कि अलग-अलग पाई जाने वाली माँग की लोचो के कारण होगा। अलग-अलग माँग की लोचो का आशय है कि वस्तु की कीमतें एव तदनुरूप सीमान्त आय की मात्राएँ विभिन्न वस्तुओ के बीच एक-दूसरे की आनुपातिक नहीं होती हैं। अत विभिन्न उपयोगो मे साधन की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति की मात्राओ के आनुपातिक नही होते है। जब दूसरी श्रेणी की राशियाँ समान होती हैं तब प्रथम श्रेणी असमान होगी। एक साधन के विभिन्न उपयोगो मे इसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्यो म पाई जाने वाली असमानताएँ यह बतलाती हैं कि साधन की इकाइयो को नीचे मूल्य वाले सीमान्त उत्पत्ति उपयोगो से ऊँचे मूल्य वाले सीमान्त उत्पत्ति उपयोगो म हस्तान्तरित करने से शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति मे वृद्धि की जा सकती है।

एक साधन की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य वह राशि होती है जो अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति के मूल्य मे इसकी एक इकाई के अशदान को मापती है—जो इसकी सीमान्त

भौतिक उत्पत्ति को इसकी अन्तिम उत्पत्ति की कीमत से गुणा करने के बराबर होती है। सीमान्त-आय-उत्पत्ति उस अंशदान को सूचित करती है जो साधन की एक इकाई के द्वारा एक फर्म की कुल प्राप्तियो मे किया जाता है। लेकिन एकाधिकार की स्थिति मे यह साधन की एक इकाई के द्वारा अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति मे होने वाली वृद्धि के मूल्य से कम होगा। इस प्रकार जब एक साधन इस प्रकार से आवटित हो जाता है कि इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति सभी वैकल्पिक उपयोगो मे बराबर हो जाती है और जब इसकी कीमत इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति के समान हो जाती है तो कीमत-प्रणाली अपना कार्य सम्पादित कर चुकती है। यद्यपि नीचे के मूल्य वाले सीमान्त उत्पत्ति उपयोगो से ऊँचे के मूल्य वाले सीमान्त उत्पत्ति उपयोगो की तरफ अतिरिक्त पुनरावटन से शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति मे वृद्धि होगी, फिर भी इसके लिए कोई स्वचालित प्रेरणा नही होती है।

मान लीजिए, डेट्रिअोट मे मशीन-चालक दोनो किस्म की फर्मो मे काम करते हैं जो अल्पाधिकारी के रूप मे एव शुद्ध प्रतिस्पर्धी के रूप म माल बेचती है। एक मोटर गाडी का विनिर्माता प्रथम किस्म की फर्म का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है, जबकि अनेक छोटी स्वतन्त्र मशीन की दुकानो मे से कोई भी एक दुकान द्वितीय श्रेणी का दृष्टान्त प्रस्तुत करती है। मान लीजिए मशीन चालको के लिए एक सतुलन आवटन पाया जाता है–उन्हे सभी वैकल्पिक रोजगारो मे प्रति घटे $8 दिया जाता है। मशीन की छोटी दुकान उस मात्रा को प्रयुक्त करती है जिस पर मशीन-चालको की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य प्रति घटे $8 होता है। मोटरगाडी का विनिर्माता उस मात्रा का उपयोग करता है जिस पर सीमान्त आय उत्पत्ति प्रति घटे $8 के बराबर होती है। लेकिन चूँकि मोटरगाडी के विनिर्माता के समक्ष एक नीचे की ओर झुकने वाला उत्पत्ति माँग-वक्र पाया जाता है, इसलिए उसके द्वारा नियुक्त मशीन चालको की सीमान्त-उत्पत्ति का मूल्य उनकी सीमात आय उत्पत्ति से अधिक होता है। सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य प्रति घटे $12 हो सकता है। यदि कुछ मशीन-चालक छोटी स्वतन्त्र मशीन की दुकानो से मोटरगाडी के विनिर्माताओ की तरफ हस्तान्तरित होते हैं तो समाज को शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति के रूप मे लाभ प्राप्त होगा। लेकिन चूँकि दोनो प्रति घटे $8 देते हैं इसलिए कीमत प्रणाली हस्तान्तरणो को पेरित नही कर सकेगी।

इसके अतिरिक्त, एकाधिकारात्मक उद्योगो मे आशिक या पूर्णतया अवरुद्ध प्रवेश अन्य साधनो को इस तरह से आवटित होने से रोक सकता है ताकि उनकी सीमान्त आय उत्पत्ति की मात्राएँ एव कीमतें उपबाजारो के अन्दर एव उनके बीच बराबर हो जाएँ। हम इन साधनों के बारे में इस तरह सोच सकते है कि ये व्यक्तिगत फर्मो के अस्तित्व से पृथक नही किये जा सकते–वे अल्पकालीन "स्थिर" साधन होते है। वे

उद्योगो मे नई फर्मों के लिए सयत्र के रूप मे ही प्रवेश कर सकते हैं। एक उद्योग में फर्मों के लिए दीर्घकालीन लाभो का होना इस बात को सूचित करता है कि उस उद्योग मे ऐसे साधनो की सीमान्त आय उत्पत्ति की मात्राएँ अर्थव्यवस्था मे अन्यत्र प्राप्त होने वाली मात्राओ से अधिक होती हैं।

एकक्रेताधिकार

साधनो की खरीद मे एकक्रेताधिकार के अस्तित्व से भी दिये हुए साधनो के सही आवटन मे बाधा पड सकती है। जहाँ कुछ अश मे एकक्रेताधिकार विद्यमान होता है, वहाँ एक व्यक्तिगत फर्म साधन की वह मात्रा खरीदती है जिस पर इसकी सीमान्त-आय उत्पत्ति इसकी सीमान्त साधन लागत के बराबर होती है। जब एक फर्म के लिए साधन का पूर्ति-वक्र दायी ओर ऊपर की तरफ जाता है, तो सीमान्त साधन लागत उस कीमत से अधिक होती है जो फर्म उस साधन के लिए देती है। इस प्रकार जब साधन की खरीद मे किसी भी अकेली फर्म के द्वारा सतुलन प्राप्त कर लिया जाता है, तो साधन को दी जाने वाली कीमत इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति से नीचे होती है।

साधन की विभिन्न कीमतें (differential prices) इसका उपयोग करने वाली कुछ फर्मो के बीच इसके आवटन का मार्ग-दर्शन करती हैं, जैसा कि उन्होने पिछले विश्लेषण मे किया था। साधन का ऐच्छिक पुनरावटन उस समय बद हो जायगा जबकि इसकी कीमत इसके वैकल्पिक उपयोगो मे समान हो जाती है। साधन के स्वामियो के लिए इसकी इकाइयो को एक उपयोग से दूसरे म हस्तान्तरित करने के लिए कोई प्रेरणा नही रह जाएगी, और एक सतुलन-आवटन की स्थिति प्राप्त हो जायगी।

सतुलन-आवटन के प्राप्त हो जाने एव सभी फर्मों के द्वारा साधन के लिए एक-सी कीमत के दिये जाने पर भी हो सकता है कि यह साधन शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति मे अपना अधिकतम योगदान न कर सके। जिस सीमा तक विभिन्न फर्मों के समक्ष पाये जाने वाले साधन के पूर्ति-वक्र भिन्न-भिन्न लोच रखते हैं उन फर्मों के बीच उस साधन की सीमान्त साधन लागतें एव सीमान्त आय उत्पत्ति की मात्राएँ समान नही होगी। वस्तु-बाजारो म एकाधिकार का कुछ अश पाये जाने से सीमान्त उत्पत्ति के मूल्यो के प्रारूप मे और भी गडबडी उत्पन्न हो जायेगी। इसलिए साधन के लिए सर्वत्र एक सी कीमत के दिये जाने पर भी यह नही माना जा सकेगा कि उसकी सीमान्त उत्पत्ति की मात्राओ के मूल्य इसके वैकल्पिक उपयोगो के बीच समान होंगे। इस विषय म ज्यादा-से-ज्यादा यही कहा जा सकता है कि कम मूल्य वाले सीमान्त उत्पत्ति उपयोगो से अधिक मूल्य वाले सीमान्त उत्पत्ति उपयोगो मे साधन के हस्तान्तरण से वास्तविक

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति मे वृद्धि होगी, लेकिन चूँकि साधन की कीमत इसके वैकल्पिक उपयोगो मे समान होती है, इसलिए साधन के स्वामी ऐसे हस्तान्तरण ऐच्छिक रूप से नही करेंगे।

गैर-कीमत बाधाएँ

अज्ञानता—साधन के स्वामियो मे ज्ञान का अभाव उनको कम आय वाले उपयोगो से अधिक आय वाले उपयोगो मे जाने से रोक सकता है। सबसे ज्यादा स्पष्ट स्थिति मे सम्भवत साधनो के स्वामियो को सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे साधनो के कीमत-ढाँचो के बारे मे जानकारी का अभाव हो। राजो (bricklayers) को सम्भवत उन क्षेत्रो व फर्मो का ज्ञान न हो जहाँ उन्हे अधिकतम मजदूरी मिल सकती है। कृषको को जब उन ऊँची कीमतो की जानकारी नही होती है जो उन्हे अन्यत्र मिल सकती हैं, तो वे अपनी उपज को अनावश्यक रूप से नीची कीमतो पर भी बेच सकते है। विनियोगकर्ता उस समय त्रुटि कर बैठते हैं जब उन्हे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे पाये जाने वाले विनियोग के वैकल्पिक अवसरो का ज्ञान नही होता है।[4]

ज्ञान का अभाव सम्भावी साधनो (potential resources) को साधन पूर्ति की उन श्रेणियो मे जाने से भी रोक सकता है जिनमे वे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति मे सर्वाधिक योगदान दे सकेंगे। अनेक किस्म के श्रम साधन इस बात को स्पष्ट कर सकते हैं। प्रश्न उठता है कि श्रम-शक्ति के सम्भावी प्रवेशकर्ता किस व्यवसाय या धंधे के लिए प्रशिक्षित किए जाएँ? क्या व्यवसाय को प्रभावित करने वाले या इसके चुनाव के लिए जिम्मेदार होने वाले व्यक्तियो को वैकल्पिक व्यवसायो से प्राप्त होने वाले भावी प्रतिफलो की जानकारी होती है? बहुधा उन्हे यह जानकारी नही होती। पुत्र अपने पिताओ के धन्धो मे फसल-बटाईदारो, अथवा कोयले की खान मे श्रमिको के रूप मे काम कर सकते हैं, जब कि वैकल्पिक धन्धो मे उन्हे अधिक आय होती। अथवा, जहाँ पुत्र अपने पिताओ के धन्धो मे प्रविष्ट नही होते हैं वहाँ वह सूचना जिसके आधार पर निर्णय किए जाते हैं बहुधा अधूरी होती है। प्राय सम्भावी प्रवेशकर्ताओ व उनके परामर्शदाताओ को जब तक प्रशिक्षण का कार्यक्रम काफी आगे नही बढ जाता अथवा पूर्ण नही हो जाता, तब तक यह पता नही लगता कि पेशे का चुनाव आर्थिक दृष्टि से दुर्भाग्यपूर्ण रहा है, और इस विन्दु पर सम्भवत परिवर्तन करने मे काफी विलम्ब हो जाए।

---

4 इस सम्बन्ध मे सुप्रसिद्ध दृष्टात उन अनेक एकाकी स्वामित्व वाले व्यवसायो के दिए जा सकते हैं जो पडोस मे पसारी के स्टोर, जल-पान गृहो व पट्रोल-पम्पो जैसे क्षेत्रो मे असफल हो जाते हैं।

समाजशास्त्रीय एव मनोवैज्ञानिक बाधाएँ—समाजशास्त्रीय व मनोवैज्ञानिक तत्त्व शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति को अधिकतम करने वाले साधन-आवटन के मार्ग मे रोडे अटका सकते है।[5] इनके अन्तर्गत विशेष समुदायो मित्रो एव परिवार के प्रति होने वाले वे सम्बन्ध आ जाते है जो मौद्रिक प्रेरणाओ के बावजूद भी गतिशीलता को सीमित करते है। अथवा एक विशेष पशे, समुदाय, अथवा रहन सहन के तरीके के गुण विभिन्न सामाजिक समूहो के द्वारा इतने बघारे जाते है कि गतिशीलता सीमित हो जाती है। इस सम्बन्ध मे पारिवारिक खेत अथवा दक्षिणी कैलिफोर्निया, अथवा अध्यापन-व्यवसाय की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशसा या अनावश्यक बडाई करने के उदाहरण दिए जाते है।

सस्थागत तत्त्व—अर्थव्यवस्था मे साधनो के पुनरावटन के मार्ग मे कई सस्थागत बाधाएँ उपस्थित हो सकती है। औद्योगिक जगत् मे श्रमिक विशेष फर्मो मे अनेक किस्म के अधिकार सचित कर लेते है। इनमे पेन्शनाधिकार व प्रवरताधिकार (seniority rights) आते हैं। कुछ दशाओ म मजदूर-सघ विशेष व्यवसायो मे प्रत्यक्ष रूप से प्रवेश सीमित कर देते है। एक उद्योग म एक फर्म अथवा फर्म समूह के द्वारा प्राप्त पेटेन्ट-सम्बन्धी अधिकार उस उद्योग म नई फर्मो के प्रवेश को रोक सकते हैं और इस प्रकार कुछ साधनो की मात्राओ को उनकी इच्छा के विपरीत अन्य व्यवसायो मे डाल देते है जिनमे उनकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य व भुगतान की दरें अपेक्षाकृत नीची होती है। इस सूची का काफी विस्तार किया जा सकता है, लेकिन ये दृष्टान्त हमारी बात को स्पष्ट करने के लिए काफी हैं।

कीमत-तन्त्र मे हस्तक्षेप

कभी कभी कीमत-तन्त्र को उन क्षेत्रो को बतलाने का कार्य नही करने दिया जाता जिनमे कुछ साधनो की मात्राओ को हस्तान्तरित कर दिया जाना चाहिए अथवा उनसे कुछ मात्राओ को हटाया जाना चाहिए। साधनो की कुछ कीमतें सरकार के द्वारा निर्धारित की जाती है अथवा नियन्त्रित की जाती है। नियन्त्रण तो न्यूनतम मजदूरी कानून, कृषिगत कीमत समर्थन कार्यक्रमो अथवा सामान्य कीमत व मजदूरी नियत्रणो जो युद्धकाल मे आमतौर से प्रचलित हो गए थे, जैसे उपायो के जरिए लगाया जा सकता है। साधनो की कुछ कीमतें अशत या पूर्णत साधनो के स्वामियो व साधन-क्रेताओ के सगठित निजी समूहो के द्वारा नियन्त्रित की जा सकती है। कुछ मजदूर-

---

5 यहां पर कहने का आशय यह नहा है कि ये रोडे समाज की तरफ से कोई बुराइ वांछनीय है। 'उत्तम जीवन' अनिवार्यत शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति के अधिकतमकरण के जरिए म ही प्राप्त नही होता। कुछ दशाओ म अन्य उद्देश्यो या मूल्यो को प्राप्त करने के लिए कुछ उत्पत्ति का परित्याग करना भी वाछनीय हो सकता है।

संघ इस श्रेणी में आते हैं, जैसे कि कुछ फार्म बिक्री सहकारिताएँ एवं कुछ मालिकों के संगठन आते हैं। ये काल्पनिक दृष्टान्त साधनों की नियन्त्रित कीमतों के कारण साधनों के सन्तुलन-आवंटन एवं शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति पर पड़ने वाले कुछ प्रभावों को दर्शाते हैं। हम मान लेते हैं कि नियन्त्रण के अभाव में शुद्ध प्रतियोगिता पाई जाती है, लेकिन यदि वस्तु बाजारों में एकाधिकार का कुछ अंश पाया जाता है, तो भी परिणाम लगभग वैसे ही होते हैं।

एक दिए हुए साधन के लिए दो उपबाजार चित्र 16 2 में प्रदर्शित किए गए हैं। सुविधा के लिए हम इस साधन को श्रम मान लेते हैं। दोनों उपबाजार श्रम के प्रारम्भिक वितरण को छोड़कर अनिवार्यत एक से होते हैं। वे एक सी वस्तुओं को उत्पन्न करते हैं और उनमें पूँजी की पूर्ति भी समान होती है। प्रत्येक उपबाजार के
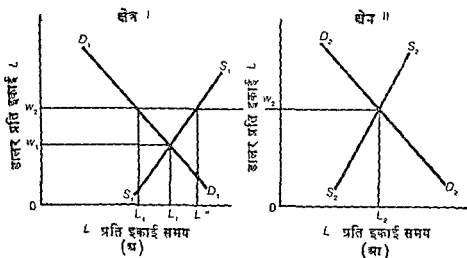
चित्र 16–2 श्रम के आवंटन पर न्यूनतम साधन कीमतों का प्रभाव

लिए श्रम के माँग-वक्र भी समान हैं चूँकि क्षेत्र I में श्रम की पूर्ति क्षेत्र II से अधिक पाई जाती है, इसलिए क्षेत्र I में श्रम की अल्पकालीन कीमत कम और रोजगार का स्तर ऊँचा होगा। हम तीन सम्भावित स्थितियों पर विचार करेंगे।

स्थिति I—सर्वप्रथम यह कल्पना कीजिए कि क्षेत्र II के श्रमिक संगठित हैं और क्षेत्र I के संगठित नहीं हैं। चित्र 16-2 में श्रम की प्रारम्भिक माँग व पूर्ति की दशाएँ प्रदर्शित की गई हैं। क्षेत्र I में सन्तुलन में मजदूरी की दर व रोजगार का स्तर क्रमश W_1 व L_1 है। क्षेत्र II में वे क्रमश W_2 व L_2 है। यहाँ पर यह भी कल्पना कीजिए कि सामूहिक सौदाकारी के जरिए संगठित श्रमिक क्षेत्र II में W_2 मजदूरी की न्यूनतम दर प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं।

क्षेत्र II मे W_2 न्यूनतम मजदूरी की दर के शीघ्र या अल्पकालीन प्रभाव कुछ भी नही होंगे। चूँकि क्षेत्र II मे प्रारम्भ मे मजदूरी की सन्तुलन दर W_2 होती है, इसलिए मजदूर-सघ को इसे प्राप्त करने मे कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। मजदूरी की उस दर पर क्षेत्र II के नियोक्ता इतने श्रमिक लगाने को तत्पर होते हैं जितने कि काम करने के लिए तैयार होते हैं। दोनो क्षेत्रो के बीच मे मजदूरी का अन्तर श्रम के *प्रारम्भिक कुवितरण को प्रदर्शित करता रहता है।*

क्षेत्र II मे न्यूनतम मजदूरी की दर के प्रभाव दीर्घकाल मे सामने आते हैं। मजदूरी का अन्तर श्रमिकों के लिए क्षेत्र I से क्षेत्र II मे प्रवास की प्रेरणा उत्पन्न कर देता है। लेकिन क्षेत्र II म अतिरिक्त श्रमिकों के नियुक्त किए जाने पर श्रम का पूँजी के प्रति अनुपात बढ़ेगा, श्रम की सीमान्त भौतिक उत्पत्ति घटेगी, और श्रम की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य घटेगा। चूँकि ऐसे अतिरिक्त श्रमिको की मजदूरी की दर W_2 होगी, और यह दर उनकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्यो से अधिक होगी, इसलिए वे काम पर नही लगाए जायेंगे। क्षेत्र I से क्षेत्र II मे प्रवास करने वाले श्रमिक अपने आपको बेकार पायेंगे और इस सम्भावना के कारण प्रवास नही होगा। क्षेत्र I मे W_1 मजदूरी की नीची दर पर मिलने वाले रोजगार को क्षेत्र II मे बिल्कुल भी रोजगार न मिलने की स्थिति की तुलना मे ज्यादा पसन्द किया जाएगा, चाहे क्षेत्र II मे मजदूरी की दरें कितनी भी ऊँची क्यो न हो। दोनो क्षेत्रो के बीच श्रम का आवटन घटिया किस्म का होगा और कल्याण सदा के लिए अनुकूलतम स्तर से नीचा होगा।

यह स्थिति पूँजी के लिए रुचिप्रद प्रभावो के सम्बन्ध मे भूमिका तैयार कर देती है। यहाँ भी पूँजी के लिए दीर्घकाल में प्रवास की प्रेरणा विद्यमान रहेगी। वास्तव मे पूँजी का गमन ही साधन-आवटन मे हो सकने वाला समायोजन है। जब पूँजी क्षेत्र II से क्षेत्र I मे गतिमान होती है तो क्षेत्र II मे श्रम की माँग घटती है और क्षेत्र I मे यह बढती है। माँग के इस परिवर्तन से क्षेत्र I मे मजदूरी की दरो व रोजगार की मात्रा मे वृद्धि होगी। लेकिन क्षेत्र II के सगठित श्रमिको मे बेरोजगारी बढ़ेगी और यहाँ भी कल्याण अधिकतम सम्भाव्य स्तर से नीचे ही रहेगा।[6]

स्थिति II—कल्पना कीजिए कि क्षेत्र II के सगठित श्रमिक अपने सगठन का विस्तार क्षेत्र I मे करने मे सफल होते हैं। ज्योंही क्षेत्र I सगठित हो जाता है हम मान

---

6 महिलाओ का सम्पूर्ण फैशन वाला बनियान मोजे का उद्योग ऊँची लागत वाले सघ-क्षेत्रो से नीची लागत वाले गैर-सघ क्षेत्रों मे पूजी के गमन या प्रवास का सुदर दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। देखिए Sumner H Slichter, Union Policies and Industrial Management (Washington, D C The Brookings Institution, 1941), पृ० 353-360

लेते हैं कि दोनों स्थानों के श्रमिक क्षेत्र I मे मजदूरी की दरो को W_2 पर ले आते हैं (चित्र 16-2)। शीघ्र ही अल्पकालीन प्रभाव उत्पन्न हो जाते हैं। प्रारम्भ में क्षेत्र II मे रोजगार के स्तर पर कोई प्रभाव नही पडेगा। लेकिन क्षेत्र I मे $L_1'L_1''$ के
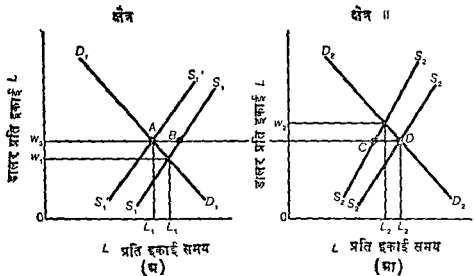
चित्र 16-3 श्रम-प्रवास की प्रेरणा के रूप मे रोजगार के अवसर

बराबर बेरोजगारी उत्पन्न हो जायगी। मजदूरी की पुरानी दर W_1 पर क्षेत्र I मे L_1 रोजगार के स्तर पर श्रम की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य मजदूरी की दर के बराबर होगा। W_2 न्यूनतम मजदूरी की दर L_1 रोजगार के पुराने स्तर पर मजदूरी की दर को श्रम की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य से अधिक कर देती है। नियोक्ता देखते हैं कि रोजगार मे होने वाली कमी उनकी कुल प्राप्तियो में उस मात्रा से कम गिरावट लाती है जितनी कि यह उनकी कुल लागतो मे लाती है; इसलिए श्रमिक काम से हटाये जाते हैं। श्रम का पूँजी के प्रति घटता हुआ अनुपात श्रम की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य को उस समय तक बढायेगा जब तक कि केवल L_1' श्रमिक नियुक्त नही किये जाते। उनकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य पुनः मजदूरी की दर के बराबर होगा। यहाँ पर श्रमिको का काम से हटाया जाना बन्द हो जायगा।

W_2 न्यूनतम-मजदूरी की दर के दीर्घकालीन प्रभाव लगभग वही होंगे जो शीघ्र होते है। चूँकि मजदूरी का अंतर समाप्त हो जाता है, इसलिए क्षेत्र I मे काम मे लगे हुए श्रमिको के लिए क्षेत्र II मे जाने के लिए कोई प्रेरणा नही होती है। क्षेत्र II के नियोक्ताओ के लिए W_2 मजदूरी की दर पर L_2 से अधिक श्रमिको को काम पर

लगाना लाभप्रद नहीं होगा; इसलिए क्षेत्र I के बेरोजगार श्रमिकों को क्षेत्र II में जाने से कोई लाभ नहीं होगा।

पूँजी के सम्बन्ध में क्षेत्र I में W_2 न्यूनतम मजदूरी की दर और श्रम या पूँजी के प्रति घटा हुआ अनुपात (पूँजी का श्रम के प्रति बढ़ा हुआ अनुपात) दीर्घकाल में क्षेत्र I में पूँजी के लिए गमन की प्रेरणा को समाप्त कर देते हैं। क्षेत्र I में श्रमिकों को काम पर से हटा कर पूँजी का श्रम से अनुपात इतना बढ़ा लिया जाता है कि क्षेत्र I में पूँजी की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य क्षेत्र II में पाये जाने वाले मूल्य के बराबर हो जाता है।[7] इस प्रकार, W_2 न्यूनतम-मजदूरी की दर, जिसका विस्तार दोनों क्षेत्रों तक हो जाता है साधनों के पुनरावंटन के प्रभावों को श्रम-प्रवास अथवा पूँजी-गमन के जरिए मिटा दिए जाने से रोकती है और इसके अतिरिक्त, यह बेरोजगारी उत्पन्न करती है।

स्थिति III—एक तीसरी सम्भावना पर भी कुछ ध्यान देना होगा जिसमें साधन की नियन्त्रित कीमतें साधन-आवंटन पर सम्भवतः विपरीत प्रभाव नहीं डालती हैं। कल्पना कीजिए कि दोनों क्षेत्र संगठित हैं, अथवा, वैकल्पिक रूप में, सरकार न्यूनतम मजदूरी की वह दर निर्धारित करती है जो दोनों पर लागू होती है। चित्र 16-3 में सामूहिक सौदाकारी अथवा सरकार के द्वारा मजदूरी की दर W_3 के स्तर पर निर्धारित होती है अर्थात् यह निश्चित रूप से एक ऐसे स्तर पर निर्धारित होती है जो दीर्घकाल में स्वतन्त्र बाजारों में उस स्थिति में पाया जायेगा जब कि श्रमिकों को प्रवास के लिए काफी समय मिल जाता है। क्षेत्र I में प्रारम्भिक माँग व पूर्ति के सम्बन्ध क्रमशः D_1D_1 व S_1S_1 होते हैं। क्षेत्र II में वे क्रमशः D_2D_2 व S_2S_2 होते हैं। क्षेत्र I में W_3 के बराबर न्यूनतम मजदूरी की दर से AB के बराबर बेरोजगारी उत्पन्न हो जायेगी। क्षेत्र II में W_3 मजदूरी की दर पर CD के बराबर श्रम का अभाव होगा, इसलिए उस उपबाजार में मजदूरी की दर बढ़कर W_2 हो जायगी।

दीर्घकाल में बेरोजगारी कीमत-व्यवस्था को क्षेत्र I से क्षेत्र II में श्रम का पुनरावंटन करने में सहायता देगी। क्षेत्र I के बेरोजगार व कम मजदूरी पाने वाले श्रमिक *क्षेत्र II में अधिक मजदूरी वाले धन्धों में जाना चाहेंगे। क्षेत्र I में श्रम का पूर्ति-वक्र*

7 चूँकि दोनों क्षेत्रों में पूँजी की प्रारम्भिक सुविधाएँ एवं उत्पादित वस्तुएँ एक-सी मानी गई थीं, इसलिए श्रम के माँग-वक्र भी एक-से होते हैं। W_2 मजदूरी की दर पर प्रत्येक बाजार में श्रम की एक-सी मात्रा प्रयुक्त की जाती है, अर्थात् चित्र 16-2 में श्रम की L_1' इकाइयाँ श्रम की L_2 इकाइयों के समान होती हैं। परिणामस्वरूप, जब दोनों क्षेत्रों में मजदूरी की दर W_2 होती है, तो उनमें श्रम के पूँजी के प्रति अनुपात एक से होते हैं, और पूँजी की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य भी एक-सा होता है।

बायी ओर खिसक कर $S_1'S_1'$ पर आ जाएगा और क्षेत्र II का दायी ओर खिसक कर $S_2'S_2'$ पर आ जाएगा। श्रम का पुनरावटन इस तरह हो जायगा कि इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य दोनो उपवाजारो मे समान हो सके और श्रम शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति मे अपना अधिकतम योगदान कर सके।

दीर्घकाल मे पुन: क्षेत्र II से क्षेत्र I मे पूंजी का कुछ मात्रा मे गमन होगा। W_3 मजदूरी की दर पर क्षेत्र I मे रोजगार का प्रारम्भिक स्तर L_1' होता है जो क्षेत्र II मे L_2 रोजगार के प्रारम्भिक स्तर से ऊँचा होता है। अतएव, पूंजी का श्रम के प्रति अनुपात कम होता है, और क्षेत्र II की अपेक्षा क्षेत्र I मे पूंजी की सीमान्त आय उत्पत्ति अपेक्षाकृत अधिक होती है। पूंजी के गमन मे क्षेत्र II मे श्रम की माँग मे गिरावट और क्षेत्र I मे श्रम की माँग मे वृद्धि हो जायगी जिससे श्रम के प्रवास मे उस सीमा तक कमी आ जायगी जो पूर्ण रोजगार एव अधिकतम शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति की स्थिति तक पहुँचने के लिए आवश्यक होती है।

सारांश

कोई भी दिया हुआ साधन उस समय "सही ढग से" आवटित माना जाता है– अर्थात् आर्थिक कल्याण मे अधिकतम योगदान करता है जबकि इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य इसके सभी वैकल्पिक उपयोगो मे समान होता है। निजी उद्यमवाली अर्थव्यवस्था मे साधनो की कीमतें साधनो के आवटन को निर्देशित करने का कार्य करती हैं।

वस्तु बाजारो एव साधन-बाजारो मे शुद्ध प्रतियोगिता के पाये जाने पर ही साधन स्वत इस प्रकार से आवटित हो जाते हैं ताकि शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति या कल्याण अधिकतम हो सके। शुद्ध प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी भी दिये हुए साधन का कुआवटन (malallocation) विभिन्न उपयोगो मे इसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्यो को एक-दूसरे से पृथक् कर देना है। परिणामस्वरूप, वे नियोक्ता जिनके लिए इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य ऊँचा होता है, उन नियोक्ताओ से जिनके लिए इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य नीचा होता है साधन अपनी तरफ खीच लेते हैं। साधन की इकाइयो के वे हस्तान्तरण जो नीचे मूल्य वाले सीमान्त उत्पत्ति उपयोगो से ऊँचे मूल्य वाले सीमान्त उत्पत्ति उपयोगो मे किये जाते हैं, उस साधन का कल्याण मे योगदान बढा देते हैं। इस साधन का अधिकतम योगदान उस समय होता है जबकि इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य इसके सभी सम्भव उपयोगो मे समान होता है। साधन की कीमत भी इसके सभी वैकल्पिक उपयोगो मे समान होगी, अतएव, अतिरिक्त हस्तान्तरणो के लिए कोई प्रेरणा नही रह जायगी।

वस्तु-बाजारो मे कुछ अश मे एकाधिकार के पाये जाने पर एक साधन इसके

वैकल्पिक उपयोगो मे उस समय तक पुनरावटित किया जायगा जब तक कि इसकी कीमत उन सब मे एक सी नही हो जाती। लेकिन जहाँ नियोक्ता कुछ अश मे एकाधिकारी होते है वे साधन की उन मात्राओ को नियुक्त करते हैं जिन पर इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति इसकी कीमत के बराबर होती है। साधन की सीमान्त आय उत्पत्ति की मात्राएँ वैकल्पिक उपयोगो मे एक सी होती हैं। वस्तु की विभिन्न माँग की लोचो के कारण साधन की सीमान्त उत्पत्ति की मात्राओ के मूल्य वैकल्पिक उपयोगो मे भिन्न भिन्न होते हैं। इस प्रकार वह साधन शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति मे अपना अधिकतम योगदान नही कर पाता है।

जहाँ नियोक्ताओ का कुछ अश मे एकक्रेताधिकार होता है, लेकिन जहाँ साधन-विभेद (resource differentiation) नही पाया जाता है, वहाँ एक साधन का फिर से पुनरावटन उस समय तक किया जायगा जब तक कि इसकी कीमत वैकल्पिक उपयोगो म एक सी नही हो जाती। लेकिन एकक्रेताधिकारी साधन को उस बिन्दु तक काम म लेता है जहाँ सीमान्त आय उत्पत्ति सीमान्त साधन लागत के बराबर हो जाती हैं। विभिन्न एकक्रेताधिकारियो के समक्ष साधन के पूर्ति-वक्र विभिन्न लोचो वाले हो सकते हैं और, यदि ऐसा होता है तो प्रत्येक के लिए सीमान्त साधन लागत भिन्न-भिन्न होगी, चाहे सभी लोग साधन के लिए प्रति इकाई समान कीमत देते हैं। साधन के सतुलन-आवटन की स्थिति को प्राप्त करने पर सीमान्त आय उत्पत्ति की मात्राएँ भिन्न-भिन्न होती है। प्रचलित स्थिति यह है कि सीमान्त उत्पत्ति के मूल्यों मे भी अतर पाये जाते हैं और एक साधन शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति म अपना अधिकतम अशदान देने मे समर्थ नही हो पाता है।

साधनों के सही आवटन के मार्ग मे जो गैर-कीमत बाधाएँ होती हैं उनमे अज्ञानता, समाजशास्त्रीय व मनोवैज्ञानिक तत्त्व एव सस्थागत प्रतिबन्ध शामिल होते हैं। कुछ दशाओ में समाज के लिए गैर-आर्थिक मूल्यो की प्राप्ति साधन-आवटन को ठीक करने के बजाय ज्यादा महत्त्व रख सकती है।

कुछ दशाओ म सरकार व निजी समूहो के द्वारा कीमत तत्र मे प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करने से भी साधनो के सही आवटन म बाधा उत्पन्न हो सकती है। अन्य दशाओ मे सम्भवतया उनके विपरीत प्रभाव न पडें।

अध्ययन सामग्री

Clark, John Bates *The Distribution of Wealth* (New York The Macmillan Company, 1923) Chap XIX

Pigou A C *The Economics of Welfare*, 4th ed (London Macmillan & Co, Ltd, 1932), Pt III, Chap IX.

Rees, Albert, "The Effects of Unions on Resource Allocation" *Journal of Law and Economics* (October, 1963) pp 69-78 Reprinted in Breit, William and Harold M Hochman, *Readings in Microeconomics* (New York Holt, Rinehart, and Winston, Inc, 1968), PP, 375-382.

उत्पत्ति वितरण

आर्थिक प्रणाली के जिन चार कार्यों से हमारा सम्बन्ध होता है, उनमे से हमे अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति या आमदनी के वितरण पर अभी विचार करना है। आर्थिक प्रणालियो मे परिवारो व व्यक्तियो के बीच आय का वितरण सदियो से अशान्ति व चिंता का विषय रहा है। वास्तव मे समाजवादी आर्थिक प्रणालियो ने तो सदैव यह वायदा किया है कि वे आय के वितरण मे सुधार करेंगी। इस अध्याय मे हम उस विधि की जाँच करेगे जिसके द्वारा एक निजी उद्यमवाली प्रणाली आमदनी का वितरण करती है, साथ मे हम पुनर्वितरण की सम्भावनाओ पर भी विचार करेंगे और दोनो के कल्याण पर पडने वाले प्रभाव देखेंगे।

व्यक्तिगत आय का निर्धारण

एक निजी उद्यमवाली आर्थिक प्रणाली मे वैयक्तिक आय के निर्धारण व आय के वितरण के सिद्धान्तो को सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त कहा जाता है। ये सिद्धान्त पिछले अध्यायो मे प्रस्तुत किए गए हैं, लेकिन यहाँ हम उनको एक साथ लाकर उनका साराश प्रस्तुत करेंगे।

अध्याय 14 मे आय-निर्धारण के उन सिद्धान्तों का विवेचन किया गया था जो वस्तु-बाजारो एव साधन-बाजारो दोनो मे शुद्ध प्रतियोगिता की स्थिति के पाए जाने पर लागू होते है। एक दिए हुए साधन के स्वामी को प्रयुक्त की जाने वाली इकाइयों के लिए प्रति इकाई जो कीमत दी जाती है वह उस साधन की सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य के बराबर होती है। लेकिन एक साधन की कीमत किसी अकेले नियोक्ता अथवा किसी अकेले साधन के स्वामी के द्वारा निर्धारित नही होती है। यह किसी साधन के लिए बाजार मे सभी क्रेताओ व सभी विक्रेताओ की अन्तर्क्रियाओ के द्वारा निर्धारित होती है।

यदि किसी कारणवश एक साधन की कीमत इसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य से कम होती है तो इसका अभाव पाया जायेगा। नियोक्ता उस कीमत पर इसकी जो मात्रा लगाना चाहते हैं वह उस मात्रा से अधिक होती है जिसे साधनो के स्वामी बाजार मे प्रस्तुत करने के लिए इच्छुक होते हैं। उपलब्ध पूर्ति के लिए परस्पर स्पर्धा

करने वाले नियोक्ता कीमत को उस सीमा तक बढा देते हैं जहाँ अभाव समाप्त हो जाता है और प्रत्येक नियोक्ता साधन की वह मात्रा लगाता है (अथवा खरीदता है) जिस पर इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य इसकी कीमत के बराबर हो जाता है।

जो कीमत इतनी ऊँची हो कि साधन का आधिक्य (surplus) उत्पन्न कर दे, वह इस आधिक्य को समाप्त कर देने वाली शक्तियाँ उत्पन्न कर देगी। नियोक्ता साधन की केवल वे ही मात्राएँ लगायेंगे जिन पर इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य इसकी कीमत के बराबर हो जाय। साधनो के स्वामी अपनी अप्रयुक्त इकाइयो के लिए रोजगार प्राप्त करने के लिए एक दूसरे की कीमतो को कम करेंगे। कीमत के घटने पर साधन के उपयोग में विस्तार होगा। प्रतिस्पर्धात्मक रूप मे कीमत कम करने की यह प्रक्रिया उस सीमा तक जारी रहती है जहाँ नियोक्ता वे ही मात्राएँ लगाने को इच्छुक हो जाते हैं जिन्हे साधनो के स्वामी बाजार मे प्रस्तुत करना चाहते है।

जहाँ वस्तु बाजारो मे एकाधिकार[1] का कुछ अश पाया जाता है वहाँ उपरोक्त सिद्धान्तो मे कुछ सीमा तक सशोधन किया जाता है। एकाधिकारी फर्म साधन की उन मात्राओ का उपयोग करती है जिन पर इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति इसकी कीमत के बराबर होती है। इस प्रकार साधन के स्वामियो के द्वारा प्राप्त प्रति इकाई कीमत इसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य से कम होती है, और साधन का एकाधिकारी रूप मे शोषण किया जाता है।

एक दिए हुए साधन की खरीद मे कुछ अश तक एकक्रेताधिकार के पाए जाने के फलस्वरूप साधन को इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति से और भी कम भुगतान मिलेगा। अकेला एकक्रेताधिकारी जिसके समक्ष साधन का पूर्ति वक्र दायी ओर ऊपर की तरफ उठता हुआ होता है, साधन की उस मात्रा का उपयोग करता है जिस पर इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति इसकी सीमान्त साधन लागत के बराबर होती है। सीमान्त साधन लागत साधन के लिए दी जाने वाली कीमत से अधिक होती है। साधन का एकक्रेताधिकारी रूप मे शोषण उस सीमा तक होता है जहाँ इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति इसकी कीमत से अधिक होती है। यदि साधन का क्रेता साथ मे एकाधिकारी भी होता है, तो बदले मे साधन की सीमान्त आय उत्पत्ति इसकी सीमात उत्पत्ति के मूल्य से कम होगी, और साधन का शोषण एकाधिकारी व एकक्रेताधिकारी दोनो रूपो मे होगा।

हम अध्याय 2 मे देख चुके हैं कि किसी भी दिए हुए समय मे एक व्यक्ति

1. यहाँ भी हम इस शब्द का उपयोग उन सभी दशाओ के लिए करते है जिनमे एक फर्म के समक्ष नीचे की ओर झुकने वाला उत्पत्ति माग वक्र होता है। इनमें शुद्ध एकाधिकार, अल्पाधिकार एव एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की दशाएँ शामिल होती हैं।

की आय उसी अवधि म अर्जित की गई उन धनराशियो का योग होती है जो वह अपने स्वामित्व म होने वाले विभिन्न साधनो के उपयोग से प्राप्त कर पाता है। यदि वह केवल एक ही साधन का स्वामी होता है तो उसकी आय उपयोग के लिए प्रस्तुत की जाने वाली इकाइयो की सख्या का उसके द्वारा प्राप्त प्रति इकाई कीमत से गुणा करने से प्राप्त राशि के बराबर होती है। यदि उसके स्वामित्व म कई तरह के साधन होते हैं, तो प्रत्येक साधन से उसकी आय इसी विधि से निकाली जा सकती है और उसकी सम्पूर्ण आय को निर्धारित करने के लिए इनका जोड किया जा सकता है।

सारणी 17–1 सयुक्त राज्य अमेरिका म करो से पूर्व कुल मौद्रिक आय का वितरण, 1970*

कुल मौद्रिक आय	परिवार		स्वतन्त्र व्यक्ति (unrelated individuals)	
	सख्या (हजारों में)	प्रतिशत	सख्या (हजारों में)	प्रतिशत
$1,500 से नीचे	4,601	8 9	3,562	23 2
$1,500 से $3,000 तक			3,891	25 4
$3,000 से $4 999 तक	5,341	10 4	2,720	17 7
$5,000 से $6,999 तक	6,148	11 1	1,873	12 2
$7,000 से $9,999 तक	10,348	19 9	1,895	12 3
$10,000 से $14,999 तक	13,925	26 8	969	
$15,000 और ऊपर	11,585	22 3	447	9 1
कुल	51,948	100 0	15,357	100 0
मध्यका (Median) आय	$ 9,867 (परिवार)		$ 3,137 (व्यक्ति)	

आय का वैयक्तिक वितरण

आय का वैयक्तिक वितरण अर्थव्यवस्था मे व्यय करने वाली इकाइयों (spending units) के बीच होने वाले आय के वितरण को सूचित करता है। हम शुरू मे आमदनी

* स्रोत U S Department of Commerce, Bureau of the Census, Consumer Income, Series P-60, No 80 (October 4, 1971, पृ० 1, 22

के आकार (Income size) के अनुसार आय के वितरण का सर्वेक्षण प्रस्तुत करेंगे और बाद मे आय के अन्तरो व समानता के विवेचन मे निहित कुछ समस्याओ की चर्चा करेंगे।

व्यय करने वाली इकाइयो के बीच वितरण

सारणी 17–1 से सयुक्त राज्य अमेरिका मे आय के वितरण का कुछ अन्दाज लगाया जा सकता है। यह ध्यान देने की बात है कि लगभग आधे परिवारो की आमदनी प्रति वर्ष $10,000 या अधिक थी। यह भी ध्यान दें कि 8 9 प्रतिशत परिवार प्रतिवर्ष $3000 के स्तर से नीचे थे। स्वतन्त्र व्यक्तियो मे—व व्यक्ति जो चौदह वर्ष या अधिक उम्र के है और अपने सम्बन्धियो के साथ नही रह रहे हैं—लगभग आधो की आमदनी $3000 प्रतिवर्ष से नीचे थी। वास्तव म इनमे से 23 2 प्रतिशत की वार्षिक आमदनी $1500 से नीची थी।

आय की समानता व आय क अन्तर

आय के वितरण का कोई भी विवेचन अनिवार्यत न्याय अथवा औचित्य के प्रश्नो को उपस्थित करता है। इन प्रश्नो का प्राय आय की समानता अथवा अन्तरो से भ्रम हो जाता है। हम न्याय व औचित्य के प्रश्नो पर यहा ध्यान नही देंगे क्योकि इन धारणाओ का कोई वस्तु परक (objective) माप नही होता है। भिन्न भिन्न व्यक्तियो के लिए इनके भिन्न भिन्न अर्थ निकलते हैं जो व्यक्तिगत मूल्य सम्बन्धी निर्णयो (valuejudgments) पर निर्भर करते है। आमदनी मे समानता या अन्तरो का वस्तुपरक माप किया जा सकता है।

जैसा कि सारणी 17–1 मे दिखलाया गया है हम प्राय आय का वितरण व्यय करने वाली इकाइयो के बीच देखते हैं। लेकिन ये आकार व बनावट मे भिन्न भिन्न होती हैं, अतएव व्यय करने वाली इकाइयो के बीच समानता का आशय व्यक्तियो के बीच भी समानता नही होता है।

आकार के सम्बन्ध मे व्यय करने वाली इकाइयो मे अकेले स्वतत्र व्यक्ति हो सकते हैं अथवा परिवार हो सकते हैं। पारिवारिक इकाइयो मे दो व्यक्तियो से ऊपर आकार की भिन्नता पायी जाती है। प्राय इनमे वे सम्बन्धी भी शामिल होते हैं जो एक ही परिवार के सदस्य के रूप मे रहते है।

व्यय करने वाली इकाइयो की बनावटो मे जो अन्तर पाये जाते हैं उनसे आय के अन्तरो की सीमा जानने मे और भी कठिनाइया उत्पन्न हो जाती है। व्यय करने वाली विभिन्न इकाइयो मे सदस्यो की उम्र का लेकर अन्तर हो जाते है। सास्कृतिक भेद पाये जाते हैं। प्रादेशिक स्थिति के सम्बन्ध मे अन्तर होते हैं। इन अन्तरो व इसी तरह के अन्य अन्तरो के कारण व्यय करने वाली इकाइयों के बीच रुचि व अधिमानो

के भेद एव वस्तु के उपभोग से आनन्द उठाने की क्षमताओं के भेद उत्पन्न हो जाते हैं।

आय की समानता अथवा आय के अन्तरो की परिभाषा करने व इनको मापने का प्रयत्न करने मे जो कठिनाइयां आती हैं उनका हमारे उद्देश्यो की दृष्टि से विशेष महत्त्व नही होगा। हमारी रुचि आय के अन्तरो के नैतिक पहलुओ की अपेक्षा उनके कारणो म अधिक है। हम आगे चलकर 'अपेक्षाकृत अधिक समानता की तरफ होने वाली गतिशीलताओ" की चर्चा करेंगे, लेकिन यह कथन जिस लायक है उसी रूप मे स्वीकार किया जाना चाहिए–यह एक ढीला ढाला सा कथन है जिसका आशय है विभिन्न किस्म की व्यय करने वाली इकाइयो के बीच आय के अन्तरो मे कुछ कमी का आना। इसका अर्थ है चोटी की आमदनियो मे कुछ कमी करना और निम्नतम आमदनियों मे कुछ वृद्धि करना। इसका यह आशय कदापि नहीं है कि हम निश्चयपूर्वक उस बिन्दु को बतला सकें जिस पर आय का वितरण "समान" हो जाता है।

आय के अन्तरो के कारण

व्यक्तिगत[2] आमदनियो के निर्धारको के सन्दर्भ मे यह स्पष्ट हो जाता है कि आय के अन्तर दो मूलभूत स्रोतो से उत्पन्न होते हैं (1) विभिन्न व्यक्तियो के स्वामित्व मे साधनो की किस्मो व मात्राओ म अन्तर, और (2) किसी भी दिये हुए साधन की इकाइयो के लिए विभिन्न उपयोगो मे दी जाने वाली कीमतो मे अन्तर। प्रथम स्रोत अधिक मूलभूत होता है। द्वितीय स्रोत कीमत प्रणाली के कार्य सचालन मे विभिन्न किस्म के हस्तक्षेपो एव किसी भी साधन की अगतिशीलता से उत्पन्न होता है।

श्रम-साधनो व पूंजी साधनो का अलग अलग विवेचन करना सुविधाजनक होगा। परिप्रेक्ष्य के रूप मे, प्रत्येक के महत्त्व को जान सकने के लिए सयुक्त राज्य अमेरिका मे आय के कार्यात्मक वितरण (Functional distribution) अर्थात् साधन के वर्गों, जिनमे साधन विभाजित हैं के अनुसार वितरण पर ध्यान देना लाभप्रद होगा। सारणी 17–2 मे कर्मचारियो का भुगतान सम्बद्ध वर्षों के लिए श्रम-साधनो के स्वामियो के द्वारा प्राप्त आय को सूचित करता है, जबकि निगमित लाभ (corporate profits), ब्याज व लगान सम्बन्धी आय पूंजी के स्वामियो के द्वारा प्राप्त आय को, सूचित करते हैं। सभी का अनुमान काफी नीचा लगाया गया है क्योंकि स्वामियों की आय मे श्रम से प्राप्त आय व पूंजी से प्राप्त आय दोनो शामिल होती है। लेकिन चूंकि ऐसे उपक्रमो के हिसाब-किताब के ब्यौरे मे प्राय श्रम के प्रतिफलो व पूंजी के प्रतिफलो के बीच भेद नही किया जाता है, इसलिए हम एक मद को पूंजी व श्रम की

---

2 व्यक्तिगत शब्द का उपयोग इस अध्याय के शेष भाग में सदा एक व्यय करने वाली इकाई के सन्दर्भ में किया जाएगा, चाहे इसका आकार या बनावट कुछ भी हो।

सारणी 17–2 आय की किस्म के अनुसार राष्ट्रीय आय : 1939–1971

आय की किस्म	1939		1949		1959		1969		1971	
	आय (अरब बिलियन डालरों में)	आय का प्रतिशत	आय (अरब डालरों में)	आय का प्रतिशत	आय (अरब डालरों में)	आय का प्रतिशत	आय (अरब डालरों में)	आय का प्रतिशत	आय (अरब डालरों में)	आय का प्रतिशत
कर्मचारियों को भुगतान	48 1	66 3	140 8	64 7	278 5	69 6	565 5	72 8	641 9	75 4
व्यावसायिक व पेशेवर	7 3	10 0	22 7	10 4	35 1	8 8	50 3	6 5	52 1	6 1
स्वामियों की आय	4·3	5 9	12 9	5 9	11 4	2 8	16 8	2 0	16 3	1 9
फार्म के स्वामियों की आय	2 7	3 7	8 3	3 8	11 9	3 0	22 6	2 9	24 3	2 9
लगान की आय	4 6	6 3	4 8	2 2	16 4	4 1	29 9	3 8	35 6	4 2
शुद्ध ब्याज	5·7	7 9	28 2	13 0	47 2	11 8	78 6	12 0	81 0	9 5
निगमित लाभ (करों से पूर्व)										
कुल	72 8	100 0	217 7	100 0	400 5	100 0	763 7	100 0	851 1	100 0

स्रोत : Economic Report of the President (Washington, D C Government Printing office, 1965)p 203 U. S Department of Commerce, **Survey of Current Business** (Washington, D C Government Printing Office, April 1972) S–2.

श्रेणियो मे विभाजित नही कर सकते हैं। हम मोटे तौर से यह अनुमान लगा सकते है कि श्रम साधन राष्ट्रीय आय का 80 से 85 प्रतिशत और पूंजीगत साधन 15 से 20 प्रतिशत तक प्राप्त करते हैं।

इस अनुभाग मे हम सर्वप्रथम विभिन्न व्यक्तियों के स्वामित्व में होने वाले श्रम-साधनो की विभिन्न किस्मो व मात्राओ के अन्तरो पर विचार करेंगे। तत्पश्चात् पूंजीगत साधनो के स्वामित्व मे पाये जाने वाले अन्तरो का विवेचन किया जायेगा। अन्त म, हम कीमत तंत्र मे कुछ हस्तक्षेप करने के परिणामस्वरूप आय के वितरण पर पडने वाले प्रभावो की जाँच करेंगे।

श्रम-साधनो के स्वामित्व मे अन्तर

साधनो का श्रम वर्गीकरण (labour classification) श्रम की अनेक किस्मो व गुणो से बना होता है। इनमे एक सामान्य लक्षण यह पाया जाता है कि वे सब मानवीय होते है। किसी भी एक किस्म का श्रम पूर्वजो से प्राप्त किये गये लक्षणो व स्वयं अर्जित किये गये लक्षणो का एक मेल या मिश्रण होता है। मनुष्य की श्रम शक्ति का अर्जित किया गया अंश कभी-कभी मानवीय पूंजी कहकर सम्बोधित किया जाता है। हम जन्मजात व अर्जित लक्षणो मे भेद करने का प्रयास नही करेंगे।

श्रम का अनेक बडे पृथक् पृथक् साधन-समूहो में क्षैतिज व उदग्र (ऊर्ध्वस्तर) उपवर्गीकरण किया जा सकता है। उदग्र उपवर्गीकरण (vertical subclassification) मे श्रमिको का श्रेणीकरण दक्षता के स्तर के अनुसार अविभेदीकृत या सरल शारीरिक श्रम की निम्नतम किस्म से सर्वोच्च पेशेवर स्तर तक होता है। क्षैतिज उपवर्गीकरण मे एक विशेष दक्षता के स्तर वाले श्रमिको को ऐसे कई पेशो मे विभाजित किया जाता है जिनमे दक्षता के उस विशेष स्तर की आवश्यकता होती है। उदाहरण-स्वरूप भवन निर्माण कार्य मे सलग्न दक्ष श्रमिको का विभाजन निम्न समूहो म किया जाता है बढई राज, नलकार और इसी तरह के अन्य समूह। श्रम की उदग्र गतिशीलता ऊपर की ओर होने वाली उस गति की सम्भावना की सूचक होती है जो दक्षता के उदग्र स्तरो के माध्यम से सम्पन्न होती है। क्षैतिज गतिशीलता का आशय दक्षता के एक विशेष स्तर पर समूहो के बीच दोनो ओर की गतिशीलता से लगाया जाता है।

श्रम-साधनों मे क्षैतिज अन्तर—किसी भी विशिष्ट क्षैतिज स्तर पर व्यक्तियो की आमदनी भिन्न-भिन्न हो सकती है, क्योंकि उनके स्वामित्व म पायी जाने वाली श्रम की किस्मो के लिए माँग व पूर्ति की दशाओं मे अन्तर पाये जा सकते है। एक विशेष किस्म के श्रम के लिए इसकी उपलब्ध पूर्ति की तुलना म अधिक मांग के कारण इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति और इसकी कीमत ऊँची हो जाती है। दक्षता के उसी स्तर पर,

दूसरी किस्म के श्रम के लिए उपलब्ध पूर्ति की तुलना मे कम माँग होने से इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति व इसकी कीमत नीचे हो जाते हैं। कीमतो मे अंतर होने से सम्बन्धित श्रम की किस्मो के स्वामियो की आमदनियो मे अंतर उत्पन्न हो जाते हैं।

उदाहरण के लिए, यह कल्पना कीजिए कि प्रारम्भ मे राजो व बढइयों की आय लगभग समान होती है। अब भवन-निर्माण इकाइयो मे उपभोक्ता की रुचि लकडी के निर्माण से ईंट के निर्माण की तरफ परिवर्तित हो जाती है। माँग की परिवर्तित दशाओ के कारण राजो की आमदनी बढ जाती हैं और बढइयो की घट जाती है। दीर्घकाल मे दोनो समूहो के बीच क्षैतिज गतिशीलता इस प्रकार से उत्पन्न होने वाले आय के अन्तरो को कम कर देती है और इस प्रक्रिया मे कल्याण मे वृद्धि हो जाती है।

एक ही किस्म के श्रम-साधन को रखने वाले व्यक्तियो के द्वारा किये जाने वाले कार्य मे मात्रात्मक अंतर आय के अन्तर उत्पन्न कर देते हैं। कुछ पेशो मे प्रति सप्ताह अथवा प्रति माह काम के घटो की सख्या के सम्बन्ध मे व्यक्तिगत चुनाव के लिए काफी गुजाइश रहती है। उदाहरण के तौर पर कृषको, नल लगाने वाले ठेकेदारो, एव गैरेज के स्वामियो जैसे स्वतन्त्र स्वामियो के साथ चिकित्सको, वकीलो एव प्रमाणित सार्वजनिक लेखाकारो जैसे स्वतन्त्र पेशेवर व्यक्तियो को लिया जा सकता है। अन्य पेशो मे काम के घटे व्यक्ति के नियत्रण से परे होते है। लेकिन एक ही साधन के विभिन्न रोजगारो मे उम्र, शारीरिक सहन शक्ति, सस्थागत प्रतिबन्ध, प्रथा, आदि के अंतर काम के घटो में एव साधन के स्वामियो के बीच आय के अंतर उत्पन्न कर सकते हैं।

श्रम-साधन के एक विशेष समूह के अदर गुणात्मक अंतर अथवा साधन के स्वामियो की योग्यताओ मे अंतर प्राय आय के अंतर उत्पन्न कर देते हैं। विभिन्न दतचिकित्सको, अथवा चिकित्सको, अथवा वकीलो, अथवा गाडी के मिस्त्रियो के सार्वजनिक मूल्यांकन में काफी अन्तर पाये जाते है। परिणामस्वरूप, किसी भी एक समूह के अन्दर सेवाओ के लिए दी जाने वाली कीमतो मे एव जनता को बेची जा सकने वाली सेवाओ की मात्राओ में पाये जाने वाले अंतर आमदनी के अन्तर उत्पन्न कर देते हैं। बहुधा एक साधन-समूह के सदस्यो की उम्र व उनकी आय मे सह-सबन्ध पाया जाता है। एक सीमा तक सचित अनुभव के साथ गुण मे सुधार होता है। उदाहरण के लिए, फ्रीडमैन व कूजनेट्स के द्वारा प्रस्तुत किये गये आकडे यह बतलाते हैं कि चिकित्सको की आय उनके व्यवसाय के दसवें से पच्चीसवें वर्षों के बीच मे और वकीलों की आय बीसवें से पैंतीसवें वर्षों के बीच म सर्वोच्च होने की प्रवृत्ति दिखलाती है।[3]

---

3 मिल्टन फ्रीडमैन व साइमन कूजनेट्स, Income from Independent Professional Practice (New York National Bureau of Economic Research, 1945), पृ० 237-260

श्रम-साधनों में उदग्र भेद-विभिन्न उदग्र समूह (vertical strata) स्वयं श्रम-साधनों के स्वामित्व में अन्तर सूचित करते हैं और श्रम की आय में बड़ी मात्रा में अन्तर उत्पन्न करते हैं। पेशो (professions) अथवा व्यावसायिक प्रबन्धकों के पदों जैसे उच्चस्तरीय धन्धों म प्रवेश करना शारीरिक श्रम वाले पेशों (manual occupations) में प्रवेश करने की तुलना में बहुत ज्यादा कठिन होता है। उच्च स्तरों पर श्रम की सापेक्ष दुर्लभता दो मूलभूत कारणों से उत्पन्न होती है: (1) उच्च स्तर के कार्य का सम्पादन करने के लिए आवश्यक शारीरिक व मानसिक विशेषताओं वाले व्यक्तियों की संख्या सीमित होती है, (2) आवश्यक शारीरिक व मानसिक विशेषताओं के होने पर भी अनेक व्यक्तियों के लिए ऊँचे पदों पर जाने के लिए प्रशिक्षण के अवसरों व आवश्यक सामाजिक व सांस्कृतिक वातावरण का अभाव होता है। इस प्रकार सीमित उदग्र गतिशीलता ऊँचे स्तर वाले स्थानों के लिए साधनों की पूर्ति को उनकी माँग की तुलना में नीचा रखती है, और नीचे स्तर वाले कार्यों के लिए साधनों की पूर्ति को उनकी माँग की तुलना में बहुत ज्यादा रखती है।

व्यक्तियों की जन्मजात शारीरिक व मानसिक विशेषताओं में अन्तरों के कारण श्रम-साधनों के स्वामित्व में जो अन्तर पाये जाते हैं उनका केवल जन्म की घटना से ही सम्बन्ध होता है। व्यक्ति का उनके चुनाव से कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता है। फिर भी ये ही अन्तर सीमित उदग्र गतिशीलता एवं आय के अन्तरों के लिए जिम्मेदार होते हैं। सुगठित शरीर व कुशाग्र बुद्धि विरासत के रूप में प्राप्त करने से भी ऊँचे पदों व अपेक्षाकृत ऊँची आमदनी की तरफ बढ़ने के अवसर बहुत अधिक हो जाते है। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि इन गुणों वाले व्यक्ति अपने अवसरों से सर्वाधिक लाभ उठा सकेंगे।

निम्न आय वाले समूहों के परिवारों में जन्म लेने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा धनी परिवारों में जन्म लेने वाले व्यक्तियों को प्रशिक्षण के अवसर ज्यादा विस्तृत रूप से उपलब्ध होते हैं। अधिक आय देने वाले कुछ पेशों के लिए लम्बी अवधि वाले व खर्चीले विश्वविद्यालयीय प्रशिक्षण कार्यक्रमों की आवश्यकता होती है जो बहुधा दूसरी श्रेणी के समूहों की पहुँच से परे होते हैं। इस सम्बन्ध में चिकित्सा-व्यवसाय का दृष्टान्त लिया जा सकता है। लेकिन हम प्राय ऐसे व्यक्ति देखते हैं जिनमें उदग्र गतिशीलता के मार्ग में आने वाली आर्थिक कठिनाइयों पर काबू पाने के लिए आवश्यक प्रारम्भिक योग्यता, प्रेरणा व दृढ़ संकल्प पाये जाते हैं।

श्रम-साधनों के स्वामित्व में अन्तर के दूसरे कारण के रूप में सामाजिक उत्तराधिकार (social inheritance) के अन्तर माने जाते हैं। इनका भौतिक उत्तराधिकार के अन्तरों से समीप का सह-सम्बन्ध होता है। प्राय. वे व्यक्ति जो "गलत किस्म के

परिवारो मे" जन्म ले लेते हैं ऐसे पारिवारिक व सामाजिक दृष्टिकोणो का सामना करते हैं जिससे उदग्र गतिशीलता के लिए उनके अवसर व उनकी इच्छाएँ अत्यधिक मात्रा मे कम हो जाती हैं। अन्य, जो भाग्यवश ज्यादा अच्छी स्थिति मे होते हैं, वे काफी उत्पादक होने के लिए एव ऊँची आमदनी प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त कर लेते है, क्योकि जिन सामाजिक समूहो मे वे विचरण करते हैं उनमे उनसे यही आशा की जाती है। अकेली उनकी सामाजिक स्थिति, इसके द्वारा प्रभिप्रेरित प्रशिक्षण के अलावा उदग्र गतिशीलता के लिए काफी प्रभावपूर्ण सिद्ध हो सकती है।

जब उदग्र गतिशीलता हो तो सकती है, लेकिन अवरुद्ध रहती है, तो आय के अन्तर जारी रहते हैं और कल्याण सभावित अधिकतम विन्दु से नीचे होता है। यदि वे लोग जो ऊँचे मूल्य वाले सीमान्त उत्पत्ति के धधो व व्यवसायो तक अन्यथा नही पहुँच सकते थे, किसी तरह इन तक पहुँच जाते हैं, तो परिणामस्वरूप वास्तविक शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति ऊँची हो जायेगी और साथ मे आय के वितरण में भी अधिक समानता आ जायेगी।

पूँजीगत साधनो के स्वामित्व मे अन्तर

श्रम की आय मे असमानताओ के अतिरिक्त पूँजी के स्वामित्व मे अतर होने से भी व्यक्तिगत आय मे काफी मात्रा मे अतर उत्पन्न हो जाते है। विभिन्न व्यक्ति पूँजी की विभिन्न मात्राओ के स्वामी होते हैं—पूँजी मे निगम या अन्य व्यावसायिक परिसपत्तियाँ, कृषि की भूमि, तेल के कुए एव अन्य कई तरह की सम्पत्ति आती है। हम पूँजीगत परिसम्पत्तियो मे असमानताओ के मूलभूत कारणो की जाँच करेंगे।

भौतिक उत्तराधिकार—विभिन्न व्यक्तियो के द्वारा उत्तराधिकार अथवा उपहार के रूप मे प्राप्त पूँजी की मात्राओ मे अन्तर होने से आमदनी मे विशाल अतर उत्पन्न हो जाते हैं। निजी सम्पत्तिवाली सस्था, जिस पर स्वतन्त्र उद्यम टिका हुआ है, के साथ उत्तराधिकार के नियम भी पाये जाते है जिनके कारण विशाल मात्रा मे सग्रह की गई सम्पत्ति के अधिकार एक पीढी से दूसरी को हस्तान्तरित होते रहते हैं। एक व्यक्ति जो सौभाग्य से एक धनी पिता के घर जन्म ले लेता है, विशाल मात्रा मे पूँजीगत परिसम्पत्ति उत्तराधिकार मे पाता है, उसके साधन उत्पादन की प्रक्रिया मे काफी योगदान देते हैं, और उसी के अनुसार उसे प्रतिफल मिलता है। दक्षिण के एक फसल बटाईदार का पुत्र, जो उतनी ही जन्मजात बुद्धिवाला हो सकता है, उत्तराधिकार मे कुछ भी पूँजी नही पाता है, वह उत्पादन की प्रक्रिया मे कम योगदान दे पाता है और परिणामस्वरूप उसकी आय भी नीची होती है।

आकस्मिक परिस्थितियाँ—सयोग, भाग्य या अन्य आकस्मिक परिस्थितियाँ जो

व्यक्तियों के नियन्त्रण से परे होती हैं, पूंजीगत परिसम्पत्तियों में अन्तर के लिए दूसरा कारण प्रस्तुत करती हैं। एक साधारण से भूमि के टुकड़े पर तेल, यूरेनियम या सोने की खोज से इसके मूल्य अथवा अपने स्वामी के लिए इसकी आय प्रदान करने की योग्यता में काफी वृद्धि हो जाती है। उपभोक्ता की मांग में अप्रत्याशित परिवर्तनों से कुछ पूंजीगत परिसम्पत्तियों के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है और अन्य के मूल्यों में कमी हो जाती है। युद्ध जैसी राष्ट्रीय संकटकालीन परिस्थितियों के कारण विशेष किस्म की सम्पत्ति के मूल्यांकनों में परिवर्तन हो जाते हैं, और इस प्रकार पूंजी से विभेदकारी आय उत्पन्न हो जाती है। आकस्मिक परिस्थितियां विपरीत दिशा में भी काम कर सकती हैं, लेकिन इनके प्रभावों के फलस्वरूप पूंजी के स्वामित्व में अन्तर उत्पन्न होते हैं।

संग्रह करने की प्रवृत्तियां—संग्रह के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों एवं संग्रह के लिए विभिन्न योग्यताओं के कारण भी व्यक्तियों के बीच पूंजीगत स्वामित्व में अंतर उत्पन्न हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिक पक्ष पर कई तत्त्व संग्रह की इच्छा को प्रभावित करते हैं। कुछ व्यक्तियों के सम्बन्ध में यह बात कही जाती है कि एक विशेष उम्र तक पहुँचने से पूर्व उनका धन एकत्र कर लेने का दृढ़ निश्चय होता है। संग्रह कभी-कभी बाद के जीवन में सुरक्षा और विलास के प्रयोजनों से भी किया जाता है। यह कभी-कभी अपनी संतान को सुरक्षा प्रदान करने की इच्छा से भी किया जाता है। कुछ दशाओं में धन के साथ होने वाली शक्ति व प्रतिष्ठा प्रेरक तत्त्व का काम करते हैं। कुछ व्यक्तियों के लिए पूंजीगत परिसम्पत्तियों का संग्रह व लेन-देन एक विशाल खेल होता है—एक ऐसी क्रिया होती है जो उन्हें अपने आप में बहुत आकर्षक प्रतीत होती है। उद्देश्य कुछ भी हो, कुछ व्यक्तियों में तो ये प्रवृत्तियां पायी जाती हैं और अन्य में नहीं। कुछ दशाओं में संग्रह की इच्छा नकारात्मक हो सकती है और ऐसी स्थिति में संग्रह के प्रतिकूल कार्य किया जाता है।

एक व्यक्ति की संग्रह करने की योग्यता बहुत कुछ उसके श्रम व पूंजीगत साधनों की प्रारम्भिक मात्राओं पर निर्भर करती है। प्रारम्भ में आय जितनी ऊँची होगी, बचत व संग्रह उतने ही सुगम होंगे। जिस व्यक्ति के पास प्रारम्भ में श्रम-साधनों की काफी मात्रा होती है, वह श्रम से प्राप्त अपनी आय में से पूंजी एकत्र कर लेता है और स्टॉक व बांड, वास्तविक जायदाद, पशुपालन क्षेत्र अथवा अन्य जायदाद में विनियोग करता है। अथवा जो व्यक्ति प्रारम्भ में पूंजी की काफी मात्रा पर अधिकार रखता है और इसकी व्यवस्था करने की योग्यता रखता है—वह इतनी आय प्राप्त करता है ताकि बचत कर सके और अतिरिक्त पूंजी में विनियोग कर सके। संग्रह की प्रक्रिया में एक व्यक्ति के श्रम व पूंजीगत साधन आय प्रदान करने में एक दूसरे की वृद्धि करते हैं जिससे अधिक संग्रह संभव हो पाता है।

कीमत-तन्त्र पर प्रतिबन्ध

सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे साधनो के स्वामियो के विभिन्न समूह राष्ट्रीय आय मे अपने वर्तमान हिस्सो से असन्तुष्ट होकर आय के वितरण को सुधारने का प्रयास करते हैं। इसके लिए वे अपने साधनो की कीमतो अथवा अपने द्वारा उत्पन्न की जाने वाली व बेची जाने वाली वस्तुओ की कीमतों म फेर-बदल करते हैं अथवा उन्हे निश्चित कर देते हैं। कृषको के कुछ समूह जैसे गेहूँ व कपास उत्पन्न करने वाले कृषक, पशु-पालन करने वाले कृषक एव अन्य अपनी वस्तुओ के लिए सरकार के द्वारा लागू की जाने वाली न्यूनतम कीमतो को प्राप्त करने मे समर्थ हुए हैं। खुदरा विक्रेताओ के कुछ समूह ऐसे राजकीय नियम बनवाने मे समर्थ हुए हैं जिनके द्वारा वस्तुओ की विक्रय कीमतें लागत से ऊपर एक निश्चित प्रतिशत से नीचे रखने की मनाही कर दी जाती है। श्रम-सगठन सामूहिक सौदाकारी की प्रक्रिया के द्वारा मजदूरी निर्धारित करके राष्ट्रीय आय मे अपने हिस्सो को बढाने अथवा कुछ दशाओं मे उनको कायम रखने का प्रयास करते हैं। सारी अर्थव्यवस्था मे वे व्यक्ति जो निम्न मजदूरी वाले श्रमिको के थोडे, वितरणात्मक हिस्सो के प्रति चिंतित होते हैं न्यूनतम-मजदूरी कानून का समर्थन करते हैं। हम प्रशासित कीमतो (administered prices)[4] के विशिष्ट मामलो की जाँच करेंगे ताकि आय के वितरण पर उनके प्रभावो का पता लगा सकें। प्रत्येक मामले मे हम यह मानकर चलेंगे कि विचाराधीन साधन अर्थव्यवस्था के समस्त साधनो का एक छोटा सा अश ही होता है।

प्रशासित कीमतें—शुद्ध प्रतियोगिता : मान लीजिए एक दिए हुए साधन के स्वामी, राष्ट्रीय आय मे अपने हिस्सो से असन्तुष्ट होकर, अपने साधन के लिए ऊँची प्रशासित कीमत प्राप्त करने का प्रयास करते हैं और उसे प्राप्त भी कर लेते हैं। प्रश्न उठता है कि क्या इससे विचाराधीन साधन के स्वामियो की आय अन्य साधनो के स्वामियो की आय की तुलना मे बढ जायेगी? दूसरे शब्दो मे क्या दिए हुए साधन के स्वामी अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति मे अपेक्षाकृत बडा हिस्सा प्राप्त कर सकेंगे? साथ मे यह प्रश्न भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि साधन की कुल आय मे प्रत्येक स्वामी के द्वारा प्राप्त अश के सम्बन्ध मे क्या स्थिति होगी? अर्थव्यवस्था के सचालन की कार्यकुशलता अथवा कल्याण पर क्या प्रभाव पडेंगे?

---

4 प्रशासित कीमतें वे कीमतें होती हैं जो कानून के द्वारा निश्चित की जाती हैं, जो विक्रेताओं के समूहो क्रेताओ के समूहो, अथवा जो क्रेताओं व विक्रेताओं की सामूहिक क्रिया के द्वारा निश्चित की जाती हैं। वे बाजारों में क्रेताओ व विक्रेताओ की स्वतन्त्र व्यक्त क्रियाओं के द्वारा निर्धारित स्वतन्त्र बाजार-कीमतो के बिलकुल विपरीत होती हैं।

एक दिए हुए साधन की माँग के यथास्थिर मानने पर[5] साधन के द्वारा अर्जित कुल आय पर प्रशासित कीमत का प्रभाव माँग की लोच पर निर्भर करेगा। यदि लोच एक से कम होती है, तो कुल आय में वृद्धि होगी और समूह के रूप में साधन के स्वामी वितरण मे अपना हिस्सा बढ़ा सकेंगे। यदि लोच एक के बराबर होती है, तो कुल आय मे कोई परिवर्तन नही होगा। लेकिन यदि लोच एक से अधिक होती है, तो कुल आय और समूह के रूप मे साधन के स्वामियों का वितरणात्मक अंश कम हो जाएगा।

चित्र 17–1 की सहायता से हम दूसरे प्रश्न का उत्तर दे सकेंगे वह यह कि साधन के द्वारा अर्जित कुल आय का इसके स्वामियों मे जो वितरण होता है उस पर
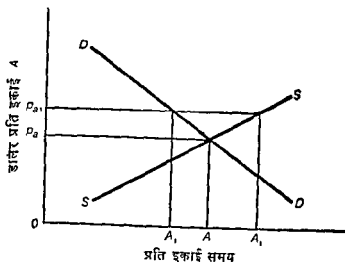
चित्र 17–1 आमदनी के वितरण पर प्रशासित कीमतो के प्रभाव

प्रशासित कीमत के क्या प्रभाव पडते हैं। साधन A के लिए DD और SS क्रमशः माँग-वक्र व पूर्ति-वक्र हैं। संतुलन कीमत P_a है और उपयोग का स्तर A है।

---

5. इस बात को मान लेने का कोई सही कारण नही प्रतीत होता कि साधन की कीमत में परिवर्तन से इसकी माग मे परिवर्तन होगा, विशेषतया उस स्थिति मे जबकि विचाराधीन साधन अर्थ-व्यवस्था में साधनो की कुल पूर्तियो का एक छोटा अंश होता है और एक दिए हुए साधन के लिए प्रायः यही स्थिति देखने को मिलती है। यदि प्रशासित कीमत से सम्बद्ध साधन के स्वामियों की कुल आय मे वृद्धि हो जाती है तो भी यह सम्भव नही जान पडता है कि साधन जिन वस्तुओ के उत्पादन में सहायता पहुँचाता है उनकी माँग में कोई विशेष वृद्धि हो जाएगी। विशेषतया एक स्थिर अर्थव्यवस्था, साधन की कीमत के परिवर्तनों व उसके फलस्वरूप साधन की माँग के परिवर्तनों के बीच स्वतन्त्रता की मान्यता तर्कसंगत ही प्रतीत होती है।

अब कल्पना कीजिए कि साधन के लिए P_{a1} प्रशासित कीमत तय की जाती है—इससे कम पर कोई भी बिक्री सम्भव नही होगी। इस बात का कोई महत्त्व नही है कि प्रशासित कीमत सरकार के द्वारा निर्धारित होती है अथवा क्रेताओ व विक्रेताओ के सगठित समूहो के बीच सौदाकारी के जरिए निर्धारित होती है, अथवा साधन-क्रेताओ या साधन-विक्रेताओ मे से किसी के भी एक तरफ कार्य के परिणामस्वरूप निर्धारित होती है। प्रभाव एक से ही होगे। ऊँची कीमत के पाए जाने पर A साधन का प्रयोग करने वाली प्रत्येक फर्म को ऐसा लगता है कि यदि वह पहले के समान मात्रा का उपयोग करती है, तो साधन की सीमान्त आय उत्पत्ति इसकी कीमत से कम होगी। परिणामस्वरूप, प्रत्येक फर्म यह देखती है कि प्रयुक्त किए जाने वाले साधन की मात्रा मे कमी होने से कुल लागतो मे होने वाली गिरावट की अपेक्षा कुल प्राप्तियो मे होने वाली गिरावट कम होगी और इससे फर्म के मुनाफे बढ जायेंगे। जब सभी फर्मे साधन के उपयोग की मात्रा को इतना घटा देती हैं कि प्रत्येक फर्म मे साधन की सीमान्त आय उत्पत्ति P_{a1} के बराबर हो जाती है तो उनका लाभ पुन अधिकतम हो जाएगा। बाजार मे साधन के उपयोग का स्तर A_1 तक गिर जाएगा।

P_{a1} प्रशासित कीमत साधन के बेकार पडे रहने की स्थिति उत्पन्न कर सकती है जिससे जो साधन काम मे लगे हुए हैं और जो साधन बेकार पडे हुए हैं उनके बीच आमदनी के अन्तर उत्पन्न हो जाते हैं।[6] P_{a1} कीमत पर नियोक्ता A_1 मात्रा लेंगे, लेकिन साधन की A_1' मात्रा के लिए उपयोग की व्यवस्था की जानी है। इससे साधन के लिए बेकारी की मात्रा A_1A_1' होती है। वे नियोक्ता जिनके साधन की इकाइयाँ काम मे लगी होती हैं, अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति मे अपेक्षाकृत अधिक वितरणात्मक अश प्राप्त करते हैं, लेकिन जो बेकार पडी हुई इकाइयो के स्वामी होते हैं उन्हें कुछ भी नही मिलना है। साधन की इकाइयो को अब भी फर्म की कुल प्राप्तियो मे उनके सीमान्त अशदान के अनुसार भुगतान दिया जाता है। व्यक्तिगत फर्मों के द्वारा प्रयुक्त A साधन का अन्य साधनो के साथ अनुपात घट जाने से प्रयुक्त इकाइयो की सीमान्त आय उत्पत्ति पहले से अधिक हो जाती है। अप्रयुक्त इकाइयो की सीमान्त आय उत्पत्ति शून्य के बराबर होती है।

A साधन की अप्रयुक्त इकाइयाँ अन्य साधन के वर्गीकरण में रोजगार ढूँढने का प्रयास कर सकती है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि A साधन की इकाइयो मे बढई आते हैं। P_{a1} मजदूरी की दर पर दक्षता की उसी श्रेणी मे रोजगार प्राप्त न कर सकने पर बढई बेकार बैठे रहने की बजाय साधारण मजदूर के रूप मे रोजगार

6. वास्तव में ऐसा केवल उस स्थिति में नही होता जबकि बेकारी की दशा साधन के सभी स्वामियो में समान रूप से विभाजित होती है।

प्राप्त करने का प्रयास कर सकते हैं। लेकिन उनकी सीमान्त आय उत्पत्ति और उनकी मजदूरी की दर दक्षता के नीचे वर्गीकरण मे कम होगे। प्रशासित मजदूरी की दर आय के अन्तरो मे दो प्रकार से वृद्धि करती है (1) काम मे सलग्न बढई उस स्थिति की अपेक्षा अधिक मजदूरी की दर व आय प्राप्त करेंगे जितनी वे अन्यथा प्राप्त करते और (2) साधारण श्रम के लिए मजदूरी की दर व आय अन्य स्थिति की अपेक्षा कम होगे, क्योकि बेरोजगार बढई साधारण श्रम के समूह मे शामिल होकर उसकी पूर्ति बढा देते हैं।

कल्याण पर प्रशासित कीमत के प्रभाव स्पष्ट होते हैं। A की अप्रयुक्त इकाइयाँ अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति के मूल्य मे कुछ भी योगदान नही देती हैं, अथवा जिस सीमा तक वे कम उत्पादकता वाले वर्गों मे चली जाती हैं, उस सीमा तक उनका योगदान किसी अन्य स्थिति की अपेक्षा कम हो पाता है। यदि साधन की कीमत अपने सतुलन-स्तर पर गिरने दी जाती है तो अधिक मूल्य वाले सीमान्त उत्पत्ति उपयोगो मे अपेक्षाकृत अधिक उपयोग होने से अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति का वास्तविक मूल्य ऊँचा हो जायेगा और साथ मे साधन के स्वामियो के बीच आय की अधिक समानता को प्राप्त करने मे योगदान देगा।

पूर्ति के प्रतिबन्ध : शुद्ध प्रतियोगिता—विशेष उपयोगो मे साधनो की कीमतें उन उपयोगो मे प्रयुक्त की जा सकने वाली साधनो की पूर्तियो पर प्रतिबन्ध स्थापित करके अप्रत्यक्ष रूप से बढायी जा सकती है। इसके उदाहरणस्वरूप हम सरकार की तरफ से कपास व गेहूँ के कृषको पर लगाये जाने वाले क्षेत्रफल सम्बन्धी प्रतिबन्ध ले सकते हैं। अथवा वही परिणाम श्रम-सघ की क्रिया से भी प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, एक बडे शहर मे दुग्ध वैगन-चालक सघ सघ की सदस्यता को रोजगार की शर्त बनाने मे सफल हो सकता है और साथ मे यह सघ मे प्रवेश पर भी प्रतिबध लगा देता है। अर्थव्यवस्था म आय के वितरण और कुल उत्पत्ति पर पडने वाले प्रभाव लगभग वही होते हैं जो प्रत्यक्षतया प्रशासित कीमतों से उत्पन्न होते हैं। साधन के उपयोग का स्तर इसके प्रतिबधित उपयोग मे कम हो जायगा जिससे साधन की कुछ इकाइयाँ अप्रयुक्त रह जायेंगी अथवा ये वैकल्पिक उपयोगो मे लगने का प्रयत्न करेंगी। कपास व गेहूँ से हटाई जाने वाली भूमि अन्य वस्तुओं के उत्पादन मे लगायी जा सकती है। दुग्ध-वैगन चालन से हटाये गये हल्के ट्रक चालक डिलीवरी ट्रक या टैक्सी-चालन जैसे वैकल्पिक रोजगार प्राप्त कर सकते हैं। प्रतिबधित उपयोग मे सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य एव साधन की इकाइयो की कीमत बढ जाते है[7] और अन्य रोजगारो

7 गेहूँ की भूमि या कपास की भूमि के सम्बन्ध मे स्थिति यह है कि भूमि का अन्य साधनो के प्रति अनुपात घटे हुए क्षेत्रफल के भत्तो (acreage allowances) के जरिए और श्रम व

मे लगायी गयी इकाइयो की सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य व उनकी कीमत घट जाते हैं। इन परिवर्तनो से साधन के लिए भेदात्मक कीमतो एव आय के अपेक्षाकृत अधिक अन्तरो की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। साथ मे इससे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति उस मात्रा से कम हो जाती है जितनी की अर्थव्यवस्था उत्पन्न करने मे सक्षम होती।

प्रशासित कीमतें : वस्तु-एकाधिकार—क्या साधन की सतुलन स्तर से ऊपर निश्चित की गई प्रशासित कीमते, जब साधन केता वस्तु को एकाधिकारियो के रूप मे बेचते हैं, तब एकाधिकार के प्रतिबन्धकारी प्रभावो को रोक सकती है ? इस सम्बन्ध मे प्राय यह तर्क दिया जाता है कि वे ऐसा कर सकती हैं और साधन की कीमतो मे होने वाली वृद्धि एकाधिकारियो के लाभो से उत्पन्न होती है। मान लीजिये प्रारम्भ मे एक दिये हुए साधन के लिए सतुलन-कीमत पायी जाती है। वे फर्में जिनको वस्तु-बाजारो मे कुछ अश मे एकाधिकार प्राप्त होता है साधन को खरीदती हैं और यह इस प्रकार से आवटित किया जाता है कि इसकी कीमत इसके वैकल्पिक उपयोगो मे एक सी हो जाती है। लेकिन चूँकि साधन की कीमत इसके विभिन्न उपयोगो में इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति के बराबर होती है इसलिए एकाधिकारी विक्रेताओ द्वारा नियुक्त साधन की इकाइयो का एकाधिकारी रूप में शोषण किया जाता है—वे अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति के मूल्य में जितना योगदान देती हैं उससे कम राशि प्राप्त करती हैं।

प्रश्न उठता है कि क्या साधन की प्रशासित कीमत जो इसकी सतुलन-कीमत से ऊपर होती है, एकाधिकारी शोषण के कारण साधन के स्वामियो को होने वाली क्षति को पूरा कर सकेगी ? मान लीजिये ऐसी प्रशासित कीमत प्राप्त की जाती है। यदि फर्में पहले के जितनी मात्राएँ ही काम पर लगाना जारी रखती हैं, तो व्यक्तिगत फर्मों के लिए साधन की सीमान्त आय उत्पत्ति इसकी प्रशासित कीमत से कम होगी।

उर्वरक के अधिक गहन उपयोग के जरिए घटा दिया जाता है। भूमि की अपेक्षाकृत अधिक सीमात भौतिक उत्पत्ति एव सम्भवत छोटी फसलो के ऊँचे भावो के कारण भूमि की सीमात उत्पत्ति का मूल्य बढ जाता है।

दुग्ध वैगन-चालको के सम्बध में भी लगभग यही बात लागू होती है। पूर्ति के सीमित होने की स्थिति में फर्में प्रत्येक चालक को ज्यादा से ज्यादा उत्पादक बनाने का प्रयास करेंगी। कारखाने तक वापिस आकर माल को पुन भरकर ले जाने के चक्कर कम करने के लिए थोडे बड आकार के ट्रक इस्तेमाल किए जा सकते हैं। ट्रक ऐसे बनाए जा सकते हैं ताकि उनमें प्रवेश करना, उनसे बाहर आना एव उन्हें चलाना अधिक सुविधाजनक हो जाए। ट्रक का खाली समय ट्रको की देखभाल व मरम्मत के लिए ज्यादा अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध करके समाप्त किया जा सकता है। ऐसे उपायो से चालको की सीमांत भौतिक उत्पत्ति में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त, थोड चालको की नियुक्ति से दूध की बिक्री कम और दूध के भाव ऊँचे हो जाते हैं। इस प्रकार दुग्ध वैगन-चालको की सीमात उत्पत्ति का मूल्य पहले से अधिक हो जाएगा।

परिणामस्वरूप प्रत्येक फर्म साधन का उपयोग उस सीमा तक कम कर देती है जहाँ पर इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति इसकी प्रशासित कीमत के बराबर होती है। लेकिन स्मरण रहे कि अब भी साधन की सीमान्त आय उत्पत्ति न कि इसकी सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य, इसकी कीमत के बराबर होगा। प्रशासित कीमत के बावजूद भी साधन का एकाधिकारी-शोषण जारी रहेगा।[8]

इसके अतिरिक्त, एकाधिकारी फर्मों के द्वारा साधनों के उपयोग का स्तर जो अधिकतम कल्याण की दृष्टि से पहले ही काफी नीचा होता है, और घट जाता है। ऊँची कीमत पर फर्में साधन की कम इकाइयाँ प्रयुक्त करती हैं। अधिक इकाइयाँ काम पाने का प्रयास करती है। साधन के स्वामियों के बीच बेकारी की स्थिति और आय के अधिक अन्तर उत्पन्न हो जाते है। ऐसी स्थिति में यदि अप्रयुक्त इकाइयों को नीची सीमान्त आय-उत्पत्ति वाली साधन श्रेणियों या उपयोगों मे काम मिल जाता है तो कुछ सीमा तक आय के अन्तर मिट जाते हैं, लेकिन फिर भी वे जारी रहते हैं।

प्रशासित कीमतें : एकक्रेताधिकार—एकक्रेताधिकारी दशाओं मे साधन की प्रशासित कीमतें साधन का एकक्रेताधिकारी शोषण रोक सकती हैं। साधन के उपयोग का स्तर बढाया जा सकता है और साथ मे इसकी कीमत बाजार-स्तर से ऊपर की जा सकती है। साधन के स्वामियों की आय और वितरणात्मक अंश अर्थव्यवस्था मे साधन के अन्य स्वामियों की तुलना मे बढाये जा सकते हैं। साथ मे वास्तविक शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति और कल्याण मे वृद्धि की जा सकेगी।

एक साधन की प्रशासित कीमत किस प्रकार से एकक्रेताधिकारी शोषण को रोक सकती है, उसका विस्तृत विवेचन अध्याय 15 मे प्रस्तुत किया जा चुका है। पूर्व विश्लेषण पर पुन. दृष्टिपात करते समय यह कहा जा सकता है कि बाजार-कीमत से ऊपर निर्धारित होने वाली प्रशासित कीमत उस कीमत पर फर्म के समक्ष पाये जाने वाले साधन पूर्ति-वक्र को क्षैतिज बना देती है। प्रशासित कीमत से ऊपर की कीमतों के लिए, मूल पूर्ति-वक्र का ही महत्त्व होता है। साधन पूर्ति-वक्र के क्षैतिज भाग पर सीमान्त साधन लागत साधन की कीमत के बराबर होगी। प्रशासित कीमत को बुद्धिमत्तापूर्ण ढग से निर्धारित करके फर्म को साधन की उस मात्रा को लगाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है जिस पर सीमान्त आय उत्पत्ति साधन की कीमत के बराबर होती है। प्रशासित कीमत के अभाव मे फर्म उपयोग की मात्रा को सीमित कर देती है और साधन की इकाइयों को उनकी सीमान्त आय उत्पत्ति से कम राशि देती है।

---

8 इस प्रकार साधनो के एकाधिकारी शोषण को मिटाने के लिए किए गए उपायो को वस्तु की एकाधिकारी माँग की स्थिति पर प्रहार करना होगा। उन्हे एकाधिकारी की सीमान्त आय व कीमत के अन्तर को और, इस प्रकार, साधनो की सीमान्त आय उत्पत्ति व सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य के अन्तर को मिटाना होगा।

माँग-वृद्धि के साथ कीमत-वृद्धि—साधन की माँग के स्थिर रहने की स्थिति में साधन की प्रशासित कीमत में वृद्धियों के जो प्रभाव होते हैं, प्राय उनके सम्बन्ध में उन साधन-कीमत-वृद्धियों के प्रभावों का भ्रम हो जाता है जो साधन की माँग में वृद्धियों के साथ उत्पन्न होते हैं। मान लीजिये एक दिये हुए साधन की माँग बढ़ती है, लेकिन साथ में साधन के स्वामी एक समूह के रूप में संगठित होने के कारण साधन के क्रेताओं से कई कीमत वृद्धियाँ प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। यहाँ पर यह भी मान लीजिये कि किसी भी समय प्रसंविदा-कीमतें बढ़ती हुई सतुलन-कीमत से अधिक नहीं होती है। साधन के स्वामियों के लिए कोई भी प्रतिकूल वितरणात्मक प्रभाव उत्पन्न नहीं होते है। साधन के वैयक्तिक स्वामियों एवं समूह के रूप में उनकी स्थिति निरन्तर सुधरती जाती है। लेकिन इस तरह की दशाओं से यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि साधन की प्रशासित कीमत वृद्धियों से विचाराधीन साधन के स्वामियों की कुल आय पर अथवा समूह के अन्दर आय के वितरण पर सामान्यतया कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेंगे। हमें उन प्रशासित कीमत-वृद्धियों, जो साधन की माँग में होने वाली वृद्धियों के साथ उत्पन्न होती है और जो इनके अभाव में उत्पन्न होती हैं के बीच ध्यान से अन्तर करना होगा। यद्यपि प्रथम श्रेणी की वृद्धियों से साधन के स्वामियों की कुल आय अथवा साधन के स्वामियों के बीच आय के वितरण पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेंगे, लेकिन द्वितीय श्रेणी की वृद्धियों से, एकक्रेताधिकार की दशा को छोड़कर, विपरीत प्रभाव पड़ने की सम्भावना पायी जाती है।

अधिक मात्रा में समानता

कई कारणों को लेकर—जैसे आर्थिक, नैतिक व सामाजिक—अनेक व्यक्ति आय के अन्तरों में कुछ कमी करने का समर्थन करते हैं। यदि समाज अपेक्षाकृत अधिक समानता की तरफ होने वाली गति को वाञ्छनीय मानता है, तो अन्तरों के कारण इनको कम करने की तरफ ले जाने वाले उपाय सुझाते है। इस प्रकार समानीकरण के उपाय कीमत प्रणाली के माध्यम से सम्पन्न किए जा सकते है (और किए जाते हैं) अथवा वे साधनों के स्वामियों के बीच साधनों के पुनर्वितरण के माध्यम से किए जा सकते हैं (और किए जाते हैं)। हम इन पर क्रमश विचार करेंगे।

प्रशासित कीमतों के माध्यम से—प्रशासित कीमतों के माध्यम से किए जाने वाले समानीकरण के उपाय एकक्रेताधिकारी दशाओं को छोड़कर अपना विशेष प्रभाव नहीं दिखा पाते। जब वस्तु बाजारों में प्रतिस्पर्धी व एकाधिकारी दशाएँ पाई जाती हैं और एक दिए हुए साधन की खरीद में प्रतिस्पर्धी दशाएँ पाई जाती है तो परिस्थिति के अनुसार साधन की सतुलन कीमत इसकी सीमान्त उत्पत्ति के मूल्य अथवा इसकी सीमान्त आय उत्पत्ति के बराबर होने की प्रवृत्ति दर्शाती है। इसके अतिरिक्त, साधन

में इस प्रकार से आवटित होने की प्रवृत्ति होती है कि इसकी कीमत इसके वैकल्पिक उपयोगो मे समान हो जाती है। सफल प्रशासित कीमत-वृद्धियो से साधन की वेकारी व कुआवटन (malallocation) की स्थिति उत्पन्न होती है और यह आय मे कम अन्तरो के स्थान पर अधिक अन्तरो को उत्पन्न करती है। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, एकक्रेताधिकार की दशाओ म साधन की प्रशासित कीमतें एक साधन के एक-क्रेताधिकारी शोषण को इसकी कीमत व उपयोग के स्तर दोनो मे वृद्धि करके मिटा सकती हैं।

साधनों के पुनर्वितरण के माध्यम से

आय की अधिक समानता की तरफ किसी भी गतिशीलता के अधिकाश भाग मे साधनो के स्वामियो के बीच इनके पुनर्वितरण का होना आवश्यक होता है, क्योकि यही आमदनी के अन्तरो का एक बडा कारण होता है। पुनर्वितरण के उपाय दो रूप ग्रहण कर सकते है (1) श्रम-साधनो का पुनर्वितरण, और (2) पूंजी-साधनो का पुनर्वितरण।

श्रम-साधन—श्रम-साधन उदग्र गतिशीलता मे वृद्धि करने के उपायो को अपनाकर पुनर्वितरित किए जा सकते हैं। अधिक उदग्र गतिशीलता उच्च व्यावसायिक श्रेणियो मे श्रम की पूर्ति मे वृद्धि करेगी और नीची श्रेणियो म श्रम की पूर्ति मे कमी करेगी। उच्च स्तर पर अपेक्षाकृत अधिक पूर्तिया से सीमान्त उत्पत्ति के मूल्यो मे या सीमान्त आय उत्पत्ति की मात्राओ मे गिरावट आएगी और ऊँची आमदनियां घट जाएँगी। निम्न स्तरो पर अपेक्षाकृत कम पूर्तियो स सीमान्त उत्पत्ति के मूल्यो अथवा सीमान्त आय उत्पत्ति की मात्राओ म वृद्धि होगी, जिससे नीची व्यावसायिक श्रेणियो म आमदनी बढेगी। नीचे से ऊँचे पेशो या व्यवसायो म होने वाले हस्तान्तरणो से आय के अन्तर कम हो जाएँगे, और इस प्रक्रिया से शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति मे वृद्धि हो जाएगी।

उदग्र गतिशीलता मे वृद्धि करने के कम से कम तीन उपाय सुझाये जा सकते हैं। सर्वप्रथम, शैक्षणिक व प्रशिक्षण के अवसरो मे अपेक्षाकृत अधिक समानता की व्यवस्था की जा सकती है। द्वितीय, जिस सीमा तक पूँजी के स्वामित्व मे अन्तर कम कर दिए जाते हैं, उच्च श्रेणी के श्रम साधनो के विकास के लिए आर्थिक अवसरो म अपेक्षाकृत अधिक समानता आ जाएगी। तृतीय, प्रवेश के उन प्रतिबन्धों को कम करने के उपाय किए जा सकते है जो अनेक दक्ष व अर्द्ध दक्ष व्यवसायो मे साधनो के स्वामियो के समूहो व सगठनो के द्वारा स्थापित किए गए है।[9] क्षैतिज गतिशीलता मे वृद्धि करने

9. ऐसे प्रतिबन्ध का एक दृष्टान्त एक पेशेवर सगठन के द्वारा प्रदान किया जाना है जो लाइसेंस देने के स्तरो को नियन्त्रित करता है जिन्हे सम्भावी प्रवेशकर्ताओ को अपना व्यवसाय चलाने के लिए पूरा करना होता है।

के उपायो से भी आय के अन्तरो मे कमी की जा सकती है। इन उपायो मे रोजगार-विनिमयालयो का सचालन, सम्भवत गतिशीलता मे कुछ अधिक सहायता, रोजगार-सबधी निर्देशन, प्रौढ शिक्षा व पुन प्रशिक्षण के कार्यक्रम एव इसी किस्म के अन्य उपाय शामिल होते है। वास्तव म यहाँ मुख्य तर्क एक दिए हुए श्रम-साधन की श्रेणी के अन्दर वैकल्पिक धन्धो के बीच, और स्वय श्रम-साधन की श्रेणिया के बीच, श्रम-साधनो के ज्यादा अच्छे आवटन का है। अधिक क्षैतिज गतिशीलता एव अधिक उदग्र गतिशीलता दोनो शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति मे वृद्धि करेंगी और साथ मे ये आय के अन्तरो मे कमी करेंगी।

पूंजी-साधन—एक स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था मे पूँजीगत साधनो के पुन-वितरण का काफी विरोध किया जाता है। आय की अधिक समानता की तरफ होने वाली गति के अनेक प्रबल समर्थक उन उपायो का तीव्र विरोध करेंगे जो पूँजी के स्वामित्व के पुर्नवितरण के लिए उठाए जाते है—और ये ही ऐसे उपाय होते है जो उस उद्देश्य की तरफ बढाने मे काफी योगदान देते है। यह विरोध निजी सम्पत्ति के स्वामित्व के अधिकारो के चारो और केन्द्रित होता है और यह इस प्रबल धारणा से उत्पन्न होता है कि सम्पत्ति के स्वामित्व के अधिकार म इसके सग्रह का अधिकार एव इसे अपने उत्तराधिकारियो को हस्तान्तरित करने का अधिकार शामिल होता है।

फिर भी यदि आय के अन्तर कम किए जाने हैं तो व्यक्तियो के बीच पूँजी-धारण (capital holdings) मे अधिक समानता लाने के उपायो को अवश्य अपनाना चाहिए। अर्थव्यवस्था की कराधान प्रणाली इस दिशा मे गतिमान हो सकती है। उदाहरण के लिए, सयुक्त राज्य अमेरिका मे वैयक्तिक आयकर, पूँजी लाभ-कर, एव सम्पदा व उपहार-कर—सघीय व राज्यीय दोनो—पहले से ही समानीकरण का काम करते हैं।

वैयक्तिक आयकर अपने प्रगतिशील स्वरूप के कारण प्रत्यक्ष रूप से आय के अतरो को कम करने का कार्य करता है और ऐसा करने मे यह उन अन्तरो को भी कम कर देता है जो पूँजी-सचय करने की क्षमताओ म पाए जाते है। लेकिन अकेले वैयक्तिक आयकर से यह आशा नही की जा सकती कि यह साधनो के कुशल उपयोग की प्रेरणाओ को एव कम उत्पादक उपयोगो से अधिक उत्पादक उपयोगो मे साधनो के पुनरावटन को गम्भीर रूप से क्षति पहुँचाये बिना उन अन्तरो को मिटा सकेगा।

पूँजी लाभ-कर व्यक्तिगत आयकर के एक अश से बचने के लिए एक छिद्र (loop-hole) का काम करता है, अथवा यह व्यक्तिगत आयकर म छिद्र को भरने का काम करता है—यह सब अपनी अपनी आय की परिभाषा पर निर्भर करता है। पूँजी लाभ कर पूँजीगत परिसम्पत्तियो के मूल्य मे प्राप्त वृद्धि व ह्रास पर लागू किया जाता है।

जो व्यक्ति पूंजीगत साधनों से प्राप्त अपनी आय के एक अंश को पूंजी-लाभों के रूप में बदल सकते हैं, वे अपने प्रतिफल के उस अंश पर पूंजी-लाभों के रूप में उस दर पर कर लगवाने में समर्थ हो जाते हैं जो साधारणतया व्यक्तिगत आयकर की दर से नीची होती है। उनके लिए पूंजी-लाभ-कर एक ऐसा छिद्र होता है जिसके जरिए वैयक्तिक आयकरों से बचा जा सकता है। लेकिन यदि वैयक्तिक आयकर के अन्तर्गत कुछ पूंजी लाभ कराधान से बिलकुल बच जाते हैं, लेकिन वे पूंजी-लाभ-कर के अन्तर्गत आते हैं, तो उन्हें वैयक्तिक आयकर का पूरक माना जा सकता है। प्रत्येक स्थिति में पूंजी लाभ कर इस बात का अवसर देता है कि पूंजीगत साधनों से प्राप्त कुछ प्रतिफल पर वैयक्तिक आयकर से नीची दरों पर कर लगाया जाए, और यदि पूंजी-सचय के अवसरों में पाए जाने वाले अन्तरों को कम करना है तो इसमें इस प्रकार से संशोधन किया जाए ताकि लोग इसकी नीची दरों से लाभ न उठा सकें।

पूंजीगत स्वामित्व के अन्तरों को कम करने के उद्देश्य से अपनाई जाने वाली किसी भी कर-प्रणाली में सम्पदा एवं उपहार करों का महत्त्वपूर्ण स्थान होगा। ऐसी प्रणाली से सम्पदा-कर किसी अधिकतम राशि से ऊपर जब्त करने की सीमा तक पहुंच जायेंगे, ताकि संचित पूंजीगत साधन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित न किए जा सकें। उपहार-कर ज्यादातर सम्पदा-कर के छिद्रों को भरने का कार्य करेंगे। उनकी व्यवस्था इस प्रकार से की जाएगी कि वे प्रारम्भिक स्वामी की मृत्यु से पूर्व उनके द्वारा अपने उत्तराधिकारियों को उपहार के रूप में सम्पदा के हस्तान्तरण को रोक सकें।

पुनर्वितरण व कीमत-प्रणाली—यदि समाज यह वांछनीय मानता है कि आय में अपेक्षाकृत अधिक समानता प्राप्त की जाए, तो श्रम-साधन व पूंजीगत साधन के स्वामित्व का पुनर्वितरण कीमत-प्रणाली व स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था के ढांचे में ही प्राप्त किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि ऊपर-वर्णित पुनर्वितरण के उपाय कीमत-तन्त्र के संचालन को गम्भीर रूप से प्रभावित करें। वास्तव में कीमत-तन्त्र वांछित उद्देश्यों तक पहुंचने के उपायों में मदद देने के लिए एक सकारात्मक साधन के रूप में काम कर सकता है। कुछ मूलभूत उपाय जैसे शिक्षा के अवसर, प्रगतिशील आयकर, उपहार व सम्पदा कर, आदि पहले से ही प्रचलित हैं, हालांकि उनकी प्रभावोत्पादकता में काफी वृद्धि की जा सकती है। पुनर्वितरण के उपाय स्थिर मौद्रिक प्रणाली, एकाधिकार नियन्त्रण के उपायों व आर्थिक संचालन के अन्य नियमों के साथ स्वतन्त्र उद्यमवाली व्यवस्था के नियमों के रूप में माने जा सकते हैं।

सारांश

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति में व्यक्तियों के द्वारा किए जाने वाले दावे (claims)

उनकी आय पर निर्भर करते हैं; इस प्रकार उत्पत्ति के वितरण का सिद्धान्त वास्तव में आय के वितरण का ही सिद्धान्त होता है। सीमान्त-उत्पादकता सिद्धान्त आय-निर्धारण व आय वितरण के सामान्य रूप से स्वीकृत सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। साधनों के स्वामियों को उनके स्वामित्व में होने वाले साधनों की सीमान्त आय उत्पत्ति की मात्राओं के अनुसार प्रतिफल दिया जाता है। इस सम्बन्ध में अपवाद केवल उन दशाओं में ही होता है जहां साधन एकक्रेताधिकारी-रूप में खरीदे जाते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यय करने वाली इकाइयों में आमदनी असमान रूप से वितरित की जाती है। आय के अन्तर मूलतः तीन स्रोतों से उत्पन्न होते हैं : (1) श्रम-साधनों के स्वामित्व में अन्तर (2) पूंजीगत साधनों के स्वामित्व में अन्तर, और (3) कीमत-तन्त्र के संचालन पर लगाए गए प्रतिबन्ध। श्रम-साधनों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि विभिन्न व्यक्ति सामान्य दक्षता के एक ही स्तर पर विभिन्न किस्म के श्रम के स्वामी होते हैं। ये श्रम साधनों के क्षैतिज अन्तर कहलाते हैं। विभिन्न व्यक्ति ऐसे विभिन्न किस्म के श्रम के भी स्वामी होते हैं जिसका श्रेणीकरण उदग्र रूप में सरल शारीरिक श्रम से उच्चस्तरीय पेशा तक किया जाता है। पूंजीगत साधनों के स्वामित्व में अन्तर भौतिक विरासत के अन्तरों आकस्मिक परिस्थितियों व संग्रह की प्रवृत्तियों में अन्तरों के कारण उत्पन्न होते हैं।

एक दिए हुए साधन की प्रशासित कीमतें प्रायः उस साधन की कुछ इकाइयों में बेकार रहने या कुआवंटन की स्थिति उत्पन्न कर देती है, और इस प्रकार साधन के स्वामियों के बीच आय के अन्तर उत्पन्न हो जाते हैं। एकक्रेताधिकार की दशा इस सम्बन्ध में एक अपवाद मानी जा सकती है। एकक्रेताधिकार के अन्तर्गत साधन की प्रशासित कीमतें सम्बन्धित साधनों के एकक्रेताधिकारी-शोषण को मिटा सकती है।

यदि समाज आमदनी के अन्तर कम करना चाहता है तो इसे इन पर साधनों के स्वामियों के बीच साधनों के पुनर्वितरण के जरिए प्रहार करने होंगे। प्रशासित कीमतों के माध्यम से किए गए प्रहारों से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती है। श्रम साधनों का पुनर्वितरण ऐसे उपायों के माध्यम से भी प्राप्त किया जा सकता है जो क्षैतिज व उदग्र गतिशीलता दोनों में वृद्धि करते हैं। ये बदले में शुद्ध राष्ट्रीय उत्पत्ति में वृद्धि करेंगे।

कर-प्रणाली पूंजीगत साधनों के पुनर्वितरण को क्रियान्वित करने के साधन प्रदान करती है। सम्पदा व उपहार-करों पर पुनर्वितरण का अधिकांश भार पड़ेगा और इनके पूरक के रूप में वैयक्तिक आय और पूंजी लाभ-कर हो सकते हैं।

साधनों का पुनर्वितरण कीमत-प्रणाली व निजी उद्यमवाली अर्थव्यवस्था के ढांचे में प्राप्त किया जा सकता है।

अध्ययन-सामग्री

Friedman, Milton, *Capitalism and Freedom* (Chicago : University of Chicago Press, 1950), Chaps. X, XI, and XII.

Pigou, A. C., *The Economics of Welfare*, 4th ed (London : Macmillan & Co., Ltd., 1932), Pt. IV, Chap. V.

□ □ □

संतुलन और कल्याण

इस अध्याय मे पुस्तक की विषय-सामग्री को एक साथ प्रस्तुत करके इसका साराश दिया जायेगा। सर्वप्रथम हम इस बात की समीक्षा करेंगे कि कल्याण व सन्तुलन की धारणाओं का क्या आशय है। तत्पश्चात् हम उन शर्तों की जाँच करेंगे जो पैरेटो इष्टतम (Pareto optimum) के अर्थ में कल्याण को अधिकतम करने के लिए पूरी की जानी चाहिए। अन्त में हम उन शर्तों पर विचार करेंगे जो निजी उद्यमवाली आर्थिक प्रणाली मे सतुलन के अस्तित्व के लिए आवश्यक होती हैं और इन सामान्य सतुलन की दशाओं के कल्याण की दृष्टि से परिणाम देखेंगे।

संतुलन और कल्याण की धारणाएँ

कल्याण और सतुलन दो भिन्न-भिन्न धारणाएँ होती है हालांकि इनका प्राय एक दूसरे से भ्रम हो जाया करता है। हमने कल्याण की यह परिभाषा दी है कि यह आर्थिक प्रणाली मे शामिल लोगो के हित की दशा (state of well-being) होती है। हमने सतुलन की यह परिभाषा दी है कि यह एक विश्राम की दशा (state of rest) होती है, *जहाँ से हटने के लिए कोई प्रेरणा या अवसर नहीं होता है। हम इन* धारणाओं के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर विचार करेंगे।

कल्याण

अधिकांश आर्थिक विश्लेषण आर्थिक क्रिया के कल्याण-सम्बन्धी पहलुओं से सम्बन्ध रखता है, अर्थात् इस बात से सम्बन्ध रखता है कि आर्थिक प्रणाली मे जन-सख्या के लिए अधिकतम या अनुकूलतम कल्याण कैसे प्राप्त किया जाय। अनुकूलतम कल्याण की वस्तुपरक परिभाषा देना एक पेचीदा समस्या होती है। हमने विषय-प्रवेश के अध्याय मे देखा था कि एक ही व्यक्ति के सम्बन्ध मे विचार करने पर यह धारणा स्पष्ट होती है और इसका उस व्यक्ति के कल्याण से मेल खाता है। लेकिन एक से अधिक व्यक्ति को लेने पर सम्पूर्ण समूह के लिए एक विशिष्ट अनुकूलतम या इष्टतम कल्याण की स्थिति की वस्तुपरक परिभाषा करना असम्भव हो जाता है, क्योंकि इस प्रकार की परिभाषा के लिए सन्तुष्टि की अन्तर्वैयक्तिक तुलनाओं (interpersonal comparisons) की आवश्यकता होती है। पैरेटो इष्टतम स्थिति ही प्राप्त किया जा

सकने वाला सर्वश्रेष्ठ हल होता है जिसमे किसी व्यक्ति की स्थिति को गिराये बिना अन्य व्यक्ति की स्थिति मे सुधार नही लाया जा सकता।

संतुलन

संतुलन की धारणाओं का महत्व इसलिए नही है कि वास्तव मे कभी संतुलन प्राप्त कर लिया जाता है बल्कि इसलिए है कि वे हमे उस दिशा को बतलाती हैं जिसकी तरफ आर्थिक प्रक्रियाएँ अग्रसर होती हैं। जब संतुलन की दशाएँ स्थिर (stable) होती है—जैसा कि इस पुस्तक मे वे सर्वत्र मानी गई हैं—तो असंतुलन मे होने वाली आर्थिक इकाइयाँ प्राय संतुलन की दशाओं की तरफ जाती हैं। लेकिन जब वे ऐसा करती हैं तो उपभोक्ताओं के अधिमान-प्रारूपों (preference patterns) साधनों की पूर्तियाँ, व टेक्नोलोजी के परिवर्तन संतुलन की दशाओं को ही बदल देते हैं और इस प्रकार उत्पन्न होने वाली हलचलों को नई दिशा प्रदान करते हैं। यदि संतुलन की दशाएँ अस्थिर (unstable) होती हैं तो आर्थिक इकाइयाँ संतुलन की दशाओं की तरफ जाने के बजाय उनसे दूर होती जाती हैं।

आंशिक संतुलन (Partial Equilibrium)—हमने जिस विश्लेषणात्मक ढाँचे का निर्माण किया है उसका बड़ा भाग आंशिक संतुलन विश्लेषण कहलाता है। इसका सम्बन्ध वैयक्तिक आर्थिक इकाइयों की संतुलन की तरफ होने वाली उन गतियों (movements) से होता है जो उनके समक्ष पाई जाने वाली आर्थिक दशाओं से प्रतिक्रिया के स्वरूप उत्पन्न होती हैं। जैसे, दी हुई रुचि व अधिमानों के साथ, एक उपभोक्ता के समक्ष उसकी आय और वस्तुओं व सेवाओं की कीमतें भी दी हुई होती है। वह अपनी खरीद की मात्राओं को संतुलन की तरफ बढ़ने के अनुरूप समायोजित कर लेता है। एक व्यावसायिक फर्म जिसके समक्ष वस्तु की माँग की दशाएँ दी हुई होती हैं, संतुलन समायोजन की तरफ अग्रसर होती है। साधनों के स्वामी के पास काम मे लगाने के लिए साधनों की दी हुई मात्राएँ होती हैं। उनके समक्ष वैकल्पिक उपयोग की सम्भावनाएँ व साधनों को प्राप्त होने वाली कीमतें दी हुई होती हैं। उसका संतुलन-समायोजन दिये हुए तथ्यों के आधार किया जाता है। एक उद्योग-विशेष मे माँग व लागत की दशाएँ लाभ या हानियों को उत्पन्न करती हैं जिनसे नई फर्मों के प्रवेश को (यदि प्रवेश सम्भव है) अथवा चालू फर्मों के बाहर जाने को प्रेरणा मिलती है, और इस प्रकार उद्योग मे संतुलन की तरफ प्रवृत्ति होती है। आर्थिक इकाइयों व उद्योगों के समक्ष होने वाले दिये हुए तथ्यों मे परिवर्तन होने से उन संतुलन की दशाओं मे परिवर्तन हो जाते हैं जिन्हे प्रत्येक इकाई प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होती है और नई दशाओं की तरफ होने वाली गतियों को प्रेरणा मिलती है।

आंशिक संतुलन विशेषतया दो किस्म की समस्याओं के विवेचन के लिए उपयुक्त

होता है। वे दोनों इस पुस्तक में कई बार आ चुकी हैं। प्रथम श्रेणी की समस्याएँ ऐसी आर्थिक हलचलों से उत्पन्न होती हैं जिनकी मात्रा इतनी बड़ी नहीं होती कि ये एक विशेष उद्योग या अर्थव्यवस्था के एक विशेष क्षेत्र की सीमाओं से काफी दूर तक पहुँच जायें। द्वितीय श्रेणी की समस्याएँ किसी भी किस्म की आर्थिक हलचल के प्रथम-क्रम वाले प्रभावों (first-order effects) से सम्बन्धित होती हैं।

प्रथम श्रेणी की समस्या के दृष्टान्त के रूप में हम यह मान लेते हैं कि प्लास्टिक का सामान बनाने वाले एक छोटे विनिर्माता के उत्पादन विभाग के श्रमिक हड़ताल कर देते हैं। यह भी मान लीजिए कि संयंत्र एक बड़े शहर में लगाया हुआ है, और श्रमिक शहर के रिहायशी क्षेत्रों में व्यापक रूप से छितरे हुए हैं। हड़ताल के प्रभाव अधिकांश रूप से सम्बन्धित कम्पनी व उसके कर्मचारियों तक ही सीमित होंगे। आंशिक सतुलन विश्लेषण हड़ताल से उत्पन्न होने वाली अधिकांश आर्थिक समस्याओं के लिए उपयुक्त हल प्रदान कर सकेगा।

द्वितीय किस्म की समस्या के दृष्टान्त के रूप में हम मान लेते हैं कि पुन शस्त्रीकरण (rearmament) के कार्यक्रम से इस्पात की माँग अकस्मात् व अत्यधिक रूप से बढ़ जाती है। आंशिक सतुलन विश्लेषण इस्पात उद्योग पर प्रथम क्रम के लिए उत्तर प्रस्तुत करेगा–जैसे इसकी कीमतों, उत्पत्ति, मुनाफों, साधनों के लिए माँग, साधनों की कीमतों एव साधनों के उपयोग स्तरों के सम्बन्ध में क्या स्थिति होगी। लेकिन प्रारम्भिक हलचल के प्रभावों का अन्त केवल प्रथम-क्रम के प्रभावों से नहीं हो जाता है।

सामान्य सतुलन—जब व्यक्तिगत आर्थिक इकाइयाँ और उद्योग ऐसे तथ्यों के प्रति, जो दिये हुए प्रतीत होते हैं, अपने सतुलन-समायोजन की तलाश करना चाहते हैं तो उनके कुल सामूहिक कार्यों से उनके समक्ष होने वाले तथ्य परिवर्तित हो जाते हैं। यदि कुछ इकाइयाँ सतुलन में होती हैं और अन्य नहीं होतीं, तो असतुलन में होने वाली इकाइयाँ सतुलन की तरफ अग्रसर होती हैं। उनकी क्रियाएँ सतुलन में होने वाली इकाइयों के समक्ष पाये जाने वाले तथ्यों को परिवर्तित कर देंगी और उन्हें असतुलन की स्थिति में ढकेल देंगी। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए सामान्य सतुलन तभी रह सकेगा जब कि समस्त आर्थिक इकाइयाँ एक साथ आंशिक या विशिष्ट सतुलन-समायोजनों को प्राप्त कर सकें। सामान्य सतुलन की धारणा में समस्त आर्थिक इकाइयों की आपसी निर्भरता एव अर्थव्यवस्था के सभी अंगों की परस्पर निर्भरता पर बल दिया जाता है।

आंशिक सतुलन विश्लेषण व सामान्य सतुलन विश्लेषण के बीच कोई निश्चित विभाजक-रेखा डालना कठिन होगा। दो अलग अलग वर्गों को स्थापित करने के बजाय

आंशिक से सामान्य सतुलन तक एक निरतरता के क्रम (continuum) मे अग्रसर होने के रूप मे, अथवा हलचल के प्रथम-क्रम वाले प्रभावो से द्वितीय, तृतीय व उच्चतर-क्रम वाले प्रभावो पर अग्रसर होने के रूप मे विचार करना ज्यादा उपयुक्त होगा। उदाहरण के लिए, शुद्ध प्रतियोगिता की बाजार-दशाओ के अन्तर्गत कीमत व उत्पत्ति-निर्धारण के विवेचन मे हमारा सम्बन्ध प्रारम्भ मे आंशिक सतुलन, अथवा व्यक्तिगत फर्म के सतुलन से था। उसके पश्चात् हमने विश्लेषण सम्पूर्ण उद्योग पर लागू किया और व्यक्तिगत फर्मों के कार्यों का एक-दूसरे पर प्रभाव देखा। अत मे, हमने इस बात का अध्ययन किया कि एक शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक स्वतन्त्र उद्यमवाली अर्थव्यवस्था मे उत्पादन-क्षमता उपभोक्ता-वर्ग की रुचि व अभिमानो के अनुसार कैसे सगठित की जाती है। विषयो की यह शृ खला आंशिक सतुलन विश्लेषण के उपयोग से सामान्य सतुलन-विश्लेषण के उपयोग की तरफ उत्तरोत्तर होने वाली गति का सूचक होती है।

सामान्य सतुलन-सिद्धान्त दो उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए विश्लेषणात्मक उपकरण प्रदान करता है (1) शुद्ध सिद्धान्त के दृष्टिकोण से यह एक अर्थव्यवस्था को, इसके सम्पूर्ण रूप मे, देखने का साधन उपलब्ध करता है—यह एक ऐसा साधन होता है जिसकी सहायता से हम देख सकते हैं कि कौन-सी वस्तु इसको एक-साथ बाँधे हुए है, यह क्या कार्य करती है, और अपना कार्य कैसे करती है, (2) यह उद्देश्य वास्तव मे पहले का ही प्रयोग माना जाता है—यह आर्थिक हलचल के द्वितीय-, तृतीय-, एव उच्चतरक्रम वाले प्रभावो को निर्धारित करना होता है। जब किसी आर्थिक हलचल का प्रभाव इतना विस्तृत होता है कि अर्थव्यवस्था के अधिकांश भाग पर इसकी प्रतिक्रियाएँ होती हैं, तो सामान्य सतुलन-विश्लेषण इसके अन्तिम प्रभावो के सम्बन्ध मे अधिक उपयुक्त उत्तर प्रस्तुत करता है। सर्वप्रथम, हलचल की एक व्यापक छपछपाहट-सी (big splash) होती है। आंशिक सतुलन-विश्लेषण इसका अध्ययन करता है। लेकिन इससे तरगें और इसके बाद लहरें उत्पन्न होती हैं जो एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं और छपछपाहट क क्षेत्र को भी प्रभावित करती हैं। लहरें उत्तरोत्तर दूर चलती जाती हैं एव वे निरतर छोटी होती जाती हैं और अन्त मे वे विलीन हो जाती हैं। सामान्य सतुलन के अस्त्रो की पुनर्समायोजनो की सम्पूर्ण शृ खलाओ के विश्लेषण के लिए आवश्यक होती है।

मान लीजिए, इस्पात की माँग मे वृद्धि के उच्चतम क्रम वाले प्रभावो की जाँच की जानी है। प्रथम-क्रम वाले अथवा आंशिक सतुलन के प्रभावो मे ऊँची कीमतें, दी हुई सुविधाओं के साथ उत्पत्ति की अधिक मात्रा, अधिक मुनाफे, एव इस्पात के उपयोग मे प्रयुक्त साधनों के स्वामियों को दिए जाने वाले अपेक्षाकृत अधिक भुगतान आते हैं। लेकिन ये अतिरिक्त हलचल उत्पन्न करते हैं। सम्बन्धित साधनो के स्वामियो की

आमदनी अधिक होने से अन्य वस्तुओं की माँग मे वृद्धि होती है जिससे अन्य उद्योगों मे हलचलें व समायोजन प्रारम्भ हो जाते हैं। इस्पात के स्थानापन्न पदार्थों की माँग बढ़ जाती है, जिससे हलचलों व समायोजनो की दूसरी शृंखला उत्पन्न हो जाती है। दूसरी क्रियाओं की तरफ से उत्पादन-क्षमता इस्पात के निर्माण की तरफ अग्रसर हो जायगी। अत मे, सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था मे इसके प्रभाव महसूस किये जायेंगे। यदि ऐसी हलचल का पूर्ण प्रभाव निर्धारित करना है, तो सामान्य सन्तुलन-विश्लेषण को इस काम के लिए आवश्यक उपकरण उपलब्ध करने होंगे।

चूँकि सामान्य सतुलन-विश्लेषण मे अर्थव्यवस्था के सभी अगो के अतर्सम्बन्ध शामिल होते हैं, इसलिए यह अनिवार्यत काफी जटिल हो जाता है। इसके दो प्रमुख रूप होते हैं। प्रथम मे वालरा (Walras) का अनुकरण करते हुए, अधिकांश अर्थशास्त्री सामान्य सतुलन का गणितीय भाषा मे विवेचन करना सुविधाजनक मानते है। आर्थिक इकाइयो की परस्पर निर्भरता एक साथ पाये जाने वाले समीकरणो की एक प्रणाली के माध्यम से व्यक्त की जाती है जिसमे कई आर्थिक चलराशियो (variables) को एक-दूसरे से सम्बद्ध किया जाता है। यह भी दर्शाया जा सकता है कि चलराशियो को सम्बद्ध करने वाले जितने समीकरण होते है उतनी ही चलराशियाँ निर्धारित की जानी होती है। समीकरणो की एक प्रणाली को हल करने से चलराशियो के ऐसे मूल्य प्राप्त होते हैं जो आर्थिक प्रणाली के लिए सामान्य सतुलन के अनुरूप होते हैं।[1] सामान्य सतुलन का वालरा के द्वारा प्रस्तुत किया गया रूप अनिवार्यत एक ऐसा सैद्धान्तिक ढांचा प्रदान करता है जिसकी सहायता से हम अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो के पारस्परिक सम्बन्ध समझ सकते है।

दूसरा, और अपेक्षाकृत नया रूप, वैसले डब्ल्यू० लिओन्तीफ (Wassily W. Leontief) का इन्पुट-आउटपुट विश्लेषण (आगत-निर्गत विश्लेषण) है।[2] इन्पुट-आउटपुट दृष्टिकोण वालरा के अमूर्त दृष्टिकोण (abstract approach) का ही व्यावहारिक या अनुभवाश्रित स्वरूप है। यह अर्थव्यवस्था को कई क्षेत्रो या उद्योगो मे विभाजित करता है जिसमे परिवार व सरकार अन्तिम माँग के "उद्योगो" के रूप मे शामिल होते है। प्रत्येक उद्योग को इस रूप मे देखा जाता है कि वह अन्य उद्योगो को अपना उत्पादित माल (आउटपुट) बेचता है; ये आउटपुट क्रेता-उद्योगो के लिए

1. देखिए : सी. ई फर्गूसन, **Microeconomic Theory**, 3rd ed., (Homewood Ill. Richard D. Irwin, Inc, 1972), Chap. 15.

2. इस दृष्टिकोण के उत्तम सर्वेक्षण व विश्लेषण के लिए देखिए–रोबर्ट डोर्फमैन, "The Nature and Significance of Input-Output", *Review of Economics and Statistics*, XXXVI (May 1954), pp. 121-133.

इन्पुट बन जाते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक उद्योग को अन्य उद्योगों की आउटपुट के क्रेता के रूप मे देखा जाता है। इसी तरह प्रत्येक उद्योग की अन्य उद्योगों पर निर्भरता स्थापित की जाती है। इस प्रणाली के मूल ढांचे के इर्द गिर्द एकत्र किये गये सांख्यिकीय तथ्य वस्तुओं, सेवाओं व साधनों के अन्तर-उद्योग-प्रवाहों (interindustry flows) के सम्बन्ध मे सूचना देने वाली व उपयोगी सामग्री प्रदान करते हैं। इन्पुट आउटपुट दृष्टिकोण इस बात की सम्भावना दर्शाता है कि यह बडी आर्थिक हलचलों के प्रभावो को सांख्यिकीय रूप म मापने एव उनका विश्लेषण करने के लिए और साथ मे राष्ट्रीय सकट की परिस्थितियों मे अर्थव्यवस्था की शक्ति को जुटाने के कार्य में उपयोगी सिद्ध होगा।

आर्थिक प्रणाली मे सामान्य सतुलन की प्राप्ति का आशय यह नहीं है कि पेरेटो इष्टतम (Pareto optimality) की दशा भी प्राप्त कर ली जाती है। कीमत-प्रणाली अर्थव्यवस्था को सामान्य सतुलन की ओर ले जाने की प्रवृत्ति दिखलाती है। लेकिन जब तक वस्तु-बाजार व साधन-बाजार दोनो मे शुद्ध प्रतियोगिता नही पायी जायेगी तब तक पेरेटो इष्टतम की दशा उत्पन्न नही हो सकेगी।

अनुकूलतम कल्याण की शर्तें

अर्थव्यवस्था मे अधिकतम कल्याण की शर्तें प्राय तीन समूहों मे बांटी जाती हैं।
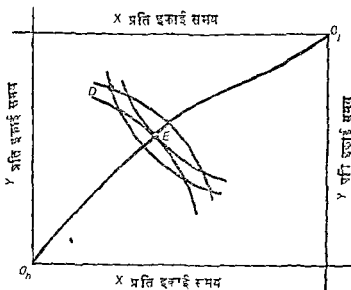
चित्र 18–1 अनुकूलतम उपभोक्ता-कल्याण . स्थिर पूर्तियाँ

प्रथम में वे शर्तें आती हैं जो वस्तुओं व सेवाओं की पूर्ति के स्थिर रहने पर उपभोक्ता के अधिकतम कल्याण का सृजन करती हैं। द्वितीय में, साधनों की पूर्तियों को स्थिर मान लेने पर उत्पादन की अधिकतम कार्यकुशलता आती है। तृतीय में उपभोक्ता के कल्याण व अधिकतम उत्पादन की कार्यकुशलता की दशाएँ एक साथ प्रस्तुत की जाती है ताकि उन दशाओं को निर्धारित किया जा सके जिनके अन्तर्गत विभिन्न वस्तुओं व सेवाओं की मात्राएँ इष्टतम (optimal) होती हैं।

उपभोक्ता का अधिकतम कल्याण : स्थिर पूर्तियाँ

वस्तुओं व सेवाओं की प्रति इकाई समयानुसार स्थिर पूर्तियों के साथ उपभोक्ता के अधिकतम कल्याण की दशाएँ चित्र 18–1 के दो-वस्तु, दो व्यक्ति मॉडल में प्रस्तुत की गई हैं। यदि दो उपभोक्ताओं H और J के बीच दो वस्तुओं X और Y का वितरण प्रारम्भ में प्रसंविदा वक्र से दूर D जैसे किसी बिन्दु पर होता है तो ऐसे विनिमय किये जा सकते हैं जिनमें किसी व्यक्ति के कल्याण को कम किये बिना किसी अन्य व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि की जा सकती है। वितरण D से वितरण E तक होने वाली गति (movement) से दोनों के कल्याण में वृद्धि होती है। जब एक बार प्रसंविदा-वक्र का वितरण प्राप्त हो जाता है, तो आगे के विनिमयों से एक उपभोक्ता को जो लाभ होगा वह दूसरे को हानि पहुँचा कर ही होगा। प्रसंविदा वक्र पर कोई भी बिन्दु दो उपभोक्ताओं के बीच X और Y के पेरेटो इष्टतम वितरण का सूचक होता है। ऐसा प्रत्येक बिन्दु निम्न दशा से परिभाषित होता है :

$$MRS_{xy}^{h} = MRS_{xy}^{j} \quad \text{....(18.1)}$$

यह शर्त अर्थव्यवस्था में अनेक वस्तुओं व सेवाओं और अनेक उपभोक्ताओं पर फैलायी जा सकती है।

कभी-कभी किसी वस्तु या सेवा के उपभोग में बाह्य प्रभाव या बाह्यताएँ (externalities) शामिल होती हैं। बाह्यता उस स्थिति में उत्पन्न होती है जबकि एक व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाले वस्तु के उपभोग से किसी दूसरे उपभोक्ता के द्वारा प्राप्त संतोष का स्तर प्रभावित हो जाता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए H और J दो व्यक्ति पड़ौसी हैं, और H अपनी संगीत-सम्बन्धी क्षमता बढ़ा लेता है, और J जिसकी संगीत की रुचि H की रुचि से मेल खाती है, अब H के संगीत को सुनकर आनन्द उठा सकता है। J को H के उपभोग से बाह्य लाभ मिलता है–संगीत और अन्य वस्तुओं व सेवाओं के बीच उसके तटस्थता-वक्रों का समूह उसके तटस्थता मानचित्र के मूलबिन्दु की ओर अन्दर की तरफ खिसक जाता है। इसके अलावा बाह्यता (externality) विपरीत दिशा में भी काम कर सकती थी। H के संगीत से J तंग भी हो

सकता है जिससे संगीत व अन्य वस्तुओ और सेवाओ के बीच उसके तटस्थता वक्रों का समूह उसके तटस्थता-मानचित्र के मूलबिन्दु से बाहर की ओर खिसक जाता है।[3]
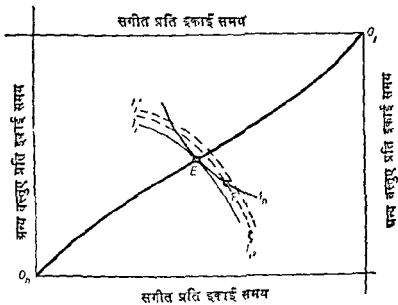
चित्र 18-2 उपभोग मे बाह्य प्रभाव या बाह्यताएँ (Externalities)

जब उपभोग मे बाह्यता पायी जाती है तो हम यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि चित्र 18-2 मे प्रसविदा-वक्र के E जैसे बिन्दु पर पैरेटो इष्टतम की स्थिति होगी या नहीं। मान लीजिए H के द्वारा संगीत की क्षमता (stereo capacity) के विस्तार के माध्यम से संगीत की खरीद मे वृद्धि होने से J के सतोष मे वृद्धि हो जाती है। संगीत के लिए वस्तुओ व सेवाओ का जो विनिमय उपभोक्ताओ को वितरण E से वितरण F की तरफ ले जाता है, उससे H के सतोष के स्तर मे कोई परिवर्तन नहीं होगा। मान लीजिए, H के द्वारा संगीत के बढे हुए उपभोग से J को जो बाह्य लाभ प्राप्त होते हैं, वे J के तटस्थता वक्रो को O_J मूलबिन्दु की ओर खिसका देते हैं, ताकि पहले I_J के द्वारा सूचित किया जाने वाला सन्तुष्टि का स्तर अब I_J' के द्वारा सूचित

---

3. J का उपयोगिता फलन निम्न रूप लेता है

$$U_J = f(X_J, Y_J, X_h)$$

जिसमें X_J और Y_J J के दो वस्तुओ, X और Y, के उपभोग को सूचित करते हैं, और X_h, H के X के उपभोग को सूचित करता है।

किया जाता है। F बिन्दु पर, J पहले से ऊँचे सन्तुष्टि के स्तर पर होगा जो I_{J2}' से सूचित होगा; और चूँकि H के सतोष मे कोई कमी नही हुई है, इसलिए दोनो उपभोक्ताओ का सयुक्त रूप से कल्याण E बिन्दु की अपेक्षा अधिक होगा।

उत्पादन मे अधिकतम कार्यकुशलता : साधनों की पूर्तियो के दिये हुए होने पर—कार्यकुशलता की शर्तें बाह्यताओ के न पाये जाने पर—उत्पादन मे अधिकतम कार्यकुशलता उत्पादन की प्रक्रियाओ मे पेरेटो इष्टतम स्थिति को सूचित करती है। साधनो की उपलब्ध पूर्तियो के दिये हुए होने पर, ये वस्तुओ व सेवाओ के उत्पादन मे इस प्रकार से आवटित की जानी चाहिएँ कि एक वस्तु का उत्पादन उस समय तक नही बढ़ाया जा सकता जब तक कि दूसरी वस्तु के उत्पादन मे कमी न हो जाय।
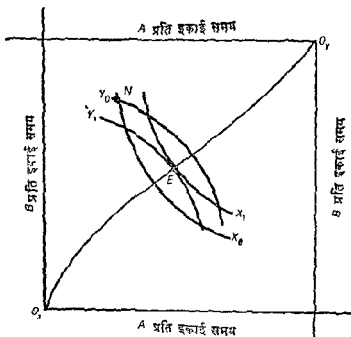
चित्र 18–3 अनुकूलतम उत्पादन-कार्यकुशलता

चित्र 18–3 के दो-साधन, दो-वस्तु मॉडल मे कार्यकुशलता की दशाएँ प्रदर्शित की गई हैं। X और Y वस्तुओ के उत्पादन में A और B साधनो की स्थिर पूर्तियाँ काम में ली जाती हैं। दो वस्तुओ के बीच साधनो का कोई भी वितरण जो प्रसविदा-वक्र पर होता है, जैसे E है, तो वह N जैसे वितरण से, जो प्रसविदा-वक्र पर नहीं है, ज्यादा कार्यकुशल (more efficient) माना जाता है। N जैसे किसी प्रारम्भिक

वितरण के दिये हुए होने पर किसी भी एक वस्तु की उत्पत्ति दूसरी वस्तु का परित्याग किये बिना बढ़ायी जा सकती है। X की उत्पत्ति में A ज्यादा व B कम लगाकर एवं Y की उत्पत्ति में A कम व B ज्यादा लगाकर दोनों वस्तुओं की उत्पत्ति में वृद्धि करना सम्भव हो सकता है जिससे N बिन्दु से E बिन्दु पर जाना सम्भव हो जाता है। E जैसे किसी वितरण के दिये हुए होने पर, एक वस्तु की कुछ मात्रा का परित्याग किये बिना किसी भी वस्तु की उत्पत्ति में वृद्धि नहीं की जा सकती। अतः प्रसंविदा-वक्र के किसी भी बिन्दु पर साधनों का अधिकतम कार्यकुशलता का आवंटन सूचित किया जाता है। ऐसे किसी भी बिन्दु को निर्धारित करने वाली शर्त निम्नांकित होती है

$$MRTS_{ab}^{x} = MRTS_{ab}^{y} \quad \ldots (18.2)$$

इन शर्तों का विस्तार किया जा सकता है ताकि वे अर्थव्यवस्था में पाये जाने वाले अनेक साधनों एवं वस्तुओं व सेवाओं को शामिल कर सकें।

चित्र 18-3 के प्रसंविदा वक्र के द्वारा दर्शाये जाने वाले X और Y के कार्य-कुशलता से उत्पादित किये जाने वाले संयोगों की असीमित संख्या का चित्र 18-4 के रूपान्तरण वक्र द्वारा भी प्रदर्शित किया जा सकता है। रूपान्तरण वक्र पर X और Y के प्रत्येक संयोग के लिए साधन प्रत्येक वस्तु पर इष्टतम संयोगों में आवंटित होते हैं। रूपान्तरण वक्र को प्रायः उत्पादन सम्भावना वक्र कहना भी उपयुक्त होगा। किसी भी बिन्दु पर इसका ढाल उस दर को मापता है जिस पर एक वस्तु दूसरी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए त्यागी जानी चाहिए, अर्थात् यह MRT_{xy} को मापता है।

बाह्यताओं के प्रभाव (The Effects of Externalities)—यदि एक वस्तु के उत्पादन में बाह्यताएँ पायी जाती हैं तो यह सम्भव हो सकता है कि अब प्रसंविदा वक्र अधिकतम कार्यकुशलता की दशाएँ न दिखलाए। भीड़भाड़ से युक्त सुविधाएँ (congested facilities) व ह्रासता की एक बहुत सामान्य किस्म को प्रदर्शित करती है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि अन्य साधनों के साथ सार्वजनिक सड़क (highway) की सुविधाएँ गेहूँ के उत्पादकों और गाड़ियों के उत्पादकों के द्वारा अपने माल को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में प्रयुक्त की जाती हैं। प्रारम्भ में ये उपयोग-कर्ताओं के समूह सड़कों पर इतनी भीड़-भाड़ उत्पन्न कर देते हैं कि परिवहन में विलम्ब होने लगता है। चित्र 18-5 में सड़क की सुविधाओं व अन्य साधनों के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर गेहूँ के उत्पादकों और गाड़ियों के उत्पादकों के लिए E बिन्दु पर समान होती है। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि साधनों का यह आवंटन इष्टतम ही हो। यदि E बिन्दु पर सड़क की भीड़भाड़ होती है, तो एक उद्योग में
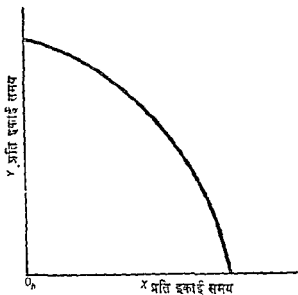
चित्र 18–4 एक रूपान्तरण वक्र (A Transformation curve)
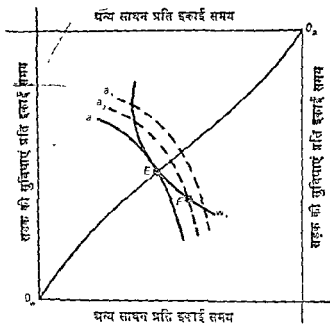
चित्र 18–5 उत्पादन में बाह्यताएँ (Externalities in Production)

फर्मों के द्वारा सडको के उपयोग मे कमी कर देने से दूसरे उद्योग मे सडक की सुविधाओ की उत्पादकता मे वृद्धि हो जायेगी ।

मान लीजिए गेहूँ के उत्पादक सडको का उपयोग कम कर देते हैं, लेकिन अपनी उत्पत्ति का स्तर W_1 पर कायम रखते है और इसके लिए वे बिना भीडभाड के परिवहन के वैकल्पिक रूपो के अपने उपयोग को बढा देते हैं, जिससे वे बिन्दु E से बिन्दु F तक चले जाते है । इस गतिशीलता से गाडी-उत्पादको के समोत्पत्ति वक्रो का समूह या समुच्चय (set) O_a मूलबिन्दु की ओर खिसक जाता है और अब
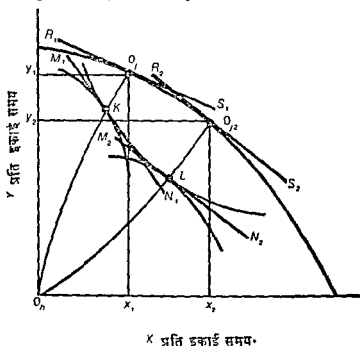
चित्र 18–6 अधिकतम कल्याण की पूरी दशाएँ

गाडियो की a_1 इकाइयाँ चिह्नित रेखा a_1' से सूचित की जाती है । F बिन्दु पर गाडियो का उत्पादन a_2' पर होगा जो पहले से ऊँचे स्तर पर होगा । साथ मे कुल गेहूँ के उत्पादन मे कोई परिवर्तन नही होगा । साधन के विनिमय से उत्पादन की कार्यकुशलता मे वृद्धि हो गई है ।

वस्तुओ व सेवाओ की उत्पत्ति की इष्टतम मात्राएँ

हमने अभी तक यह निर्धारित नही किया है कि रूपातरण वक्र पर प्रदर्शित वस्तुओ के कौन-से सयोग उपभोक्ताओ को इष्टतम कल्याण प्रदान करेंगे । यह मानते हुए कि उत्पादन की कोई बाह्यताएँ (बाहरी प्रभाव) नही हैं, चित्र 18–6 का रूपातरण

वक्र X और Y वस्तुओ के उन संयोगो को दर्शाता है जो A और B साधनो से उस स्थिति मे उत्पन्न किये जा सकते हैं जबकि उनका कार्यकुशलता से उपयोग किया जाता है; अर्थात्, जब प्रत्येक संयोग के लिए $MRTS_{ab}^x = MRTS_{ab}^y$ होता है। किसी भी बिन्दु पर रूपान्तरण वक्र का ढाल, MRT_{xy} उस दर को बतलाता है जिस पर वस्तुओ के उस संयोग के लिए Y को X मे तकनीकी रूप से बदलना सम्भव होता है।

रूपातरण वक्र पर X और Y के किसी भी संयोग के लिए उपभोक्ताओ के लिए एक एजवर्थ बॉक्स (Edgeworth box) का निर्माण किया जा सकता है जो उस संयोग को बनाने वाली पूर्तियो के इष्टतम वितरण को दर्शाता है। चित्र 18–6 मे O_{J1} संयोग पर एजवर्थ बॉक्स $O_h\, y_1\, O_{J1}\, x_1$ दो-उपभोक्ता, दो वस्तु मॉडल के लिए उपयुक्त है। O_{J2} संयोग के लिए उपयुक्त बॉक्स $O_h\, y_2\, O_{J2}\, x_2$ है। स्मरण रहे कि यहां उपभोक्ता H के लिए मूलबिन्दु O_h एक स्थिर स्थिति मे रहता है, इसलिए रूपातरण रेखाचित्र पर X और Y के अक्षो के सन्दर्भ मे खीचे गये तटस्थता वक्र सभी सम्भव बॉक्सो के लिए एक-से होते हैं। लेकिन उपभोक्ता J के लिए तटस्थता मानचित्र का मूलबिन्दु रूपातरण वक्र पर X और Y के लिए प्रदर्शित प्रत्येक भिन्न संयोग के लिए और प्रत्येक भिन्न बॉक्स के लिए भिन्न होता है। परिणामस्वरूप, प्रत्येक भिन्न बॉक्स के लिए तटस्थता वक्रो का समूह फिर से खींचा जाना चाहिए।

प्रश्न उठता है कि यदि X और Y का उत्पादित संयोग O_{J1} होना है तो क्या यह प्रत्येक वस्तु की इष्टतम मात्रा का द्योतक होगा ? चूंकि यह रूपातरण वक्र पर पडता है, इसलिए वस्तुओ को अधिकतम कार्यकुशलता से उत्पादित किया जाता है। इसके अतिरिक्त H और J उपभोक्ताओ के बीच वस्तुओ के संयोग का कोई भी वितरण (जैसे K) जो प्रसंविदा-वक्र O_hO_{J1} पर पाया जाता है, उस विशिष्ट संयोग का कल्याण को अधिकतम करने वाला वितरण होता है। फिर भी वस्तुओ की मात्राओ का O_{J1} संयोग, उपभोक्ताओ के बीच वस्तुओं के K वितरण के साथ अधिकतम कल्याण की स्थिति को नही उत्पन्न करता है K बिन्दु मे से M_1N_1 रेखा का ढाल और H और J के तटस्थता-वक्रो की स्पर्श रेखा दोनो उपभोक्ताओ के लिए K बिन्दु पर MRS_{xy} को मापता है। यह उस दर को सूचित करता है जिस पर दोनो उपभोक्ता X के बदले मे Y को त्यागने के लिए उद्यत होंगे। O_{J1} बिन्दु पर R_1S_1 का ढाल, जो रूपातरण वक्र की स्पर्श रेखा भी है, MRT_{xy} को मापता है, यह वह दर है जिस पर अधिक X का उत्पादन करने के लिए Y का त्याग करना तकनीकी दृष्टि से आवश्यक होता है। चूंकि $MRS_{xy} > MRT_{xy}$ (अर्थात् उपभोक्ता X की एक अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए Y की उस मात्रा से ज्यादा मात्रा त्यागने के लिए तत्पर हैं जो उत्पादन की प्रक्रियाओ मे आवश्यक समझी जाती है), इसलिए दोनो

उपभोक्ताओं के कल्याण में X की उत्पत्ति में वृद्धि करके और Y की उत्पत्ति में कमी करके अभिवृद्धि की जा सकती है।

X और Y उत्पत्ति की मात्राओं के रूप में इष्टतम कल्याण और इस उत्पत्ति के H और J उपभोक्ताओं के बीच वितरण की शर्तें इस प्रकार होंगी

$$MRS_{xy}=MRT_{xy} \quad \ldots (18.3)$$

संयोग O_{j2} और वितरण L पर विचार कीजिए। M_2N_2 व R_2S_2 रेखाएँ समानान्तर है जो सूचित करती हैं कि $MRS_{xy}=MRT_{xy}$ है। अतएव, यह इष्टतम कल्याण की उत्पत्ति का संयोग व वितरण है। L से परे जरा भी गतिशीलता अथवा O_{j2} से परे की गतिशीलता कम से कम एक उपभोक्ता के कल्याण को घटा देगी।

लेकिन वस्तुओं के अनुकूलतम कल्याण का संयोग और उपभोक्ताओं के बीच वस्तु का वितरण अनुपम (unique) नहीं होता है। उत्पत्ति संयोग व वस्तु वितरण की असीमित सम्भावनाएँ हो सकती हैं जिन पर $MRS_{xy}=MRT_{xy}$ हो। उत्पत्ति संयोग O_{j1} पर, यद्यपि K वितरण पर $MRS_{xy}\neq MRT_{xy}$ फिर भी प्रसंविदा-वक्र O_hO_{j1} पर अन्य संयोग हो सकते हैं जिन पर $MRS_{xy}=MRT_{xy}$ हो। हालांकि यह निश्चय नहीं होगा कि व हाग हो। रूपान्तरण वक्र के द्वारा प्रदर्शित अन्य उत्पत्ति-संयोगो के बारे में भी यही बात कही जा सकती है।

अनुकूलतम कल्याण की शर्तों का सारांश—अब संक्षेप में पेरेटो इष्टतम स्थिति (Pareto optimality) के अस्तित्व के लिए अर्थव्यवस्था में तीन शर्तों की पूर्ति होनी चाहिए (1) वस्तु की उत्पत्ति की मात्राओं का वितरण इस प्रकार होना चाहिए कि एक वस्तु के लिए दूसरी वस्तु के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर सभी उपभोक्ताओं के लिए एक-सी होनी चाहिए, (2) साधनों का आवंटन इस प्रकार होना चाहिए कि एक साधन के लिए दूसरे साधन की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर उन सब वस्तुओं के उत्पादन में एक-सी हो जिनमें उन साधनों का उपयोग किया जाता है, और (3) वस्तुओं की उत्पत्ति की मात्राएँ व उपभोक्ताओं के बीच उनका वितरण इस प्रकार का हो कि एक वस्तु के लिए दूसरी वस्तु के प्रतिस्थापन की सीमान्त दर वस्तुओं के रूपान्तरण की सीमान्त दर के बराबर हो।

'पेरेटो अनुकूलतम' की दशाएँ हम इस बात की सूचना नहीं देती कि उपभोक्ताओं के बीच वस्तुओं का कौनसा इष्टतम वितरण 'अनुकूलतम" में से अनुकूलतम होगा और वस्तुओं का कौनसा इष्टतम संयोग 'अनुकूलतम" में से अनुकूलतम होगा। हम वस्तुओं के संयोग के उन वितरणों को चुन सकते हैं जिन पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दरें रूपान्तरण की तदनुरूप सीमान्त दरें बराबर नहीं होती हैं। लेकिन इनको छोड़ने के बाद भी हमारे समक्ष अनन्त वैकल्पिक सम्भावनाएँ रह जाती हैं।

निजी उद्यम व सामान्य सन्तुलन

क्या कीमत तंत्र के द्वारा निर्देशित व सचालित होने वाली निजी उद्यमवाली आर्थिक प्रणाली सामान्य सन्तुलन की स्थितियो की तरफ बढते समय अनुकूलतम कल्याण की दशाओ की ओर अग्रसर होती है ? पिछले अनुभाग मे वर्णित अनुकूलतम कल्याण की दशाएँ किसी भी आर्थिक प्रणाली पर लागू होती है—चाहे वह समाजवादी हो, निजी उद्यमवाली हो, अथवा अन्य हो। अत एक निजी उद्यमवाली प्रणाली की कार्य सिद्धि का मूल्याकन करने के लिए सन्तुलन की उन शर्तों की जाँच करना आवश्यक है जिनकी तरफ यह बढती है, ताकि यह निश्चय किया जा सके कि ये शर्तें अनुकूलतम कल्याण की शर्तों से मेल खाती है या उनके समीप पहुँच पाती हैं अथवा नही। इस लक्ष्य की तरफ अग्रसर होने के लिए हम इस ग्रन्थ मे विकसित *किये गए सिद्धान्तो का उपयोग करेंगे, उनका साराश प्रस्तुत करेंगे और उनको आगे* बढायेंगे।

उपभोक्ता सन्तुलन स्थिर पूर्तियाँ

सर्वप्रथम, उपभोक्ता के चुनाव की समस्या पर विचार कीजिए। कल्पना कीजिए कि वस्तुओ व सेवाओ की पूर्तियाँ स्थिर रहती हैं—ये प्रत्येक माह की पहली तारीख को स्वत अस्तित्व मे आ जाती हैं। उपभोक्ताओ के बीच कोई भी वितरण पाया जा सकता है, लेकिन यह प्रतिमाह नही बदलेगा। उपभोक्ता के अधिमान-प्रारूप स्थिर होते हैं। एक मौद्रिक प्रणाली का अस्तित्व होता है। प्रारम्भ मे कीमत-प्रारूप यादृच्छिक (random) होता है। प्रत्येक वस्तु या सेवा अनेक व्यक्तियो के हाथो मे पाई जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि विनिमय की परिस्थिति के पाये जाने पर शुद्ध प्रतियोगिता पाई जाती है। यदि व्यक्ति क्रय विक्रय के लिए, अथवा विनिमय के लिए स्वतन्त्र होते हैं, तो क्या होगा ? प्रत्येक उपभोक्ता सन्तोष को अधिकतम करना चाहेगा।

यदि X और Y दो वस्तुओ के लिए, जिनकी प्रारम्भिक कीमत P_x और P_y है, *उपभोक्ता यह पाता है कि* $MRS_{xy} \neq P_x / P_y$, तो वह विनिमय मे लगना चाहेगा। जिस किसी उपभोक्ता के लिए $MRS_{xy} > P_x / P_y$ होती है, वह Y बेचना और X खरीदना चाहेगा, ताकि वह ऊँचे तटस्थता वक्रो पर जा सके। जिस उपभोक्ता के लिए $MRS_{xy} < P_x / P_y$ है वह X बेचना और Y खरीदना चाहेगा ताकि वह ऊँचे तटस्थता-वक्रो पर जा सके।

प्रारम्भिक कीमत प्रारूप पर कुछ मदो (items) की पूर्तियाँ समस्त उपभोक्ताओ के द्वारा अपनी इच्छा के मुताबिक खरीद सकने के पूर्व ही समाप्त हो सकती है। इन

मदो की कीमतें बढेगी, जिससे उपभोक्ताओ के द्वारा चाही जाने वाली मात्राएँ अन्य वस्तुओ की मात्राओ की तुलना मे घटेगी। कीमतें उन स्तरो पर चली जाएँगी जहाँ उपभोक्ता प्रतिमाह उपलब्ध होने वाली सम्पूर्ण मात्राओ तक ही अपने आपको सीमित रखने के लिए उद्यत हो जाएँगे।

अन्य वस्तुओं की पूर्तियाँ उनके प्रारम्भिक कीमत स्तरो पर अत्यधिक प्रचुर मात्रा मे पाई जा सकती हैं। जिनके पास माल का अतिरेक या आधिक्य होता है उसको घटाने के लिए वे बिक्री की कीमतें गिरा देगे। कीमतें गिर कर उन स्तरो पर पहुँच जाएँगी जहाँ उपभोक्ता प्रतिमाह उपलब्ध-सम्पूर्ण मात्राओ को लेने के लिए उद्यत हो जाएँगे।

सामान्य सन्तुलन उस समय पाया जाता है जबकि वस्तुओ व सेवाओ की कीमतें इस प्रकार से निर्धारित होती हैं कि प्रत्येक उपभोक्ता उनमे से प्रत्येक वस्तु की वह मात्रा प्राप्त करता है जिसे वह अन्य वस्तुओ की तुलना मे चाहता है, और जब किसी भी मद का न तो अभाव होता है और न आधिक्य ही। प्रत्येक उपभोक्ता के लिए किसी भी एक वस्तु X का दूसरी वस्तु Y के लिए MRS_{xy} बराबर होना है P_x / P_y के। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि एक उपभोक्ता के लिए MRS_{xy} दूसरे उपभोक्ता के लिए MRS_{xy} के बराबर होना है। इसका कारण यह है कि सभी उपभोक्ताओ के समक्ष कीमतो के अनुपात समान रहते है। चूंकि समस्त उपभोक्ताओ के लिए MRS_{xy} समान होती है, इसलिए वे सभी प्रसविदा वक्र पर होते हैं। इस प्रकार शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओ मे एव बाह्यताओ (externalities) की अनुपस्थिति मे, स्थिर पूर्तियो के साथ सामान्य सन्तुलन की दशाएँ स्थिर पूर्तियो के साथ अनुकूलतम कल्याण की दशाओ से मेल खाती है।

उत्पादक सन्तुलन साधन-पूर्तियो के दिये हुए होने पर

अब हम उत्पादन को सगठित करने के सम्बन्ध मे कीमत-तन्त्र के सचालन पर आते है। विवेचन की सुविधा के लिए कई मान्यताएँ उपयोगी सिद्ध होगी। हम यह मान लेते है कि प्रति माह साधनो की पूर्तियाँ स्थिर रहती हैं और उनकी प्रारम्भिक कीमतें यादृच्छिक (random) होती है। उत्पादन-तकनीकों की सीमा दी हुई होती हैं। शुरू मे हम उत्पादन के सगठन को शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक मॉडल मे देखेंगे। तत्पश्चात् हम विश्लेषण मे सशोधन करेंगे ताकि एकाधिकार व एकक्रेताधिकार की दशाओ का समावेश किया जा सके।

शुद्ध प्रतियोगिता — मान लीजिए कि उपभोक्ता जिन स्थिर पूर्तियो को प्राप्त करते हैं वे शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक उद्योगो मे काम करने वाली फर्मों के द्वारा उत्पादित की जाती हैं, और ये फर्में अपने लाभ अधिकतम करने का प्रयास करती है। प्रारम्भिक

साधन-कीमतो के दिये हुए होने पर प्रत्येक फर्म विभिन्न साधनो की उन मात्राओ को प्राप्त करने का प्रयास करती हैं जिस पर प्रत्येक साधन की सीमात आय उत्पत्ति इसकी सीमात साधन लागत के बराबर होती है ।

साधनो की कीमतो के प्रारम्भिक समूह (initial set) पर फर्में यह महसूस करेंगी कि वे कुछ साधनो की इतनी मात्रा प्राप्त नही कर पाएँगी जहाँ पर सीमात आय उत्पत्ति की मात्राएँ उनकी सम्बन्धित सीमात साधन लागतो के बराबर हो जाय, अर्थात् अभाव उत्पन्न हो जाते है । इन साधनो की कीमतें बढ जाएँगी, जो फर्मों को उनके लिए अन्य साधन प्रतिस्थापित करने का प्रयास करने की प्रेरणा देगी । कीमतें उस समय सन्तुलन के स्तर प्राप्त कर लेंगी जब प्रत्येक फर्म अपनी इच्छानुसार मात्राएँ प्राप्त करने मे समर्थ हो जाती हैं ।

जब प्रारम्भिक कीमतो पर प्रत्येक फर्म साधनो की उन मात्राओ को लेती हैं जिन पर उनकी सीमान्त आय उत्पत्ति की मात्राएँ सीमात साधन लागतो के बराबर होती है तो कुछ अन्य साधनो का पूरा उपयोग नही किया जा सकेगा । इन साधनो का आधिक्य इनके स्वामियो को इनकी कीमतो को कम करने के लिए बाध्य करेगा, ताकि फर्मों को अब जो अपेक्षाकृत अधिक खर्चीले साधन होते हैं उनके बदले मे इन साधनो को प्रयुक्त करने की प्रेरणा मिल सके । कीमतें उस समय सन्तुलन मे होगी जब फर्में बाजार मे प्रस्तुत की जाने वाली समस्त मात्राओ को ले सकने को तत्पर हो जाएँ ।

सामान्य सन्तुलन उस स्थिति मे पाया जाता है जबकि प्रत्येक साधन की कीमत इस प्रकार से निर्धारित की जाय कि न तो आधिक्य रहे और न अभाव, और जब प्रत्येक फर्म प्रत्येक साधन की वह मात्रा लेती है जिस पर इसकी सीमात आय उत्पत्ति इसकी सीमात साधन लागत के बराबर हो जाय । ये दशाएँ और साथ मे साधन व वस्तु-बाजारो मे शुद्ध प्रतियोगिता नीचे दिये गए अतिरिक्त महत्वपूर्ण परिणामो को उत्पन्न करती हैं ।

शुद्ध प्रतियोगिता के पाए जाने के कारण प्रत्येक साधन की सीमात उत्पत्ति का मूल्य साधन-कीमत के बराबर होगा । किसी भी दिए हुए साधन A के लिए $MRP_a = MRC_a$ का आशय यह भी है कि $VMP_a = P_a$ है, क्योकि किसी भी वस्तु X के लिए जो A के द्वारा उत्पन्न की जा सकती है $MR_x = P_x$ होगा ; और A को खरीदने वाली किसी भी फर्म के लिए $MRC_a = P_a$ होगा ।

जब कई वस्तुओ के उत्पादन मे कई एक-से साधनो (*common resources*) का उपयोग करने वाली फर्में साधनो का उपयोग लाभ अधिकतम करने वाली मात्राओ मे करती हैं, तो वे पेरेटो इष्टतम दृष्टिकोण से उनका उपयोग कार्यकुशलता से भी करती है । मान लीजिए, X और Y का उत्पादन करने वाली फर्में दो साधन A

और B प्रयुक्त करती हैं। उद्योग X में कोई भी फर्म साधनों की उन मात्राओं का प्रयोग करती है जिस पर

$$MPP_{ax} \times P_x = P_a$$

और

$$MPP_{bx} \times P_x = P_b.$$

अत

$$\frac{MPP_{ax}}{P_a} = \frac{1}{P_x} \text{ और } \frac{MPP_{bx}}{P_b} = \frac{1}{P_x}$$

अतएव ...(18.4)

$$\frac{MPP_{ax}}{P_a} = \frac{MPP_{bx}}{P_b} \text{ और } \frac{MPP_{ax}}{MPP_{bx}} = \frac{P_a}{P_b}$$

अथवा

$$MRTS_{ab}x = \frac{P_a}{P_b}.$$

इसी प्रकार, हम यह दर्शा सकते हैं कि

$$MRTS_{ab}y = \frac{P_a}{P_b}.$$

अतएव

$$MRTS_{ab}x = MRTS_{ab}y,$$

जो दो वस्तुओं के बीच दो साधनों के परेटो कार्यकुशल आवंटन की दशा होती है।

एकाधिकार व एकक्रेताधिकार — वस्तुओं की बिक्री में एकाधिकार कीमत-प्रणाली को विभिन्न वस्तुओं के बीच इस प्रकार साधन आवंटित करने से नहीं रोकेगा ताकि उनका प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में कार्यकुशलता से उपयोग किया जा सके, लेकिन एकक्रेताधिकार की कुछ मात्रा अवरोधक का काम करती है। यदि X और Y वस्तुओं की बिक्री में एकाधिकार पाया जाता है, लेकिन दोनों उद्योगों में फर्में A और B साधनों को प्रतिस्पर्धात्मक रूप में खरीदती हैं तो हम यह दर्शा सकते हैं कि प्रत्येक उद्योग में A और B इस प्रकार से खरीदे जाते हैं कि साधनों की सीमान्त आय उत्पत्ति की मात्राएँ उनकी सम्बन्धित साधन कीमतों के बराबर होती हैं, तब

$$MRTS_{ab}x = MRTS_{ab}y \qquad (18.5)$$

लेकिन यदि A और B की खरीद मे एकक्रेताधिकार की कुछ मात्रा पाई जाती है तो

$$MPP_{ax} \times MR_x = MRC_{ax}$$

और (18 6)

$$MPP_{bx} \times MR_x = MRC_{bx}$$

अतएव

$$\frac{MPP_{ax}}{MRC_{ax}} = \frac{MPP_{bx}}{MRC_{bx}} \quad \text{और} \quad \frac{MPP_{ax}}{MPP_{bx}} = \frac{MRC_{ax}}{MRC_{bx}}$$

अथवा

$$MRTS_{ab}{}^{x} = \frac{MRC_{ax}}{MRC_{bx}}$$

इसी प्रकार हम यह दर्शा सकते हैं कि

$$MRTS_{ab}{}^{y} = \frac{MRC_{ay}}{MRC_{by}} \qquad (18\cdot7)$$

साधन A के लिए X का उत्पादन करने वाली फर्म भी वही कीमत देगी जो Y का उत्पादन करने वाली फर्म देती है।[4] लेकिन दोनो फर्मों की A की किसी भी पूर्ति-कीमत पर यदि X का उत्पादन करने वाली फर्म के लिए A की पूर्ति की लोच, Y का उत्पादन करने वाली फर्म के लिए पाई जाने वाली पूर्ति की लोच से भिन्न होती है, तो

$$MRC_{ax} \neq MRC_{ay} \qquad ..(18\ 8)$$

इसी तरह, उसी प्रकार की परिस्थितियो के अन्तर्गत

$$MRC_{bx} \neq MRC_{by}$$

परिणामस्वरूप

$$MRTS_{ab}{}^{x} \neq MRTS_{ab}{}^{y},$$

और कीमत प्रणाली दो उद्योगों में साधनो के उपयोग में अनुकूलतम कार्यकुशलता नही ला पाएगी।

4 शुद्ध एकक्रेताधिकार मानने की बजाय जिसमे साधन A एक फर्म के लिए ही विशिष्टीकृत (specialized) हो जाता है, हम एकक्रेताधिकार की कुछ मात्रा मान लेते हैं जिसमे एक साधन की इकाइयाँ कुछ फर्मों मे गतिशील होती हैं और इनमे से कोई भी फर्म साधन की कुल उपलब्ध पूर्ति की पर्याप्त मात्रा खरीदती है ताकि वह साधन की कीमत प्रभावित कर सके।

वस्तुओं की उत्पत्ति के स्तर : साधनों की पूर्तियों के दिये हुए होने पर

इस अनुभाग में हम कीमत-तंत्र के द्वारा दर्शाये गए सामान्य संतुलन परिणामों से प्राप्त निष्कर्षों की चर्चा जारी रखेंगे। संतुलन उस समय पाया जाएगा जबकि (1) वस्तुओं व सेवाओं के कीमत-स्तर ऐसे होते हैं कि न तो अभाव होता है और न आधिक्य, (2) साधनों के कीमत-स्तर ऐसे होते हैं कि न अभाव होते हैं और न आधिक्य ही, (3) फर्में विभिन्न साधनों की वे मात्राएँ खरीदती हैं जिन पर उनकी सीमान्त आय उत्पत्ति की मात्राएँ उनकी सम्बन्धित सीमान्त साधन लागतों के बराबर होती है। पुन यहाँ भी हम प्रारम्भ में शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक बाजारों पर विचार करेंगे और तत्पश्चात् एकाधिकार व एकक्रेताधिकार के प्रभावों पर आएँगे।

शुद्ध प्रतियोगिता—वस्तु व साधन बाजारों में शुद्ध प्रतियोगिता की दशाओं के अन्तर्गत और बाह्यताओं या बाह्य प्रभावों (externalities) के अभाव में, कीमत प्रणाली के द्वारा निर्धारित साधनों का आवंटन और उत्पत्ति की मात्राएँ कल्याण के अधिकतम करेंगी। हम यह दर्शाएंगे कि कीमत प्रणाली दो वस्तुओं X और Y की उत्पत्ति का ऐसा संयोग स्थापित करेगी जहाँ पर

$$MRT_{xy} = MRS_{xy}. \quad \text{हो} \qquad ....(18\ 9)$$

सर्वप्रथम, दो वस्तुओं X और Y के बीच साधनों के आवटन पर विचार कीजिए। जब उद्योग X में फर्में दो साधन A और B प्रयुक्त करती हैं और अपने लाभ अधिकतम करती हैं तो प्रत्येक फर्म के लिए

$$\frac{MPP_{ax}}{P_a} = \frac{MPP_{bx}}{P_b} = \frac{1}{MC_x} = \frac{1}{P_x}, \qquad ....(18\ 10)$$

अथवा :

$$MC_x = P_x.$$

इसी प्रकार, उद्योग Y की फर्मों के लिए

$$\frac{MPP_{ay}}{P_a} = \frac{MPP_{by}}{P_b} = \frac{1}{MC_y} = \frac{1}{P_y}, \qquad ..(18\ 11)$$

अथवा

$$MC_y = P_y.$$

X और Y की उत्पत्ति के किसी भी संयोग पर MRT_{xy}, Y की उस मात्रा का माप है जिसका त्याग आर्थिक प्रणाली को करना होगा ताकि X की एक अतिरिक्त

इकाई का उत्पादन किया जा सके ; MRT_{xy} को $\frac{\Delta y}{\Delta x}$ के रूप मे व्यक्त किया जा सकता है ।

चूंकि X और Y दोनो के उत्पादन मे साधन कार्यकुशलता से प्रयुक्त किए जाते हैं, इसलिए Y की Δy मात्रा का त्याग करने की लागत अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति मे X की Δx मात्रा जोडने की लागत के बराबर होगी[5], अर्थात्

$$\Delta y \times MC_y = \Delta x \times MC_x$$

और ....(18.12)

$$\frac{\Delta y}{\Delta x} = \frac{MC_x}{MC_y}$$

चूंकि कीमत-प्रणाली वस्तु की उत्पत्ति के ऐसे सयोग पर ले जायगी जहाँ :

$$MC_x = P_x \text{ और } MC_y = P_y ,$$

तब : ....(18.13)

$$MRT_{xy} = \frac{\Delta y}{\Delta x} = \frac{MC_x}{MC_y} = \frac{P_x}{P_y} .$$

अब हम इन टुकडो को एक साथ जोड सकते हैं। कीमत प्रणाली उपभोक्ताओ को दो वस्तुओ X और Y की पूर्तियो मे ऐसे कीमत-अनुपात स्थापित करने के लिए प्रेरित करती है, ताकि प्रत्येक उपभोक्ता के लिए;

$$MRS_{xy} = \frac{P_x}{P_y} \qquad ....(18.14)$$

ये कीमतें बदले मे दो वस्तुओ के बीच साधनो का आवटन इस प्रकार करती हैं ताकि :

$$MC_x = P_x \qquad ....(18.15)$$

और :

$$MC_y = P_y$$

5. यह सम्बन्ध लागू होगा, क्योकि Y की Δy मात्रा का त्याग करने से मुक्त हुए साधनो की मात्रा X को Δx मात्रा के उत्पादन मे प्रयुक्त साधनो की मात्रा के बराबर होगी।

अथवा

$$\frac{MC_x}{MC_y} = \frac{P_x}{P_y}$$

बदले में $\frac{MC_x}{MC_y}$ का अनुपात MRT_{xy} का माप होता है ; इस प्रकार कीमत-प्रणाली X और Y के सामान्य सतुलन की उत्पत्ति की मात्राओं की तरफ ले जाती है ताकि

$$MRS_{xy} = MRT_{xy} \qquad ....(18\ 16)$$

सामान्य सतुलन की यह दशा X और Y की अनुकूलतम उत्पत्ति की मात्राओं के समूह की भी शर्त होनी है।

रूपान्तरण वक्र पर उत्पत्ति का कोई भी सयोग जैसे $MRS_{xy} \neq MRT_{xy}$ का आशय केवल यह है कि $MC_x \neq P_x$ और $MC_y \neq P_y$ उदाहरण के लिए, यदि $MRS_{xy} > MRT_{xy}$, जैसा कि चित्र 18-6 में K बिन्दु पर होता है, तो यह निष्कर्ष निकलेगा कि $MC_x < P_x$ और $MC_y > P_y$. कीमत-प्रणाली X की उत्पत्ति म वृद्धि व Y की उत्पत्ति में गिरावट लाएगी। ये परिवर्तन MRS_{xy} को घटाएँगे जिससे P_x कम होगी और P_y में वृद्धि होगी। साथ में वे MRT_{xy} को बढ़ा देते है, MC_x को बढ़ा देती है और MC_y को घटा देती है और यह उस बिन्दु तक होता है जहाँ $MC_x = P_x$, $MC_y = P_y$ और $MRS_{xy} = \frac{P_x}{P_y} = \frac{MC_x}{MC_y} =$ MRT_{xy} होगा।

एकाधिकार—वस्तु की बिक्री में एकाधिकार कीमत-तन्त्र के माध्यम से इष्टतम उत्पत्ति की मात्राओं की प्राप्ति में बाधा डालेगा। मान लीजिए X वस्तु एकाधिकारी रूप में बेची जाती है और Y वस्तु प्रतिस्पर्धात्मक रूप में बेची जाती है। कीमत-प्रणाली उत्पत्ति की मात्राओं के ऐसे समूह (set) पर ले जायेगी जहाँ प्रत्येक उपभोक्ता के लिए :

$$MRS_{xy} = \frac{P_x}{P_y}. \qquad ....(18\ 17)$$

लेकिन लाभ अधिकतमकरण एकाधिकारी को उत्पत्ति की वह मात्रा उत्पादित करने के लिए प्रेरित करेगा जहाँ $MC_x = MR_x < P_x$. Y के शुद्ध प्रतिस्पर्धी

उत्पादक उत्पत्ति की वह मात्रा प्रस्तुत करेंगे जहाँ $MC_y = P_y$ इस प्रकार

$$MRT_{xy} = \frac{MC_x}{MC_y} = \frac{MR_x}{P_y} < \frac{P_x}{P_y} = MRS_{xy} \qquad (18\ 18)$$

अनुकूलतम कल्याण की दृष्टि से X की उत्पत्ति का स्तर बहुत नीचा और Y की उत्पत्ति का स्तर बहुत ऊँचा होगा।

सारांश

इस अध्याय मे हमने उन शर्तों का सारांश प्रस्तुत किया है जिनकी पूर्ति अर्थ-व्यवस्था को करनी होगी ताकि पेरेटो अनुकूलतम के अर्थ मे अधिकतम कल्याण की स्थिति प्राप्त की जा सके। उसके बाद हमने निजी उद्यमवाली आर्थिक प्रणाली मे कीमत-तत्र के सचालन का साराश प्रस्तुत किया और यह जानने का प्रयास किया कि इसके परिणाम कहाँ तक पेरेटो इष्टतम होते हैं। कीमत प्रणाली पेरेटो इष्टतम दशा तक उस परिस्थिति मे पहुँचाती है जबकि सभी बाजार शुद्ध रूप से प्रतिस्पर्धात्मक होते हैं और उपभोग या उत्पादन मे बाह्यताएँ (externalities) नहीं पाई जाती। जब बिक्री के बाजारो मे एकाधिकार पाया जाता है तो उत्पत्ति की मात्राएँ इष्टतम मात्राओ से कम होती हैं। साधनो की खरीद मे एकक्रेताधिकार का और भी प्रतिकूल प्रभाव पडता है क्योकि यह क्रेताओ के द्वारा साधनो के उपयोग मे अकार्यकुशलता को जन्म देता है।

अध्ययन-सामग्री

Bator, Francis M, "The Simple Analytics of Welfare Maximization", *American Economic Review* (March 1957), pp 22–59

Reprinted in Breit, William and Harold M Hochman *Readings in Microeconomics* 2nd ed (New York Holt, Rinehart and Winston, Inc, 1971), Chapter 32

Baumol William J, *Economic Theory and Operations Analysis* 3rd ed (Englewood Cliffs, N J Prentice Hall, Inc 1972), Chap 16

अध्याय 19

रैखिक प्रोग्रामिंग

रैखिक प्रोग्रामिंग वह सरलतम व सबसे ज्यादा प्रयुक्त होने वाली गणितीय प्रोग्रामिंग तकनीक है जो द्वितीय महायुद्ध के समय से प्रचलित हुई है। यह वह तकनीक है *जिसके द्वारा निर्णय करने वाली एजेंसी अपने समक्ष होने वाली अधिकतमकरण* व न्यूनतमकरण की समस्याओं को उन शर्तों या प्रतिबन्धों के अन्तर्गत हल करती है जो उनके कार्यों को मर्यादित करते हैं। इसका विकास इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटरों (विद्युदणु संगणकों) के आगमन के साथ हुआ है और इन्हीं की वजह से इसमें तीव्र प्रगति भी हो पाई है।

रैखिक प्रोग्रामिंग तकनीकों के द्वारा अर्थव्यवस्था के कार्य-संचालन के सम्बन्ध में फर्म के परम्परागत सिद्धान्त के द्वारा प्रदत्त सूचना से अधिक और कोई सूचना नहीं प्रदान की जाती है। उनका प्रमुख गुण यह है कि वे संगणना की सम्भावनाएँ प्रस्तुत करती हैं जो परम्परागत सिद्धान्त में इसके उत्पादन, लागत व आय-फलनों (functions) की सरल, असतत व प्रायः अरैखिक प्रकृति के कारण नहीं पाई जाती हैं। निर्णय करने वाली एजेंसियों के समक्ष पर्यवेक्षणीय तथ्य (observable data) *साधारणतया सतत नहीं होते हैं और उन पर सम्भवतः सीमान्त विश्लेषण अथवा* कलन-तकनीकें (calculus techniques) नहीं लगाई जा सकती हैं। इस मान्यता के साथ कि पर्यवेक्षणीय तथ्यों के बीच सम्बन्ध रैखिक होते हैं, रैखिक प्रोग्रामिंग के जरिए जटिल अधिकतमकरण एवं न्यूनतमकरण की समस्याओं के सीधे हल निकाले जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त जिन समस्याओं का इस तरह का हल निकाला जा सकता है उनमें इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटरों का व्यापक उपयोग किया जा सकता है जो अभी तक अतिसूक्ष्म कलन (nfinitesimal calculus) की क्रियाओं को कर सकने में समर्थ नहीं हैं। कभी-कभी रैखिक सम्बन्धों के एकमात्र उपयोग से उत्पन्न होने वाली विकृतियाँ (distortions) इस तकनीक के माध्यम से प्राप्त परिणामों को निरर्थक कर देती हैं। लेकिन अनेक दशाओं में इस किस्म की विकृतियाँ बहुत कुछ नगण्य होती हैं। किसी भी अन्य तकनीक की भाँति इसके परिणाम तभी लाभप्रद हो सकते हैं *जबकि यह उत्तम निर्णय व सामान्य ज्ञान के आधार पर लागू की जाय।*

इस अध्याय में रैखिक प्रोग्रामिंग की प्रकृति व पद्धति प्रस्तुत की गई है। सर्व-

प्रथम, हम उन मान्यताओं को स्पष्ट करेंगे जिन पर रैखिक प्रोग्रामिंग की समस्याएँ निर्भर करती हैं, बाद में हम एक ऐसी सामान्य किस्म की अधिकतमकरण की समस्या एवं उसका रेखाचित्रीय हल प्रस्तुत करेंगे जिसमें एक आउटपुट और दो इन्पुट शामिल होते हैं। तृतीय, हम कई आउटपुट व इन्पुट (multiple outputs and inputs) को शामिल करने वाली अधिकतमकरण की समस्या एवं इसके हल को प्रस्तुत करेंगे। अन्त में हम अधिकतमकरण की समस्या के द्वैत हल (dual solution) पर विचार करेंगे।

मान्यताएँ

रैखिक प्रोग्रामिंग तकनीक कई मूलभूत मान्यताओं पर आधारित होती है। सर्वप्रथम, जिस निर्णय पर यह लागू की जाती है उसमें निर्णय करने वाली एजेंसी पर सदैव कुछ बन्धन होते हैं। द्वितीय, इन्पुट (आगत) व आउटपुट (निर्गत या उत्पत्ति) की कीमतें स्थिर मानी जाती हैं। तृतीय, फर्म के[1] इन्पुट-आउटपुट, आउटपुट-आउटपुट व इन्पुट-इन्पुट सम्बन्ध रैखिक माने जाते हैं। हम इन पर क्रमश: विचार करेंगे।

प्रतिबन्ध (The Constraints)

रैखिक प्रोग्रामिंग की समस्याओं में फर्म की क्रियाओं पर कई मर्यादाएँ होती हैं। फर्म के द्वारा प्रयुक्त विशेष किस्म की इन्पुटों या सुविधाओं पर मात्रा सम्बन्धी मर्यादाएँ हो सकती हैं। उदाहरणार्थ एक मोटरगाडी की अन्तिम-समन्वय-कडी (final assembly line) प्रति चौबीस घण्टों की अवधि में मोटरगाडियों की कुछ अधिकतम संख्या तैयार कर सकती है। फर्म के गोदाम में निश्चित वर्गफुट स्थान ही होता है। एक मिठाई की फैक्ट्री प्रतिदिन निश्चित संख्या में ही चीनी से लपेटी हुई मिठाई (bars) तैयार कर सकती है। फर्म के लिए उधार की सुविधा सीमित हो सकती है और इसी प्रकार अन्य बन्धन भी हो सकते हैं।

फर्म के समक्ष सीमित संख्या में उत्पादन की वैकल्पिक प्रक्रियाएँ भी विद्यमान रहती हैं। किसी भी एक प्रक्रिया को इन्पुटों के एक स्थिर अनुपात के रूप में परिभाषित किया जाता है। मान लीजिए, प्रक्रिया A में एक दी हुई दक्षता वाले एक व्यक्ति एवं एक दी हुई किस्म व आकार की एक मशीन का उपयोग शामिल होता

1. सुविधा की दृष्टि से निर्णय करने वाली एजेन्सी को सारे अध्याय में फर्म ही कहा जाएगा। रैखिक प्रोग्रामिंग तकनीकों के फर्मों के अलावा अन्य एजेन्सियों, जैसे सैनिक वसूली इकाइयों (military procurement units) के द्वारा प्रयुक्त की जा सकती है, एवं की भी जाती है।

है। जब तक इन्पुट की मात्रा-सम्बन्धी मर्यादाएं नही आ जाती तब तक प्रक्रिया A के साथ किए जाने वाले उत्पादन मे वृद्धि या कमी की जा सकती है, लेकिन सदैव प्रति मशीन एक व्यक्ति का ही उपयोग होगा, चाहे प्रयुक्त की जाने वाली मशीनो की कुल सख्या कितनी भी क्यो न हो।

स्थिर कीमतें

रैखिक प्रोग्रामिग तकनीको मे कीमतो के सम्बन्ध मे शुद्ध प्रतिस्पर्धात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाता है। आउटपुट-कीमतें व इन्पुट-कीमतें एक व्यक्तिगत फर्म की क्रियाओं से अप्रभावित मानी जाती है। उत्पत्ति की कीमतें स्थिर रहती हैं, चाहे फर्म की उत्पत्ति ज्यादा हो या कम। इन्पुट-कीमतें भी स्थिर रहती हैं, चाहे फर्म कितनी भी ज्यादा या कम इन्पुट मात्राओ का उपयोग करे। विक्रेताओ व क्रेताओ के रूप में फर्मों को कीमत-निर्माता (price-makers) के बजाय कीमत-ग्रहणकर्ता (price-takers) माना जाता है।

रैखिक सम्बन्ध

रैखिक प्रोग्रामिग तकनीकें रैखिक सम्बन्धो की सरलता से लाभ उठाती हैं। अनेक दशाओ मे रैखिक सम्बन्ध वस्तुत पाए भी जाते हैं। एक फर्म जो प्रति इकाई स्थिर कीमत पर एक इन्पुट खरीदती है, उसके लिए उस इन्पुट का कुल लागत-वक्र रैखिक होता है। जब वस्तु प्रति इकाई स्थिर कीमत पर बेची जाती है, तो उस वस्तु की बिक्री से सम्बन्धित कुल आय-वक्र भी रैखिक ही होगा। इन्पुटो की कीमतो के दिये हुए होने पर दो इन्पुटो का समलागत-वक्र (isocost curve) रैखिक होगा। दो आउटपुटो की कीमतो के दिए हुए होने पर उनका समआय वक्र (isorevenue curve) भी रैखिक ही होगा।

अन्य दशाओ मे चलराशियो (variables) के बीच पाए जाने वाले सबध जो वास्तव मे रैखिक नही होते हैं, (विभिन्न) खण्डित (discrete) रैखिक सबधो की एक शृङ्खला अथवा एक ही रैखिक सबध के द्वारा लाभप्रद रूप मे प्रस्तुत किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक समोत्पत्ति वक्र साधारणतया दो साधनो के लिए एक अरैखिक स्थिर उत्पत्ति वक्र होता है। रैखिक प्रोग्रामिग का भाग परस्पर जुडे हुए रैखिक सबधो की एक शृङ्खला होता है। इसी तरह वास्तविक उत्पादन-फलन इन्पुटो व आउटपुट के बीच अरैखिक सबध प्रदर्शित कर सकते हैं। रैखिक प्रोग्रामिग समस्याओ मे वे एक मात्रा तक समरूप या समभाव (homogeneous of degree one) माने जाते हैं।

अधिकतमकरण की समस्याएँ

इस अनुभाग मे अधिकतमकरण की दो समस्याओ पर विचार किया जाएगा। सर्वप्रथम, हम एक ही वस्तु के उत्पादन मे इन्पुटो के अनुकूलतम उपयोग का अध्ययन करेंगे। द्वितीय, हम विशेष इन्पुटो की सहायता से उत्पादित अनुकूलतम आउटपुट-मिश्रण (output mix) का अध्ययन करेंगे।

एक आउटपुट, दो इन्पुट

लागत परिव्यय के प्रतिबन्ध—मान लीजिए एक फर्म जो एक आउटपुट X का उत्पादन करती है और दो इन्पुट A व B का उपयोग करती है, एक दिए हुए लागत-परिव्यय की स्थिति मे आउटपुट अधिकतम करना चाहती है। यह समस्या उत्पादन के सिद्धान्त के हमारे पूर्व अध्ययन से मिलती-जुलती है और रैखिक प्रोग्रामिग के लिए एक सुन्दर परिचय का काम देती है। लेकिन मान लीजिए A और B के बीच निरन्तर प्रतिस्थापन की सम्भावनाएँ, जो इस समस्या के प्रचलित सैद्धान्तिक प्रस्तुतीकरण मे पाई जाती हैं, नही होती। इसके बजाय यह मान लीजिए कि केवल चार प्रक्रियाएँ होती हैं—जो B व A के सम्भावित अनुपात हैं—जिनके द्वारा फर्म अपनी वस्तु का उत्पादन कर सकती है। फर्म के समक्ष स्थिर इन्पुट-कीमतें व एक स्थिर आउटपुट-कीमत पाई जाती है।[2]

एक प्रक्रिया की प्रकृति चित्र 19–1 मे प्रस्तुत की गई है। प्रति इकाई समयानुसार A इन्पुट की इकाइयाँ क्षैतिज अक्ष पर और प्रति इकाई समयानुसार B इन्पुट की इकाइयाँ उदग्र-अक्ष पर दिखलाई गई है। यदि प्रक्रिया C मे जो फर्म के लिए उपलब्ध चार प्रक्रियाओ मे से एक है — इन्पुट A की प्रत्येक इकाई के लिए इन्पुट B की तीन इकाइयो की आवश्यकता होती है, तो यह प्रक्रिया रैखिक रश्मि (linear ray) OC से प्रदर्शित की जा सकती है। फिलहाल OC पर पैमाने की सख्याएँ (scale numbers) छोड दी जाती है। OC रश्मि का निर्माण करने वाले अनेक बिन्दु B का A से स्थिर अनुपात बनलाते है, लेकिन ऐसा वे उपयोग के विभिन्न स्तरो पर करते हैं। इसी प्रकार फर्म के लिए उपलब्ध अन्य तीन प्रक्रियाओ के लिए प्रक्रिया रश्मियाँ OD, OE व OF खींची जा सकती है। प्रत्येक प्रक्रिया-रश्मि अपनी सारी दूरी पर B का A के प्रति एक दिया हुआ अनुपात दिखलाती है। प्रत्येक प्रक्रिया-रश्मि के लिए B का A से अनुपात भिन्न होता है।

---

2 यदि कुल आय मात्रा को अधिकतम करने के रूप मे व्यक्त की जाती है, तो इस समस्या में कोई परिवर्तन नही हो जाएगा। चूंकि उत्पत्ति की प्रति इकाई कीमत दी हुई होती है, इसलिए उत्पत्ति के अधिकतमकरण से कुल आय का भी अधिकतमकरण हो जाता है।
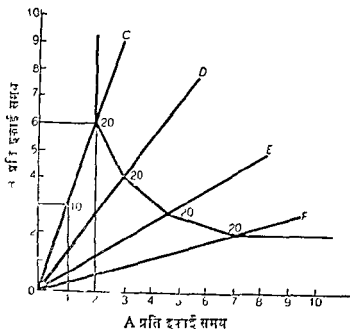
चित्र 19–1 प्रक्रिया-रश्मियाँ (process rays) और समोत्पत्ति-वक्र

इस मान्यता के कारण कि उत्पादन फलन एक मात्रा (degree one) तक समरूप होता है हम प्रत्येक प्रक्रिया रश्मि पर वस्तु की मात्रा को माप सकते हैं। एक उत्पादन फलन उस स्थिति का उस स्थिति में होता है जबकि सभी इन्पुटों को एक दिए हुए अनुपात में बढ़ाने से उत्पत्ति भी उसी अनुपात में बढ़ जाती है। फिलहाल प्रक्रिया रश्मि OC पर ध्यान केन्द्रित करने पर हम मान लेते हैं कि A की 1 इकाई के साथ B की 3 इकाइयाँ प्रयुक्त करने से X की 10 इकाइयाँ उत्पादित होती हैं। OC पर A और B के इस संयोग को सूचित करने वाला बिन्दु X की 10 इकाइयों से चिह्नित या सूचित किया जा सकता है। अब यदि इन्पुट दुगुने करने पर B की 6 इकाई और A की 2 इकाई कर दिए जाते हैं तो उत्पत्ति भी दुगुनी होकर X की 20 इकाइयाँ हो जाती हैं। OC पर A और B के नए संयोग को सूचित करने वाला बिन्दु X की 20 इकाइयाँ मापता है, और यह मूलबिन्दु से X की 10 इकाइयों को सूचित करने वाले बिन्दु से दुगुनी दूरी पर होता है। इस प्रकार OC पर उत्पत्ति का पैमाना (ou put scale) आसानी से स्थापित किया जा सकता है।

अन्य तीन प्रक्रिया रश्मियों पर भी उत्पत्ति के पैमाने इसी तरह से स्थापित किए जा सकते हैं। लेकिन उत्पत्ति की 20 इकाइयों को मापने वाली दूरी (अथवा उत्पत्ति की और कोई दी हुई मात्रा) एक प्रक्रिया-रश्मि पर साधारणतया उतनी नहीं होगी

जितनी यह दूसरी पर होगी। अन्य तीन प्रक्रियाओं की प्रौद्योगिक कार्यकुशलता ऐसी मान ली जाती है कि उनकी प्रक्रिया-रश्मियों पर 20 इकाई उत्पत्ति के निशान चित्र 19–1 में सूचित किए गए निशानों की भांति होते हैं।

विभिन्न प्रक्रिया-रश्मियों पर होने वाले बिन्दु जो उत्पत्ति की किसी भी दी हुई मात्रा को सूचित करते हैं, सरल रेखाओं के द्वारा मिलाए जा सकते हैं, जैसा कि चित्र 19–1 में 20 इकाई स्तर पर किया गया है। इससे उत्पन्न होने वाला मोडयुक्त (kinked) वक्र समोत्पत्ति वक्र (isoquant) कहला सकता है, जैसा कि परम्परागत सिद्धान्तों में इसका प्रतिरूप था। उत्पत्ति के प्रत्येक सम्भव स्तर के लिए एक भिन्न समोत्पत्ति वक्र खींचा जा सकता है। उत्पत्ति का स्तर जितना ऊँचा होता है, समोत्पत्ति-वक्र मूलबिन्दु से उतना ही दूर होता है। कोई भी दो प्रक्रिया-रश्मियों के बीच समोत्पत्ति वक्र का रैखिक भाग किसी भी दूसरे समोत्पत्ति वक्र के रैखिक भाग के सदैव समानान्तर होगा। उदाहरण के लिए चित्र 19–2 में समोत्पत्ति-वक्र x_1 का G_1H_1 भाग समोत्पत्ति वक्र x_0 के G_0H_0 के समानान्तर होता है।[3]
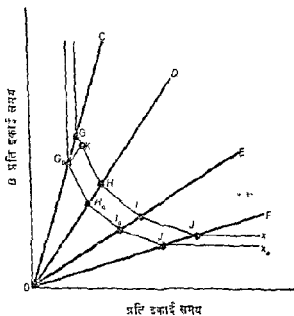
चित्र 19–2 दो प्रक्रियाओं का एक साथ उपयोग

3 ऐसा होना स्वाभाविक है, क्योंकि $G_1 H_1 O$ त्रिकोण की OG_1 व OH_1 भुजाएं $G_0 H_0$ रेखा के द्वारा आनुपातिक भागों में विभाजित हो जाती हैं, अर्थात् $OG_0 / G_0 G_1 = OH_0 / H_0 H_1$ होगा।

समोत्पत्ति-वक्र x_1 पर कोई भी बिन्दु जैसे K किसी भी फर्म के द्वारा माल की दी हुई मात्रा के उत्पादन के लिए एक साथ दो प्रक्रियाओ के उपयोग को प्रदर्शित करता है। इस स्थिति मे फर्म प्रक्रिया C व D का उपयोग करेगी। प्रक्रियाओ को प्रौद्योगिक दृष्टि से एक-दूसरे से स्वतन्त्र मान लिया जाता है। प्रक्रिया C की उत्पादकता उस स्तर से अप्रभावित होती है जिस पर प्रक्रिया D प्रयुक्त की जाती है और इसके विपरीत भी सही होता है। X की OG_0 मात्रा प्रक्रिया C की सहायता से उत्पादित होती है। X की $G_0K(=H_0H_1)$ मात्रा प्रक्रिया D का उपयोग करके उत्पादित की जाती है। X की G_0K (अथवा H_0H_1) मात्रा को मापने वाला उत्पत्ति का पैमाना X की OG_0 मात्रा को मापने वाले पैमाने से भिन्न होता है। OD प्रक्रिया-रश्मि का पैमाना प्रथम के लिए प्रयुक्त किया जाता है और OC प्रक्रिया-रश्मि का पैमाना दूसरे के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

सामान्यतया यह आशा की जा सकती है कि समोत्पत्ति-वक्र चित्र 19-1 व चित्र 19-2 मे प्रदर्शित आकृतियाँ ही बतलाएँगे। मान लीजिए चित्र 19-2 मे B पूँजी है और A श्रम। एक का दूसरे से निरतर प्रतिस्थापन असभव माना जाता है। फिर भी परम्परागत समोत्पत्ति-वक्रों की आकृतियो के विवेचन मे प्रयुक्त किया गया सामान्य किस्म का तर्क यहाँ भी लागू होता है। यदि फर्म वस्तु की एक दी हुई मात्रा के उत्पादन के लिए प्रक्रिया F का उपयोग करती है तो श्रम का पूँजी से अनुपात सापेक्ष रूप से ऊँचा होगा। अतएव, यदि फर्म एक ऐसी प्रक्रिया पर विचार करती है जिसमे श्रम व पूँजी के अपेक्षाकृत नीचे अनुपातो का उपयोग किया जाता है, जैसे प्रक्रिया E पर, तो यह सभव है कि यह अतिरिक्त पूँजी को प्राप्त करने के लिए श्रम की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा का परित्याग कर सके—यहाँ पर उत्पत्ति की मात्रा को यथास्थिर रखा जाता है। लेकिन जैसे-जैसे फर्म उन प्रक्रियाओ पर जाती है जिनमे श्रम व पूँजी के अपेक्षाकृत नीचे अनुपातो का उपयोग किया जाता है, जैसे प्रक्रियाएँ D व C, तो उत्पत्ति के यथास्थिर रहने की दशा मे, यह आशा की जा सकती है कि पूँजी की अतिरिक्त इकाइयों को प्राप्त करने के लिए दी जा सकने वाली श्रम की मात्राएँ उत्तरोत्तर कम होती जाएँगी।

फर्म पर लागत-प्रतिबध (cost constraint) परम्परागत समलागत-वक्र के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। इसकी स्थिति व आकृति स्थिर लागत-परिव्यय और फर्म को इन्पुटो की प्रति इकाई स्थिर कीमतो से निर्धारित होती है। चित्र 19-3 मे मान लीजिए कि लागत-परिव्यय T_1 है, जबकि A और B की कीमते क्रमश: P_{a1} व P_{b1} है। लागत-परिव्यय, A की कीमत से विभाजित होने पर, अर्थात् T_1/P_{a1} स्थापित करता है S_1 बिन्दु को, जो A की उन इकाइयो को बतलाता है जो B के न
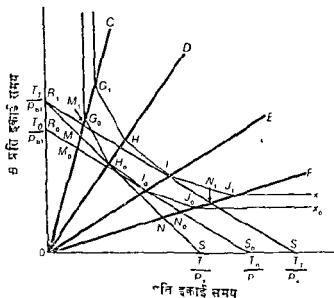
चित्र 19–3 उत्पत्ति-अधिकतमकरण, कुल लागत-प्रतिबंध

खरीदे जाने पर प्राप्त की जा सकती है। इसी प्रकार $T_1/Pb1$ अनुपात B की उन इकाइयों को सूचित करता है जो A के न लेने की स्थिति में खरीदी जा सकती है; यह R_1 बिन्दु के द्वारा प्रदर्शित की जाती है। R_1 व S_1 को मिलाने वाली सरल रेखा वह समलागत-वक्र है जो लागत-परिव्यय T_1 के साथ उपलब्ध होने वाले A व B के संयोगों को प्रदर्शित करती है। समलागत-वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है जो $OR_1/OS_1 = T_1/Pb1 \div T_1/Pa1 = T_1/Pb1 \times Pa1/T_1 = Pa1/Pb1$ होता है।[4]

समलागत-वक्र व OC व OF प्रक्रिया-रश्मियाँ एक फर्म जो कुछ कर सकने में समर्थ है, उस पर सीमा लगा देती है। OM_1N_1 त्रिकोण पर अथवा इसके अन्दर कोई भी बिन्दु A व B इन्पुटों के सम्भावित संयोग का सूचक होता है और वह फर्म के किसी समोत्पत्ति-वक्र पर होगा; अर्थात्, यह उत्पत्ति की किसी विशिष्ट मात्रा के

4. समलागत-वक्र का समीकरण इस प्रकार होगा:

$$aPa1 + bPb1 = T1$$

अथवा

$$b = \frac{T1}{Pb1} - a\frac{Pa1}{Pb1}$$

जिसमें $\frac{T1}{Pb1}$ B-अक्ष का अतःखण्ड (intercept) है और Pa1/Pb1 ढाल (slope) है।

उत्पादन को सूचित करेगा। OM_1N_1 के द्वारा घिरा हुआ क्षेत्र फर्म की समस्या की दृष्टि से सम्भाव्य हलों (feasible solutions) का क्षेत्र कहलाता है। फर्म के लिए इस क्षेत्र से बाहर उत्पादन की कोई सम्भावनाएँ खुली नहीं हैं।

फर्म की समस्या के लिए सम्भाव्य हलों में से श्रेष्ठतम् या इष्टतम् हल (optimal solution) निकाला जाना चाहिए। हमने इसके सम्बन्ध में पहले यह कल्पना की है कि यह वह हल होता है जो फर्म की उत्पत्ति को लागत-परिव्यय प्रतिबंध (cost outlay constraint) के अन्तर्गत ही अधिकतम कर पाता है। श्रेष्ठतम् हल I_1 बिंदु पर होगा जहाँ पर समलागत-वक्र सर्वोच्च हो सकने वाले समोत्पत्ति-वक्र को स्पर्श करेगा। दिए हुए लागत-परिव्यय से x_1 उत्पत्ति की मात्रा सर्वोच्च सम्भव उत्पत्ति की मात्रा होगी। फर्म E प्रक्रिया का उपयोग करेगी। अन्य किसी भी प्रक्रिया पर व्यय की जाने वाली T_1 लागत की मात्रा x_1 जितना ऊँचा उत्पादन नहीं कर पाएगी।

A व B की कीमतों के स्थिर रहने पर लागत-प्रतिबंध में होने वाला कोई भी परिवर्तन प्रयुक्त की जाने वाली प्रक्रिया को प्रभावित नहीं करेगा, लेकिन वह केवल उस स्तर को प्रभावित करेगा जिस पर यह प्रयुक्त की जाती है। T में होने वाले परिवर्तन समलागत-वक्र की स्थिति (position) को बदल देंगे, लेकिन वे इसके ढाल को प्रभावित नहीं करेंगे। लागत-परिव्यय में T_0 तक होने वाली कमी समलागत-वक्र को अपने ही समानान्तर नीचे की तरफ R_0S_0 तक खिसका देती है। सम्भाव्य हलों (feasible solutions) का क्षेत्र अब OM_0N_0 से घिरा हुआ होता है। फर्म प्रक्रिया E को I_0 स्तर तक प्रयुक्त करके अपनी उत्पत्ति को अधिकतम करती है। उत्पत्ति की अधिकतम मात्रा x_0 होती है। R_1S_1 के समानान्तर होने वाली समलागत रेखाएँ सदैव समोत्पत्ति-वक्रों के उन कोनों को स्पर्श करेंगी जो OE प्रक्रिया-रश्मि पर आते हैं। ऐसा होना स्वाभाविक है, क्योंकि इस मान्यता के कारण कि उत्पादन-फलन एक मात्रा तक समरूप होता है, विभिन्न समोत्पत्ति-वक्रों के सबंधित अंश एक-दूसरे के समानान्तर होते हैं।

इसके विपरीत यदि A की कीमत B की कीमत की तुलना में काफी बढ़ जाती है, तो फर्म एक भिन्न प्रक्रिया पर चली जाएगी। मान लीजिए, कुल लागत-परिव्यय उतना ही रहता है और A की कीमत बढ़कर P_{a2} हो जाती है। अनुरूपी समलागत वक्र अब R_1S हो जाता है और OMN क्षेत्र सम्भाव्य हलों को घेर लेता है। प्रतिबन्ध के अन्तर्गत उत्पत्ति का अधिकतम करने के लिए फर्म प्रक्रिया D को H_0 स्तर पर प्रयुक्त करेगी। यह भी सम्भव है कि A की कीमत B की तुलना में केवल इतनी ही बदल जाय कि समलागत-वक्र समोत्पत्ति-वक्र के एक रैखिक भाग—जैसे,

G_1H_1 के अनुरूप भाग—से मेल खा जाय। ऐसी स्थिति में प्रक्रिया C व प्रक्रिया D दोनों समान रूप से कार्यकुशल होंगी। इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ेगा कि इनमें से फर्म किसका उपयोग करती है। अथवा रैखिक समोत्पत्ति भाग G_1H_1 के द्वारा प्रदर्शित दो प्रक्रियाओं के किसी भी संयोग का उपयोग किया जा सकता है।

जब फर्म के समक्ष केवल एक ही प्रतिबन्ध होता है, तो फर्म जो कुछ अधिकतम करना चाहती है उसके लिए एक से अधिक प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक स्थिति में प्रयुक्त की जाने वाली प्रक्रिया इन्पुट-कीमतों के अनुपात से निर्धारित होगी। जब एक बार उत्पत्ति को अधिकतम करने वाली प्रक्रिया का पता लगा लिया जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि फर्म को एक प्रक्रिया से दूसरी प्रक्रिया पर जाने के लिए प्रेरित किए बिना इन्पुट-कीमत अनुपातों में अत्यधिक परिवर्तन सम्भव हो सकता है। प्रयुक्त की जाने वाली प्रक्रिया में परिवर्तन करने के लिए इन्पुट कीमत अनुपातों में जिस सीमा तक परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है, यह उपलब्ध प्रक्रियाओं की संख्या और समोत्पत्ति-वक्रों के रैखिक भागों के द्वारा निर्मित कोणों के मापों पर निर्भर करेगा।

इन्पुट-मात्रा के प्रतिबन्ध—उत्पत्ति अधिकतमकरण की समस्या का श्रेष्ठतम हल उस स्थिति में भिन्न होगा, जब कि फर्म के समक्ष कुल लागत-परिव्यय का प्रतिबन्ध होने की बजाय प्रति अवधि इसकी एक या अधिक इन्पुटों पर मात्रा की मर्यादाएँ पायी जाती हैं। इस किस्म के सामान्य उदाहरणों में हम गोदाम का स्थान उपलब्ध मशीनों की संख्या, ईंटों के भट्ठे (drying-kiln) का आकार, आदि ले सकते हैं। हम सर्वप्रथम उस स्थिति पर विचार करेंगे जिसमें दो में से केवल एक इन्पुट की मात्रा सीमित रखी जाती है। उसके बाद हम इस प्रतिबन्ध का विस्तार इस प्रकार से करेंगे कि इसमें फर्म के द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले दोनों इन्पुट शामिल किए जा सकें।

चित्र 19–4 में हम सर्वप्रथम यह मान लेते हैं कि फर्म को B इन्पुट की b_0 से ज्यादा मात्रा उपलब्ध नहीं होती है और A असीमित मात्रा में उपलब्ध होती है। सम्भाव्य हलों का क्षेत्र OPJ_2 त्रिकोण पर अथवा इसके अन्दर होगा—यह क्षेत्र OC व OF प्रक्रिया-रश्मियों पर या उनके बीच में और b_0 से दायीं ओर फैलने वाली क्षैतिज रेखा पर अथवा इसके नीचे होगा। कोई ऐसा समोत्पत्ति-वक्र भी होगा जिसका क्षैतिज भाग क्षैतिज रेखा से मेल खा जाता है। रेखाचित्र में यह समोत्पत्ति-वक्र x_2 है जो B की b_0 मात्रा पर प्राप्त हो सकने वाले उत्पत्ति के सर्वोच्च स्तर का सूचक होता है। OJ_2 स्तर पर प्रयुक्त होने वाली प्रक्रिया F फर्म की उत्पत्ति को अधिकतम कर सकेगी।

चित्र 19–4 उत्पत्ति अधिकतमकरण, इन्पुट की मात्रा के प्रतिबन्ध

इसके विपरीत यदि A की मात्रा को a_0 तक सीमित कर दिया जाय और B की मात्रा असीमित हो, तो सम्भाव्य हलो का क्षेत्र प्रक्रिया-रश्मियो OC व OF के बीच मे होगा और यह उस उदग्र रेखा पर या इसके बायी ओर होगा जो a_0 से ऊपर की ओर फैलती हुई होगी। उत्पत्ति प्रक्रिया C का उपयोग करके OG_3 स्तर पर अधिक्तम की जा सकेगी और इसकी मात्रा x_3 होगी। दोनो मे से प्रत्येक स्थिति मे उत्पत्ति-अधिक्तमकरण के लिए केवल एक ही प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। दोनो म से किसी भी स्थिति म इन्पुट-कीमतो का अनुपात प्रयुक्त की जाने वाली प्रक्रिया का निर्धारक नही होता है।

अब हम उस स्थिति पर आते हैं जिसमे दोनो इन्पुटो की मात्राएँ सीमित रहती हैं, मान लीजिए, चित्र 19–4 म इन्पुट A की उपलब्ध मात्रा a_0 तक और B की b_0 तक सीमित रहती है। इन मर्यादाओ के होने पर सम्भाव्य हलो का क्षेत्र OPV_1R बहुभुज (polygon) पर अथवा इसके अन्दर होगा। इसका हल V_1 बिन्दु पर होगा और फर्म की अधिकतम उत्पत्ति x_1 होगी। इस स्थिति मे प्रक्रिया E व प्रक्रिया F दोनो ही प्रयुक्त की जायेगी। प्रक्रिया E का उपयोग करके OW मात्रा का उत्पादन किया जाएगा, और प्रक्रिया F का उपयोग करके WV_1 मात्रा $(=ZJ_1)$ का उत्पादन किया जाएगा। इस बात की कल्पना की जा सकती है कि यदि A की उपलब्ध

मात्रा अपेक्षाकृत कम और B की अपेक्षाकृत ज्यादा होती है, तो समस्या का हल समोत्पत्ति-वक्र के I_1 जैसे कोने पर आयेगा। यदि ऐसी स्थिति होती है, तो केवल प्रक्रिया E की ही आवश्यकता होगी। यह भी है कि A की कीमत या B की कीमत से अनुपात प्रयुक्त की जाने वाली प्रक्रिया या प्रक्रियाओं के निर्धारण में कोई हाथ नहीं रखता है।

ऊपर जिन समस्याओं का विवेचन किया गया है वे रैखिक प्रोग्रामिंग तकनीकों में एक मूलभूत सिद्धान्त को प्रस्तुत करती हैं। फर्म जो कुछ अधिकतम करती है अथवा न्यूनतम करती है उसमें फर्म पर लागू होने वाले प्रतिबन्धों की संख्या से प्रक्रियाओं की संख्या के लिए अधिक होने की आवश्यकता नहीं होगी। जिस दृष्टान्त में कुल लागत-परिव्यय ही अकेला प्रतिबन्ध होता है, उसमें एक प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। जिस दृष्टान्त में एक इन्पुट की मात्रा का प्रतिबन्ध होता है उसमें भी एक प्रक्रिया से अधिक की आवश्यकता नहीं होती है। जब दो इन्पुटों की मात्रा सीमित होती है, तब दो प्रक्रियाओं से अधिक की आवश्यकता नहीं होती है। जब अधिक इन्पुट मात्रा में सीमित होते हैं, तो अधिक प्रक्रियाओं की आवश्यकता हो सकती है, लेकिन इनकी संख्या उन इन्पुटों की संख्या से अधिक नहीं होगी जिन पर प्रभावपूर्ण मर्यादाएँ होती हैं।

अनेक आउटपुट व अनेक इन्पुट

अब एक अधिक जटिल प्रश्न पर जाने के लिए हम मान लेते हैं कि फर्म का उद्देश्य कुल परिवर्तनशील लागतों से अपनी कुल प्राप्तियों के आधिक्य को अधिकतम करना है, अर्थात्, अध्याय 14 में[5] परिभाषित अपने कुल आर्थिक लगान या अधिशेष (rent) को अधिकतम करना है। इस सम्बन्ध में कुछ स्थिर सुविधाओं की क्षमताएँ (capacities) सीमित रहती हैं। मान लीजिए, फर्म दो किस्म का माल X व Y उत्पन्न करती है। इसके पास चार तरह की सुविधाएँ (facilities) हैं जिनमें से प्रत्येक की क्षमता स्थिर होती है। हम इन सुविधाओं को M, N, R व S कहेंगे। ये कुछ ऐसी चीजें हो सकती हैं जैसे रंग की दुकान की क्षमता, अन्तिम बिन्दु पर एकत्र करने की क्षमता (assembly capacity), पैकेज बनाने की क्षमता, इत्यादि।

प्रति इकाई X व प्रति इकाई Y के द्वारा दिया जाने वाला लगान प्रत्येक वस्तु से प्राप्त कीमतों व प्रत्येक की औसत परिवर्तनशील लागतों पर निर्भर करेगा।

---

5 लगान के अधिकतमकरण का यह आशय भी है कि लाभ अधिकतम किए जाएँगे, चूंकि लाभ बराबर होता है लगान में से कुल स्थिर लागतों के घटाने के। जो समस्या प्रस्तुत की गई है उसमें फर्म की स्थिर लागतों का पता नहीं लगाया जा सकेगा। इस प्रकार लगान की गणना की जा सकती है, लेकिन लाभ की नहीं।

हम यह मानकर चलेंगे कि चाहे X की कितनी भी मात्रा का उत्पादन किया जाय, प्रति इकाई X के अनुसार तो परिवर्तनशील इन्पुटों की दी हुई मात्राओं की ही आवश्यकता होगी, अतएव X की औसत परिवर्तनशील लागत यथास्थिर रहेगी। यही मान्यता Y–वस्तु के लिए की जायेगी। प्रति इकाई X के द्वारा दिया जाने वाला लगान इसकी कीमत में से इसकी औसत परिवर्तनशील लागत को घटाने के बराबर होगा और इस प्रकार यह स्थिर राशि के बराबर होगा। प्रति इकाई Y–वस्तु के अनुसार दिए जाने वाले लगान की भी इसी तरह से गणना की जाती है। इन्हें क्रमश r_x व r_y कह कर सूचित किया जा सकता है।

यदि r_x व r_y क्रमश $3 व $6 होते हैं तो निम्न लक्ष्य-समीकरण (objective equation) स्थापित किया जा सकता है जो यह दर्शाता है कि फर्म किसे अधिकतम करना चाहती है

$$8X \times 6Y = W \qquad (19\ 1)$$

प्रति इकाई X के द्वारा प्रदत्त लगान को X की कुल मात्रा से गुणा करने से प्राप्त राशि X के उत्पादन से प्राप्त कुल लगान की राशि कहलाती है। प्रति इकाई Y के द्वारा प्रदत्त लगान को Y की मात्रा से गुणा करने से प्राप्त राशि Y के उत्पादन से प्राप्त कुल लगान की राशि दर्शाती है। इन दोनों का योग W होगा, अर्थात् फर्म के द्वारा प्राप्त कुल लगान होगा।
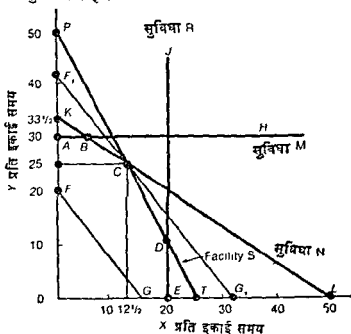
चित्र 19–5 कई वस्तुएँ, सुविधा-सम्बंधी प्रतिबन्ध (Facility Constraints)

लक्ष्य-समीकरण (objective equation) समलगान-वक्रों (isorent curves) के एक परिवार का समीकरण माना जा सकता है—यह W के प्रत्येक सम्भव मूल्य के लिए एक होता है। चित्र 19-5 में FG रेखा $120 के बराबर W के लिए एक समलगान-वक्र है। यह X और Y के उन समस्त संयोगों को दर्शाता है जो उस मात्रा के बराबर लगान देते। इसका ढाल r_x / r_y है, अर्थात् इस स्थिति में 8/6 है। W के अपेक्षाकृत ऊँचे मूल्यों के लिए समलगान-वक्र दाहिनी तरफ कुछ दूरी पर होंगे लेकिन उनका ढाल एक-सा होगा। W के अपेक्षाकृत नीचे मूल्यों पर भी इनका ढाल तो वही होगा, लेकिन ये बायीं ओर दूर पर होंगे।

फर्म की क्रियाओं पर प्रतिबन्ध-स्वरूप स्थिर सुविधाएँ M, N, R व S होती हैं। मान लीजिए हम प्रत्येक की सम्पूर्ण मात्रा को इकाई से सूचित करते हैं। सारणी 19-1 में प्रत्येक सुविधा का वह भाग जो X की एक इकाई के उत्पादन में आवश्यक होता है और प्रत्येक सुविधा का वह भाग जो Y की एक इकाई के उत्पादन में आवश्यक होता है, दिखलाए गए हैं।

सारणी 19-1 कई वस्तुएँ, सुविधा-सम्बन्धी प्रतिबन्ध

सुविधा	प्रति इकाई आउटपुट के अनुसार सुविधा-इनपुट	
	X	Y
M	0·0	0 033
N	0 02	0 03
S	0·04	0 02
R	0 05	0 0

वास्तव में सारणी 19 1 उन प्रक्रियाओं को परिभाषित करती हैं जो समस्या में निहित हैं। यदि दोनों वस्तुओं का उत्पादन किया जाना है तो दो प्रक्रियाओं का उपयोग करना होगा। X के उत्पादन के लिए एक प्रक्रिया की आवश्यकता होती है—M, N, S व R सुविधाओं के स्थिर अनुपातों की। इसी प्रकार Y के उत्पादन के लिए भी एक प्रक्रिया की आवश्यकता होती है—चारों सुविधाओं के स्थिर अनुपातों की, लेकिन ये अनुपात X के उत्पादन के लिए आवश्यक अनुपातों से भिन्न होते हैं।

सारणी 19–1 की सहायता से हम स्थिर सुविधाओं के द्वारा X और Y के उत्पादन पर लागू किए जाने वाले प्रतिबन्धों के बीजगणितीय सूचक तैयार कर सकते हैं। ये इस प्रकार होते हैं :

$$0.033\ Y \leqslant 1 \qquad \text{....(19.2)}$$

$$0.05\ X \leqslant 1 \qquad \text{....(19.3)}$$

और $$0.02X \times 0.03\ Y \leqslant 1 \qquad \text{....(19.4)}$$

$$0.04X \times 0.02\ Y \leqslant 1 \qquad \text{....(19.5)}$$

जिनमे $X \geqslant 0$ और $Y \geqslant 0$

असमानता (19.2) सुविधा M के द्वारा लागू किए जाने वाले प्रतिबन्ध को सूचित करती है। यह सुविधा केवल Y के उत्पादन के लिए ही उपयोगी है। यह X के उत्पादन में लाभदायक नहीं है। Y की एक इकाई के उत्पादन में सम्पूर्ण सुविधा की 0.033 मात्रा की आवश्यकता होती है। यदि हम (19.2) को एक समीकरण के रूप में लेकर Y का हल निकालें, तो हम पता लगेगा कि सम्पूर्ण सुविधा की सहायता से प्रति इकाई समयानुसार 30 इकाइयों का उत्पादन सम्भव हो सकेगा। इसकी सहायता से अपेक्षाकृत कम मात्राओं का उत्पादन भी हो सकेगा। चित्र 19–5 AH क्षैतिज सरल रेखा Y की 30 इकाइयों पर M सुविधा में निहित उत्पादन पर पाई जाने वाली मर्यादाओं की सूचक होती है।

इसी प्रकार असमानता (19.3) सुविधा R के द्वारा लागू किए जाने वाले प्रतिबन्ध का सार प्रस्तुत करती है जो केवल X के उत्पादन में प्रयुक्त की जाती है। इसकी एक इकाई के लिए सम्पूर्ण सुविधा की 0.05 मात्रा की आवश्यकता होती है। सुविधा R प्रति इकाई समयानुसार X की 20 इकाइयों का उत्पादन कर सकेगी जो इसकी अधिकतम मात्रा होगी। यह चित्र 19–5 में उत्पत्ति की उस मात्रा पर उदग्र रेखा EJ के द्वारा दिखलाई गयी है।

सुविधा N की उत्पादन-सम्भावनाएँ असमानता (19.4) के द्वारा दिखलाई गई है और इसमें दोनों आउटपुट शामिल होते हैं। चूँकि सुविधा N की 0.03 मात्रा Y की एक इकाई के लिए और 0.02 मात्रा X की एक इकाई के लिए आवश्यक होती है, इसलिए (19.4) को समीकरण मानने पर यह इस सुविधा के द्वारा तैयार किए जा सकने वाले सम्भव संयोगों को इसके द्वारा तैयार नहीं किए जा सकने वाले संयोगों से पृथक् रूप से अंकित कर देता है। यदि X शून्य होता है तो इस सुविधा की सहायता से Y की $33\frac{1}{3}$ इकाइयाँ निर्मित हो सकती हैं। यदि Y शून्य हो, तो समय की प्रति इकाई के अनुसार इसकी सहायता से X की 50 इकाइयाँ बनाई जा

सकती हैं। चित्र 19–5 में ये दोनों बिन्दु क्रमश K व L पर अंकित किए जा सकते हैं, और इनको मिलाने वाली सरल रेखा इस समीकरण का रेखाचित्रीय रूप होती है।

इसी प्रकार, (19.5) को समीकरण के रूप में लेने पर यह सुविधा S के द्वारा X व Y के सम्भाव्य सयोगो को असम्भाव्य सयोगो से पृथक् कर देती है। यदि X का उत्पादन नही किया जाता है तो Y की प्रति इकाई समयानुसार 50 इकाइयाँ होगी। यदि Y का उत्पादन नही किया जाता है, तो X की 25 इकाइयाँ होंगी। चित्र 19–5 मे PT रेखा इस समीकरण का रेखाचित्रीय रूप प्रस्तुत करती है।

सम्भाव्य हलो का क्षेत्र जो फर्म के द्वारा प्रति इकाई समय के अनुसार उत्पन्न X व Y के सभी सयोगो को दर्शाता है, OABCDE होता है। सुविधा M फर्म को उन सयोगो तक सीमित कर देती है जो AH के द्वारा सूचित सयोगो के बराबर अथवा इनसे कम होते हैं, सुविधा M व सुविधा N इसको ABL के द्वारा सूचित सयोगो के बराबर अथवा उससे नीचे तक सीमित कर देती है, सुविधाएँ M, N और S इसको ABCT के द्वारा प्रदर्शित सयोगो के बराबर अथवा उनसे नीचे तक और सीमित कर देती हैं; सुविधाएँ N, S और R इसको BCD के द्वारा प्रदर्शित सयोगो के बराबर अथवा उनसे नीचे तक सीमित कर देती है, सुविधाएँ S और R इसको DE के द्वारा प्रदर्शित सयोगो के बराबर अथवा इनसे नीचे तक सीमित कर देती है; और सुविधा R इसको EJ के द्वारा प्रदर्शित सयोगो के बराबर अथवा इनसे नीचे तक सीमित कर देती है।

फर्म की समस्या का श्रेष्ठतम हल उत्तरोत्तर ऊँचे समलगान वक्रो पर जाकर रेखाचित्रीय विधि से निकाला जा सकता है, और यह उस स्थान पर होता है जहाँ ऐसा समलगान-वक्र आ जाता है जिसे सम्भाव्य हलो का क्षेत्र केवल छूता-मात्र है। यह समलगान वक्र F_1G_1 होगा जिसे चित्र 19–5 मे C बिन्दु केवल छूता-मात्र है। सम्भाव्य हलों के क्षेत्र की सीमा पर अथवा इसके अन्दर कोई भी दूसरा बिन्दु F_1G_1 जैसे ऊँचे समलगान-वक्र को नही छू पाता है। F_1G_1 समलगान-वक्र पर C के अलावा अन्य कोई बिन्दु सम्भाव्य हलो के क्षेत्र से बाहर पडता है। फर्म Y की 25 इकाइयो का उत्पादन व विक्रय करेगी और प्रति इकाई \$6 लगान प्राप्त करेगी। यह X की $12\frac{1}{2}$ इकाइयो का उत्पादन व विक्रय करेगी और प्रति इकाई \$8 लगान प्राप्त करेगी। इस प्रकार अधिकतम प्राप्य कुल लगान प्रति इकाई समयानुसार \$250 होगा।

सुविधाओं की सीमाएँ फर्म पर प्रतिबन्धो के रूप मे पूर्णतया प्रभावशाली नहीं होती हैं। C बिन्दु पर सुविधा M क्षमता के अनुसार प्रयुक्त नही की जाती है और

यही कारण है कि यह फर्म की उत्पत्ति को मर्यादित नहीं करती है। इसी प्रकार, सुविधा R अपनी क्षमता के अनुसार प्रयुक्त नहीं की जाती है। C संयोग का उत्पादन करने के लिए, केवल N व S सुविधाएँ ही अपनी पूर्ण क्षमताओं तक प्रयुक्त की जाती हैं। यदि इन दो सुविधाओं की अधिक मात्रा उपलब्ध होती, तो फर्म अधिक ऊँचे समलगान वक्र पर जा सकती थी।

बीजगणितीय रूप में समस्या का हल सम्भाव्य हलों के क्षेत्र के "कोनों" (corners) की जाँच करके मालूम किया जा सकता है। हमारे लिए केवल कोनों की ही जाँच करने की आवश्यकता होती है, क्योंकि समस्या में निहित प्रक्रियाओं की संख्या फर्म पर लागू होने वाले प्रभावपूर्ण प्रतिबन्धों की संख्या से अधिक नहीं होगी। इस प्रकार वे बिन्दु जिन पर X और Y दोनों धनात्मक होते हैं (अर्थात्, जहाँ दो प्रक्रियाएँ प्रयुक्त की जाती हैं) और जो सम्भावित श्रेष्ठतम हल होते हैं, दो प्रतिबन्धों के द्वारा निर्मित कोनों पर पड़ते हैं (अर्थात्, जहाँ दो प्रतिबन्ध प्रभावशाली होते हैं) एक सम्भावित श्रेष्ठतम हल जिसमें केवल X का ही उत्पादन किया जाता है, एक ही प्रभावशाली प्रतिबन्ध की आवश्यकता मानता है और इसी वजह से यह X–अक्ष और उस प्रतिबन्ध के परस्पर कटाव का कोना होता है जो एकमात्र X के उत्पादन में ही प्रयुक्त होने पर सबसे अधिक प्रतिबन्ध डालता है। इसी प्रकार Y–अक्ष का कोना अकेले Y का उत्पादन किए जाने की स्थिति में एकमात्र सम्भावित श्रेष्ठतम हल का सूचक होता है। यदि श्रेष्ठतम हल X और Y दोनों के लिए शून्य उत्पत्ति होता, तो मूलबिन्दु पर कोने के हल (corner solution at the origin) की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती।

मान लीजिए, अब हम मूलबिन्दु के कोने से प्रारम्भ करते हैं और सम्भाव्य हलों के क्षेत्र के चारों तरफ घड़ी के क्रम में चलते हैं और एक ऐसा हल मालूम करने का प्रयास करते हैं जिस पर स्थिर सुविधाओं का कुल लगान अधिकतम होता है, अर्थात्, जिस पर लक्ष्य-समीकरण (19.1) अधिकतम W प्रदान करता है। O पर हम देखते हैं कि W शून्य के बराबर होता है। A कोने के निर्देशांकों (coordinates) का पता लगाने के लिए हम सुविधा M के समीकरण (19.2) को हल करते हैं। इस कोने पर X बराबर है शून्य के और Y बराबर है 30 के। X व Y के इन मूल्यों को समीकरण (19.1) में लगाकर हम देखते हैं कि W बराबर होता है $180 के। M और N सुविधाओं के समीकरणों (19.2) व (19.4) को एक-साथ हल करने में हमें B कोना मिलता है, जिस पर Y बराबर होता है 30 के और X बराबर है 5 के। इस प्रकार समीकरण (19.1) से पता चलता है कि कुल लगान $220 के बराबर होता है। N व S सुविधाओं के लिए समीकरणों (19.4)

व (19 5) का एक-साथ हल करने से C कोना मिलता है जहाँ Y बराबर है 25 के और X है $12\frac{1}{2}$ के। इन मूल्यों को समीकरण (19.1) में प्रतिस्थापित करने पर कुल लगान $250 होना है। जब सुविधाओं S व R के लिए समीकरण (19 5) व (19.3) D कोने के निर्देशांकों का पता लगाने के लिए एक साथ हल किए जाते हैं, तो X बराबर होता है 20 के और Y बराबर होता है 10 के। इन मूल्यों को समीकरण (19 1) में प्रतिस्थापित करने पर कुल लगान $220 हो जाता है। (19 3) का हल E कोने के निर्देशांकों को प्रदान करता है जहाँ X बराबर होता है 20 के और Y बराबर होता है शून्य के। (19 1) में प्रतिस्थापित करने पर हम देखते हैं कि कुल लगान $160 होता है।

विभिन्न कोनों पर प्राप्त परिणामों की तुलना करने पर पता लगता है कि कोना C अधिकतम कुल लगान प्रदान करता है। जिन समस्याओं में वस्तुओं की संख्या एवं प्रतिबन्धों की संख्या इतनी अधिक होती है कि रेखाचित्रीय विश्लेषण नहीं हो सकता, वहाँ पर सम्भाव्य हलों के क्षेत्र के "कोना" की इस तरह की बीजगणितीय जाँच का उपयोग श्रेष्ठतम हल का पता लगाने के लिए किया जा सकता है।[6]

r_x के r_y से विभिन्न अनुपात लगान-अधिकतमकरण के विभिन्न श्रेष्ठतम हल प्रस्तुत कर सकते हैं। यह कल्पना की जा सकती है कि समलगान-वक्र का ढाल ($-r_x/r_y$) इतना छोटा हो कि सम्भाव्य हलों का क्षेत्र सर्वोच्च समलगान-वक्र को B बिन्दु पर स्पर्श करे। अथवा यह इतना बड़ा हो सकता है कि सर्वोच्च सम्भव समलगान-वक्र को D बिन्दु पर छुआ जा सके। यदि चित्र 19-5 में $-r_x/r_y$ बराबर होता है CD रेखा के भाग के ढाल के—अर्थात्, यदि सर्वोच्च प्राप्य समलगान-वक्र को समीकरण (19 5) के रेखाचित्रीय प्रदर्शन से मेल खाता है—तो CD रेखा के एक भाग पर X व Y का कोई भी संयोग कुल लगान के अधिकतमकरण का श्रेष्ठतम हल माना जाएगा। इस स्थिति में सुविधा S के द्वारा लागू की जाने वाली सीमाएँ ही फर्म पर एकमात्र प्रभावपूर्ण प्रतिबन्ध का काम करेंगी।

द्वैध समस्या (The Dual Problem)

प्रत्येक रैखिक प्रोग्रामिंग समस्या की एक प्रतिरूप समस्या भी होती है जो इसकी द्वैध (dual) कहलाती है। मूल समस्या को प्रारम्भिक समस्या (primal problem)

---

6 यहाँ पर प्रयुक्त की गई विधि पूर्ण वर्णन की विधि कहलाती है। इसका विकल्प सिम्पलैक्स विधि (simplex method) के द्वारा प्रदान किया जाता है। देखिए—Robert Dorfman, Paul A Samuelson, and Robert M Solow, Linear Programming and Economic Analysis (New York . McGraw-Hill, Inc , 1958), अध्याय 4।

कहा गया है। यदि प्राइमल समस्या के लिए अधिकतमकरण आवश्यक है, तो द्वैध समस्या न्यूनतमकरण की होगी, अथवा यदि प्राइमल न्यूनतमकरण की समस्या है, तो द्वैध अधिकतमकरण की समस्या होगी। प्राइमल समस्या और इसके द्वैध के बीच पाए जाने वाले सम्बन्ध का दृष्टान्त उत्पादन व लागतो के सिद्धान्त मे मिलता है। मान लीजिए, प्राइमल समस्या एक दिए हुए लागत-परिव्यय से उत्पत्ति को अधिकतम करने की होनी है। ऐसी स्थिति मे द्वैध समस्या वस्तु की दी हुई मात्रा के लिए लागतो को न्यूनतम करने की होती है। एक विशेष समस्या, जिसे प्रोग्राम के लिए लेना है, हल के लिए अपने प्राइमल रूप मे स्थापित की जाय अथवा द्वैध रूप म, यह निम्न बातो पर निर्भर करेगा (1) कौन सा स्वरूप (formulation) अधिक प्रत्यक्ष रूप मे वाछित सूचना प्रदान करता है और (2) कौन-सा स्वरूप अधिक सुगमता मे हल किया जा सकता है।

इस अनुच्छेद म पूर्व अनुच्छेद की प्राइमल समस्या के द्वैध का निर्माण व हल प्रस्तुत किया जाएगा। प्राइमल समस्या मे हमने X व Y की उन मात्राओ का पता लगाया जो एक फर्म के द्वारा प्राप्त कुल लगान को अधिकतम करती हैं और इस सम्बन्ध म इस पर इसकी स्थिर सुविधाओ M, N, R व S की क्षमता-सम्बन्धी मर्यादाएँ मानी गई थी। द्वैध समस्या मे हम फर्म की स्थिर सुविधाओ के लिए न्यूनतम मूल्य—जो कभी-कभी कल्पित कीमतें (shadow prices) कहलाती हैं—लगाने का प्रयास करते हैं जो केवल फर्म के कुल लगान का अवशोषण (absorb) करने की दृष्टि से ही पर्याप्त होते है।

हमे जो विषय-सामग्री दी गई है वह प्राइमल समस्या की है। सारणी 19–1 प्रत्येक स्थिर सुविधा की उपलब्ध होने वाली मात्रा (प्रत्येक की एक इकाई) और प्रत्येक स्थिर सुविधा का वह अश बतलाती है जो एक इकाई X और एक इकाई Y के उत्पादन मे आवश्यक होना है। कुल लगान मे प्रति इकाई X–वस्तु का योगदान $8 और प्रति इकाई Y–वस्तु का $6 दिया हुआ है। द्वैध समस्या का लक्ष्य समीकरण (objective equation) इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

$$V_m + V_n + V_r + V_s = V \qquad (19.6)$$

V_m पद (term) सुविधा M पर लगाया गया या अभ्यारोपित (imputed) होने वाला मूल्य है, जब कि V_n, V_r, और V_s पद क्रमश N, R और S सुविधाओ पर अभ्यारोपित किए जाने वाले मूल्यो को सूचित करते हैं।[7] समीकरण के दाहिनी

7 वर्तमान समस्या में समीकरण के बायीं तरफ प्रत्येक चनराशि का गुणाक एक होगा, क्योंकि प्रत्येक स्थिर सुविधा की सम्पूर्ण क्षमता इकाई के बराबर मानी जाती है। यदि प्रत्येक स्थिर सुविधा मे कुछ इकाइयाँ होती हैं, तो प्रत्येक सुविधा के प्रति इकाई मूल्य का गुणांक सुविधा की उपलब्ध होने वाली इकाइयो की सख्या को माना जाएगा।

तरफ, V स्थिर सुविधाओं के कुल मूल्यांकन को सूचित करता है।

स्थिर सुविधाओं को न्यूनतम मूल्य देने पर होने वाले प्रतिबन्धों का सारांश निम्न असमानताओं में व्यक्त किया जा सकता है

$$0\cdot0\,V_m + 0\cdot02\,V_n + 0\cdot04\,V_s + 0\cdot05\,V_r \geqslant 8 \quad (19\cdot7)$$

और
$$0\cdot33\,V_m + 0\cdot03\,V_n + 0\cdot02\,V_s + 0\cdot0\,V_r \geqslant 6 \quad (19\cdot8)$$

जहाँ, $V_m \geqslant 0, V_n \geqslant 0, V_s \geqslant 0$, और $V_r \geqslant 0$

असमानता (19·7) यह बतलाती है कि विभिन्न स्थिर सुविधाओं को दिए जाने वाले मूल्य ऐसे हों कि X की एक इकाई के उत्पादन के लिए आवश्यक उत्पादन-क्षमता के मूल्यों को (देखिए सारणी 19–1) जोड़ने पर X की एक इकाई के मूल्य से कम न हो। असमानता (19·8) यही बात Y के उत्पादन के सबंध में व्यक्त करती है। दोनों को एक साथ लेने पर और समीकरण के रूप में मानने पर ये यह बतलाते हैं कि प्रत्येक किस्म की उत्पादन क्षमता पर लगाए जाने वाले मूल्य ऐसे हों कि X अथवा Y के उत्पादन में प्रयुक्त एक डालर मूल्य की उत्पादन-क्षमता एक डालर लगान अवश्य प्रदान करे।

[(19·7) व (19·8) को समीकरण मानने पर] हमारे समक्ष यह दुविधा उपस्थित हो जाती है कि अज्ञात-राशियों (unknowns) के हल के लिए अज्ञात-राशियों की सख्या समीकरणों (equations) की सख्या से अधिक हो जाती है। लेकिन पूर्ववर्णित रैखिक प्रोग्रामिंग सिद्धान्त, परम्परागत आर्थिक विश्लेषण के सहित, हमें इस स्थिति से निकाल सकता है। रैखिक प्रोग्रामिंग सिद्धान्त यह बतलाता है कि ऐसी स्थिर सुविधाओं की सख्या जो फर्म की उत्पत्ति पर प्रभावपूर्ण प्रतिबन्धों के रूप में कार्य करती हैं प्रयुक्त होने वाली प्रक्रियाओं की सख्या से अधिक नहीं होनी चाहिए। दो प्रक्रियाएँ प्रयुक्त होती हैं—एक X का उत्पादन करने के लिए और दूसरी Y का उत्पादन करने के लिए। परिणामस्वरूप, फर्म की उत्पत्ति पर केवल दो स्थिर सुविधाएँ ही प्रभावपूर्ण प्रतिबन्ध का काम कर सकती हैं और अन्य दो का अल्प उपयोग हो पाता है।

अब अल्पप्रयुक्त क्षमता पर परम्परागत आर्थिक विश्लेषण की दृष्टि से विचार करें। ऐसी क्षमता में मामूली वृद्धि—जैसे 1 प्रतिशत की—से फर्म की उत्पत्ति या कुल प्राप्तियों में जरा भी वृद्धि नहीं होगी। इसलिए ऐसी वृद्धि से सीमान्त-आय उत्पत्ति शून्य होगी और इसका अभ्यारोपित मूल्य (imputed value) भी शून्य होगा। सुविधा के प्रत्येक दूसरे 1 प्रतिशत का अभ्यारोपित मूल्य भी शून्य होगा और इस प्रकार सम्पूर्ण अल्पप्रयुक्त सुविधा का होगा। चूँकि हमारे पास दो अल्पप्रयुक्त

सुविधाएँ होती हैं, इसलिए (19 7) और (19 8) की चलराशियो मे से दो के मूल्य शून्य होते हैं और अन्य दो के धनात्मक (positive) होते हैं।

अब प्रश्न इस बात का पता लगाने का है कि जब फर्म स्थिर सुविधाओं का कुल मूल्यांकन न्यूनतम करती है, तो V_m, V_n, V_s व V_r, चलराशियो मे से कौन-सी दो चलराशियो के अभ्यारोपित मूल्य शून्य होते हैं और कौन-सी दो के धनात्मक मूल्य होते हैं। हम शुरू मे इनमे से कोई दो के शून्य के बराबर मूल्य लगाकर अन्य दो का हल निकालते हैं। उसके बाद हम दूसरे जोडे के शून्य मूल्य लगाते है (एक जोडा पिछले जोडे मे से हो सकता हैं) और शेष जोडो के लिए हल निकालते हैं। हम इस विधि से उस समय तक आगे बढते जाते है जब तक कि चलराशियो के प्रत्येक सम्भव जोडे को शून्य मूल्य नही दे दिया जाता, और शेष चलराशियो के तदनुरूप हल नही प्राप्त हो जाते। इस किस्म के छ हल सम्भव होते हैं। हम इनकी क्रमश जांच करेंगे।

सारणी 19–2 इन्पुट-मूल्यो का अभ्यारोपण (Imputation)

हल	डालरों मे अभ्यारोपण (imputed value)				डालरो में
	V_m	V_n	V_s	V_r	कुल मूल्यांकन
(1)	0	0	300	—80	....
(2)	0	200	0	80	280
(3)	0	100	150	0	250
(4)	181 82	0	0	160	341·82
(5)	66 66	0	200	0	266 66
(6)	—181 82	400	0	0	....

शुरू मे हम मान लेते हैं कि V_m और V_n के मूल्य शून्य के बराबर हैं। तब समीकरण (19 7) और (19 8) इस प्रकार हो जाते है :

और :

$$0\,04\ V_s + 0\,05\ V_r = 8 \qquad (19\ 7\ a)$$

$$0\,02\ V_s + 0\,0\ V_r = 6 \qquad (19\ 8\ a)$$

V_s के लिए समीकरण (19 8 a) को हल करने पर हम देखते हैं कि V_s बराबर होता है \$300 के। V_s के इस मूल्य को समीकरण (19 7 a) मे प्रतिस्थापित करने पर हम देखते हैं कि V_r बराबर होता है —\$80 के। यह सारणी 19–2 मे हल (1) के रूप मे दर्ज किया जाता है।

द्वितीय, मान लीजिए हम V_m व V_s को शून्य मूल्य लेने देते हैं। तब समीकरण (19 7) व (19 8) इस प्रकार हो जाते हैं

और $\quad 0.02\ V_n + 0.05 V_r = 8 \quad$ (19 7b)

$\quad 0.03\ V_n + 0.0 V_r = 6 \quad$ (19.8b)

समीकरण (19 8 b) को V_n के लिए हल करने पर V_n बराबर होता है \$200 के। समीकरण (19 7 b) में प्रतिस्थापित करने पर V_r बराबर होता है \$80 के। ये मूल्य सारणी 19-2 में हल (2) के रूप में दर्ज किए गए हैं।

तृतीय, मान लीजिए V_m व V_r शून्य मूल्य ले लेते हैं। तब समीकरण (19.7) व (19 8) इस प्रकार हो जाते हैं

और $\quad 0.02\ V_n + 0.04\ V_s = 8 \quad$ (19 7c)

$\quad 0.03\ V_n + 0.02\ V_s = 6 \quad$ (19 8c)

इनको एक साथ हल करने पर V_n का मूल्य \$100 और V_s का \$150 के बराबर आता है। ये सारणी 19-2 म हल (3) के रूप मे दर्ज किए गए हैं।

चतुर्थ, मान लीजिए, V_n व V_s शून्य मूल्य रखते हैं। तब समीकरण (19 7) और (19 8) इस प्रकार हो जाते हैं।

और $\quad 0.05 V_r = 8 \quad$ (19 7d)

$\quad 0.033 V_m = 6 \quad$ (19.8d)

हल इस प्रकार होंगे V_r बराबर होगा \$160 के और V_m होगा \$181 82 के। ये सारणी 19-2 मे हल (4) के रूप मे दिखलाए गए हैं।

पंचम, यदि V_n व V_r शून्य हो, तो समीकरण (19 7) व (19 8) इस प्रकार हो जायेंगे :

और $\quad 0.0\ V_m + 0.04\ V_s = 8 \quad$ (19 7e)

$\quad 0.033\ V_m + 0.02\ V_s = 6 \quad$ (19 8e)

समीकरण (19 7 e) को V_s के लिए हल करने पर \$200 का मूल्य प्राप्त होता है। V_s के इस मूल्य को समीकरण (19 8e) मे लगाने से V_m बराबर \$66 66 हो जाता है। ये सारणी 19-2 में हल संख्या (5) के रूप मे सूचित किए गए हैं।

अन्त मे, जब हम V_s व V_r को शून्य मूल्य लेने देते हैं तो हम सारी सम्भावनाएँ

समाप्त कर देते हैं। इस स्थिति मे समीकरण (19.7) व (19·8) इस प्रकार हो जाते हैं :

$$0{\cdot}0\ V_m + 0{\cdot}02\ V_n = 8 \qquad (19.7\ f)$$

और

$$0{\cdot}033\ V_m + 0{\cdot}03\ V_n = 6 \qquad (19{\cdot}8\ f)$$

समीकरण (19.7f) मे V_n बराबर होता है $400 के। V_n के इस मूल्य को समीकरण (19.8 f) में प्रतिस्थापित करने पर, हम देखते हैं कि V_m बराबर होता है – $181·82। के ये सारणी 19–2 मे हल(6)के रूप में दिखलाए गए हैं।

चार सुविधाओ को दिए जा सकने वाले न्यूनतम मूल्यों के सभी छः सभव संयोग सारणी 19–2 मे दिखलाए गए हैं। छः सम्भव हलो मे से दो को तो शीघ्र ही खारिज किया जा सकता है। हल (1) और (6) एक चलराशि के लिए ऋणात्मक मूल्य देते हैं, इस प्रकार ये इस शर्त का उल्लघन करते हैं कि अभ्यारोपित मूल्य शून्य के बराबर हों अथवा बडे हो। यह मालूम करने के लिए कि शेष चार हलो मे से कौन-सा हल लक्ष्य-समीकरण (19 6) का V न्यूनतम करेगा, हम (19.6) का मूल्यांकन चारो मे से प्रत्येक का क्रम से उपयोग करके कर सकते हैं। इनके परिणाम सारणी 19–2 के अन्तिम कॉलम मे सूचित किए गए हैं। इस प्रकार, चार हलो मे से ऐसा प्रतीत होता है कि हल (3) ऐसा है जिसकी हम खोज कर रहे हैं। सुविधाओ M और R को अभ्यारोपित मूल्य शून्य के बराबर दिए जाते है। ये ही ऐसी हैं जिनका पूरा उपयोग नही किया जाता है। सुविधा N को $100 का अभ्यारोपित मूल्य दिया जाता है। सुविधा S को $150 का अभ्यारोपित मूल्य दिया जाता है। इस प्रकार पूर्णतया प्रयुक्त होने वाली स्थिर सुविधाओ का न्यूनतम सभव मूल्यांकन $250 उस समय होता हैं जबकि इनमे से प्रत्येक की उत्पादन-क्षमता X अथवा Y के उत्पादन मे समान रूप से मूल्यवान होती है।

वैकल्पिक रूप मे, मान लीजिए, हम समस्या पर ज्यामितीय रूप मे विचार करते है। चूंकि M व R सुविधाओ के अभ्यारोपित मूल्य शून्य के बराबर होते हैं, इसलिए लक्ष्य-समीकरण (19 6) इस प्रकार हो जाता है :

$$V_n + V_s = V \qquad (19\ 6\ a)$$

यह समीकरण सममूल्य-वक्रों (isovalue curves) का एक समूह प्रदान करता है, जिनमे से प्रत्येक का ढाल —1 होता है। यदि V=$300 हो, तो चित्र 19–6 मे F_1 D लक्ष्य-समीकरण का रेखाचित्रीय रूप होगा। यदि V=$250 हो तो FG इसका रेखाचित्रीय रूप होगा। V को दिए जाने वाले प्रत्येक भिन्न मूल्य से एक भिन्न सममूल्य-वक्र स्थापित होता है। ऐसे सभी वक्र एक दूसरे के समानान्तर होते हैं।
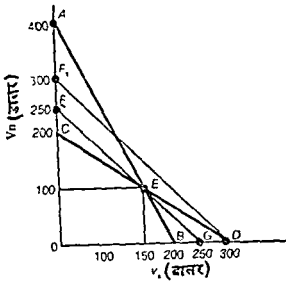
चित्र 19-6 स्फुट-मूल्यों का अभ्यारोपण (Imputation)

चित्र 19-6 में समीकरण (19 7c) और (19 8c) क्रमश AB और CD के रूप में अंकित किए गए हैं। AB वक्र N व S सुविधाओं को दिए जा सकने वाले मूल्यों के न्यूनतम सम्भव संयोगों को दर्शाता है ताकि एक डालर मूल्य की उत्पादन-क्षमता X के उत्पादन में एक डालर लगान उत्पन्न करेगी। CD वक्र N व S सुविधाओं को दिए जा सकने वाले मूल्यों के न्यूनतम सम्भव संयोगों को दर्शाता है ताकि एक डालर मूल्य की उत्पादन-क्षमता Y के उत्पादन में एक डालर लगान उत्पन्न करेगी। CE के द्वारा सूचित मूल्यों के जोड़े X के उत्पादन में सुविधाओं का कम मूल्य लगायेंगे। EB के द्वारा सूचित जोड़े Y के उत्पादन में सुविधाओं का कम मूल्य लगायेंगे। इस प्रकार A, E व D को मिलाने वाली रेखाएँ N व S सुविधाओं के मूल्यों के न्यूनतम सम्भव संयोगों को सूचित करती हैं, ताकि एक डालर मूल्य की उत्पादन-क्षमता एक डालर मूल्य के X अथवा Y का उत्पादन कर सकेगी। AED के ऊपर एव दायीं तरफ का क्षेत्र अभ्यारोपण की समस्या (imputation problem) के सभाव्य हलों का क्षेत्र होता है।

ज्यामितीय रूप में श्रेष्ठतम हल तक पहुँचने के लिए सर्वप्रथम उस न्यूनतम सममूल्य-वक्र का पता लगाया जाता है जिसे सभाव्य हलों का क्षेत्र छूता है। यह FG वक्र है। E बिन्दु के द्वारा सूचित N और S सुविधाओं के मूल्यों का जोड़ा श्रेष्ठतम हल है जहाँ V_n बराबर है $100 के और V_s बराबर है $150 के। AED पर, इसके ऊपर अथवा इसके दाहिनी तरफ किसी भी दूसरे बिन्दु पर उस बिन्दु के जरिए

सममूल्य-रेखा के द्वारा प्रदर्शित कुल अभ्यारोपित मूल्य इतना नीचा नहीं होगा। E बिन्दु पर एक डालर मूल्य की उत्पादन-क्षमता एक डालर मूल्य का X अथवा Y या दोनों उत्पन्न करेगी। यह ध्यान देने योग्य है कि द्वैत समस्या (dual pr blem) का श्रेष्ठतम हल, प्राइमल समस्या की भांति एक "कोने" का हल होता है—'कोना' फर्म पर होने वाले रैखिक प्रतिबन्धों में से दो के एक साथ हल का सूचक होता है।

द्वैत समस्या की प्राइमल समस्या से तुलना करने से यह पता लगता है कि दोनों से एक-सी सूचना प्राप्त होती है। इन दोनों में हमने देखा कि M और R सुविधाएँ अल्पप्रयुक्त दशा में रहीं और केवल N और S सुविधाएँ ही क्षमता के अनुसार प्रयुक्त की गईं। हमने यह देखा कि इन दो सुविधाओं पर लगाए जा सकने वाले न्यूनतम मूल्यों का जोड़ उनके द्वारा उत्पन्न किए जा सकने वाले अधिकतम लगान के बराबर होगा। इसके अलावा, प्राइमल समस्या में हमने देखा कि अधिकतम लगान उस समय प्राप्त किया जाता है जबकि Y की 25 इकाइयाँ और X की $12\frac{1}{2}$ इकाइयाँ उत्पन्न की जाती हैं। Y की 25 इकाइयाँ जो प्रति इकाई लगान में \$6 देती हैं, कुल लगान \$150 देती हैं। X की साढ़े बारह इकाइयाँ, जो प्रति इकाई लगान में \$8 देती हैं कुल लगान \$100 देती हैं। सारणी 19–1 से हम पता लगा सकते हैं कि Y की 25 इकाइयों के उत्पादन के लिए N सुविधा की 75 प्रतिशत क्षमता की एवं S सुविधा की 50 प्रतिशत क्षमता की आवश्यकता होती है। X की $12\frac{1}{2}$ इकाइयों के उत्पादन के लिए सुविधा N की 25 प्रतिशत क्षमता और सुविधा S की 50 प्रतिशत क्षमता की आवश्यकता होती है। द्वैत समस्या से, जिसमें V_n व V_s क्रमश \$100 व \$150 पाए गए थे, हम यह पाते हैं कि Y के उत्पादन में प्रयुक्त N सुविधा के 75 प्रतिशत का मूल्य \$75 होता है, जबकि Y के उत्पादन में प्रयुक्त S सुविधा के 50 प्रतिशत का मूल्य भी \$75 होता है। इस प्रकार N और S सुविधाओं के उस अंश का कुल अभ्यारोपित मूल्य, जो Y के उत्पादन में प्रयुक्त हुआ है, \$150 होता जो Y के द्वारा प्रदत्त कुल लगान के बराबर होगा। इसी प्रकार X के उत्पादन में प्रयुक्त N सुविधा के 25 प्रतिशत का मूल्य \$25 होता है, जबकि इसके उत्पादन में प्रयुक्त S सुविधा के 50 प्रतिशत का मूल्य \$75 होता है। X के उत्पादन में प्रयुक्त सुविधाओं के उस अंश का कुल मूल्य \$100 होता है, जो X–वस्तु के द्वारा प्रदत्त कुल लगान के बराबर होता है।

सारांश

रैखिक प्रोग्रामिंग कुछ दशाओं अथवा प्रतिबन्धों के अन्तर्गत अधिकतमकरण व न्यूनतमकरण की समस्याओं को हल करने की एक तरकीब होती है। यह तरकीब कुछ मान्यताओं पर आधारित होती है। निर्णय का कार्य निर्णय करने वाली एजेंसी

पर कुछ प्रतिबन्धो की दशा मे सम्पन्न किया जाता है. इन्पुट व आउटपुट की कीमतें स्थिर मानी जाती हैं, और फर्म के इन्पुट-आउटपुट, आउटपुट आउटपुट, व इन्पुट-इन्पुट सम्बन्ध रैखिक माने जाते हैं।

प्रथम समस्या जिस पर विचार किया गया वह एक दिए हुए लागत-परिव्यय के प्रतिबन्ध की स्थिति मे फर्म की उत्पत्ति (कुल आय) के अधिकतमकरण की थी। फर्म का उत्पादन-फलन रैखिक रूप मे समरूप (linearly homogeneous) माना गया और फर्म का चुनाव अपने माल के उत्पादन मे चार विभिन्न प्रक्रियाओ तक ही सीमित था। फर्म के समोत्पत्ति वक्र व समलागत वक्र स्थापित किए गए। समस्या के सम्भाव्य हलो का क्षेत्र स्थापित किया गया और उसके पश्चात् श्रेष्ठतम हल उस बिन्दु पर प्राप्त किया गया जहाँ समलागत-वक्र ने फर्म के एक समोत्पत्ति वक्र के एक कोने को छुआ। इन्पुटो की कीमतो के दिए हुए होने पर, लागत-परिव्यय के परिवर्तन इस बात मे कोई परिवर्तन नही करेंगे कि उपलब्ध प्रक्रियाओ मे से कौन-सी प्रक्रिया श्रेष्ठतम होती है, लेकिन वे केवल इसके उपयोग के स्तर को प्रभावित करेंगे। इन्पुटो की सापेक्ष कीमतो के परिवर्तन इस बात म परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं कि उपलब्ध प्रक्रियाओ मे से कौन सी प्रक्रिया श्रेष्ठतम होगी। यदि फर्म इन्पुटो की मात्रा सम्बन्धी सीमाओ के प्रतिबन्धो के अन्तर्गत उत्पत्ति अधिकतम करती है, तो इन्पुट-कीमतो के बजाय ये ही चुनी जाने वाली प्रक्रिया या प्रक्रियाओ को निर्धारित करती हैं। सामान्यतया फम की क्रियाओं को चालू रखने के लिए आवश्यक प्रक्रियाओ की सख्या उन प्रतिबन्धो की सख्या के बराबर होगी जिनके अन्तर्गत वह फर्म कार्य करती है।

दूसरी समस्या फर्म के कुल लगानो को उस स्थिति मे अधिकतम करने की है जबकि अनेक वस्तुएँ उत्पादित की जाती हैं और उनके उत्पादन के लिए कई सीमित सुविधाएँ प्रयुक्त की जाती हैं। प्रत्येक वस्तु के उत्पादन के लिए प्रक्रियाएँ निर्धारित की जाती हैं। प्रतिबन्धो के सहित ये समस्या के सभाव्य उत्पत्ति-हलो के क्षेत्र को निर्धारित करती हैं। प्रत्येक उत्पत्ति के द्वारा प्रदान किए जाने वाले लगान की राशि के दिए हुए होने पर, विभिन्न उत्पत्ति की मात्राओ के लिए समलगान रेखाएँ स्थापित की जा सकती हैं, और समस्या का श्रेष्ठतम हल वह होगा जिस पर सभाव्य हलो का क्षेत्र सर्वोच्च सभव समलगान रेखा को केवल छूता मात्र है। यह सामान्यत सभाव्य हलो के क्षेत्र के कोने पर होगा। यह आवश्यक नही कि सभी इन्पुट या सुविधा की मात्रा सम्बन्धी सीमाएँ फर्म पर प्रभावपूर्ण प्रतिबन्धो का कार्य करें। प्रभावपूर्ण प्रतिबन्धो की सख्या सामान्यतया प्रयुक्त की जाने वाली प्रक्रियाओ की सख्या के बराबर होगी। प्रत्येक उत्पत्ति के द्वारा प्रदान किए जाने वाले सापेक्ष लगानो के परिवर्तन श्रेष्ठतम हल को परिवर्तित कर सकते हैं, और, परिणामस्वरूप, इन्पुट सीमाओ को भी, जो प्रभावपूर्ण प्रतिबन्धो का कार्य करती हैं।

इसके बाद रैखिक प्रोग्रामिंग प्राइमल समस्या के द्वैध-हल (dual solution) पर ध्यान दिया गया। पिछले पैरा में जिस प्राइमल रैखिक प्रोग्रामिंग समस्या का सारांश प्रस्तुत किया गया है उसकी द्वैध-समस्या उन इन्पुटों का मूल्य आरोपित करने में होती है जो फर्म पर प्रभावपूर्ण प्रतिबन्धों का कार्य करती हैं। ऐसी इन्पुटों की उपलब्ध होने वाली कुल मात्राओं के आरोपित मूल्य ऐसे होंगे कि उनका जोड़ फर्म के कुल लगान से अधिक नहीं होगा। इसके लिए न्यूनतम मूल्यांकनों के उस संयोग का पता लगाना होगा जहाँ किसी भी इन्पुट पर व्यय किया गया एक डालर इसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं में से प्रत्येक में एक डालर के बराबर लगान प्रदान करता है।

अध्ययन-सामग्री

Baumol, William J., "Activity Analysis in one Lesson," *American Economic Review*, Vol. XLVIII (December 1958), pp. 837–873

Dorfman, Robert, "Mathematical or 'Linear' Programming: A Nonmathematical Exposition, *American Economic Review*, vol XLIII (December 1953), pp 797–825.

Liebhafsky, H. H. *The Nature of Price Theory*, rev. ed. (Homewood, Ill. The Dorsey Press, Inc, 1968), Chap 17

Wu, Yuan-Li and Ching-Wen Kwang, "An Analytical Comparison of Marginal Analysis and Mathematical Programming in the Theory of the Firm," reprinted in Kenneth E. Boulding and W. Allen Spivey, eds, *Linear Programming and The Theory of the Firm*. (New York : McGraw-Hill Inc., 1960), pp. 94–157.

अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली

Absolute निरपेक्ष
Adjustment समायोजन
Aggregate समग्र
Allocation of resources साधन-आवंटन
Allotment नियतन
Assume मान लीजिए, कल्पना कीजिए
Assumptions मान्यताएं, पूर्वधारणाएँ
Asymptotic अनन्तस्पर्शी
Attainable combinations प्राप्य संयोग
Average cost औसत लागत
Bilateral monopoly द्विपक्षीय एकाधिकार
Budget line बजट रेखा
By-product उपोत्पाद
Calculus कलन
Choice between alternatives विकल्पों के बीच चुनाव
Collective bargaining सामूहिक सौदाकारी
Collusion गठबन्धन
Combination संयोग, जोड़ा
Compensating variation क्षतिपूरक-परिवर्तन
Competition प्रतियोगिता, प्रतिस्पर्धा
Competitive प्रतिस्पर्धात्मक
Complementarity पूरकता
Composition of output उत्पत्ति-संरचना
Concave नतोदर
Concave range of indifference curve तटस्थता-वक्र का नतोदर भाग
Constraint प्रतिबन्ध
Consumption pattern उपभोग प्रारूप
Continuous line सन्तत रेखा
Contour line परिधि रेखा
Convex उन्नतोदर
Coordinates निर्देशांक
Consistent संगत
Cost structure लागत ढांचा
Counteract प्रतिरोध करना
Cumulative संचयी
Derivation व्युत्पत्ति
Digression विषयान्तर
Differentiated goods विभेदित वस्तुएं
Dimension आयाम
Discrete खण्डित, असतत
Diseconomies अमितव्ययिताएँ
Disposable income प्रयोज्य आय
Distortions विकृतियाँ
Dominant firm प्रमुख फर्म, प्रभुता-सम्पन्न फर्म
Dual problem द्वैध समस्या
Dynamic प्रावैगिक, गत्यात्मक
Economic maintenance आर्थिक अनुरक्षण
Economies of scale पैमाने की मितव्ययिताएँ या किफायतें
Elastic लोचदार
Elasticity of demand माग की लोच
Elasticity coefficient लोच-गुणांक

Employment of resources साधनों का उपयोग
Envelope curve परिवेष्टन-वक्र, लपेटने वाला वक्र
Expansion path विस्तार-पथ
Explicit costs व्यक्त लागतें, सुनिश्चित लागतें
Exploitation शोषण, विदोहन
Responsiveness of demand मांग की प्रतिक्रियाशीलता
Arc-elasticity आर्क-लोच, चाप-लोच
Cross-elasticity तिरछी-लोच, आड़ी-लोच, प्रतिलोच
Numerical elasticity अंकीय लोच
Equal product curves, iso-product curves or isoquants समोत्पत्ति वक्र
Equilibrium सन्तुलन, साम्य
Consumer's equilibrium उपभोक्ता-सन्तुलन
Equilibrium of the firm फर्म-सन्तुलन
Particular equilibrium विशिष्ट-सन्तुलन
Partial equilibrium analysis आंशिक सन्तुलन-विश्लेषण
General equilibrium सामान्य सन्तुलन
Stable equilibrium स्थिर सन्तुलन
External economies बाहरी मितव्ययिताएँ
Externalities बाहरी प्रभाव बाह्यताएँ
Feasible solution सम्भाव्य हल
Free enterprise economy स्वतन्त्र उद्यमशाली अर्थव्यवस्था
Functional relationship फलनीय सम्बन्ध
Giffen's paradox गिफेन का विरोधाभास
Heterogeneity विजातीयता, विषमता
Heterogeneous goods विषम वस्तुएँ
Homogeneity समरूपता, सजातीयता
Homogeneous goods समरूप वस्तुएँ, एक-सी वस्तुएँ
Horizontal axis क्षैतिज अक्ष
Implicit costs अव्यक्त लागतें, अन्तर्निहित लागतें
Imputed value अध्यारोपित मूल्य, लगाया गया मूल्य
Indifference curve analysis तटस्थता-वक्र-विश्लेषण, अनधिमान-वक्र-विश्लेषण
Indivisibilities अविभाज्यताएँ
Inelastic बेलोच
Inferior goods घटिया वस्तुएँ, निकृष्ट वस्तुएँ
Infinitesimal calculus अतिसूक्ष्म कलन
Innovation नव-प्रवर्तन, नई विधि
Input आगत, इन्पुट
Investment विनियोग, निवेश
Isocost curve समलागत वक्र
Isoquant समोत्पत्ति वक्र
Isorent curve समलगान-वक्र
Isovalue curve सममूल्य-वक्र
Isorevenue curve समआय-वक्र
Socialised investment समाजीकृत विनियोग
Ex-ante investment होने वाला विनियोग, पूर्वानुमानित विनियोग
Ex post investment हो चुका विनियोग
Joint demand संयुक्त मांग, मिश्रित मांग
Kinked demand curve मोड़युक्त मांग-वक्र, विकुंचित मांग-वक्र
Labour economies श्रम-सम्बन्धी मितव्ययिताएँ
Laws of returns प्रतिफल के नियम
Limiting case परिसीमा-दशा

Linear homogeneous production function रैखिक समरूप उत्पादन फलन
Linear Programming रैखिक प्रोग्रामिंग
Linear ray रैखिक रश्मि
Line segment रेखांश
Macroeconomic theory समष्टिमूलक या समष्टिगत आर्थिक सिद्धान्त
Macroeconomics समष्टि अर्थशास्त्र
Marginal सीमान्त
Intra marginal unit सीमान्त पूर्व इकाई
Extra marginal unit सीमा पार इकाई सीमा से परे की इकाई
Maladjustment कुसमायोजन
Marginal cost सीमान्त लागत
Marginal revenue सीमान्त आय
Marginal revenue product सीमान्त आय उत्पत्ति
Marginal physical productivity सीमान्त भौतिक उत्पादकता
Mechanics यांत्रिकी यन्त्रशास्त्र
Maximisation problems अधिकतमीकरण की समस्याएँ
Microeconomic theory व्यष्टिमूलक आर्थिक सिद्धान्त
Microeconomics व्यष्टि अर्थशास्त्र
Model मॉडल, प्रतिरूप
Monetary मौद्रिक द्राव्यिक
Monetized मुद्राकृत
Minimization न्यूनतमकरण
Monopolistic association एकाधिकृत संगठन
Monopolistic competition एकाधिकारात्मक या एकाधिकारी प्रतियोगिता
Monopolistic firm एकाधिकारी फर्म
Monopoly एकाधिकार
Monopolised एकाधिकृत
Degrees of monopoly एकाधिकार की श्रेणियाँ
Discriminating monopoly विभेदात्मक एकाधिकार
Monopsony एकक्रेताधिकार
Monopsonistic competition एकक्रेताधिकारात्मक या एकक्रेताधिकारी प्रतियोगिता
Multiple products कई वस्तुएँ
Noncollusive cases असहबन्धन की दशाएँ
Normal सामान्य
Super-normal अधिसामान्य
Sub normal अवसामान्य
Objective equation ध्येय समीकरण
Observable data पर्यवेक्षणीय तथ्य
Oligopoly अल्पाधिकार, अल्पविक्रेताधिकार
Oligopoly without product differentiation वस्तु भेदरहित अल्पाधिकार
Oligopoly with product differentiation वस्तु-भेदसहित अल्पाधिकार
Oligopolistic competition अल्पाधिकारी प्रतियोगिता
Oligopsony अल्पक्रेताधिकार
Opportunity cost अवसर लागत
Optimal solution इष्टतम हल
Optimum अनुकूलतम
Output उत्पत्ति, निर्गत, आउटपुट
Output mix उत्पत्ति-मिश्रण
Outlay व्यय
Overhead cost ऊपरी लागत
Pattern of final demand अंतिम मांग का प्रारूप
Plant capacity संयंत्र-क्षमता

Point of intersection कटाव-बिन्दु
Potentialities सम्भाव्यताएँ
Preferable उत्तम, बेहतर
Preference अधिमान, पसन्द
Price कीमत, भाव
Price difference कीमत-अन्तर
Price war कीमत-संघर्ष
Price discrimination कीमत-विभेद
Price effect कीमत-प्रभाव
Price determination कीमत-निर्धारण
Production capacity उत्पादन-क्षमता
Production function उत्पादन-फलन
Continuous and discrete production function सतत व असतत उत्पादन-फलन
Profit maximisation लाभ-अधिकतमकरण
Proposition प्रस्थापना
Pure शुद्ध, विशुद्ध
Quasi-rent अर्द्ध-लगान, आभास-लगान
Range विस्तार, दायरा
Rationality विवेकशीलता, तर्कशीलता
Rational choice विवेकपूर्ण चुनाव, युक्तिसंगत चुनाव
Reallocation पुनरावंटन
Receipts प्राप्तियाँ
Rectangular hyperbola आयताकार अतिपरवलय
Relative सापेक्ष
Rent लगान
Revenue आय
Ridge line सीमा-रेखा, परिधि-रेखा
Scarcity rent दुर्लभता-लगान
Differential rent भेदात्मक लगान
Resource availability साधन-प्राप्ति
Returns to scale पैमाने के प्रतिफल
Resource transfer साधन-अन्तरण, साधनान्तरण
Law of diminishing returns ह्रासमान प्रतिफल-नियम, उत्पत्ति ह्रास नियम
Law of increasing returns वर्द्धमान—प्रतिफल-नियम, उत्पत्ति वृद्धि नियम
Law of constant returns समता-प्रतिफल-नियम, उत्पत्ति समता नियम
Law of variable proportions परिवर्तनशील अनुपात नियम
Revealed preference प्रगट-अधिमान
Satiability of wants आवश्यकताओं की तृप्यता
Secular stagnation अतिदीर्घकालीन गतिहीनता
Scales of preference अधिमान-माप
Schedule अनुसूची
Selling cost बिक्री सम्बन्धी लागत
Shadow price अनुमानित कीमत
Slope ढाल
Steep slope गहरा ढाल
Substitutes स्थानापन्न
Substitution effect प्रतिस्थापन प्रभाव
Supply पूर्ति, सप्लाई
Symmetry समिति
Static analysis स्थैतिक विश्लेषण
Surplus आधिक्य, अतिरेक
Comparative statics तुलनात्मक स्थैतिकी
Table सारणी
Tangency स्पर्शिता
Technical substitutability तकनीकी स्थानापन्नता
Technique तकनीक
Technology प्रौद्योगिकी, टेक्नोलोजी
Technological variations प्रौद्योगिकीय परिवर्तन, टेक्नोलॉजिकल परिवर्तन
Transfer earnings स्थानान्तरण-आय
Underutilization अल्प प्रयोग

Unresponsive प्रतिक्रिया शून्य
Utility उपयोगिता, तुष्टिगुण
Value मूल्य
Value of marginal product सीमान्त उत्पत्ति का मूल्य
Valuation मूल्यांकन
Variable चलराशि, चर
Variable cost परिवर्तनशील लागत, परिवर्ती लागत
Versatility of resources साधनों में बहु-उपयोगिता का गुण
Vertical लम्बवत्, उदग्र

□ □ □